



श्रीः ।

अन्वयांकसमेत

श्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विषेदीकीरचित

मुम्बईमें

श्रीकृष्णदासात्मज—

इनोंने

श्रीवेङ्कटेश्वरनामनिजयत्रये मुद्रित किया.

श्रीसम्बत् १९४८ वैक्रमी

कार्तिक कृष्णपक्ष १३



## सूचनम्

प्रगट होय कि यह मानव धर्मशास्त्र अति उत्तम है इसमें मनुजीने अति उत्तम रीति पूर्वक ऋषिके क्रमसे आरंभकरि सब वर्णोंकी उत्पत्ति और उनके संस्कार आचार आदि सब स्फुट करके उत्तमरीतिके अनुसार कहे हैं यह मनुस्मृति ग्रंथ हमारे सब धर्मशास्त्रके स्मृतिआदि ग्रंथोंका शिरोमणि है बहुधा कोई स्मृति इससे विरुद्ध नहीं है और जो कदाचित् कोई किसी अंशमें विरुद्ध है तो उसकी प्रशंसा नहीं है कारण यह है कि ये मनुजी संपूर्ण वेदार्थ के तत्वको अति उत्तम रीतिसे जानते थे सो इन्होंने वेदार्थ हीका अपनी स्मृतिमें उत्तमतासे वर्णन किया है सोई लिखा है ॥ वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्रांमाण्यं हि मनोरश्मृतम् ॥ मनुस्मृतिविरुद्धायासास्मृतिर्न प्रशस्यते ॥ इति ॥ अर्थ ॥ वेदार्थके अनुसार कहेनेके कारण मनुका प्रांमाण्य है और मनुस्मृतिसे विरुद्ध जो स्मृति है उसकी प्रशंसा नहीं है और भी उपनिषद्में लिखा है ॥ यथायद्वैमनुरवदत्तद्वेपजं भेषताया ॥ इति ॥ अर्थ ॥ निश्चयकरि जो मनुने कहा है वह भेषजताका भेषज है अर्थात् औषधकी भी औषध है इत्यादि वचनोंसे भी मनुस्मृतिकी सर्वोत्तमता प्रकट होती है अब देखिये ऐसे उत्तमग्रंथको सहस्रशः मनुष्य संस्कृत विद्यामें व्युत्पात्ति न होनेके कारण कुछ नहीं समझ सकते इस निमित्त मैंने श्रीकुल्लूकभट्टकृत टीकाके अनुसार बड़े श्रमसे सरल मनुष्य भाषामें सबोंके समझनेयोग्य यह टीका बनाई है यद्यपि और भी दोतीनि इसकी भाषा टीका बनी हैं परन्तु उनमें किसी २ नेतौ बहुत ही अनर्गल लिखा है कि मूलका कुछ आशय है और टीकामें कुछ और ही लिखा है धन्य है वे टीका बनाने और छापने वाले उनकी प्रशंसा नहीं हो सकती और दोएकमें पहले सेतौ आरम्भ अच्छा है परन्तु पीछे से केवल श्लोकहीका संक्षिप्त आशय लिखा है अब देखिये यह धर्मशास्त्रका ग्रंथ है जो मूलहीसे काम चलता तो इस पर गोविन्दराज मेधाविधि आदि आचार्य टीका बनानेका श्रम क्यों करते इन सब बातोंको शोचि समझके मैंने यह फलकत्तेकी छपी हुई कुल्लूकभट्टकी बनाई टीका जो इन दिनोंमें बहुत प्रचलित है और सब विद्वन्मण्डलोंमें प्रसिद्धि है उसके अनुसार आद्योपांत ग्रंथ बनाया है जिसकीसिको शंका होय वह ग्रंथ भरमें जहाँके चाहे वहाँके श्लोकटीकासे मिले कि यह उक्त भट्टजीकी टीकाके अनुसार है भ्रान्ती और इस सटीक पुस्तकको बनानेके शुद्धकरि वैशयकुलोत्पन्न श्रीयुत गंगाविष्णु स्वमराजको मुंबईमें छापने तथा रजसंस्त्री करनेका अधिकार दिया इस पुस्तकको उनके सिवाय अन्य यंत्राधिप छापनेका उद्योग न करे इति । संवत् १९४८ कार्तिकवदि ८ रवौ

**श्रीपण्डित केशवप्रसाद शर्मा द्विवेदी**

**आगराकालेजका पेनशिनर हैड पण्डित**

**सम्प्रति संस्कृत प्राफेसर सेन्टजान्सकालेज आगरा**

## टीकाकारप्रस्तावः ॥

ब्रह्मावर्तात्प्रतीच्यां सुरतदिनितटेवत्तेरांधनारुयोभ्रायस्तस्मिन्दिजातोद्विजकुल-  
तिलकः श्रीभवानीप्रसादः ॥ तत्सूनुः श्रीद्विवेदीसमजनिविदितोदेवमप्याख्ययाय  
स्तस्माज्जातस्सुबुद्धिःपरमसुखइतिख्यातिमान्पण्डिताग्र्यः ॥ १ ॥ तस्यांत्मजः  
केशवपूर्वकोऽहंप्रसादनामाबहुधाप्रसिद्धः ॥ अकारियेनेयमनुप्रणीतशास्त्रस्पटीकानु-  
गिराऽऽगराख्ये ॥ २ ॥

टीका—ब्रह्मावर्त्त जिसको विठूर कहते है उससे पश्चिमदिशामें गंगाजीके तट  
पर राघनाम ग्रामहै उसमें ब्राह्मणोंके कुलमें श्रेष्ठं श्रीयुक्तभवानीप्रसाद उत्पन्न  
हुए उनके पुत्र देवमणि नामसे विदितद्विवेदी हुए उनसे सुंदर बुद्धिवाले पण्डितों  
में मुख्य परमसुख इसी नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनका पुत्र केशवप्रसादनाम मै  
बहुधा प्रसिद्धहो जिसने मनुजीके वनाये हुए शास्त्रकी यह टीका मनुष्योकी मा  
आगरानाम नगरमें बनाई ॥ २ ॥ इति ॥

श्रीः

## मनुस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
टीकाकारकानंगल .....	१	१	अंजन .....	११	४४
टीकाकारका विनय .....	१	२	स्वेदज. ....	११	४५
<b>अथ प्रथमोऽध्यायः ।</b>			उद्विज .....	११	४६
मनुसे मुनियोंने धर्मपूजा.....	१	१	बनस्पति और वृक्ष .....	१२	४७
मनु उनसे बोले .....	३	४	गुच्छ मूत्र आदि .....	१२	४८
जगत्की उत्पत्तिका करना	३	५	महाप्रलय .....	१३	५४
पहले जल सृष्टि .....	४	८	जीवका निकलना .....	१३	५५
ब्रह्माकी उत्पत्ति .....	४	९	दूसरी देहका ग्रहणकरना	१३	५६
नारायण शब्दका अर्थ.....	४	१०	इस शास्त्रके प्रचारका कहना	१४	५८
ब्रह्मका स्वरूप कथन .....	४	११	मन्वन्तरका कहना .....	१५	६१
स्वर्ग भूमि आदिकी सृष्टि	५	१३	अहोरात्र आदिके प्रमाण कहना	१५	६४
महत् आदिके क्रमसे ज-			पितरोंके रातिदिनका कहना	१५	६६
गत्की उत्पत्ति .....	५	१४	देवताओंके दिनरातिका कहना	१६	६७
देवगण आदिकी सृष्टि .....	७	२२	चारों युगोंका प्रमाण.....	१६	६९
तीनो वेदोंकी सृष्टि .....	७	२३	देवताओंके युगका प्रमाण	१६	७१
काल आदिकी सृष्टि .....	७	२४	ब्रह्माके दिनरातिका प्रमाण	१६	७२
काम क्रोध आदिकी सृष्टि	७	२५	मनुसे आकाशका प्रकट होना	१७	७५
धर्माधर्मविवेक .....	८	२६	आकाशसे वायुका उत्पन्न होना	१७	७६
सूक्ष्मस्थूलआदिकी उत्पत्ति	८	२७	वायुसे तेजका प्रकट होना	१७	७७
कर्मकी सापेक्ष सृष्टि.....	८	२८	तेजसे जल और जलसे पृथ्वी	१७	७८
ब्राह्मणादिक सृष्टि.....	९	३१	मन्वन्तरका प्रमाण .....	१७	७९
स्त्रीपुरुषकी सृष्टि .....	९	३२	सत्य युगमें चर्मरे पाँच धर्म	१८	८१
मनुकी उत्पत्ति .....	९	३३	और युगमें धर्मके पादपाद		
मरीचि आदिकी उत्पत्ति	९	३४	कीहानि.....	१८	८२
यक्ष गंधर्व आदिकी उत्पत्ति	१०	३७	युगयुगमें आयुका प्रमाण ...	१८	८३
मेघ आदिकी सृष्टि.....	१०	३८	युगयुगमें धर्मकी विलक्षणता	१९	८५
पशुपक्षी आदिकी सृष्टि....	१०	३९	ब्राह्मणका कर्म कहतेहैं .....	१९	८८
कृमिकीट आदिकी उत्पत्ति	१०	४०	क्षत्रियका कर्म कहतेहैं .....	१९	८९
जरायुज. ....	११	४३	वैश्यका कर्म कहतेहैं .....	१९	९०

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
शुद्धका कर्म कहतेहैं ....	१९	९१	को. कहतेहैं ....	२७	१९
ब्राह्मणका श्रेष्ठत्व ....	१९	९२	उस देशके ब्राह्मणोंसे सदा-		
ब्राह्मणोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ....	२०	९७	चार सिद्धि ....	२७	२०
यह शास्त्र ब्राह्मणको पढ़ना-			मध्य देश कहतेहैं....	२७	२१
चाहिये ....	२१	१०३	आर्यावर्त्त कहतेहैं ....	२७	२२
इस शास्त्रके पढ़ने का फल	२१	१०४	यज्ञ करनेयोग्य देश कहतेहैं	२७	२३
आचार मुख्य धर्महै.....	२२	१०८	वर्णोंके धर्म आदि कहतेहैं	२८	२६
ग्रंथके अर्थकी अनुक्रमणिका	२२	१११	द्विजोंका वैदिक मंत्रोंसे-		
<b>अथ द्वितीयोऽध्यायः।</b>			गर्भोधान आदि करने चाहिये	२८	२६
धर्मका सामान्य लक्षण ....	२४	१	गर्भोधानादिकोंकी पापके		
कामात्मताका निषेध ....	२४	२	क्षय कारणपन कहतेहै	२८	२७
व्रत आदि संकल्पसे उत्पन्नहै	२४	३	स्वाध्याय आदिको मोक्ष-		
अकामकी कोई क्रियानहीहोती	२४	४	कारणपन	२८	२८
धर्मके प्रमाण कहतेहैं ....	२६	६	जातकर्म कहतेहैं ....	२८	२९
धर्मका वेद मूलपन कहतेहैं....	२६	७	नामकरण	२८	३०
श्रुति स्मृतिकरि कहा हुआ			उपपदका नियम कहो	२९	३२
धर्म करना चाहिये ....	२६	९	स्त्रियोंका नामकरण....	२९	३३
श्रुति स्मृतिका परिचय....	२६	१०	निष्क्रमण और अन्नप्राशन	२९	३४
नास्तिककी निंदा ....	२६	११	चूडाकरणका समय ....	२९	३६
चारप्रकारसे धर्मका प्रमाण			यज्ञोपवीतका काल ....	२९	३६
कहते हैं ....	२६	१२	यज्ञोपवीतकालकी विधि....	३०	३७
श्रुतिके स्मृतिके विरोधमें			व्रात्य कहतेहैं ....	३०	३९
श्रुति बलवती ....	२६	१३	रुष्ण मृग चर्म आदिका धारण	३०	४१
श्रुतिके द्वैविध्यमें दोनो प्रमाण	२६	१४	मौंजीआदिका धारण ....	३०	४२
श्रुतिके द्वैधर्म दृष्टान्त कहतेहैं	२६	१५	मौंजीके न मिलनेमें कुश आदिकी		
दशकर्मोंकरि युक्तका			मेखला करनी चाहिये ....	३१	४३
इसमें अधिकार है ....	२६	१६	यज्ञोपवीत कहतेहैं ....	३१	४४
धर्मकरनेके योग्य देशोंको			दंड कहतेहैं ....	३१	४६
कहते हैं ....	२७	१७	भिक्षा कहतेहैं....	३१	४९
ब्रह्मवर्त्त देशको सदाचर	२७	१८	पहली भिक्षाका नियम....	३२	५०
कुरक्षेत्र आदि ब्रह्मर्षि देशों-			पूर्वाभिमुख आदिकाम्य-		

अध्याय २]

मनुस्मृति

३

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
भोजनका फल .....	३२	६२	सावित्रीके जपका फल ....	३६	७८
भोजनकी आदि और अं- तमें आचमन ....	३२	६३	सावित्रीके हजार जपका फल ३६		७९
श्रद्धासे अन्नका भोजन करे	३२	६४	सावित्रीके जपनकरनेमें निंदा ३६		८०
अश्रद्धाके भोजनका निषेध	३२	६५	प्रणव व्याहृति तथा सावित्रीकी-		
भोजनमें नियम ....	३२	६६	प्रज्ञासा ....	३७	८१
अतिभोजनका निषेध ....	३३	६७	प्रणवकी प्रज्ञासा ....	३७	८४
ब्राह्म आदि तीर्थसे आच-			मानसजपकी अधिकता ....	३७	८५
मन पितृतीर्थसे निषेध ....	३३	६८	इन्द्रियोंका संयम ....	३८	८८
ब्राह्म आदि तीर्थ कहतेहैं	३३	६९	ग्यारह इन्द्रियां ....	३८	८९
आचमनविधि ....	३३	६०	इन्द्रियोंके संयमसे सिद्धि होतीहै-		
आचमनकेजलकाप्रमाण....	३३	६१	भोगसे नहीं ....	३८	९३
अनुष्णआदिजलकानियम--			विषयोंकी उपेक्षा करनेवाला-		
कहतेहैं ....	३३	६२	श्रेष्ठ ....	३८	९४
सव्यअपसव्यकहतेहैं ...	३४	६३	इन्द्रियोंके संयमका उपाय कह-		
पहलीमेखलाआदिकेनष्टहोनेपर दूसरी-			तेहैं	३९	९६
ग्रहण करनी चाहिये	३४	६४	काममें आसक्तको यज्ञआदि-		
केशान्त नाम संस्कार ....	३४	६५	फल देनेवाले नहीं होतेहैं	३९	९७
स्त्रियोंका संस्कार मंत्ररहित	३४	६६	जितेन्द्रियका स्वरूप कहतेहैं	३९	९८
स्त्रियोंकी विवाहविधि वैदिक-			एक इन्द्रियका असंयम भी निवारण-		
मंत्रोंसे होनी चाहिये....	३४	६७	करने योग्यहै ....	३९	९९
उपनीतके कर्म कहतेहैं ....	३५	६९	इन्द्रियोंके संयम पुरुषार्थ का-		
वेदपढनेकी विधि कहतेहैं....	३५	७०	कारणहै ....	३९	१००
गुरुके प्रणमकी विधि ....	३५	७२	तीनों कालका संध्यावंदन	४०	१०१
गुरुकी आज्ञासे पढना और-			अध्याहीन शूद्रके तुल्य ....	४०	१०३
बंदहोना ....	३५	७३	वेद पाठकी अशक्तियों सावित्री-		
अध्ययनकी आदि तथा अंतमें-			मात्रका जप ....	४०	१०४
ओंकार का उच्चारण....	३५	७४	नित्यकर्म आदिमें अनध्याय-		
प्राणायाम ....	३६	७५	नहींहै ....	४०	१०५
प्रणव आदिकी उत्पत्ति ....	३६	७६	जपयज्ञका फल ....	४०	१०७
सावित्रीकी उत्पत्ति ....	३६	७७	ब्रह्मचर्यसे गृहस्थ होनेतक होम-		
			आदिकरना चाहिये....	४१	१०८



प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
कैसाशिष्य पढाना चाहिये	४१	१०९	आदिकों कुरि पिताके नुत्य वंदना--		
...	४१	११०	करने योग्यहै ....	४९	१३५
निषेधके उल्लंघनमे दोष....	४१	१११	वित्त आदि सामान्यता	।	
बुरेशिष्यको विद्या न देनी-			करनेवालेहैं ....	४९	१३६
चाहिये ....	४१	११२	रथ आदिमें चढे हुएको		
अच्छे शिष्यको देनी चाहिये	४२	११५	भार्ग देना चाहिये....	४९	१३८
अध्यापककी आज्ञाविना दूसरेसे--			स्नातकको राजाकारिभी		
पढनेका निषेध नहीं....	४२	११६	मार्ग देना चाहिये .f.	४९	१३९
अध्यापकको मान्यत्व कहतेहैं	४२	११७	अथ आचार्य ....	४६	१४०
विहितके न करनेमें निंदा	४२	११८	अथ उपाध्याय ....	४६	१४१
गुरुके अभिवादन आदिमे	४२	११९	गुरु ....	४६	१४२
वृद्ध अभिवादनमें ....	४२	१२०	ऋत्विक् ....	४६	१४३
अभिवादनका फल ....	४३	१२१	अध्यापककी प्रशंसा ....	४६	१४४
अभिवादनकी विधि ....	४३	१२२	माता आदिका उत्कर्ष ....	४६	१४५
बदलेके अभिवादनमें ....	४३	१२३	वेद पढानेवालेकी श्रेष्ठता	४६	१४८
बदलेके अभिवादन जानुनेका-			बालकभी आचार्य पिताकेसमान	४७	१४९
दोष ....	४३	१२६	इसमें दृष्टान्त देतेहैं.....	४७	१५१
कुराल पूछने आदिमें ....	४४	१२७	वर्णके क्रमसे ज्ञान आदिसे		
दीक्षित आदिके नामलेनेका--			जिठापन ....	४८	१५५
निषेध ....	४४	१२८	मूर्खकी निंदा....	४८	१५७
पराई स्त्री आदिके नामलेनेका--			शिष्यसे मीठी वाणी		
निषेध ....	४४	१२९	कहनी चाहिये .....	४८	१५९
छोटे मामा आदिके वंदनका--			मनुष्यके वाणी और मत्तके		
निषेध	४४	१३०	रोकनेको कहतेहैं ....	४८	१६०
मावसीआदि गुरुकी स्त्रीके			परके द्रोह आदिका निषेध	४८	१६१
समान पूज्य ....	४४	१३१	परकरि अपमान करने परमी क्ष-		
भारिकी स्त्री आदिके अभि			माकरनी चाहिये ....	४९	१६२
वादनमें ....	४४	१३२	अपमान करनेवालेका दोष	४९	१६३
फूफी आदिके अभिवादनमें	४४	१३३	इस विधिसे वेद पढना चाहिये	४९	१६४
पुरवासियोंके सख्य आदिमें	४५	१३४	वेदके अभ्यासकी श्रेष्ठता	४९	१६६
दशवर्षका भी ब्राह्मण क्षत्रिय--			वेदाभ्यासकी स्तुति.....	४९	१६७

प्रकरण	पृ.	श्लो.
वेदको न पढेदांग- अवि-		
द्याके पढनेका निषेध	५०	१६८
द्विजत्व निरूपणके लिये-		
कहतेहैं :... ..	५०	१६९
यज्ञोपवीत किये हुएका-		
अनधिकार :.....	५०	१७१
यज्ञोपवीत किये हुएका-		
वेदपढना :... ..	५०	१७३
गोदान आदिमें नवीन दंडआदि	५०	१७४
येनियम करने योग्यहै....	५०	१७५
नित्य स्नानतर्पण और होम	५१	१७६
ब्रह्मचारीके नियम .....	५१	१७७
कामधे वीर्यपातका निषेध	५१	१८०
स्वप्नमें वीर्यपात होनेमें प्रायश्चित्त	५१	१८१
आचार्यके लिये जलकुश		
आदिका लाना .....	५२	१८२
वेद तथा यज्ञोपवीत युक्त धुरों		
से भिक्षा लेनी योग्यहै	५२	१८३
गुरुकुल आदिकी भिक्षामें	५२	१८४
कलंक युक्तसे भिक्षाकानिषेध	५२	१८५
संख्या तथा प्रातःकालके		
होमकी समिध .....	५२	१८६
होम आदिके न करनेमें	५२	१८७
एक घरसे भिक्षाका निषेध	५२	१८८
निर्मंत्रितको एकका अन्न		
खाना चाहिये .....	५२	१८९
क्षत्रिय तथा वैश्यके एक.		
अन्नके भोजनको निषेध	५३	१९०
अध्ययन तथा गुरुके हित-		
में यत्नकरै :... ..	५३	१९१
गुरुकी आज्ञा करना कहतेहैं	५३	१९२

प्रकरण	पृ.	श्लो.
गुरुके सोनें पर सोना आदि	५३	१९४
गुरुकी आज्ञा करनेका प्रकार	५३	१९५
गुरुके समीप चंचलताका निषेध	५४	१९८
गुरुकानाम ग्रहण आदिन		
कस्ना :... ..	५४	१९९
गुरुकी निंदा सुनने निषेध....	५४	२००
गुरुके अपवाद करनेका फल	५४	२०१
समीपके गुरुका पूजनकरै	५५	२०२
गुरु अमदिके पीछे कुछ न कहै	५५	२०३
यान आदिमें गुरुके साथ		
वैठनेमें .... ..	५५	२०४
गुरुके गुरुमें गुरुकेसी वृत्ति-		
रखै .... ..	५५	२०५
विद्यागुरुके विषयमें ....	५५	२०६
गुरु पुत्रके विषयमें. ....	५५	२०७
गुरुकी स्त्रीके मध्ये ....	५६	२१०
स्त्रीके स्वभाव का कहना....	५६	२१३
माता आदिको के साथे एकांत-		
वैठने का निषेध . ....	५६	२१५
तरुणी गुरुकी स्त्रीके प्रणाम-		
करनेमें .... ..	५७	२१६
गुरु की सेवाका फल ....	५७	२१८
ब्रह्माचारीके तीनिप्रकार-		
कहतेहैं .... ..	५७	२१९
सूर्यके उदय और अस्तकालके-		
सोने में :... ..	५७	२२०
संध्योपासन अवश्य करना	५७	२२२
स्त्री आदिके श्रियकरनेमें	५७	२२३
स्त्री वर्ग कहते हैं ....	५८	२२४
पितृ आचार्य अमदि अपमान-		
योग्य नहीं है .... ..	५८	२२६

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
उनकी सेवा करने आदि में	६८	२२८	ग्रहण .....	६४	१३
उनके अनादरकी निंदा....	६९	२३४	ब्राह्मण और क्षत्रियको—		
माता आदिकी सेवा की—			• शूद्रास्त्रीका विषय ....	६४	१४
मुख्यता ....	६०	२३६	हीन जातिके विवाह का—		
नीच आदिकोंसे भी विद्या—			निषेध ....	६५	१५
लेना ....	६०	२३८	• शूद्राके विवाहके मध्ये ....	६५	१६
आपत्तिमें क्षत्रि आदिसेभी वेद—			आठ विवाहके प्रकार ....	६५	२०
पढना परंतु उनके पावधोना—			वर्णोंके धर्म संबंधी विवाह—		
आदि न करै ....	६०	२४१	कहतेहै ....	६५	२२
क्षत्रिय आदि गुरुमें अतिवास—			पैशाच तथा आसुर विवाह—		
कानिषेध ....	६०	२४२	कि निंदा ....	६६	२५
जीवन पर्यंत गुरु की सेवामें	६१	२४३	ब्राह्मविवाहका लक्षण ....	६६	२७
गुरु की दक्षिणा आदिमें ....	६१	२४५	दैव विवाहका लक्षण ....	६६	२८
आचार्यके मरने पर उसके—			आर्ष विवाहका लक्षण ....	६७	२९
पुत्र आदि की सेवा ....	६१	२४७	प्राजापत्य विवाहका लक्षण	६७	३०
जीवन पर्यंत गुरुकुलकी सेवा—			आसुर विवाहका लक्षण ....	६७	३१
का फल ....	६२	२४९	गांधर्व विवाहका लक्षण....	६७	३२
			राक्षस विवाहका लक्षण ....	६७	३३
<b>अथ तृतीयोऽध्यायः ।</b>			पैशाच विवाहका लक्षण....	६७	३४
अथ ब्रह्मचर्यकी विधि ....	६२	१	जलके देने से ब्राह्मणका—		
गृहस्थाश्रमका वास कहते है	६२	२	विवाह ....	६७	३५
वेद ग्रहण करने वाले का पिता—			ब्राह्म विवाहका फल ....	६८	३७
आदि करि पूजन ....	६३	३	ब्राह्म आदि विवाहमें उत्तम—		
ब्रह्मचर्य को पूराकरि विवा—			संततिकी उत्पत्ति ....	६८	३९
हकर ....	६३	४	निंदित विवाहमें निंदित—		
असपिंड आदि विवाहने योग्य	६३	५	संततिकी उत्पत्ति ....	६८	४१
विवाहमें निंदित कुल ....	६३	६	सवर्णा विवाह विधि ....	६९	४३
अथ कन्याके दोष ....	६३	८	असवर्णा विवाह विधि ....	६९	४४
कन्याके लक्षण....	६४	१०	स्त्रीके गमनमें ....	६९	४५
पुत्रिका विवाह की निन्दा	६४	११	ऋतुकाल की विधि ....	६९	४६
सवर्णा स्त्री उत्तमा ....	६४	१२	स्त्री गमनमें निंदित काल	६९	४७
चारवर्णा की स्त्रियों का—					

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
गुग्म तिथिमें पुत्रकी उत्पत्ति	६९	४८	होम करने चाहिये....	७४	७६
स्त्री पुरुष तथा नपुंसककी उत्पत्ति में कारण ....	७०	४९	होमसे वृष्टि आदि की- उत्पत्ति ....	७४	७६
वानप्रस्थकों भी ऋतुका- लमें गमन करते है....	७१	५०	गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा ...	७४	७७
कन्याके वेचनेमें दोष ....	७३	५१	ऋषि अमदिकोंका पूजन- अवश्य करना चाहिये ....	७४	८०
स्त्री बनके लेने में दोष ....	७०	५२	नित्यश्रमद्ध कहते है ....	७५	८२
वरसे कुछ थोडा भी न लेना- चाहिये....	७०	५३	पितरोंके लिये ब्राह्मण- भोजनमें ....	७५	८३
कन्याके लिये धन का- देना कहते है ....	७०	५४	बलि वैश्वदेवकर्म कहतेहै	७५	८४
वस्त्र अलंकार आदिसे कन्या- शोभित करने योग्य ....	७१	५५	बलि वैश्वदेवका फल कहतेहै	७६	९३
कन्या आदिके पूजन करने तथा- न करने का फल ....	७१	५६	भिक्षा का देना ....	७७	९५
उत्सवोंमें विशेष करि- पूज्य है ....	७१	५९	सत्कार करिक भिक्षा देना	७७	९६
स्त्री पुरुषके सताप का फल	७१	६०	अपात्रका दान निष्फल	७७	९७
स्त्रीको अलंकार आदिके- देने न देनेमें ....	७१	६१	सत्पात्रमें देनेका फल ....	७७	९८
कुल घटनेके कर्म ....	७२	६३	अतिथिके सत्कारमें ....	७७	९९
कुलघटने कि कर्म कहते है	७२	६६	अतिथिके न पूजनेकी भिदा	७७	१००
पांच महायज्ञोका करना- कहते है ....	७२	६७	मीठे बचन जल आसन- आदि के देने में ....	७८	१०१
पांच सूना ( वधस्थान )- कहते है ....	७२	६८	अतिथिकालक्षण कहते है	७८	१०२
पांचयज्ञ नित्य करने चाहिये	७३	६९	पराये पाकमें रुचिका- निषेध ....	७८	१०४
पांच यज्ञोको कहते है....	७३	७०	अतिथि नही मनें करने- योग्य है ....	७८	१०५
पांचयज्ञ न करने की निंदा	७३	७२	अतिथि भोजन कराये विना-		
पाँचो यज्ञो के दूरसे नाम	७३	७३	आप न खाना चाहिये	७८	१०६
असामर्थ्यमें ब्रह्मयज्ञ तथा-			बहुत अतिथि होनेपर यथायोग्य-		
			सेवाकरनी चाहिये....	७९	१०७
			अतिथिके लिये फिरि पाककरिकै-		
			बलि कर्मकरै ....	७९	१०८
			भोजनके लिये कुल तथा गोत्रन-		

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
	७९ १०९	ज्ञाननिष्ठोंको कव्य आदिदेने—	
ब्राह्मणके क्षत्रिय आदि अतिथि—		चाहिये ....	८३ १३५
नहीं होते ....	७९ ११०	श्रोत्रियको पुत्रकी प्राप्ति	८३ १३६
पीछे क्षत्रिय आदिको भोजन—		श्राद्धमें मित्रआदिके भोजन का—	
करावै ....	७९ १११	निषेध ....	८३ १३८
मित्रादिकोको सत्कार करिके—		मूर्खमें श्राद्धका दान निष्फल	८४ १४२
भोजनकरावै ....	८० ११३	पंडितमें दक्षिणादेना फल देने—	
पहले गर्भिणी आदि भोजन—		वालाहै ....	८४ १४३
कराने योग्यहै ....	८० ११४	विद्वान् ब्राह्मणके न होनेमें मित्रको—	
गृहस्थको पहले भोजनका—		भोजनकरावै शत्रुको नहीं	८४ १४४
निषेध ....	८० ११५	वेदपारगामी आदिको यत्नसे—	
स्त्री तथा पतिको सबसे पीछे—		भोजनकरावै ....	८५ १४५
भोजन ....	८० ११६	श्राद्धमें मातामह आदिको भी—	
अपनेलिये पाकका निषेध	८० ११८	भोजनकरावै ....	८५ १४८
घरमें आर्येहुए राजा आदिकी—		ब्राह्मणोंकी परीक्षामें ....	८५ १४९
पूजा कहतेहैं ....	८१ ११९	स्तेनपतित आदि निषिद्धहैं	८५ १५०
राजा और ब्रह्मचारीकी पूजामें—		श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मण ....	८६ १५१
संकोच कहतेहैं ....	८१ १२०	अध्ययन शून्य ब्राह्मणकी—	
स्त्रीको विनामंत्रके बलि करनी—		निंदा ....	८६ १६८
चाहिये ....	८१ १२१	अपांक्तयेके देनेमें निषिद्ध फल	८९ १६९
अथ अमावास्यामें पार्वण श्राद्ध		परिवेत्तादि लक्षण कहतेहैं	८९ १७१
कहतेहैं ....	८१ १२२	पस्विदनके संबंधियोंका फल—	
मांसकरिकश्राद्धकरना चाहिये	८१ १२३	कहतेहैं ....	८९ १७२
पार्वण आदिमें भोजनयोग्य—		दिधिषूपतिकका लक्षण ....	८९ १७३
ब्राह्मणोंकी संख्या ....	८१ १२५	कुंड और गोलक कहतेहैं	८९ १७४
ब्राह्मणोंका विस्तार न करै	८२ १२६	उनको दानका निषेध ....	९० १७५
पार्वणके अवश्य कर्म ....	८२ १२७	जैसे स्तेन आदि न देखें ऐसे—	
देवताओ और पितरोके अन्न—		ब्राह्मण भोजन होना चा—	
श्रोत्रियको देने चाहिये	८३ १२८	हिये ....	९० १७६
श्रोत्रियकी प्रशंसा ....	८२ १२९	शूद्र याजकका निषेध ....	९० १७८
मंत्ररहित ब्राह्मणका निषेध	८३ १३३		

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
दूध याजकसे दानलेनेका-		पितृआदिके ब्राह्मणोंका भोजन-	
निषेध ....	९० १७९	करावै ....	९६ २१९
सोमविक्रय आदिकी भोजन तथ्य--		पिताके जीवते पितामह-	
दानमें निषिद्ध फलहै	९० १८०	आदिका पार्वण ..	९१ २२०
पंक्ति पावणोंको कहतहैं ...	९१ १८३	पिताके मरणपर पितामह-	
ब्राह्मणके निमंत्रणमें ...	९२ १८७	आदिका पार्वण ....	९१ २२१
निमंत्रितके नियम....	९२ १८८	पितृ ब्राह्मण आदिके भोजनकी-	
न्योता मानिके भोजन न करनेमें-		विधि ....	९८ २२३
दोष ....	९२ १९०	परोसने की विधि ....	९८ २२४
न्योते हुएको स्त्री गमनमें	९३ १९१	व्यंजन आदिके दानमे ....	९८ २२६
भोजनकरने वाले और श्राद्धकरने-		रोना और क्रोध आदि-	
वालेको क्रोध आदि न करने-		न करना ....	९८ २२९
चाहिये ....	९३ १९२	ब्राह्मणके चाहे हुए व्यंजन-	
पितृगणकी उत्पत्ति ...	९३ १९३	आदिका देना .....	९९ २३१
पितरोंका चांदीका पात्र उत्तम	९४ २०२	वेद आदि ब्राह्मणकी सुनावै	९९ २३२
देवकार्यसे पितृकार्य विशिष्ट	९४ २०३	ब्राह्मणोंको संतुष्ट करै ....	९९ २३३
दैवकार्य पितृकार्यका अंशहै	९४ २०४	दौहित्रको श्राद्धमे यत्नसे....	
पितृकार्यके अंतमें दैवकार्य ही-		भोजन करावै ....	९९ २३४
ताहै ....	९५ २०५	दौहित्र तिलकुतुप आदि-	
अथ श्राद्धके देश ....	९५ २०६	श्रेष्ठ ....	९९ २३५
निमंत्रितको आसन आदिदेना	९५ २०८	उष्ण अन्नक भोजन तथा हविके-	
गंध पुष्पआदिसे उनका पूजन	९५ २०९	ग्रहण आदिका न कहना	९९ २३६
उनकरिके आज्ञादियाहुआहो-		भोजनमें पगडी आदिका-	
मकरै .....	९५ २१०	निषेध .....	१०० २३८
अग्निके न होनेमें पितरोंके हाथ-		भोजनके समय द्राम्हणोंको-	
मेहोम ....	९६ २१२	चांडाल आदि न देखै	१०० २३९
अप सव्यसे अग्नौ करण आदि	९६ २१४	कुत्ताकी दृष्टि आदिका-	
पिंडदान आदिकी विधि	९६ २१५	निषेध .....	१०० २४१
कुशोंके मूलमें हाथोंको पोछना	९६ २१६	उत्त स्थानसे खंज आदि-	
ऋतुओंको नमस्कार आदि	९६ २१७	दूरि करने योग्य है ....	१०० २४२
प्रत्यवनेजन आदि ....	९६ २१८	भिक्षुक आदिके भोजनमें	१०१ २४३

प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ. श्लो.
अग्निदग्धके अन्न दानमे	१०१ २४४	• तृप्ति देनेवाले हैं . . . . .	१०४ २६७
भूमिगत और उच्छेषण द्रास-		मांस आदिके भेदसे तृप्तिकालके	
का अंशहै . . . . .	१०१ २४६	• अवाधिका नियम . . . . .	१०४ २६८
सर्पिडन पर्यंत विश्वेदेवा-		मघा आदि श्राद्धोंमें मधुमिश्रित	
आदि रहित श्राद्ध . . . . .	१०१ २४७	• अन्नके दानका फल . . . . .	१०४ २७३
सर्पिडो करनेके पीछे पार्वण-		गजकी छायामें दान का फल १०४	२७४
की विधिसे श्राद्ध . . . . .	१०१-२४८	श्राद्धसे दानका फल . . . . .	१०६ २७६
श्राद्धमें उच्छिष्टशुद्धको न-		पितृपक्षमें उत्तमतिथि . . . . .	१०६ २७६
देना चाहिये . . . . .	१०१ २४९	गुम्मातिथि तथा नक्षत्र उत्तमहैं १०६	२७७
श्राद्धमें भोजन करने वाले को-		कृष्णपक्ष, और अपराह्न काल	
स्त्री गमन का निषेध . . . . .	१०१ २५०	. . . . .	१०६ २७८
भोजन किये हुए ब्राह्मणोंको-		कुशा ग्रहण पूर्वक अपसव्यसे	
आचमन करावे . . . . .	१०२ २६१	पितृकर्म . . . . .	१०६ २७९
वे ब्राह्मण स्वधाहो सेसे कहै १०२	२६२	रात्रि श्राद्धका निषेध . . . . .	१०६ २८०
उनकी आज्ञासे वाकीके-		प्रत्येकमास श्राद्ध करनेकी असामर्थ	
अन्नका विनियोग करै १०२	२६३	हो तो वर्षमें तीन इ वार करै १०६	२८१
एकोद्दिष्ट आदिकी विधिको-		साम्निको अग्नौ कर्णमें . . . . .	१०६ २८२
कहते हैं . . . . .	१०२ २६४	तर्पणका फल . . . . .	१०७ २८३
अप्सरा आदि . . . . .	१०२ २६६	पितरोंकी प्रशंसा . . . . .	१०७ २८४
श्राद्धमें कहे हुए अन्न-		ब्राह्मणभुक्तशेष और यज्ञ	
आदि . . . . .	१०३ २६७	शेषका भोजन करै . . . . .	१०७ २८६
ब्राह्मणोंका विसर्जन कर व-			
रकी प्रार्थना . . . . .	१०३ २६८	<b>अथ चतुर्थोऽध्यायः ।</b>	
पिण्डों को गौ आदिके लिये है १०३	२६०	ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्यका	
पुत्र चाहने वाली स्त्रीको पितामह		काल कहतेहैं . . . . .	१०७ १
को पिण्ड खानाचाहिये १०३	२६२	शिलउच्च आदिवृत्तिसे . . . . .	
फिर जाति आदिको भोजन-		निर्वाह करै . . . . .	१०८ २
करावै . . . . .	१०४ २६४	उचित धनका संग्रह करै १०८	३
बाकी अन्नसे गृह बलि-		आपद रहित कालमें जीवि-	
का कार्य . . . . .	१०४ २६६	काका उपाय कहते है . . . . .	१०८ ४
तिल आदि पितरों को मांस पर्यन्त		ऋतु अमृत आदि शब्दों का-	
		अर्थ कहते है . . . . .	१०८ ६

प्रकरण	पृ. श्लो.
कितने धनका भुञ्ज्य करै इस- विषय में कहते हैं ....	१०९ ७
एक दिनसे अधिक भोजनान्न इ- खने वाले की प्रशंसा ....	१०९ ८
याजन, अङ्गापन आदिसं- जीविका करे ....	१०९ ९
शिल, उच्छसे जीविकामें विधान ....	१०९ १०
निन्दित जीविका न करै....	११० ११
सन्तोषकी प्रशंसा....	११० १२
व्रतका करना ....	११० १३
वेदोक्तकर्म करने योग्यहै	११० १४
गीत आदिसे धनके सञ्चय- का निषेध ....	११० १५
विषयोंमें आसक्त होनेका- निषेध ....	१११ १६
वेदार्थ विरोधि कर्मोंका त्याग	१११ १७
अवस्था कुल आदिके अनु- सार आचरण करै ....	१११ १८
नित्यप्राति शस्त्र आदिका- देखना ....	१११ १९
जबतक शक्ति हो तवतक पंच- यज्ञोका त्याग न करै	११२ २१
कोई इन्दिषों का संयम- करते है ....	११२ २२
कोई वाणीसे यज्ञ करते है	११२ २३
कोई ज्ञानसे यज्ञ करते है	११२ २४
दोनो संध्यामे अग्निहोत्र- और दर्श, पौर्णमास करै	११२ २५
सोमयोग आदिका करना	११२ २६
नवान्नसे श्राद्धनकरने-	

प्रकरण	पृ. श्लो.
का निषेध ....	११३ २७
यथा शक्ति अतिथिका- पूजन करे ....	११३ २९
पाखण्डी आदिके पूजम- का निषेध ....	११३ ३०
श्रोत्रिय आदिका पूजन करै	११३ ३१
ब्रह्मचारी आदिके लिये अन्नदान ....	११४ ३२
क्षत्रिय आदिसे धन ग्रहण	११४ ३३
धन होनेपर क्षुधित न रहै	११४ ३४
पवित्र और वेदाध्ययन आदिसे युक्त रहै.....	११४ ३५
दण्डकमण्डलु आदिका धारण ....	११४ ३६
सूर्यके दर्शनका निषेध ....	११५ ३७
वच्छेकी रस्सीका लंबन, और जलमें अपनी छायाके दर्शनका निषेध .....	११५ ३८
मार्गमें गौ आदिको दक्षिण करे ....	११५ ३९
रजस्वलास्त्रीके ममन आदिका निषेध....	११५ ४०
स्त्रीके साथ भोजन आदिका निषेध....	११६ ४३
स्त्रीदर्शन न करनेके समय....	११६ ४४
नग्नहोके स्नान आदि करनेका निषेध ....	११६ ४५
मार्ग आदिमें मलमूत्रके त्यागका निषेध ....	११६ ४६
मलमूत्रके त्यागके समय सूर्यादिके दर्शनका निषेध ....	११६ ४८



प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
मलमूत्रके त्यागकी विधि	११६ ४९	नांजने, आदिका निषेध...	११८ ६४
दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको		कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन	
मुख करना ....	११६ ५०	तथा फूटे आदि पात्रमें	
अन्धकार आदिमें चाहे जिस दिशाको		भोजनका निषेध	११८ ६५
मुख करे ....	११६ ५१	दूसरेसे धाड़ण किये हुए यज्ञोपवीत	
अग्निआदिके सम्मुख मलमूत्र त्यागका		आदिके धारणका निषेध...	११९ ६६
निषेध ....	११६ ५२	अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका	
अग्निमें पेरोंका तपाने आदिका		निषेध ....	११९ ६७
निषेध ....	११७ ५३	धुर्यका लक्षण कहतेहैं ....	११९ ६८
अग्निके लंघन आदिका		प्रेत धूमका तथा नख आदिके	
निषेध ....	११७ ५४	छेदनका निषेध.....	११९ ६९
संध्याकालमें भोजन आदिका		तृण आदिके छेदनका निषेध	११९ ७०
निषेध ....	११७ ५५	लोष्ठमर्दन आदिका निषेध	११९ ७१
जलमें मूत्र आदिपटकानेका		मालाके धारण तथा वृषकी सवारी	
निषेध ....	११७ ५६	आदिके विषयमें.....	११९ ७२
शून्य घरमें शयन आदिका—		द्वारके बिना गृह गमन आदिका	
निषेध ....	११७ ५७	निषेध ....	१२० ७३
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे—		जूआ खेलना आदि तथा शय्यापर	
बाहर करै ....	११७ ५८	स्थित होके भोजन आदिको	
जल चाहनेवाली गौका निवारण		निषेध .....	१२० ७४
न करै तथा इन्द्र धनुषको		रात्रिमें तिल भोजन तथा नम्र	
न दिखावै ....	११८ ५९	होके शयन करने आदिका	
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मा—		निषेध.....	१२० ७५
गमें एकाकी गमन आदिका		गीले पेरोंसे भोजन करे....	१२० ७६
निषेध ....	११८ ६०	दुर्ग गमन मर्ल दर्शन नदी—	
शूद्र राज्य आदिमें निवासका		तरणका निषेध .....	१२० ७७
निषेध ....	११८ ६१	केश, भस्म, आदिपर स्थिति	
अत्यंतभोजन आदिका —		न करना ....	१२० ७८
निषेध ....	११८ ६२	पातित आदिके साथ निवास	
अञ्जलिसे जलपान आदिका		न करै ....	१२१ ७९
निषेध .....	११८ ६३	शूद्रके लिये व्रत कथन आदि—	

प्रकरणं	पृः श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
का निषेधं .....	१२१. ८०		१२४ १०२
शिरका खुजालना तथा स्नान आदिके विषयमें.....	१२१ १२	अकालके अनध्यायको	१२४ १०३
क्रोधसे शिर प्रहार केश ग्रहण— के विषयमें .....	१२२ ८३	सब कालके अनध्यायको. कहतेहै .....	१२५ १०५
तैलसे स्नान किये हुयेको फि- र तैलके स्पर्शमें .....	१२१ ८३	संध्याके गर्जने आदिमें....	१२५ १०६
क्षत्रिय भिन्न राजा आदिसे प्रति ग्रहणका निषेध ....	१२१ ८४	नगर आदिमें नित्य अनध्याय .....	१२५ १०७
तेली आदिसे प्रतिग्रहका निषेध .....	१२२ ८५	श्राद्धके भोजनमें और सूर्य चंद्र आ- दिके ग्रहणमें तीनिरात्रि अनध्याय ....	१२६ ११०
शास्त्र विरुद्ध मार्गमें चलने वाले राम्जासे प्रतिग्रहकानिषेध	१२२ ८७	गंध तथा लेपयुक्त वेदको न पढ़ै .....	१२६ १११
तामिस्र आदि इक्कीस नरको— को कहतेहैं .....	१२२ ८८	शय्या आदि पर न पढ़ै ....	१२६ ११२
ब्राह्म मु ..... ..	१२३ ९२	अमावास्या आदि अध्ययनमें निषिद्ध है .....	१२६ ११४
प्रातःकालमें कर्तव्य आदि	१२३ ९३	सामवेदकी ध्वनि होनेपर दूसरा— वेद न पढ़ै .....	१२७ १२३
प्रातःकर्तव्यको आयुकीर्त्ति आदिकी वर्द्धकता ....	१२३ ९४	तीनो वेदोंके देवताओंका कथन .....	१२७ १२४
श्रावणीमें उपाकर्म करना चाहिये .... ..	१२३ ९५	गायत्री जपके अनंतरवेदपाठ	१२७ १२५
पुष्यमें उत्सर्ग कर्म करै....	१२३ ९६	गौ आदिकोंके बीचमें नि- कलनेपर .... ..	१२७ १२६
उत्सर्ग करनेपर अनध्याय काल .....	१२४ ९७	शुद्ध देशमें शुद्ध होकै, पढना चाहिये .... ..	१२७ १२७
फिर वेदोंको शुक्लपक्षमें और वेदांगो कों कृष्णपक्षमें पढ़ै....	१२४ ९८	ऋतुकालमेंभी अमावास्या आदिमें स्त्रीगमन न करे	१२८ १२८
अस्यष्टपाठ, तथा निशाके अन्तमें सोनेका निषेध .... ..	१२४ ९९	आतुर आदिकोंको स्नानका निषेध .....	१२८ १२९
गायत्री आदि नित्य पढ़ै	१२४ १००	गुरु आदिकी छायाकालों— घनेका दोष .... ..	१२९ १३०
अनध्यायोंको कहतेहैं ....	१२४ १०१		
वर्षाकालके अनध्यायोंको			

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
मलमूत्रके त्यागकी विधि	११६ ४९	नांजने, आदिका निषेध...	११८ ६४
दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको		कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन	
मुख करना ....	११६ ५०	तथा फूटे, आदि पात्रमें	
अन्धकार आदिमें चाहे जिस दिशाको		भोजनका निषेध	११८ ६५
मुख करे ....	११६ ५१	दूसरेसे धाड़ण किये हुए यज्ञोपवीत	
अग्निआदिके सम्मुख मलमूत्र त्यागका		आदिके धारणका निषेध...	११९ ६६
निषेध ....	११६ ५२	अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका	
अग्निमें पेरोंका तपाने आदिका		निषेध ....	११९ ६७
निषेध ....	११७ ५३	धुर्यका लक्षण कहतेहैं ....	११९ ६८
अग्निके लंघन आदिका		प्रेत धूमका तथा नख आदिके	
निषेध ....	११७ ५४	छेदनका निषेध.....	११९ ६९
संध्याकालमें भोजन आदिका		तृण आदिके छेदनका निषेध	११९ ७०
निषेध ....	११७ ५५	लोष्ठमर्दन आदिका निषेध	११९ ७१
जलमें मूत्र आदिपटकानेका		मालाके धारण तथा वृषकी सवारी	
निषेध ....	११७ ५६	आदिके विषयमें.....	११९ ७२
शून्य घरमें शयन आदिका—		द्वारके विना गृह गमन आदिका	
निषेध ....	११७ ५७	निषेध ....	१२० ७३
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे—		जूआ खेलना आदि तथा शय्यापर	
बाहर करै ....	११७ ५८	स्थित होके भोजन आदिको	
जल चाहनेवाली गौका निवारण		निषेध .....	१२० ७४
न करै तथा इन्द्र धनुषको		रात्रिमें तिल भोजन तथा नम्र	
न दिखावै ....	११८ ५९	होके शयन करने आदिका	
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मा—		निषेध.....	१२० ७५
गर्भे एकाकी गमन आदिका		गौले पेरोंसे भोजन करे....	१२० ७६
निषेध ....	११८ ६०	दुर्ग गमन मर्ल दर्शन नदी—	
शूद्र राज्य आदिमें निवासका		तरणका निषेध .....	१२० ७७
निषेध ....	११८ ६१	केश, भस्म, आदिपर स्थिति	
अत्यंतभोजन आदिका —		न करना ....	१२० ७८
निषेध ....	११८ ६२	पातित आदिके साथ निवास	
अञ्जलिसे जलपान आदिका		न करै ....	१२१ ७९
निषेध .....	११८ ६३	शूद्रके लिये व्रत कथन आदि—	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
वा निषेध	१२१ ६०	ह	१२४ १०२
शिरका लुगाहना तथा स्नान		अकालके अनध्यायको	
आदिके निषेधमें	१२१ ६२	कहतेहैं	१२४ १०३
क्रोधसे शिर प्रहार केश ग्रहण—		सब कालके अनध्यायको	
के निषेधमें	१२२ ६३	कहतेहैं	१२५ १०५
तैलेसे स्नान किये हुयेको फि-		संध्याके गर्जने आदिमें	१२५ १०६
र तैलेके छस्त्रोंमें	१२२ ६३	नगर आदिमें निन्य	
क्षेत्रिय विधवा राजा आदिसे प्रति		अनध्याय	१२५ १०७
ग्रहणका निषेध	१२१ ६४	श्राद्धके भोजनमें और सूर्य चंद्र आ-	
तेरी आदिसे प्रतिग्रहका		दिके ग्रहणमें तीनिरात्रि	
निषेध	१२२ ६५	अनध्याय	१२६ ११०
शास्त्र विद्वद् मार्गमें चलने काले		गुंघु तथा लेपयुक्त वेदको	
रान्नासे प्रतिग्रहकानिषेध	१२२ ६७	न पढै	१२६ १११
तामिस्र आदि इक्कीस नरको—		शय्या आदि पर न पढै	१२६ ११२
को कहतेहैं	१२२ ६८	अमावास्या आदि अध्ययनमें	
ब्राह्मण सुदृतीं उठै	१२३ ६२	निषिद्ध है	१२६ ११४
प्रातःकालमें कर्तव्य आदि	१२३ ६३	सामवेदकी ध्वनि होनेपर दूसरा—	
प्रातःकालमें आयुकीर्ति		वेद न पढै	१२७ १२३
आदिको बर्द्धकता	१२३ ६४	तीनो वेदोंके देवताओंका	
श्रावणोंमें कृपाकर्म करना		कथन	१२७ १२४
चाहिये	१२३ ६५	गायत्री जपके अनंतरवेदपाठ	१२७ १२५
पुष्यमें उत्तम कर्म करै	१२३ ६६	गौ आदिकोंके बीचमें नि-	
उत्तमर्ग करनेपर अनध्याय		कलनेपर	१२७ १२६
काल	१२४ ६७	शुद्ध देशमें शुद्ध होकै पढना	
फिर वेदोंको गुह्यपक्षमें और वेदांगों		चाहिये	१२७ १२७
कों कृष्ण पक्षमें पढै	१२४ ६८	ऋतुकालमेंभी अमावास्या	
अस्थायिपाठ तथा निशाके अन्तमें		आदिमें स्त्रीगमन न करे	१२८ १२८
सोनेकाम निषेध	१२४ ६९	आतुर आदिकोंको स्नानका	
गायत्री आदि त्रितय पढै	१२४ १००	निषेध	१२८ १२९
अनध्यायोंको कहतेहैं	१२४ १०१	गुरु आदिकी छायाकालों—	
वर्षाकालके अनध्यायोंको		घनेका दोष	१२९ १३०

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
श्राद्धभोक्ताके चौराहेके		अचारका फल .....	१३२ १५६
जानेमें ....	१२३ १३१	दुराचारकी निन्दा.....	१३३ १५७
रक्त कफ आदिके ऊपर नबैठै	१२९ १३२	आचारकी प्रशंसा .....	१३३ १५८
शत्रु चोर और पराई स्त्रीकी		परवश कर्मके त्याग आदिमें	१३३ १५९
सेवाका निषेध.....	१२९ १३३	मनकासंतुष्ट करनेवाला	
पराई स्त्रीकी निन्दा.....	१२९ १३४	कर्म करे ....	१३३ १६०
क्षत्रिय सर्प तथा ब्राह्मण अप-		आचार्य आदिकी हिंसाका	
मानके योग्य नहीहैं....	१२९ १३५	निषेध ....	१३३ १६१
अपने अपमानका निषेध	१२९ १३६	नास्तिक्य आदिका निषेध	१३३ १६३
प्यारां और सत्य वचन कहै	१३० १३८	अन्यके ताडना आदिका--	
वृथावादन करै ....	१३० १३९	निषेध.....	१३४ १६४
प्रातःकाल आदिमें अज्ञातके		ब्राह्मणके ताडनके उद्योगमें	१३४ १६५
साथ न जाना चाहिये ....	१३० १४०	ब्राह्मणके ताडनमें ....	१३४ १६६
हीन अंग आदिको पर		ब्राह्मणके रूधिर निकालनेमें	१३४ १६७
आक्षेप ....	१३० १४१	अधर्मी आदिको सुखनही	१३५ १७१
उच्छृष्टक आदिके		अधर्ममें मन न लगवै ....	१३५ १७२
दर्शनमें ....	१३० १४२	हौले २ अधर्मके फलकी उत्प-	
अपने इंद्रियके छूने आदिमें	१३० १४४	त्ति होताहै ....	१३५ १७३
मङ्गलचार युक्त ह्येय ....	१३१ १४५	शिष्य आदिके शासनमें....	१३५ १७५
वेदाध्ययनकी मुख्यता ....	१३१ १४६	अर्थ कामके त्यागमें ....	१३५ १७६
अष्टकां-श्राद्ध आदिमें अवश्य		हाथ पांवकी चपलताका--	
करना चाहिये ....	१३१ १५०	निषेध ....	१३६ १७७
अग्नि गृहसे दूर मूत्रं		कुलके मार्गमें चलना ....	१३६ १७८
आदिका त्याग.....	१३२ १५१	ऋत्विक् आदिसे वादनकरै	१३६ १७९
पूर्वाण्हमें स्नान मूर्जा आदि	१३२ १५२	इनके साथ विवादकी उपेक्षा--	
पर्वोंमें देवता आदिका		का फल कहतेहैं ....	१३७ १८१
दर्शन ....	१३२ १५३	प्रतिग्रहकी निन्दा ....	१३७ १८६
आये हुए वृद्ध आदिके		विधिके विनाजाने प्रतिग्रह न-	
सत्कारमें .....	१३२ १५४	करना चाहिये .....	१३७ १८७
स्मृतिमें कहा हुआ		मूर्खको सोने आदिके छेनेमें	१३८ १८८
आचार करना चाहिये	१३२ १५५	वैडाल-व्रतिक आदिमें दानका-	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
निषेध .... १३८	१९२	शूद्रकरि पक्कअन्नका निषेध	१४४ २२३
वैडाल व्रतिकका लक्षण.... १३९	१९६	कृपण श्रोत्रिय तथा व्याज खा-	
वक वृत्तिका लक्षण..... १३९	१९६	नेवालैका अन्न निषिद्ध	१४४ २२४
उन दोनोकी निन्दा .... १३९	१९७	श्रद्धासे दियेहुए दाता तथा व्या-	
प्रायश्चित्तमें वंचना न करनी- :		ज ज्ञानेवालैके अन्न....	१४४ २२६
चाहिये .... १३९	१९८	श्रद्धासे यज्ञ आदिकरै ....	१४४ २२६
छलसे व्रतके करनेमें .... १४०	१९९	श्रद्धासे दियेहुए दानका फल	१४५ २२७
छलसे कर्मडल्लु आदिके धार--		जल भूमि दान आदिका फल	१४४ २२८
णमें .... १४०	२००	वेदके दानकी प्रशंसा ....	१४५ २३३
पराई बनाई हुई पुष्करिणी--		जिस २ भावसे दान देताहै उसी-	
आदिके स्नानमें .... १४०	२०१	को जन्मांतरमें पाताहै	१४५ २३४
विना दियेहुए यान आदिके-		विधिसे दानदेने तथा लेनेमें	१४६ २३६
भोग का निषेध .... १४०	२०२	द्विजकी निंदाका दानके कहने-	
नदी आदिमें स्नानकरना-		का निषेध .....	१४६ २३६
चाहिये ..... १४०	२०३	अनृत आदिका फल ....	१४६ २३७
यम और नियम कहतेहैं... ४०	२०४	हौले २ धर्मकरै ....	१४६ २३८
अश्रोत्रिय यज्ञमें भोजनका-		धर्मकी प्रशंसा ....	१४६ २३९
निषेध ..... १४१	२०५	उंचोंसे संबध करना हीनोंसे-	
क्रुद्ध आदिका अन्न तथा केश-		नही ....	१४७ २४४
आदिसे मिलाहुआ न भोजन-		फल मूल आदिके लेनेमें....	१४८ २४७
करै .... १४१	२०७	दुष्कृत कर्मकी भिक्षालेना	१४८ २४८
रजस्वलाकरि छुएहुए अन्न-		भिक्षाके न लेनेमें ....	१४८ २४९
आदिका निषेध..... १४१	२०८	विना मागी भिक्षामें....	१४८ २५०
गऊ करिसूंचाहुआ और गुणिका-		कुटुंबकोलिये भिक्षा ....	१४८ २५१
आदिके अन्नका निषेध १४१	२०९	अपनेलिये साधु भिक्षा ....	१४८ २५२
स्तेन आदिके अन्न अभोज्या-		जिनका अन्न भोजनके योग्य-	
न्नहैं ..... १४१	२१०	ऐसे शूद्र ....	१४९ २५३
राजा आदिके अन्न भोजनमें-		शूद्रोंको अपना निवेदन कर-	
मंद फल .... १४३	२१८	ना चाहिये ....	१४९ २५४
उनके अन्नके भोजनमें प्राय-		झूठ कहनेमें निन्दा ....	१४९ २५५
श्रित्त ..... १४३	२२२	योग्य पुत्रको कुटुंबका भारदेना-	

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
चाहिये ....	१४९	२५७	निन्द्रा .....	१५६	३९
ब्रह्मकी चिन्ता .....	१४९	२५८	अप्रोक्षित मांस न खाय .....	१५६	३६
कहे हुएके फल का कहना	१५०	२६०	यज्ञकेलिये ब्रह्मकी पशंसा	१५७	३९
<b>अथ पञ्चमोऽध्यायः ।</b>			पशुके मारनेमें कालका नियम	१५७	४१
मनुष्यों की कैसे मृत्यु होती -			वेदमें न कहीहुई हिंसाका नि-		
है यह प्रश्न	१५०	२	षेध	१५७	४३
मृत्युके पँहुचाने बालो को-			अपने सुखकी इच्छासे मारनेमें	१५८	४५
कहते है	१५१	३	वध और बंधन न करना चा-		
लशुन आदि अभक्ष्य-			हिये	१५८	४६
कहते है	१५१	५	मांसके वर्जनेमें	१५८	४८
वृथा मांस आदिका निषेध	१५१	७	अथ घातक कहिये मारने-		
अभक्ष्य दूध	१५१	८	बाले	१५८	५१
शुक्तो मे दही आदि भक्ष्य	१५२	१०	मांसके वर्जनका फल	१५९	५३
अथ अभक्ष्य पक्षी	१५२	११	सर्पिंडोका दशदिन आदि-		
सौन और सूखे मांस आदि	१५२	१३	आशौच	१६०	५८
गाँवके शूकर मछली आदि	१५२	१४	अथ सपिण्डता	१६०	६०
मछली खाने की निन्द्रा	१५३	१५	जननेमें माताका नष्टना	१६०	६२
खाने योग्य मछली कहते है	१५३	१६	वर्यिके गिरने और पर पूर्व-		
सर्प वानर आदिका निषेध	१५३	१७	अपत्यके मरनेमें	१६१	६३
खाने योग्य पंच नख-			शवके स्पर्श और समानोदकके-		
कहते	१५३	१८	मरनेमें	१६१	६४
लशुन आदिके खानेमें-			गुरूके मरनेका आशौच	१६१	६५
प्रायश्चित	१५३	१९	गर्म स्त्राव होनेपर रजस्वला-		
यज्ञके लिये पशुहिंसा-			की शुद्धिमें	१६१	६६
की विधि	१५४	२२	बालक आदिका आशौच	१६१	६७
वासी भी भक्ष्य	१५४	२४	दो वर्षसे न्यूनका भूमिमें ग्राहना	१६१	६८
मांसके भक्षणमें	१५५	२७	इसके अग्निसंस्कार आदिन-		
प्रोक्षित मांस खाने का-				१६२	६९
नियम	१५५	३१	बालकके जल दानमें	१६२	७०
वृथा मांस खानेका निषेध	१५६	३३	सहपाठीके मरनेमें	१६२	७१
श्राद्धमें मांसके खानेमें-			वाग्दत्ता स्त्रीका आशौच	१६२	७२

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
हविष्यका भक्षण आदि ....	१६२	७३	क्षत्रधर्मसे मारे हुएकी शीघ्रही		
अथ विदेशका आशौच	१६३	७५	शुद्धता.....	१६३	९८
आचार्यके और उन्नके पुत्रके			आशौचके अंतका कृत्य....	१६६	९९
मरनेमें ....	१६३	८०	असपिंडका आशौचकहतेहैं	१६६	१००
श्रोत्रिय तथा मामा आदिके			मृतक असपिंडके लेजानेमें	१६७	१०१
मरनेमें ....	१६३	८१	आशौच वालेका अन्नखानेमें	१६७	१०२
राजाके अध्यापक आदिके			मृतक लेजानेवालेके साथ		
मरनेमें ....	१६३	८२	जानेमें .....	१६७	१०३
संपूर्ण आशौच कहतेहैं....	१६४	८३	ब्राह्मणको शूद्रोंसे न उठवावै	१६७	१०४
अग्निहोत्रके लिये स्नानसे			ज्ञान आदि शुद्धिके साधनहैं	१६७	१०५
शुद्धि ....	१६४	८४	अर्थ कहिये धनमे शुद्धकी		
छूनेके कारण आशौच ....	१६४	८५	प्रशंसा ....	१६७	१०६
आशौचके दर्शनमें ....	१६४	८६	संभा दान जप तथा तप शोधने		
मनुष्यके अस्थिके स्पर्शमें	१६४	८७	वालेहैं ....	१६८	१०७
ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिक प्रेतको			मैली नदी स्त्री तथां द्विजकी		
जलदान आदि न करै	१६५	८८	शुद्धिमें .....	१६८	१०८
पतित आदिकोंको जलदान			शरीर मन आत्मा बुद्धिकी		
आदि न करै ....	१६५	८९	शुद्धिमें ....	१६८	१०९
व्यभिचारिणी आदिको जलदान			द्रव्य शुद्धि कहतेहैं.....	१६८	११०
न करै .....	१६५	९०	सुवर्ण आदि तथा मणिकी		
ब्रह्मचारीको मृतपिता आदिके			शुद्धिमें .....	१६८	१११
लेजानेमें .....	१६५	९१	घृत आदि शय्या आदि तथा काष्ठ		
शूद्र आदिकोंके मृतकको दक्षिण आदि—			की शुद्धिमें .....	१६९	११५
पुरद्वास्से निकल्ले.....	१६५	९२	यज्ञके पात्रोंकी शुद्धिमें....	१६९	११६
राजा आदिकोंको आशौच			धीन्य तथा वस्त्रकी शुद्धिमें	१६९	११८
न होनेमें .....	१६५	९३	चर्म वांसका पात्र शाक मूल		
राजाकी शीघ्रही शुद्धता	१६५	९४	तथा फलकी शुद्धिमें ....	१७०	११९
वज्र आदिसे मरे हुएकी शीघ्रही			कंबल पटवस्त्रकी शुद्धिमें	१७०	११९
शुद्धता ....	१६६	९५	नृणकाष्ठ गृह मृदांडकी		
राजाके आशौच न होनेकी			शुद्धिमें ....	१७०	१२२
स्तुति .....	१६६	९६	हथिर आदिसे दूषित मृदां—		
			डका त्याग ....	१७०	१२३



प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
भूमिकी शुद्धिमें ....	१७०	१२४	किसके वशमें रहै सो- कहते हैं ....	१७४	१४८
पर्शुके खाये और गौके- सूँघे आदिमें ....	१७१	१२९	प्रसन्न हो घरका काम करै	१७४	१९०
गंधलेपयुक्त द्रव्यकी- शुद्धिमें ....	१७१	१२६	स्वामीकी सेवा ....	१७५	१९१
पवित्र कहतेहैं ....	१७१	१२७	स्वामीपन का कारण- कहते है ....	१७५	१९२
जलकी शुद्धिमें ....	१७१	१२८	स्वामी की प्रशंसा ....	१७५	१९३
नित्य शुद्ध कहतेहैं....	१७१	१२९	स्त्रियोंके पृथक् यज्ञका- निषेध ....	१७५	१९५
छूनेमें नित्य शुद्ध ....	१७२	१३२	स्वामीका अमप्रिय न करै	१७५	१९६
मूत्र आदिके त्यागकी शुद्धि	१७२	१३४	जिसका पतिमरगया है- उसके धर्म ....	१७६	१९७
अथ बारह मल ....	१७२	१३५	पराये पुरुषसें गमन- की निंदा ....	१७६	१६०
मिट्टी और जलके लेनेमें नियम ....	१७२	१३६	पतिव्रतापनका फल	१७७	१६५
ब्रह्मचारी आदिको द्विगुण आदि प्राचमनके अनंतर इन्द्रिय आदिका छूना ....	१७३	१३७	भार्याके मरने पर श्रौत- अग्निसे दाह ....	१७७	१६७
आचमनकी विधि....	१७३	१३९	फिर स्त्रीके ग्रहणमें ....	१७७	१६८
शूद्रोंको मासुमें शिर मुडाना और द्विजोच्छिष्ट भोजन ....	१७३	१४०	गृहस्थके कालकी अवधि	१७७	१६९
मुलके बिंदु और मूछ आदि उच्छिष्ट नहींहैं ....	१७३	१४१	<b>अथ षष्ठोऽध्यायः ।</b>		
पार्वोमेगिरी कुल्लेकी वृद्ध शुद्ध है ....	१७३	१४२	वानप्रस्थ आश्रम कहतेहै	१७८	१
द्रव्य हस्तको उच्छिष्टके छूनेमें ....	१७३	१४३	भार्या और अग्निहोत्र- सहित वनमे वसै ....	१७८	३
वमन विरेचन तथा मैथुन- की शुद्धिमें ....	१७३	१४४	फल मूलसे पंचप्रज्ञ करना	१७८	५
न । क्षुधा भोजन आदिकी शुद्धिमें ....	१७४	१४५	मृगचर्म चीर जटा आदि- का धारण ....	१७८	६
अथ स्त्री धर्मोंको कहते हैं	१७४	१४६	अतिथिचर्या ....	१७८	७
स्त्रीकी स्वतंत्रद्वाना चाहिये	१७४	१४७	वानप्रस्थके नियम ....	१७९	८
			मधुमांस आदिका वर्जन....	१७९	१४
			आश्विनमें संकय किये हुए-		
			नीवार आदिका त्याग, ..	१८०	१५

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
फालसे जुते हुए अन्न-			अकेला मोक्षके लिये विचरै	१८४	४२
आदिका निषेध .... १८०	१६		संन्यासीके नियम .... १८४	४३	
अशमकुट्ट आदि ..... १८०	१७		मुक्तका लक्षण .... १८४	४४	
तृणधान्य आदिके इकट्ठे-			जीवने आदिकी कामनासे र-		
करनेमें ..... १८०	१८		हित होवै..... १८५	४५	
भोजनके काल आदि .... १८०	१९		संन्यासीका आन्तर ..... १८५	४६	
भूमि परिवर्तन आदि .... १८०	२२		भिक्षाके ग्रहणमें .... १८५	५०	
ग्रीष्म आदि ऋतु औकालत्य १८१	२३		दंडकमंडलु आदि .... १८६	५२	
अपने देहको सुखावै .... १८१	२४		भिक्षाके पात्र .... १८६	५३	
अग्निहोत्रका समाप्त करना			एक कालमें भिक्षा करना १८६	५५	
आदि .... १८१	२५		भिक्षाका काल ..... १८६	५६	
वृक्षोकेनीचे तथा भूमिमें सोना			मिलने न मिलनेमें हर्ष विषाद-		
आदि .... १८१	२६		न करै ..... १८६	५७	
भिक्षा करनेमें .... १८१	२७		पूजा पूर्वक भिक्षाका निषेध १८६	५८	
वेद पाठ आदि- .... १८२	२९		इन्द्रियोंका रोकना ..... १८७	५९	
महा प्रस्थान .... १८२	३१		संसारकी गतिकका कथन.... १८७	६१	
संन्यासीका काल कहैतहै १८२	३३		सुखदुःखके धर्मअधर्म कार-		
ब्रह्मचर्य आदिके क्रमसे संन्या-			णहै .... १८७	६४	
स लेवै .... १८२	३४		चिन्हमात्र धर्मका कारण		
ऋणशोधे विना संन्यास न			नहीहै ..... १८७	६६	
लेवै ..... १८३	३५		भूमिको देखके भ्रमण करै १८८	६८	
पुत्र विना उत्पन्न किये संन्यास			छोटे जीवोंकी हिंसाका प्राय		
न लेवै .... १८३	३६		श्चित.... १८८	७९	
प्राजापत्य यज्ञ करिके संन्यास			प्राणायामकी प्रशंसा .... १८८	७०	
लेवै .... १८३	३८		ध्यानके योगसे आत्माको		
अभय दानका फल..... १८३	३९		देखै..... १८९	७३	
बांछा रहितहो संन्यास लेवै १८४	४१		ब्रह्मके साक्षात्कारमें मुक्ति १८९	७४	

प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
मोक्षके साधक कर्म .....	१८९	७५	दंडके योग्योंको दंड न	
देहका स्वरूप ....	१८९	७६	देंनेमें निंदा .....	१९६ २०
देहके त्यागमें दृष्टांत कहतेहैं	१९०	७८	फिरि दंडकी प्रशंसा.....	१९७ २२
प्रियअप्रियमें पुण्यपापका			दंड देनेवाला कैसी होय इस-	
त्याग ....	१९०	७९	पर कहतेहैं :....	१९७ २६
विषयोंकी इच्छा न करनी	१९०	८०	अधर्म दंडमें राजा आदिकोंका	
आत्माका ध्यान ....	१९०	८२	दोष ....	१९८ २८
संन्यासका फल ....	१९१	८५	मूर्ख आदिकोंको दंड देनेका	
वेद संन्यासियोंके कर्म कहतेहैं	१९१	८६	निषेध.....	१९८ ३०
चारि आश्रम.....	१९१	८७	सत्य प्रतिज्ञा वाले करि दंड	
सब आश्रमोंका फल.....	१९१	८८	देना योग्यहै ....	१९८ ३१
गृहस्थकी श्रेष्ठता ....	१९२	८९	शत्रुमित्र ब्राह्मण आदिमें दंड-	
दशप्रकारका धर्म सेवन कर-			की विधि ....	१९८ ३२
ने योग्य है .....	१९२	९१	न्यायमें चलनेवाले राजाकी	
दश प्रकारकी धर्म कहतेहैं	१९२	९३	प्रशंसा .....	१९९ ३३
वेदहीका अभ्यास करै ....	१९३	९५	राजाके कृत्यमें वृद्धकी सेवा	१९९ ३४
वेदसंन्यासका फल ....	१९३	९६	विनयका ग्रहण ....	१९९ ३७
<b>अथ सप्तमोऽध्यायः ।</b>			अविनयकी निन्दा ....	१९९ ३९
राजधर्मोंको कहतेहैं ....	१९३		यहीं दृष्टांत कहतेहैं .....	२०० ४०
संस्कार किये हुएका प्रजाका			विनयसे राज्य आदि पानेका	
रक्षण ....	१९३		दृष्टांत ....	२०० ४१
रक्षाके लिये इंद्र आदिकोके			विद्याका ग्रहण.....	२०० ४३
अंशसे राजाकी उत्पत्ति	१९४	३	इन्द्रियोंका जीतना .....	२०० ४४
राजाकी प्रशंसा ....	१९४	६	कामक्रोधसे उत्पन्न व्यसनका	
राजासे द्वेषकी निन्दा ....	१९५	१२	त्याग.....	२०० ४५
राजाके स्थापित धर्मको			कामसेउत्पन्नदशव्यसनकहतेहैं	२०१ ४७
न चलवै.....	१९५	१३	क्रोधसेउत्पन्नदशव्यसनकहतेहैं	२०१ ४८
दंडकी उत्पत्ति ....	१९५	१४	सर्वोंकेमूल लोभकाल्याग ....	२०१ ४९
दंडका करना ....	१९६	१६	अतिदुःखकेदेनेवालेव्यसनहैं	२०१ ५०
दंडकी प्रशंसा .....	१९६	१७	व्यसनकीनिन्दा ....	२०२ ५३
अयोग्य दंडका निषेध ....	१९६	१९	अथ सचिवकहित्यमंत्री ....	२०२ ५४

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
मंत्रियोंके साथ विचार करिकै—			जिसने जोजीता वह उसी—		
हितकरना चाहिये....	२०३	९६	का धन .....	२०९	९६
ब्राह्मण मंत्री .....	२०३	९८	श्रेष्ठ वस्तु राजाको देनी	२१०	९७
औरोंकोभी मंत्री करै....	२०३	६०	हाथी घोडे आदिका वढ़ाना	२१०	९९
खानि अग्नि धनके उत्पत्ति—			नपाये हुएके पानेकी—		
स्थानमें धर्मसे अंयमानने—			इच्छा करै .....	२१०	१०१
वालोको नियतकरै ....	२०४	६२	घोडे-प्यादे आदिकी—		
दूत का लक्षण .....	२०४	६३	दित्य शिक्षा .....	२१०	१०२
सेनापति आदिका कार्य....	२०४	६५	नित्य उद्यत दंडहोय....	२११	१०३
दूतकी प्रशंसा ....	२०४	६६	मंत्री आदिकोमें माया न—		
प्रत्येक राजाका वाञ्छित—			करनी चाहिये .....	२११	१०४
दूतसे जानै .....	२०५	६७	प्रजाकाभेद आदि रक्षा—		
जंगल देशके आश्रयलेनेमें	२०५	६९	करना चाहिये....	२११	१०५
अथ दुर्गके प्रकार ....	२०५	७०	अर्थ आदिकी चिन्ताकरनी	२११	१०६
दुर्गको अस्त्र अन्न आदि—			विजयके विरोधी वशकरने—		
संपूर्ण करै .....	२०६	७५	चाहिये ....	२११	१०७
सुंदर स्त्रीसे विवाह करै ...	२०७	७७	सामदंडकी प्रशंसा .....	२१२	१०९
पुरोहित आदि .....	२०७	७८	राजाकी रक्षा....	२१२	११०
यज्ञ आदिका करना ....	२०७	७९	प्रजाके पीडा देनेमें दोष	२१२	१११
करके लेनेमें ....	२०७	८०	प्रजाकी रक्षामें सुख ....	२१३	११३
अथ अध्यक्ष ....	२०७	८१	ग्रामके अधिपति आदि	२१३	११५
ब्राह्मणोंको जीविका देना	२०७	८२	ग्रामके दोषका कहना ....	२१३	११६
ब्राह्मणोंको जीविका—			ग्रामके अधिकारी की—		
देनेकी प्रशंसा .....	२०८	८३	वृत्ति कहते है .....	२१३	११८
पात्रमें दान का फल कहते है	२०८	८५	ग्रामके कार्य ईसकरकै—		
संग्राममें बुला हुआ न लौटे	२०८	८७	करने योग्य है ....	२१३	१२०
सन्मुख मरनेमें स्वर्गप्राप्ति	२०९	८९	अर्थका स्तिवन करने—		
छलके अस्त्र आदिका निषेध	२०९	९०	वाला होय ....	२१४	१२१
संग्राममें अवध्य कहते हैं	२०९	९१	उसके चरित्र को आपजानै	२१४	१२२
भीत आदिके मरनेमें दोष	२०९	९४	धूसि आदिके लेनेवाले का—		
संग्राममें मारेहुएके—			शासन करना ....	२१४	१२३
मारनेमें दोष ....	२०९	९५			

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
प्रेष्य आदि वृत्तिका कल्प—			आषको अधिक करै.....	२२३	१७७
ना करना ....	२१४	१२५	आनेवाले गुणदोषो—		
वणियोंसे करलेनेमें .....	२१५	१२७	की चिंता .....	२२३	१७८
थोडा थोडा करलेनेमें ....	२१५	१२९	राजाकी रक्षा .....	२२४	१८०
धान्य आदिकोपर कर लेनेमें	२१५	१३०	शत्रुके राज्यमें जानेकी विधि	२२४	१८१
श्रोत्रियसे कर न ग्रहण करै	२१५	१३३	शत्रुके सेवन करने वाले मित्र—		
श्रोत्रियकी जीविका करनेमें	२१५	१३४	आदिमें सावधानी .....	२२४	१८६
शाक आदि वेचनेवाले—			सेनाके ब्यूह बर्नानेमें....	२२५	१८७
पर थोडा कर .....	२१६	१३७	जल आदिमें युद्धका प्रकार	२२६	१९२
शिल्प आदि कर्म करवै	२१६	१३८	आगेकी सेनाके योग्यको		
थोडे बहुत अधिक कर लेने—			कहतेहैं ....	२२६	१९३
का निषेध ....	२१६	१३९	सेनाकी परीक्षा करना ....	२२६	१९४
कार्यको देखकर तीक्ष्णवा—			पराये देशके पीडा देनेमें	२२७	१९५
मृदु होय .....	२१६	१४०	पराई प्रजाका भेद आदि	२२७	१९७
मंत्रिके साथ कार्यका वि—			उपायके न होनेमें युद्ध करै	२२८	२००
चार करै.....	२१७	१४१	जीतिकरि ब्राह्मण आदिका—		
चोरोंको दंड देता रहै ....	२१७	१४३	पूजन और प्रजाका अ—		
प्रजा पालनकी श्रेष्ठता....	२१७	१४४	भय दान .....	२२८	२०१
सभा का काल .....	२१७	१४५	उसके वंशवालेको उसका—		
एकान्तमे गुप्त मंत्र करै....	२१७	१४७	राज्य देनेमें .....	२२८	२०२
मंत्र करनेके समय स्त्री—			करका लेना आदि .....	२२९	२०६
आदिका हटा देना....	२१८	१४९	मित्रकी प्रशंसा .....	२२९	२०७
धर्मकाम आदिकी चिंता—			शत्रुके गुण ....	२२९	२१०
करना ....	२१८	१५१	उदासीनके गुण....	२३०	२११
दूतोंका प्रेषण आदि....	२१८	१५३	अपने लिये भूमि आदि—		
अथ प्रजाके प्रकार.....	२१९	१५६	कात्याग ....	२३०	२१२
शत्रुका प्रकृतिको जानै ....	२२०	१५८	आपत्तिमें उपायोंका सो—		
अथछः गुण ....	२२०	१६०	चना ....	२३०	२१४
संधि आदिका प्रकार .....	२२०	१६२	राजाके भोजनमें .....	२३०	२१६
संधिविग्रह आदिके काल	२२०	१६९	अन्न आदि की परीक्षा....	२३१	२१७
बली राजाके आश्रय लेनेमें	२२३	१७५	विहार आदिमें ....	२३१	२२१

प्रकरण	पृ.	श्लो.
आयुध आदिका देखना	२३१	२२२
संध्योपासन करके दूतके-		
काम देखै .....	२३२	२२३
तीसपीछे रात्रिका भोजन-		
आदि करै .....	२३२	२२४
राजा स्वस्थ-न-होथ तौ श्रेष्ठ		
मत्रीके आधीन करै	२३२	२२६

**अथ अष्टमोऽध्यायः ।**

राजा व्यवहारोंके देखनेकी इच्छासे		
सभामे जाय ....	१३२	
कुल तथा शास्त्र आदिसे व्यव		
हारोको देखै ....	२३३	३
अठारह विवादोंको कहतेहैं	२३३	४
धर्मका आश्रय लेकर निर्णय		
करै ....	२३३	
आप असमर्थ होयतौ विद्वान्को		
नियत करै ....	२३४	
वह तीनि ब्राह्मणोंके साथ		
कर्म देखै .....	२३४	१०
उस सभाकी प्रशंसा ....	२३४	११
अधर्ममें सभासदोंका दोष	२३४	१२
सभामें सत्यही बोलना		
चाहिये ....	२३५	१३
अधर्म बाढ़िको दंड ....	२३५	१४
धर्मके उलाघनमें दोष ....	२३५	१६
बुरेव्यवहारमें राजा आदि-		
को अधर्म .....	२३५	१८
अर्थी प्रत्यर्थीके पापमें ....	२३६	१९
व्यवहारके देखनेमें शूद्रका		
निषेध .....	२३६	२०
जिसमें नास्तिक तथा शूद्र-		

प्रकरण	पृ.	श्लो.
अधिक द्विज न्यून ऐसे देशका --		
निषेध ....	२३६	२१
लोकपालोंको प्रणाम करि		
व्यवहारको देखै ....	२३६	२३
ब्राह्मण आदिके क्रमसे व्यवहा		
रको देखै .....	२३६	२४
स्वर् और वर्ण आदिसे अर्थी		
आदिकी परीक्षा करै ....	२३७	२९
बालकका धन राजाकरि रक्षा		
करने योग्यहै ....	२३७	२७
प्रोषितपतिका आदिके धनकी		
रक्षा करना ....	२३७	२८
अपुत्रके धन लेनेवाले-		
को शासन .....	२३८	२९
स्वामिरहित धनकी रक्षाका		
काल .....	२३८	३०
द्रव्यके रूप और संख्या आदि-		
का कहना .....	२३८	३१
न कहनेमें दंड .....	२३८	३२
नष्ट हुए द्रव्यसे छठा भाग		
लेना .....	२३८	३३
चोरका मरवाना ....	२३८	३४
निधि आदिमें छठा भाग लेना	२३९	३५
प्रराई निधिमें झूठके बोलनमें	२३९	३६
ब्राह्मणकी निधिके विषयमें	२३९	३७
राजा निधिपाके आधी ब्राह्म-		
णोको देवै .....	२३९	३८
चोरों करि लियुा हुआ धन राजा-		
को देना चाहिये ....	२३९	४०
जाति तथा देशके विरोध विना		
करना चाहिये .....	२३९	४२

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
राजाको विवादका उठाना -		ब्राह्मण आदि साक्षियोंसे	
आदि न करना चाहिये २४०	४३	प्रश्नमें .... २४७	८७
अनुमानसे सत्यका निश्चय करै २४०	४४	असत्य कहनेमें दोष .... २४८	८९
सत्य आदिसे व्यवहारको देखै २४०	४५	सत्यकी प्रशंसा .... २४८	९२
सदाचार करना चाहिये २४०	४६	असत्य कहनेका फल .... २४८	९३
ऋणके देनेमें .... २४१	४७	फिर सत्य कहनेकी प्रशंसा २४९	९६
अथ हीन .... २४१	५३	विषयके भेदसे सत्यका फल २४९	९७
अभियोग करनेवालेका द-		निन्दित ब्राह्मणोंसे शूद्रकी	
ण्ड आदि .... २४२	५८	भाति पूछे .... २५०	१०२
धन परिमाणके झूठ कहनेमें २४३	५९	विषयके भेदसे झूठ कहनेमें	
साक्षियोंसे निश्चय करना २४३	६०	दोष .... २५०	१०३
अथ साक्षी .... २४३	६१	झूठ कहनेमें प्रायश्चित्त .... २५०	१०५
साक्षी होनेमें निषिद्ध .... २४३	६४	तीनिपक्ष तक साक्ष्य कहनेमें	
स्त्री आदिकोकी स्त्री साक्षी २४४	६८	पराजय .... २५१	१०७
वादीके साक्षी .... २४५	६९	साक्षियोंके भंगमें .... २५१	१०८
बालक आदिके साक्ष्य		विना साक्षीके विवादमें	
आदिमें .... २४५	७०	शपथ .... २५१	१०९
साहस आदिमें साक्षीकी परी-		वृथा शपथमें दोष .... २५१	१११
क्षा नही .... २४५	७२	वृथा शपथका प्रतिप्रसव	
साक्षियोंके द्वैधमें .... २४५	७३	कहतेहैं .... २५२	११२
साक्षीका सत्य कहना .... २४५	७४	ब्राह्मण आदि सत्य कहना	
झूटा साक्षी होनेमें दोष .... २४६	७५	आदि शपथहैं .... २५२	११३
सुने हुए साक्षी .... २४६	७६	शूद्रके शपथमें .... २५२	११४
भर्मज्ञ एकभी साक्षी होताहै २४६	७७	शपथमें शुद्ध कहतेहैं .... २५२	११५
साक्षीका स्वाभाविक वचन		अथ पुनर्वाद .... २५२	११७
ग्रहण करै .... २४६	७८	लाभ आदिसे साक्ष्यमें दंड-	
साक्षियोंसे पूछनेमें .... २४६	७९	विशेष .... २५२	११८
साक्षियोंको सत्य कहना		दंडके हाथ आदि दशस्थानहैं २५३	१२४
चाहिये .... २४७	८१	अपराधकी अपेक्षा दंडदेना २५४	१२६
एकान्तमें किये कामको आत्मा		अधर्म दंडकी निन्दा .... २५४	१२७
आदि जानताहै .... २४७	८४	दंड योग्यका परित्याग .... २५४	१२८

प्रकरण	पृ.	श्लो.
वाग्दंड धिग्दंडे आदि ....	२५५	१२९
त्रसरेणु आदि परिमाणोंको कहतेहैं ....	२५६	१३२
प्रथम मध्यम उत्तम साहस	२५९	१३६
ऋणदानमें - धुंडका नियम	२५६	१३९
अथ वृद्धि कहिये व्याज	२५६	१४०
आधिके स्थलमें ....	२५७	१४३
बलसे आधिके भोगका निषेध ....	२५७	१४४
आधिके निक्षेप आदिमें....	२५७	१४५
गौ आदिके भोगनेपरभी स्वत्व-की हानि नहीं होती	२५७	१४६
आधि सीमा आदिमें भोग-नेपरभी स्वत्व हानि नहीं	२५८	१४७
बलसे आधिके भोगनेमें आधी वृद्धि ....	२५८	१४९
दुग्नेसे अधिक वृद्धि नहीं होती ....	२५८	१५१
वृद्धिके प्रकारं .....	२५८	१५२
फिर लेख्य करनेमें ....	२५९	१५४
देशकालकी वृद्धिमें....	२६०	१५६
दर्शनप्रतिभूके स्थलमें ....	२६०	१५८
जमानतका ऋण पुत्र न देवै	२६०	१५९
दानप्रतिभूके स्थलमें .....	२६०	१६०
निरादिष्ट धनमें प्रतिभू होने पर ....	२६१	१६२
कियेकी निवृत्तिमें .....	२६१	१६३
कुटुंबके लिये किया अदेयहै	२६१	१६६
बलसे किया हुआ लौटाने योग्य है .....	२६२	१६८
प्रतिभू होने आदिका निषेध	२६२	१६९

प्रकरण	पृ.	श्लो.
अग्राह्य धनको न लेवै....	२६२	१७०
ग्रहण करणे योग्यके त्याग-में दोष .....	२६२	१७१
निर्वलकी रक्षा करने-आदिमें . ....	२६२	१७२
अधर्मसे कार्य करेनेमें ....	२६३	१७४
धर्मसे काम करना ....	२६३	१७५
धनिकसे धनके साधनमें....	२६३	१७६
धन न होनेमें काम करके-ऋण शोधन करै ....	२६३	१७७
अथ निक्षेप कहिये धरोहडमें	२६४	१७९
साक्षीके न होनेमें निक्षेप-से निर्णय.....	२६४	१८२
निक्षेपके देनेमें .....	२६४	१८५
आपही निक्षेपके देनेमें....	२६५	१८६
मुदी हुई धरोहडमें . ....	२६५	१८८
धरोहडके चोरीहो जाने पर	२६५	१८९
निक्षेपक मुकर जानेमें शपथ	२६६	१९०
निक्षेपके अपहार आदिमेंदंड	२६६	१९१
छलसे पराये धनके लेलेनेमें	२६६	१९३
धरोहडमें झुठ बोलनेसे दंड	२६६	१९४
धरोहडके देने लेनेमें....	२६७	१९५
विना स्वामीके वेचनेमें...:	२६७	१९६
आगमसाहित भोगका प्रमाण	२६७	२००
खुलाखुली वेचने तथा मूल्यके-धरन लाभमें .....	२६८	२०१
साझेकी वस्तुके वेचनेमें....	२६८	२०२
और कन्यादिखाके औरसे-विवाहमें .....	२६८	२०४
उन्मत्त आदि कन्याके-विवाहमें .....	२६८	२०५



प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
पुरोहितकी दक्षिणा देनेमें	२६८ २०६	अन्यथा कहनेमें दंड	२७८ २१७
अध्वर्यु आदिकी दक्षिणा	२६९ २०९	साक्षीके न होनेमें गावके—	
संभूयसमुत्थानमें	२६९ २११	सामंत आदि	२७८ २६८
दियेका मुकरजाना	२७० २१२	सामंतोंके झूठ कहनेमें दंड	२७८ २६३
मरनेके स्थलमें	२७० २१६	गृह आदिके हरि लेनेमें दंड	२७९ २६४
प्रतिज्ञाके बदल जानेमें	२७१ २१८	राजा आप सीमाका—	
वेचीहुई वस्तुमें पछतावा—		निर्णय करै	२७९ २६९
करना	२७१ २२२	अथ वाक्पारुष्यमें दंड	२७९ २६६
बिनाकहे दोष युक्त कन्या—		ब्राह्मण आदिके गाली देनेमें	२७९ २६७
के दानमें	२७२ २२४	बराबर वर्णके गाली देनेमें	२७९ २६९
झूठ कन्याके दोष कहनेमें	२७२ २२६	द्विजको शूद्रके गाली देनेमें	२८० २७०
दूषित कन्याकी निंदा	२७२ २३६	धर्मका उपदेश करने—	
अथ सप्त पदी	२७२ २२७	वाले शूद्रको दंड	२८० २७२
स्वामी और पालने वालेका—		सुने हुए देश तथा जातिके—	
विवाद	२७३ २२९	आक्षेपमें	२८० २७३
क्षीरकी भृतिके स्थलमें	२७३ २३१	काणा आदि बुराई करनेमें	२८० २७४
पालने वालेके दोषसे नष्ट—		माता आदिके बुरी कहनेमें	२८० २७५
स्थलमें	२७३ २३२	आपसमें पातित होने योग्य—	
चोस्के ले जानेपर	२७४ २३३	बुराई करनेमें	२८१ २७६
सिंग आदि चिन्हे दिखाना	२७४ २३४	अथ दंड पारुष्य	२८१ २७८
भेडिमा आदिके मारनेके—		शूद्रको ब्राह्मण आदिके—	
स्थलमें	२७४ २३६	ताडनेमें	२८१ २७९
धान्य नाश करने वालेके—		बडेके साथ बैठनेमें	२८१ २८१
दंडमें	२७४ २३७	थूकने आदिमें	२८१ २८२
सीमा विवादके स्थलमें	२७६ २४५	वाल पकडने आदिमें	२८२ २८३
सीमाके वृक्ष आदि	२७६ २४६	त्वचाके फोडने और हड्डीके—	
नष्ट किये गये सीमाके चिन्ह	२७७ २४९	तोडने आदिमें	२८२ २८४
भोगसे सीमाका निर्णय करै	२७७ २५२	वनस्पतिके काटनेमें	२८२ २८५
सीमाके साक्षी	२७७ २५३	मनुष्योंके दुःखके अनुसार	
साह्य युक्त सीमाके विधि	२७७ २५५	दंड	२८२ २८६
साक्ष्य देनेकी विधि	२७७ २५६	समुत्थान का खरत्र देने में	२८२ २८७

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
द्रव्यकी हिंसामें.....	२८२	२८८	हरेधान्य आदिके चुरानेमें	२९०	३३०
चमड़ेके भांड आदिमें ....	२८३	२८९	निरन्वय सान्वय.धान्य आदि	२९०	३३१
यान आदिकी दशाओंका—			स्तेय साहसका लक्षण ....	२९०	३३२
वदलना .....	२८३	२९०	तीनो अग्नियोंके चुरानेमें....	२९०	३३३
रथकेस्वामी आदिके दंडदेनेमें	२८४	२९३	चोरका हाथ काटना आदि	२९०	३३४
भार्या आदिकी • ताडनामें	२८५	२९५	पिता आदिके दंडमें.....	२९१	३३५
अन्यथा ताडनमें • दंड ....	२८५	३००	राजक्रे दण्डमें .....	२९१	३३६
चोरके दंड देनेमें .....	२८५	३०१	विज्ञशूद्र आदिको आठगुना—		
चोर आदिसे अभय दानका			आदि दंड .....	२९१	३३७
फल .....	२८५	३०३	अस्तेय कहतेहैं .....	२९१	३३९
राजा धर्म अधर्मके छठे भागका			चोरके यजन कराने आदिमें	२९१	३४०
पानेवालाहै .....	२८५	३०४	मार्गमें स्थितदो ईखोंके लेनेमें	२९२	३४१
रक्षा विना करलेनेकी निंदा	२८६	३०७	दासाश्च आदिके हरने—		
पापीके दंड और साधुके सं—			आदिमें ....	२९२	३४२
ग्रहणमें ....	२८६	३१०	अथ साहस कहतेहैं .....	२९२	३४४
बालक वृद्ध आदिकोमै क्षमा	२८७	३१२	साहसके योग्य निंदा ....	२९२	३४६
ब्राह्मणके सुवर्णके चोरमें	२८७	३१४	द्विजातिका शस्त्रग्रहण कोल	२९३	३४८
शासन न करनेमें राजाका			आततायीके मारनेमें ....	२९३	३५०
दोष ....	२८७	३१६	पराई स्त्रीके छेडनमें दंड	२९३	३५२
पराये पापके लगनेमें ....	२८८	३१७	पराई स्त्रीसे एकांतमें बात—		
राजदंडसे पापके नाश			करनेमें .....	२९४	३५४
होनेपर ....	२८८	३१८	स्त्रीसंग्रहणमें ....	२९४	३५८
कुएँपरसे घटरस्सी आदिके—			भिक्षुक आदिक पराई स्त्रीसे		
चुराने और प्याऊके—.....			बोलनेमें .....	२९५	३६०
तोडनेमें ....	२८८	३१९	पराई स्त्रीकेसाथ निषिद्ध संभा—		
धान्य आदिके चुरानेमें	२८८	३२०	षण्में .....	२९५	३६१
सुवर्ण आदिके चुरानेमें....	२८८	३२१	नट आदिकी स्त्रियोंसे संभा—		
स्त्री पुरुष आदिके हरनमें	२८९	३२३	षण्में दोष .....	२९५	३६२
बड़े पशु आदिके चुराने			कन्याके दूषणमें ....	२९६	३६४
आदिमें .....	२८९	३२४	अंगुली आदिके डालनेमें	२९६	३६६
सूत कपास आदिके चुरानेमें	२८९	३२६	व्यभिचार करनेवाले स्त्री और		

प्रकरण	पृ. श्लो.
जारको दंड .....	२९७ ३७१
संवत्सरके अभिशस्त आदिमें	२९७ ३७३
शूद्र आदिको अरक्षित उत्कृष्ट	
आदिके गमनमें .....	२९७ ३७४
ब्राह्मणगुप्ता विप्राके गमनमें	२९८ ३७८
ब्राह्मणका वध दंड नहीहै	२९८ ३८०
गुप्ता वैश्या क्षत्रियाके ग-	
मनमें .....	२९९ ३८२
अगुप्ता क्षत्रिया आदिके	
गमनमें .....	२९९ ३८४
साहासि आदिकोंसे शून्य रा-	
ज्यकी प्रशंसा .....	२९९ ३८६
कुल पुरोहित आदिके त्यागमें	३०० ३८८
माता आदिके त्यागमें .....	३०० ३८९
ब्राह्मणोंके वादमें राजाका ध-	
र्म न कहना चाहिये ...	३०० ३९०
सामाजिक आदिके न भोज	
नमें .....	३०० ३९१
इसके उपरांत आकररहित	३०१ ३९४
धोनीके वस्त्र धोनेमें .....	३०१ ३९६
कोलीके सूत डेलनेमें ....	३०१ ३९६
वेचने योग्य वस्तुके मोल-	
करनेमें .....	३०१ ३९८
जाकरि निषिद्धोंके लेजा-	
नेमें .....	३०२ ३९९
अकालके विक्रय आदिमें	३०२ ४००
विदेशके विक्रयमें .....	३०२ ४०१
मूल्यके स्थापित करनेमें ..	३०२ ४०२
तुलादिकी परीक्षा .....	३०२ ४०३
नौकाकीउतराई .....	३०२ ४०४
गर्भिणी आदिकी नावकी उ-	

प्रकरण	पृ. श्लो.
तराई .....	३०३ ४०७
नाववाँलेके दोषसे वस्तुके ना-	
शमे .....	३०३ ४०८
वैश्या आदिके व्यापार न क-	
क्षत्रिय और वैश्य दासकर्मके	
योग्य नहीहैं .....	३०४ ४११
शूद्रसे दासकर्म करावै ...	३०४ ४१३
शूद्र दासपनसे नही छुटाहै	३०४ ४१४
अब सत्रह दासोंके प्रकार	३०४ ४१५
भार्यादास आदि अधन हैं	३०४ ४१६
वैश्य तथा शूद्रोंसे अपनाका-	
म करन चाहिये .....	३०५ ४१८
दिनदिन आयव्यय अर्थात् आमदनी	
और खरच देखै .....	३०५ ४१९
अच्छी भांति व्यवहार देखने-	
का फल .....	३०५ ४२०

### अथ नवमोऽध्यायः ।

स्त्री पुरुषोंके धर्म .....	३०६ १
स्त्रीकीरक्षा .....	३०६ २
जायाशब्दके अर्थका कहना	३०७ ८
स्त्रीकी रक्षाके उपाय ....	३०७ ११
स्त्रीके स्वभाव .....	३०८ १४
स्त्रियोंकी मंत्ररहित क्रिया	३०८ १८
व्यभिचारके प्रायश्चित्तमें	३०९ १९
स्त्रीस्वामीके गुणयुक्त होनीहैं	३०९ २२
स्त्रीकी प्रशंसा .....	३१० २६
व्यभिचार नकरनेका फल	३१० २९
व्यभिचारका फल .....	३१० ३०
बीज और क्षेत्रका बलात्क	३११ ३२
पराई स्त्रियोंमें बीज बोनका	
निषेध .....	३१३ ४१

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
स्त्री और पुरुषका एकत्व	३१३ ४६	का त्याग ....	३२२ ९३
एकवार अंशभाग आदि ....	३१४ ४७	रजस्वलाके विवाहमें शुल्कका	
क्षेत्रकी प्रधानता ....	३१४ ४८	देना नही ....	३२२ ९३
स्त्री धर्म कहतेहैं .....	३१५ ५६	कन्या वरकी अवस्थाका	
भाईकी स्त्रीमें गमन करनेमें पति-		मिर्यम .....	३२२ ९४
त होताहै :...: ३१६ ५७		विवाहकी आवश्यकता....	३२२ ९५
नियोग कहतेहैं :...: ३१६ ५९		मूल्यदी हुईके पतिके मरनेमें	३२२ ९७
नियोगमें दूसरा पुत्र न उ-		मोल लेनेका निषेध .....	३२२ ९८
त्पन्न करै .... ३१६ ६०		वचनसे कन्या देकर अन्यके	
कामसे गमनका निषेध .... ३१७ ६३		लिये दान नही .....	३२३ ९९
नियोगकी निन्दा .... ३१७ ६४		स्त्री पुरुषका अव्याभिचार	३२३ १०१
वर्णसंकर काल .....	३१७ ६६	अथ दायभाग कहतेहैं ....	३२३ १०३
वाग्दत्ताके विषयमें .....	३१७ ६९	विभागका काल.....	३२३ १०४
कन्याके फिर देनेका निषेध	३१८ ७१	सामिल रहनेमें जेठेकी प्रधा-	
सप्तपदी पूर्वक स्त्रीके त्यागमें	३१८ ७२	नता .....	३२४ १०५
दोषयुक्त कन्याके दानमें	३१८ ७३	जेष्ठको प्रशंसा :... ..	३२४ १०६
स्त्रीकी जीविका करणना करिकै		जेष्ठको ज्येष्ठवृत्ति न होनेपर	३२५ ११०
प्रवास करै :... .. ३१८ ७४		विभागमें हेतु कहतेहैं .....	३२५ १११
प्रोपित भर्तृकाके निग्रम .... ३१९ ७५		जेष्ठ आदिके विशोद्धरमें	३२५ ११२
एकतक स्त्रीकी प्रतीक्षा करै	३१९ ७७	एकभी श्रेष्ठवस्तु ज्येष्ठको	
रोग पीडितके अतिक्रममें	३१९ ७८	देवैँ :... .. ३२५ ११४	
मुंपुसक अदिको स्त्रीका त्याग		दशवस्तुओंमें समानोका उद्धार	
नही .... ३१९ ७९		नहीहै .....	३२५ ११५
अधिवेदनमें :... : ३१९ ८०		सम तथा विषम विभाग ....	३२५ ११६
स्त्रीके मद्यपानमें .....	३२० ८४	अपने २ भागों सुवहिनके लिये	
धर्मकार्य सजातिकी स्त्री करै		देना चाहिये .... ३२६ ११८	
अन्यनही :... : ३२० ८६		विषम बकरा भेड जेठकाहैं	३२६ ११९
गुणीके लिये कन्यादान निर्गुण		क्षेत्रजके साथ विभागमें....	३२६ १२०
को नही .... ३२१ ८८		अनेक मातावालोमें ज्येष्ठता	३२७ १२२
स्वयंवरका काल :... : ३२१ ९०		जन्मसे ज्येष्ठता :... ..	३२७ १२६
स्वयंवरमें पिताके दिये अलंकार		पत्रिका करनेमें .... ३२८ १२७	

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
पुत्रिकाका ग्राहित्व नहीं है	३२८ १३०	दांसी मुत्रको सम भागित्व	३३६ १७९
माताका स्त्रीधन कन्याकाहै	३२८ १३१	क्षेत्रज आदि पुत्रके प्रति	
पुत्रिकापुत्रका धन ग्राहित्वहै	३२९ १३२	निविहै	३३६ १८०
पुत्रिका और और सके		औरस होनेपर दत्तक आदि	
विभागमें	३२९ १३४	नहीं कर्तव्यहै	३३७ १८१
पुत्ररहित पुत्रिकाके धनमें	३२९ १३५	पुत्रिका पुत्रत्वका आतिदेश	३३७ १८२
पुत्रिका दो प्रकारकीहै	३२९ १३६	वारह पुत्रोंमें पहिला २	
पौत्रप्रपौत्रका धनमें भाग	३२९ १३७	श्रेष्ठहै	३३७ १८४
पुत्र शब्दका अर्थ	३२९ १३८	क्षेत्रज आदि रिक्थहरहैं	३३७ १८५
पुत्रिका पुत्रके किये श्राद्धमें	३३० १४०	क्षेत्रज आदिकोंको पितामह—	
दत्तकके धन ग्राहित्वमें	३३० १४१	के धनमें	३३७ १८६
कामज आदिका धनग्राहि		सपिंड आदि धन लेने—	
नहीं है	३३० १४३	वाले होतेहैं	३३८ १८७
क्षेत्रजके धन ग्राहित्वमें	३३१ १४५	ब्राह्मणका अधिकारहै	३३८ १८८
अनेकमातावालोंका विभाग	३३१ १४९	राजाका अधिकार	३३८ १८९
विनाव्याहे हुए शूद्रा पुत्रके भाग—		मृतपतिका नियुक्त पुत्रका	
का निषेध	३३२ १५५	अधिकारहै	३३८ १९०
सजातीय अनेक मातावालोंका		औरस पौनर्विकके विभागमें	३३९ १९१
विभाग	३३२ १५६	मातृके धनके विभागमें	३३९ १९२
शूद्रका समही भाग होताहै	३३३ १५७	स्त्रीधन कहतेहैं	३३९ १९४
दायाद अदायाद बांधव—		संतति सहित स्त्रीके धना—	
पनहै	३३३ १५८	धिकारी	३३९ १९५
कुपुत्रकी निंदा	३३३ १६१	संतति रहित स्त्रीके धनाधि—	
औरस और क्षेत्रजके वि—		कारी	३३९ १९६
भागमें	३३३ १६२	साधारण स्त्रीधन न करै	३४० १९९
क्षेत्रजके पीछे औरस		स्त्रियोंका अलंकरण नहीं वाट—	
होनेपर	३३४ १६३	ने योग्यहै	३४० २००
दत्तक आदि गोत्ररिक्थके		अब अनंश कहतेहैं	३४० २०१
भागीहै	३३४ १६५	नपुंसक आदि क्षेत्रज अंश—	
औरस आदि वारह पुत्रोंके		भागी होतेहैं	३४० २०३
लक्षण	३३४ १६६	साझेके जोडे हुए धनमें	३४१ २०४

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
विद्या आदि ... ..	३४१-२०६	कूटशास और बाल वध-	
समर्थको भागकी उपेक्षामे	३४१ २०७	आदि करनेमे .....	३४५ २३२
अविभाज्य धनमें .....	३४१ २०८	धर्मसे किये हुए व्यवहार-	
नष्टके उद्धारमें .... ..	३४१ २०९	को न लौटावै .....	३४५ २३३
मिलेहुए धनके विभागमें	३४१ २१०	अधर्मसे किया लौटाने-	
विदेश आदिमे गये हुएका		योग्य है ?.... ..	३४५ २३४
भागलोपनही होताहै	३४२ २११	प्रायश्चित्त न करनेमें महा-	
गुण शून्यं ज्येष्ठ समान		पत्नीकीका दण्ड ....	३४६ २३५
भाग पावै .....	३४२ २१३	प्रायश्चित्त करनेसे दागने-	
विकर्ममे स्थित सब भ्राता धनको		योग्य नहींहैं .....	३४६ २४०
नही पातेहैं ज्येष्ठके असा-		महापातकेमे ब्राह्मणको दंड	३४७ २४१
रण करनेमें.....	३४२ २१४	क्षत्रिय आदिका दंड ....	३४७ २४२
जिनका पिता जीवताहै उनका		महापातर्काके धन लेनेमें ....	३४७ २४३
विभाग .....	३४२ २१५	ब्राह्मणके पीडा देनेमे दंड	३४८ २४८
विभागके पीछे उत्पन्नके		वध योग्यके छुड़ानेमें दोष	३४८ २४९
स्थलमें .....	३४२ २१६	राजा कंटकोके उखाडनेमें-	
संतति रहित धनमें माताका-		यत्न करै .....	३४८ २५२
अधिकार .....	३४३ २१७	आर्यकी रक्षाका फल ....	३४८ २५३
ऋण और धनमें संमान		चौर आदिके दंड न देनेमें-	
विभाग .... ..	३४३ २१८	दोष .... ..	३४८ २५४
अविभाज्य कहतेहैं ....	३४३ २१९	निर्मथ राज्य वढाना.....	३४९ २५५
अव द्यूत समाव्हय कहतेहै	३४३ २२०	प्रकट तथा गुप्त चोरोंका ज्ञान	३४९ २५६
द्यूत समाव्हयका निषेध	३४३ २२१	प्रकट तथा गुप्त तस्कंर-	
द्यूत समाव्हयका अर्थ ....	२४४ २२३	कहतेहै .... ..	३४९ २५७
द्यूत आदि करने वालोका-		उनका जानना ... ..	३५० २६२
दण्ड .....	३४४ २२४	चोरोंका रोकनेवाला दंडहीहै	३५० २६३
पाषंडी आदिकोको देशसे-		चोरका दूढना .....	३५१ २६४
निकाल दे .....	३४४ २२५	चोरिके चिन्हके न देखनेमें	३५१ २७०
दंड देनेकी असमर्थतामे	३४५ २२९	चोरको आश्रय देनेवाले-	
स्त्री बालक आदिके दंडमें	३४५ २३०	को दंड.....	३५२ २७१
नियुक्तके काम बिगाडनेमे	३४५ २३१	स्वधर्मसे भ्रष्टके दंड देनेमें	३५२ २७३

प्रकरण	पृ. श्लो.	प्रकरण	पृ. श्लो.
चोर आदिके उपद्रवमें न-		ही.ब्राह्मण .....	३६० ३१८
दौडनेवालेको दंड ....	३५२ २७४	ब्राह्मण शत्रुको परस्पर	
राजाका खजाना लेनेवाले-		साहित्यहै:.....	३६१ ३२२
को दंड ....	३५२ २७५	पुत्रको राज्य देरणमे प्राण-	
संधिके फोडनेमें ....	३५२ २७६	त्याग .....	३६१ ३२३
गांठि काटनेमें ....	३५३ २७७	मैत्रयके धर्मको कहतेहैं ....	३६१ ३२६
चोरके चिन्हधारण आदिमें	३५३ २७८	शूद्रके धर्मको कहतेहैं ....	३६२ ३३४
तलवा तथा घरके फोडनेमें	३५३ २७९	<b>अथ दशमोऽध्यायः ।</b>	
राजमार्गमे मलमूत्र करनेमें	३५३ २८२	अध्यापन ब्राह्मणहीकाहै....	३६३ १
झूठी चिकित्सा करनेमें दंड	३५४ २८४	वर्णोंका ब्राह्मण प्रभुहै ....	३६४ ३
प्रतिमाके तोडनेमें ....	३५४ २८५	अब द्विजवर्णका कथन	३६४ ४
मणियोंके अन्यथा छेद-		अब सजातीय कहतेहैं	३६४ ५
करनेमे ....	३५४ २८६	पिताकी जातिके सदृश	३६४ ६
विष व्यवहारमे ....	३५४ २८७	अब वर्ण संकर कहतेहैं	३६५ ८
बंधन स्थान राजमार्गमें	३५४ २८८	अब व्रात्य कहतेहैं .....	३६७ २०
पर कोटेके तोडने आदिमें	३५५ २८९	व्रात्योसे उत्पन्न आदि	
अभिचारकर्ममें .....	३५५ २९०	संकीर्ण .....	३६७ २१
अवीजके वेचने आदिमें....	३५५ २९१	उपनयन करने योग्य ....	३७१ ४१
स्वनारुके दंड देनेमें.....	३५५ २९२	वे सुकर्मसे उत्कर्षको प्राप्त-	
हलके उपकरण चुरानेमें....	३५६ २९३	होतेहैं ....	३७१ ४२
अबसार्त प्रकृति कहतेहैं....	३५६ २९४	क्रियाके लोपसे वृषलत्वकी-	
अपनी और पराई शक्तिका		प्राप्त होतेहैं ....	३७१ ४३
देखना .....	३५७ २९८	दस्यु कहतेहैं....	३७२ ४५
कामके आरंभमे .....	३५७ २९९	वर्णसंकरोंके कर्म कहतेहैं	३७२ ४७
राजाका युमत्व कहना.....	३५७ ३०१	चांडालका कर्म कहतेहैं ....	३७३ ५१
इंद्र आदिकोंके तेजको राजा		कर्मसे पुरुषका ज्ञान .....	३७४ ५७
धारण करतहै .....	३५८ ३०३	वर्णसंकरकी निन्दा .....	३७४ ५९
इन उपायोंसे त्रोरका पकडनु	३५८ ३१२	इनका ब्राह्मणकेलिये प्राण-	
ब्राह्मणको कुपित न करै....	३५८ ३१३	त्यागना श्रेष्ठहै .....	३७४ ६२
ब्राह्मणकी प्रशंसा ....	३५९ ३१४	साधारण धर्म कहतेहैं	३७४ ६३
ईशानकी अग्नि दूषित नही ऐसे		सातमें जन्ममें ब्राह्मणत्व और-	

प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
शूद्रत्व .....	३७६	६४. १	अथ एकादशोऽध्यायः ।	
वर्णसंकरमे श्रेष्ठता ....	३७६	६७	स्नातकके प्रकार ....	३८८ १
वीज और क्षेत्रका बलाबल ३७६.	७०	७०	नवीन स्नातकोंको अन्न देनेमें ३८८	२
षट्कर्म कहतेहैं .....	३७७	७१	वेदवेत्ताओंको अन्न देना ३८८	४
ब्राह्मणकी जीविका.....	३७७	७६	भिक्षासे दूसरे व्याहका निषेध ३८८	५
क्षत्रिय तथा वैश्यकर्म कहतेहैं ३७८	७७	७७	कुटुंबी ब्राह्मणकेलिये दान ३८८	६
द्विजोंका श्रेष्ठ कर्म कहतेहैं ३७८	८०	८०	सोम यामके अधिकारी .... ३८९	७
आपत्तिका धर्म कहतेहैं .... ३७८	८१	८१	कुटुंबके नभरण करनेमें दोष ३८९	८
वैचनेमे वर्जित कहतेहैं .... ३७९	८६	८६	यज्ञशेष आदिके लिये वेश्या—	
दूध आदिके वेचनेका फल ३८०	९२	९२	आदिसे धनलेना .... ३८९	११
ज्यायसी वृत्तिका निषेध ३८०	९५	९५	छःउपवासोंके पीछे आहारले—	
पराये धर्मसे जीवनेकी निंदा ३८१	९७	९७	नेमें .... ३९०	१६
वैश्यशूद्रका आपद्धर्म .... ३८१	९८	९८	ब्रह्मस्व आदि हरनेका निषेध ३९०	१८
आपत्तिमें विप्रका हीन याजन—			असाधुओंका धन लेकर साधु—	
आदि .....	३८१	१०२	ओंके देनेमें .... ३९१	१९
दान लेनेकी निंदा .... ३८२	१०९	१०९	यज्ञ शील आदि धनकी प्रशं—	
याजन अध्यापन ब्राह्मण कंठे ३८३	११०	११०	सा .... ३९१	२०
प्रतिग्रह आदिके पाप नाशमें ३८३	१११	१११	ब्राह्मणके यज्ञके लिये चोर—	
शिलोंछसे जीवनेमें .... ३८३	११२	११२	आदिमें दंड .... ३९१	२१
धनके याचनेमें .... ३८३	११३	११३	क्षुधासे पीडितकी वृत्तिक—	
सात धनके आगम .... ३८४	११५	११५	ल्पना करनेमें .... ३९१	२२
दश जीवनेके हेतु .... ३८४	११६	११६	यज्ञकेलिये शूद्रकी भिक्षाका—	
ब्याजसे जीवनेका निषेध ३८५	११७	११७	निषेध .... ३९१	२४
राजाओंका आपद्धर्म कहतेहैं ३८५	११८	११८	यज्ञकेलिये धन मागके न रखना—	
शूद्रका आपद्धर्म .... ३८५	१२१	१२१	चाहिये .... ३९२	२५
शूद्रको ब्राह्मणका आराधन—			देवता और ब्राह्मणके धनहरनेमें ३९२	२६
श्रेष्ठ .....	३८५	१२२	सोमयागकी अशक्तिमे वैश्वी—	
शूद्रकी वृत्ति कल्पना करना ३८६	१२४	१२४	नर यज्ञ .... ३९२	२७
शूद्रके संस्कार आदि नहीं ३८६	१२६	१२६	समर्थके अनुकूलपक निषेध ३९२	२८
शूद्रका विनामंत्रके धर्मकार्य ३८६	१२७	१२७	द्विजको शक्तिसे वैरीका जय ३९३	३१
शूद्रके धनके संचयका निषेध ३८७	१२९	१२९	क्षत्रिय आदिका वाहुबलसे	



प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
शत्रुका जय ....	३९३	३४	ग्रीके चुरानेका प्रायश्चित्त	४०५	१००
ब्राह्मणका अनिष्ट न कहै	३९३	३५	गुरुकी स्त्रीसे गमनका प्राय-		
अल्प विद्यावाला तथा स्त्री आदिका--			श्चित्त ....	४०६	१०३
होतृत्वका निषेधहै ....	३९३	३६	गर्ववध आदि उपपातकोंका-		
अश्वकी दक्षिणा देनेमें	३९४	३८	प्रायश्चित्त .....	४०७	१०८
थोड़ी दक्षिणाके यज्ञकी निं-			अवकीर्णका प्रायश्चित्त ....	४०८	११८
दा ....	३९४	३९	जातिभ्रंशकर प्रायश्चित्त	४०९	१२५
अग्निहोत्रीको उसके न कर-			संकरीकरण आदिका प्राय-		
नेमें ....	३९४	४१	श्चित्त .....	४०९-१२६	
शूद्रसे प्राप्त धनसे अग्निहोत्रकी-			क्षत्रिय आदिके वधका प्रा-		
निंदा .....	३९४	४२	यश्चित्त .....	४०९	१२७
विहितके न करने आदिमें प्राय-			बिलाव आदिके वधका प्रा-		
श्चित्ती होताहै ....	३९५	४५	यश्चित्त ....	४१०	१३२
जाने विना जाने पापके--			घोड़े आदिके वधका प्राय-		
लिये ....	३९५	४६	श्चित्त ....	४११	१३७
प्रायश्चित्तीके संसर्गका निषेध	३९५	४७	व्यभिचारित स्त्रीके वधमे-		
पहले पापसे कुष्टी अंधे आदि-			प्रायश्चित्त .....	४१२	१३८
होते है ....	३९६	४८	सर्प आदिके वधमे दानकी आसक्ति-		
प्रायश्चित्त अवश्य करना--			होनेपर .....	४१२	१४०
चाहिये .....	३९७	५४	शूद्रजंतुओके समूहके वधमें	४१२	१४१
पांच महापातिक कहते है	३९७	५५	वृक्ष आदिके काटनेमें	४१२	१४३
ब्रह्महत्या आदिके समान--			अन्नमे उत्पन्नजीवोंके वधमें	४१३	१४४
कहते है ....	३९७	५६	वृथा औषधी आदिके छेदनेमें	४१३	१४५
उपपातक कहते है .....	३९८	६०	अमुख्य सुराके पानमे प्रा-		
जातिभ्रंश करने वाले कहते है	३९९	६८	यश्चित्त ....	४१३	१४७
संकरीकरण कहते है	३९९	६९	सुराके पात्रमें स्थित जल पीनेका		
अपात्रीकरण कहते है	३९९	७२	प्रायश्चित्त .....	४१३	१४८
महिनी करण कहते है	३९९	७१	शूद्रका उच्छिष्ट जल पीनेमें	४१४	१४९
अथ ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त	४००	७३	सुरागंधके मूचनेमें	४१४	१५०
गर्भ आत्रेया और क्षत्र वैश्य			विष्टा मूत्र सुरासे मिले भो-		
के वधमे प्रायश्चित्त .....	४०३	८८	जनमें .....	४१४	१५१
स्त्री तथा मित्रका वध धरोहड-			फिर संस्कार होनेमे दंड आ-		
दवा लेनेका ....	४०३	८९	दिकी सिद्धात्ति ....	४१४	१५२
मद्यपानका प्रायश्चित्त	४०३	९१	अभोज्य अन्न स्त्री शूद्रके उच्छिष्ट और अ-		
सुराके प्रकार .....	४०४	९५	भक्ष्य मांसके भक्षणमें	४१५	१५३

प्रकरण	पृ.	श्लो.	प्रकरण	पृ.
शुक्त आदिके खानेमें .....	४१५	१५४	निवृत्ति .....	४२० १८५
सूकर आदिके विष्टामूत्रके भक्षणमें .....	४१५	१५५	प्रायश्चित्त करनेवाले पति- तका संसर्ग .....	४२० १८७
सूखे सूना आदिमें स्थित अज्ञात मांसके भक्षणमें .....	४१५	१५६	पतित स्त्रियोंको अन्न आदि देना .....	४२१ १८९
कुङ्कुटनसूकर आदि भक्षणमें .....	४१५	१५७	पतित संसर्ग का निषेध आदि .....	४२१ १९०
मासिक अन्नके खानेका प्रायश्चित्त .....	४१५	१५८	बालक मारने वाले आदिका- त्याग .....	४२१ १९१
ब्रह्मचारीके मधुमांस खानेमें विलाव आदिका उच्छिष्ट खानेमें .....	४१६	१५९	व्रात्य और वेद त्यागने वाले- का प्रायश्चित्त .....	४२१ १९२
अभोज्य अन्न उतारना चाहिये .....	४१६	१६०	निन्दित जोड़े हुए धनका त्याग .....	४२१ १९४
सजातीयके धान्य आदि चु- रानेमें .....	४१६	१६३	असत् प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त .....	४२२ १९५
मनुष्यादिकोंके हरनेका प्रायश्चित्त .....	४१६	१६४	प्रायश्चित्त किये हुएसे- साम्य पूछे .....	४२२ १९६
रांगासीसा आदिके चुरानेमें .....	४१७	१६५	गौओंके लिये घास देना- और वहां संसर्ग .....	४२२ १९७
भक्षयानशय्या आदिकरहनेमें .....	४१७	१६६	व्रात्यका याजन और पतित- की क्रिया कृत्य आदिमें .....	४२२ १९८
सूखे अन्नगुड आदिके लेनेमें मणि मोति चांदि आदिके लेनेमें .....	४१७	१६७	वेदके शरणागतके त्यागमें .....	४२२ १९९
रुईकेवने वस्त्र चुरानेमें .....	४१७	१६९	कुंता आदिके काटनेका प्रायश्चित्त .....	४२२ २००
अग्न्यागमनका प्रायश्चित्त .....	४१७	१७०	अपंक्तिका प्रायश्चित्त .....	४२२ २०१
घोड़ी तथा रजस्वला आदिके गमनमें .....	४१८	१७४	ऊट आदि यानका प्रायश्चित्त .....	४२३ २०२
दिनमें भैथुन आदि करनमें .....	४१८	१७५	जलमें वा विनाजलके मूत्र- त्यागमें प्रायश्चित्त .....	४२३ २०३
चांडाली आदिके गमनमें .....	४१८	१७६	वेदमें कहे हुए कर्मके त्यागमें .....	४२३ २०४
व्यभिचारसे स्त्रियोंका प्रायश्चित्त .....	४१९	१७७	ब्राह्मणसेतु करके बोलेनेमें .....	४२३ २०५
चांडालीके गमनमें .....	४१९	१७९	ब्राह्मणके धमकानेमें .....	४२३ २०६
पतितोंके संसर्गका प्रायश्चित्त .....	४१९	१८२	नहीं कहे हुई प्रायश्चित्तके स्थलमें .....	४२४ २१०
पतितकी जीवनेही प्रेतक्रिया पतितके स्पर्श आदिकी .....	४२०	१८३	प्राजापत्य आदि व्रतका निर्णय .....	४२४ २१२
			व्रतके अंग कहतेहैं .....	४२७ २२३
			पाप न छपाना चाहिये .....	४२८ २२८
			पापके पके पड़तावे .....	४२८ २३१

प्रकरण	पृ.	प्रकरण	पृ.	श्लो.
पापावृत्तिकी निन्दा ....	४२९	२३३	‘पाप विशेषसे योनि विशेषकी—	
मनके संतोषपर्यंत तपकरै	४२९	२३४	‘उत्पत्ति .....	४४४ ९३
तपकी प्रशंसा ....	४२९	२३५	पापकी प्रकीर्णतासे नरक आदि	४४४ ९४
त्रेदके अभ्यासकी प्रशंसा ....	४३१	२४६	मोक्षके उपायषट्कर्म कहते हैं	४४८ ८३
रहस्यका प्रायश्चित्त ....	४३१	२४८	आत्मज्ञानकी प्रधानता ....	४४९ ८५
<b>अथ द्वादशोऽध्यायः ।</b>				
शुभअशुभ कर्मका फल ....	४३४	१	वेदोक्त कर्मकी श्रेष्ठता ....	४४९ ८६
कर्मका मन प्रवर्त्तक है ....	४३५	४	वैदिककर्म दो प्रकारका है	४४९ ८८
तीनि प्रकारके मानस कर्म	४३५	५	प्रवृत्ति निमित्त कर्मका फल	४४९ २०
चारी प्रकारके वाचिककर्म	४३५	६	सम दर्शन ....	४५० ९१
तीनिप्रकारके शारीरक कर्म	४३५	७	वेदके अभ्यास आदिमें ....	४५० ९२
मन वाङ्माय और कर्मके-			वेदबाह्य ऋत्तिकी निन्दा	४५० ९५
भोगमे ....	४३६	८	वेदकी प्रशंसा .....	४५१ ९७
त्रिदंडीका परिचय ....	४३६	१०	वेदका ज्ञाताको सेनापत्य—	
क्षेत्रज्ञका परिचय ....	४३६	१२	आदि ....	४५१ १००
जीवात्माका परिचय .....	४३७	१३	वेदके जाननेवालेकी—	
जीवोकी अनंतता ....	४३७	१५	प्रशंसा ....	४५१ १०१
परलोकमे पंचभूतोंका शरीर	४३७	१६	वेदके व्यवसायीकी श्रेष्ठता	४५२ १०३
भोगके अनंतर आर्त्तमामे—			तप और विद्यासे मीक्ष ....	४५२ १०४
लीनहो जाता है ....	४३७	१७	प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे—	
धर्मअधर्मकी अधिकतासे भोग	४३८	२०	प्रमाण ....	४५२ १०५
तीनिप्रकारके गुणोंका कहना	४३९	२४	धर्मका लक्षण .....	४५२ १०८
आधिक गुण प्रधान देह है ....	४३९	२५	विना कहे हुए धर्मके स्थलमें	४५२ १०९
सत्व आदिके लक्षण कहते हैं	४३९	२६	शिष्ट कहते हैं .....	४५३ १००
सात्त्विक गुणके लक्षण ....	४४०	३१	परिषत् कहिये सभा .....	४५३ ११६
राजस गुणके लक्षण .....	४४०	३२	मूर्खोंकी परिषत् नहीं होती	४५३ ११४
तामस गुणके लक्षण ....	४४०	३३	आत्मज्ञान पृथक् कहते हैं	४५४ ११८
संक्षेपसे तामस आदिके-			वायु आकाश आदिका लय—	
लक्षण ....	४४१	३५	कहते हैं .....	४५५ १२०
तीनीगुणोंकी तीनि प्रकारकी—			आत्माका स्वरूप कहते हैं	४५५ १२२
गति है .....	४४१	४०	आत्माका दर्शन अवश्य—	
तीनि प्रकारकी गतिके प्रकार	४४२	४१	करना चाहिये .....	४५६ १२५
पाँपसे कुत्सित गति होती है	४४३	५२	इस संहिताके पाठका फल	४५६ १२६
			इतिमनुस्मृत्यनुक्रमणिकासमाप्ता.	

श्रीः

# मानवधर्मशास्त्रं

## भाष्याविंशतिसमेतम्

अध्यायः १ मः ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीनारायणपादपद्मयुगलन्ध्यात्वापितुःपत्कंजंस्मृत्वाश्रीमनुनाप्रणी-  
तमधुनाव्याख्यायतेभाषया ॥ लोकान्नाञ्चहितायकेशवइतिख्यातेन  
सम्यङ्मयातर्काव्यङ्गनिशाकरैःपरिमितेश्रीवैक्रमेवत्सरे ॥ १ ॥ य-  
त्किञ्चित्स्खलितंभवेदिहधियस्तत्क्षम्यतांसंजनाएषावैममचार्थनाऽ-  
त्रविदुषामग्रेचिरन्तिष्ठतु ॥ ग्रन्थोयम्मनुभाषितोऽतिकठिनस्सर्वैरपि  
ज्ञायतेतस्मात्साहसंमद्यमेऽतिविपुलञ्जानन्तुसर्वेषुधाः ॥ २ ॥ अ-  
थातःपरंभाषाव्याख्यासहितामानवीयास्मृतिर्लिख्यते—

॥ श्रीगणपतये नमः ॥

मनुमेकाग्रमासीनमभिर्गम्य महर्षयः ॥

प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वर्चनमर्जुवंन् ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमोभगवते धर्ममूर्तये । गौडे नन्दनवासिनाम्नि सुजनैर्वन्द्ये वर-  
ेन्द्र्यां कुले श्रीमद्भद्रदिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत् । काश्यामूत्तरवाहिजन्हुतनयातीरै-  
समं पण्डितैस्तेनेयं क्लियते हिताय विदुषां मन्त्रथमुक्तावली ॥ १ ॥ सर्वज्ञस्य भूभोरसर्वविद-  
पि व्याख्यामि यद्वाङ्मयं युक्त्या तद्बहुभिर्यतो मुनिवैरैरेतद्बहु व्याहृतम् । तां व्याख्यामर्जु-  
नातनैरपि कृतां न्याय्यां ब्रुवाणस्य मे भक्त्या मानववाङ्मये अवोभेदे भूयांदेशेष्वश्वरः ॥ २ ॥  
मीमांसे बहु सेक्तासि सुबुद्धस्तर्काः समस्ताः स्थ मे वेदान्ताः परमात्मबोधगुरवो यूयं प्रयो-  
पासिताः । जाताः व्याकरणानि बालसखिता युष्माभिरभ्यर्थये प्राप्नोऽयं समयो मनुक्तावित्तै-  
साहाय्यमालम्ब्यताम् ॥ ३ ॥ देवादिदोषरहितस्य सतां हिताय मन्वर्थतत्त्वंकथनाय म-

मोद्यतस्य । दैवाद्यादि क्वचिदिह स्वलनं तथापि न्निस्तारुको भवतु मे जगदन्तरात्मा ॥ ४ ॥ मानववृत्तावस्यां ज्ञेया व्याख्या नवा मयोद्भिन्ना ॥ प्राचीना अपि रुचिरा व्याख्यातृणामशेषाणाम् ॥ ९ ॥ मनुमेकाग्रमासीनमित्यादि । अत्र महर्षीणां धर्मविषयप्रश्ने मनीः श्रूयतामित्युत्तरदानपर्यन्तश्लोकचतुष्टयेनैतस्य शास्त्रस्य प्रेक्षावित्प्रवृत्त्युपयुक्तानि विषयसंबन्धप्रयोजनान्युक्तानि । तत्र धर्म एव विषयस्तेन सह वचनसंदर्भरूपस्य मानवशास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः संबन्धः । प्रमाणान्तरासीनिकृष्टस्य स्वर्गापवर्गादिसाधनस्य धर्मस्य शास्त्रैकशाम्यत्वात् । प्रयोजनं तु स्वर्गापवर्गादि तस्य धर्माधीनत्वात् । यद्यपि पत्न्युपगमनादिरूपः कालोऽप्यत्राभिहितस्तथापि ऋतुकर्त्वाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदेति ऋतुकाखादिस्मित्यमेन सोऽपि धर्म एव । एवं चार्थांजनमपि ऋतानृताभ्यां जीवितेत्यादिनियमेन धर्म एवेत्यवगन्तव्यम् । मोक्षोपायत्वेनाभिहितस्यात्मज्ञानस्यापि धर्मत्वाद्धर्मविषयत्वं मोक्षोपदेशकत्वं चास्य शास्त्रस्योपपन्नम् । पौरुषेयत्वेऽपि मनुवाक्यानामकिगीतमहाजनपरिग्रहच्छ्रुत्युपग्रहश्च वेदमूलकतया प्रामाण्यम् । तथा च छांदोग्यब्राह्मणे श्रूयते । मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्रेषजं भेषजताया इति । बृहस्पतिरप्याह । वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते । तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च । धर्मार्थमोक्षोपदेशा मनुयावन्न दृश्यते ॥ महाभारतेऽप्युक्तम् पुराणं मानवोधर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः । विरोधिन्नैव्वादितर्केन हन्तव्यानि । अनुकूलस्तु मीमांसादितर्कः प्रवर्त्तनीय एव । अत एव वक्ष्यति । आर्षे धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । न्यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मो वेद नेतर इति । सकलवेदार्थादिमनुनामनुं महर्षय इदं द्वितीयश्लोकवाक्यरूपं उच्यते अनेनेति वचनमब्रुवन् । श्लोकस्यादौ मनुनिर्देशो मङ्गलार्थः । परमात्मन एव संसारस्थितये सार्वज्ञैश्वर्यादिसंपन्नमनुरूपेण प्रादुर्भूतत्वात्तदाभिधानस्य मङ्गलातिशयत्वात् । दक्ष्यति हि । एनमेके वदन्त्यामि मनुमन्ये प्रजापतिमिति । एकाग्रं विषयान्तराव्याक्षिप्तचित्तम् । आसीनं सुखोपाविष्टम् । ईदृशस्यैव महर्षिप्रश्नोत्तरदानयोग्यत्वात् । अभियम्य अभिमुखं गत्वा । महर्षयो महान्तश्च ते ऋषयश्चेति । तथा प्रतिपूज्य पूजयित्वा । यद्वा मनुना पूर्वं स्वांगतासनदानादिना पूजितास्तस्य पूजां कृत्वेति प्रतिशब्दादुद्गीयते । यधान्यायं येन न्यायेन विधानेन प्रश्नः कर्तुं युज्यते प्रणतिभक्तिश्रद्धातिशयादिना । वक्ष्यति च । नापृष्टः कस्यचिद्भूयान्न चान्यायेन पृच्छत, इति । अभिगम्य प्रतिपूज्य अब्रुवन्निति क्रियात्रयेऽपि मनुमित्येवं कर्म । अब्रुवन्नित्यत्रार्थकार्यतकर्मता । ब्रूधातोद्विकर्मकत्वात् ॥ १ ॥

टीका—एकाग्रचित्तसुखसे बैठे हुए मनुजीके सम्मुख जाके यथायोग्य उनका स्तुतकार करि महर्षि न्याय पूर्वक अर्थात् प्रणतिभक्ति और श्रद्धाकी अधिकता आदिसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

• भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्व्वशः ॥

• अन्तरप्रभवानां च धर्मान्निवक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

टीका—हे भगवन् अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्य्य करि सम्पन्न सब वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंका और अन्तर प्रभव जो संकीर्ण जाति अर्थात् अनुलोमज प्रतिलोमज अंबष्ठ क्षत्रकण आदि जो अन्यजातिके स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पन्नहैं उन सबोंके धर्म यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्यहै सो क्रमसे अर्थात् पहले जातकर्म फिर नामकरण इत्यादिक रीतिसे हमसे कहनेको योग्यहों ॥ २ ॥

• त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥

• अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

टीका—जिसे हे प्रभु तुम्ही एक अचिन्त्यकहिये जो चिन्तनमें न आसकै और जिसका प्रमाण न होसकै ऐसे इस स्वयम्भू अर्थात् आपसे उत्पन्न हुए वेदमें लिखे हुए ज्योतिषोम आदियज्ञ और ब्रह्मज्ञानके जाननेवाले हौ ॥ ३ ॥

• स तैः पृष्टस्तथासम्यंगमितौजामहात्मभिः ॥

• प्रत्युवाचार्च्यर्तान्सर्वान्महर्षीञ्छूर्यतामिति ॥ ४ ॥

टीका—उन महात्माओं करिके उक्तप्रकारसे अर्थात् प्रणय भक्ति और श्रद्धा की अधिकता आदिसे पूछे गये वे सामर्थ्यवाले मनुजी उन सब महर्षियोंका सत्कार करिके यह बोले कि सुनिये ॥ ४ ॥

• आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥

• अप्रतर्क्यमविज्ञेयम्प्रसृतमिदं सर्वतः ॥ ५ ॥

टीका—यह जगत् अंधकार अर्थात् प्रकृतिमें लीन और अप्रज्ञात अर्थात् जो जाना न जाय और अलक्षण अर्थात् चिह्नरहित जिसका कुछभी चिन्ह न जाना जाय और जिसमें कुछ तर्क न होसकै इसीसे अविज्ञेय कहिये जो कुछभी जाना न जाय और सर्वत्र सोये हुएके समान होता भया ॥ ५ ॥

• ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥

• महाभूर्तादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोर्तुदः ॥ ६ ॥

टीका—अव्यक्त अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष नहीं ऐस्य स्वयम्भू परमात्मत्- इस महाभूत आदि आकाशादिकोंको प्रकाशित करता हुआ जिसका पराक्रम

काहिये सृष्टिसामर्थ्य नहीं रुकी और प्रकृतिका प्रेरणा करनेवाला प्रकट हुआ॥

योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः॥

सर्वभूतमयोऽर्चिन्त्यः स एव स्वयमुद्भूतः ॥ ७ ॥

टीका—सबलोक वेदपुराण इतिहासादिकोंमें प्रसिद्ध परमात्मा इन्द्रियोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् केवल प्रसन्न मन करिके ग्रहण करनेयोग्य और अव्यक्त करिके रहित सूक्ष्मरूप तथा नित्य रहनेवाला और सब भूतोंका आत्मा और प्रमाण करनेके योग्य नहीं है वही आप प्रकाशित हुआ अर्थात् महत्त्व आदि कार्यरूपसे प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

सांभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥

अपएवसंसर्जादौ तामु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

टीका—नानाप्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छा करते हुए उस परमात्माने जल उत्पन्न होंय ऐसे ध्यान करिके अपने शरीरसे आदिमें जलहीको उत्पन्न किया और इन जलोंमें अपना शक्तिरूप बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्धैमसहस्रांशुसमप्रभम् ॥

तस्मिन् जज्ञेस्वयम्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

टीका—वह बीज परमेश्वरकी इच्छासे सुवर्णकासा अंडा होगया जिसकी कान्ति सूर्यकीसी थी उस अंडेमें सब लोकोंका उत्पन्न करनेकाला ब्रह्मारूप वह परमात्मा आपही उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनुवः ॥

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

टीका—जल नरसे उत्पन्नहै इस कारण उनका नाम नार है वेही नार इस परमात्माके प्रथम आश्रय अर्थात् निवास स्थानहै तिससे इस परमात्माका नाम नारायण हुआ ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥

तदिसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

टीका—जो वह लोक वेद आदि सबमें प्रसिद्ध परमात्मा सब उत्पन्न होनेवालोंका कारण और अव्यक्त अर्थात् बाहरी इन्द्रियों करि नहीं ग्रहण करनेयो-

इय और उत्पत्ति विनाश रहित और सत् असत् का आत्मा भूत है उस कारक उत्पन्न किया हुआ वह पुरुष ब्रह्म इस नामसे कहा जाता है ॥ ११ ॥

तस्मिन्नप्रेडे स भगवोनुषित्वा परिवत्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्धिर्धा ॥ १२ ॥

टीका—उस पहले कहे हुए अंडेमें उस भगवानने एक वर्षतक वसिकै आपही अपने ध्यानसे उसके दो खंड किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्याश्च दिवम्भूमिर्धनिर्ममे ॥

मध्ये व्योमं दिशश्चाष्टावर्षा स्थानश्च शश्वर्तम् ॥ १३ ॥

टीका—उसने उस अंडेके दोनों खंडोंसे आकाश और पृथिवीको अर्थात् ऊपरके खंडसे स्वर्गलोक और नीचेके खंडसे भूलोक बनाया और दोनोंके बीचमें आकाश तथा आठों दिशा और स्थिरजलोंका स्थान समुद्र बनाया ॥ १३ ॥

उद्भवर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥

मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

टीका—अब महदादिकोंके क्रमहीसे जगत्की रचनाहै यह दिखानेके लिये उनकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माने परमात्मासे उसीरूपकारिकै सत् असत् रूप मनको उत्पन्न किया और मनसेमैं इस अभिमानकार्य करिकै युक्त कार्य करनेमें समर्थ अहंकार तत्त्वको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥

विषयाणाग्रहीतृणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

टीका—अविकाररूप प्रकृतिसहित परमात्माहीसे अहंकारसे प्रथम महत्त्वको उत्पन्न किया फिर आत्माको उसके पश्चात् संपूर्ण सत्त्व रज तम युक्त सृष्टिको जिसका वर्णन पिछले श्लोकोंमें हो चुकाहै और अगि होगा उत्पन्न किया फिर शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी ग्रहण करनेवाली श्रोत्र आदि पांच बुद्धीन्द्रियोंको और पायु आदि श्वाच कर्मेन्द्रियोंको और पांच शब्द तन्मात्रादिकोंको क्रमसे उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

तेषान्तर्वयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥

संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्म्ममे ॥ १६ ॥

टी०—उन पहले कहे हुए अहङ्कार और तन्मात्राओंके जो सूक्ष्म अवयवहैं



तिनको अपनी मात्राओंमें छ होके स्वविकारोंमें मिलाकर परमात्माने मनुष्य, तिर्यक, स्थावर आदि सब भूत बनाये उनमें तन्मात्राओंका विकार पंचमहाभूत और अहङ्कारका विकार इन्द्रियहैं, पृथ्वी आदि पंच महाभूतोंको शरीर रूपसे परिणामको प्राप्तहोनेपर तन्मात्रा और अहङ्कारको मिलिकै सबकार्यके समूहकी रचना होती है, इसीसे ये अमिर्तौजस अर्थात् अद्वंद काय्योंके बनानेसे अतिवीर्यसे शोभित हैं ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मोस्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥

तस्माच्छरीरमिर्त्याहुस्तस्य मूर्ति मनीषिणं ॥ १७ ॥

टीका—मूर्तिशरीरको कहते हैं उसके बनानेवाले अवयव सूक्ष्म तन्मात्रा अहङ्कार रूप ये छः प्रकृति सहित उस ब्रह्मके वक्ष्यमाण पृथिवी आदिभूत और पहले कही हुई श्रोत्र आदिइन्द्रियाँ कार्य्यभावसे आश्रितहैं क्योंकि तन्मात्राओंसे भूतोंकी और अहंकारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होनेसे उस ब्रह्मकी इन्द्रियादिक करिकै शोभित मूर्तिको लोग शरीर कहते हैं. क्योंकि पञ्चतन्मात्रा और अहंकार इन छःका जो आश्रय करै वह शरीरहै. इस व्युत्पत्तिसेभी वही भाव आया १७

तदांविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥

मनश्चार्वयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

टीका—फिर उस नाश रहित और सब भूतोंके करनेवाले ब्रह्मसे अपने अपने कार्य्योंके साथ आकाश आदि महाभूत और सूक्ष्म अवयवोंके साथ मन उत्पन्न हुआ आकाशका काम अवकाश देना, वायुका गति, तेजका पाक, जलका पिंढी करण, पृथ्वीका धारण और मनका शुभ अशुभकी इच्छाहै ॥ १८ ॥

तेषामिदं तु सत्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥

सूक्ष्मोभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवंत्यव्ययाद्वच्यम् ॥ १९ ॥

टीका—अपना कार्य्य करनेसे पराकामी उन महत् अहंकार और पंचतन्मात्रारूप सातकी सूक्ष्ममात्रा अर्थात् शरीर बनानेवाले अविनाशी भागोंसे विनाश होनेवाला जगत् उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवाप्नोति परःपरः ॥

योयौ यार्वत्प्रियश्चैषां ससं तावंद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥

टीका—इनमें जो आदि आकाश आदिहैं तिनके शब्द आदि गुणोंको वायु आदि अग्रेके तत्व प्राप्त होते हैं इनके मध्यमें जो जौनसाहै वह उसके दूसरे

आदि गुणों करि युक्त कहाहै जैसे अकारांशका गुण शब्दहै। वायुके शब्द स्पर्शहै। तेजके शब्द, स्पर्शी, रूपहै; आपके शब्द, स्पर्शी, रूप, रसहैं। और भूमिके शब्द, स्पर्शी, रूप, रस, गन्ध हैं ॥ २० ॥

सर्वेषां तु संनामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥

वेदशब्देभ्य एवांदौ पृथक्संस्थाश्च निर्म्ममे ॥ २१ ॥

टीका—हिरण्यगर्भ रूपसे स्थित उस परमात्माने भुवोंके नाम जैसे गौकी जातिका गौ और घोडेकी जातिका घोडा और कर्म जैसे ब्राह्मणके पढना आदि क्षत्रियके प्रजा रक्षा आदि और लौकिकी व्यवस्था जैसा कुम्हारका घडा बनाना और कोलीका कपडा बुनना आदि वेदके शब्दोंहीसे सृष्टिकी आदिमें भिन्न भिन्न बनाये ॥ २१ ॥

कर्मात्मनाश्च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनाम्प्रभुः ॥

साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैवं सनातनम् ॥ २२ ॥

टीका—उस ब्रह्माने देवताओंके गणको और इन्द्रादिक प्राणियोंको तथा कर्मस्वभावोंको अप्राणी पाषाणादिकोंको और साध्य जो देवता विशेषहैं तिनके समूहको ज्योतिष्टोम आदियज्ञोंको और सूक्ष्म साध्यनाम देवताविशेषके समूहको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्निवार्युरविभ्यस्तु त्रयम्ब्रह्म सनातनम् ॥

दुंदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥

टीका—सनातन ब्रह्मरूप अपनी बुद्धिमें स्थित ब्रह्माने ऋक्-यजु-सामनाम वेदोंको अग्नि; वायु और सूर्यसे यज्ञकी सिद्धिकेलिये गौके अयनमें स्थित दूधके समान निकाला ॥ २३ ॥

कालंकालविभक्तीश्चनक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥

सरितःसागरान् शैलान् समानि विषर्माणि च ॥ २४ ॥

टीका—फिर काल और कालविभागों अर्थात् मास ऋतु अयन ( जैसे उत्तरायण दक्षिणायन) वर्षादिकोंको कृत्तिका आदिनक्षत्रोंको सूर्यादिक ग्रहोंको और नदी समुद्र पर्वत तथा समान और ऊचे नीचे स्थानोंको बनाया ॥ २४ ॥

तपो वाचं रतिश्चैव कामश्च क्रोधमेव च ॥

सृष्टिं संसृज्यैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निर्माः प्रजाः ॥ २५ ॥

टीका—फिर इन प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छायुक्त उस ब्रह्माने तप अर्थात् प्रा-

जापत्य आदिको, वाणीको, रति अर्थात् चित्तके संतोषको, काम अर्थात् इच्छाको, और क्रोध अर्थात् चित्तके विकारको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥

**कर्मणाञ्चविवेकार्थं धर्म्मोधर्म्मौ व्यवेचयत् ॥**

**द्वन्द्वैरयोर्जयञ्चेमांसुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥**

टीका—धर्म यज्ञ आदि जो करने योग्य और अधर्म-ब्रह्महत्या आदि जो न करने योग्य इस प्रकार कर्मोंके विभाग करनेके लिये धर्म अधर्मको जुदा जुदा किया अर्थात् धर्मका फल सुख और अधर्मका फल दुःख यह विवेचनाकी और आपसमें विरोध रखनेवाले सुख दुःखके जोड़ोंसे इन प्रजाओंको युक्त किया अर्थात् उनके पीछे सुखदुःख लगा दिये, और आदिशब्दसे यह भाव है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा पिपासा, इनकेभी जोड़ोंको पीछे लगा दिया ॥ २६ ॥

**अण्व्योमात्राविनाशिन्यो दशाद्धानां तु याः स्मृतौ ॥**

**ताभिः सार्द्धमिदं सर्वसम्भवेत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥**

टीका—उन पंच महाभूतोंकी जो सूक्ष्म पंच तन्मात्रारूप विनाश होनेवाली पंचमहाभूत रूपहैं तिनके साथ सब जगत् क्रमसे अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे अतिस्थूल उत्पन्न होताहै इन्से सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी मानसी सृष्टि जानी गई ॥ २७ ॥

**यन्तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमंप्रभुः ॥**

**स तदेव स्वयम्भवे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥**

टीका—उस प्रजापतिने जिस जातिविशेष अर्थात् व्याघ्र आदिको सृष्टिके आरम्भमें हरिणोंके मारने आदि जिसकाममें लगाया वार वार उत्पन्न होकर उस जातिविशेषका जीव वही कर्म झापही करने लुगा ॥ २८ ॥

**हिंसाहिंस्रं मृदुकूरे धर्म्मोधर्म्मावृत्तानृते ॥**

**यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥**

टीका—ब्रह्माने जिस जीवका जो कर्म जैसे हिंसाका कर्म सिंह आदिकां हाथियोंका मारना. अहिंस्र जैसे ब्राह्मणादिकोंका हरिणादिकोंपर दया करना मृदू जैसे क्षत्रियादिकोंका कर्म, धर्म जैसे ब्रह्मचारी आदिकां गुरुकी सेवा करना, अधर्म जैसे ब्रह्मचारीको मांस मैथुन सेवा आदि और ऋत अर्थात् सत्य

सो बहुधा देवताओंको और अनृत अर्थात् झूठ सोभी बहुत करके मनुष्योंको ऐसे जो कर्म जिसको नियत किये वह आपही उनको करने लगा ॥ २९ ॥

यथर्तुलिङ्गाभ्युत्पत्तवः स्वयमेवर्तुपर्यये ॥

स्वानिस्वान्यभिर्पद्यन्ते तथा कर्माणि देहिर्नः ॥३०॥

टीका—जैसे वसंत आदि ऋतु अपने २ समयमें अपने २ चिन्ह आमके बौर आदिको प्राप्त होते हैं ऐसेही देहधारीभी हिंसा आदि अपने २ कर्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् ॥ ३१ ॥

टीका—फिरि उस परमेश्वरसे भूलोक आदिकी वृद्धिके लिये मुख बाहु ऊरु तथा पावोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंको क्रमसे बनाया ॥३१॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥

अर्द्धेन नारी तस्यां सं विराजमसृजत्प्रभुः ॥३२॥

टीका—उस ब्रह्माने अपने देहके दोखंड करके आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे स्त्री उसमे मैथुन धर्मसे विराट्नाम पुरुषको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥

तपस्तपत्वाऽसृजदन्तुं सं स्वयं पुरुषो विराट् ॥

तं मां वित्तास्यं सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥३३॥

टीका—मनु कहतेहैं कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो उस विराट्पुरुषने तप करिके जिसको आप उत्पन्न किया उसको इस सब जगतकी सृष्टि करनेवाले मुझ मनुको जानो ३३

अहं प्रजाः सिमृक्षुस्तु तपस्तपत्वां सुदुश्चरम् ॥

पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दर्श ॥ ३४ ॥

टीका—मैंने प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे अति कठिन तप करके पहले दश प्रजापति महर्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं क्रतुम् ॥

प्राचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेवञ्च ॥ ३५ ॥

टीका—उनके नाम ये हैं मरीचि १ अत्रि २ अङ्गिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ अचेता ७ वसिष्ठ ८ भृगु ९ नारद १० ॥ ३५ ॥

एते मनुस्तु सप्तान्यामसृजन् भूरितेजसः ॥

देवान् देवनिर्काय्यांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥

टीका—इन मरीचि आदि बड़े तेजवालोंमें और बड़े तेजवाले सात मनुओं को तथा देवताओंको और देवताओंके निवासके स्थान स्वर्ग आदिकोंको तथा महर्षियोंको उत्पन्न किया यह मनुशब्द अधिकारका वाची है चौदह मन्वंतरोंमें जब जिसका सृष्टिकरनेका अधिकार होता है तब वही उस मन्वंतरमें स्वायम्भुव स्वारोचिष आदिनामोंसे मनु कहा जाता है ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षःपिशाचैश्चैर्गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् ॥

नागान्सर्पान्सुपर्णाश्चपितृणाञ्चपृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

टीका—इन्होंने यक्ष अर्थात् कुबेर और उनके अनुचरोंको तथा राक्षसों अर्थात् रावण आदिकोंको और उनसे नीचे अशुद्ध मरु देशके रहनेवाले पिशाचोंको चित्ररथ आदि गंधर्वोंको, उर्वशी आदि अप्सराओंको विरोचन आदि असुरोंको, वासुकी आदि नागोंके, अलगर्ह आदि सर्पोंको, गरुड आदि सुपर्णोंको, और आज्यपा आदि पितरोंके समूहको उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥

विद्युत्सोऽज्ञनिमेघाँश्च रोहितेन्द्रधनुषि च ॥

उल्कानिर्घातकेतूँश्च ज्योतीँष्युच्चावचानिर्च ॥ ३८ ॥

टीका—फिर इन्होंने विजली अर्थात् मेघमें चमकनेवाली ज्योतिको, वज्र अर्थात् वृक्षादिकोंकी त्रास करनेवाली ज्योतिको, मेघोंको, रोहित नाम सीधे इन्द्र धनुषको, उसीप्रकारके टेढ़े धनुषाकार इन्द्र धनुषको—उल्का अर्थात् रेखाके आकार आकाशसे गिरती हुई ज्योतिको—निर्घात कहिये पृथ्वी आकाशमें स्थित उत्पात शब्दको—केतु कहिये उत्पातरूप पृथ्वीवाले तारोंको तथा औरभी ध्रुव अगस्त्य आदि नाना प्रकारकी छोटी बड़ी ज्योतियोंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विधिंश्चैविहंगमान् ॥

पशून्सृगान्मनुष्याँश्च व्यालान्श्चोभयतोदृतः ॥ ३९ ॥

टीका—घुडमुँहे किन्नरोंको वानरोंको मछलीयोंको और नानाप्रकारके पक्षियोंको गौ आदि पशुओंको हरिण आदि मुर्गेको व्याल अर्थात् सिंहादिकोंको और ऊपर नीचे दोनों ओरके दांतवाले घोडा आदिको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतंगाँश्चैकामक्षिकमत्कुणम् ॥

सर्व्वे च दृशमशकं स्थावरंचपृथग्विधम् ॥ ४० ॥

टीका—कृमि छोटेकीड़ोंको और कीट अर्थात् कृमिसे कुछ मोटेकीड़ोंको

पतंगोंको और जूँ मक्खी तथा खट्टमलोंको और सब डांस मच्छडोंको और नानाप्रकारके स्थावर अर्थात् वृक्षलताआदिकोंको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्त्रियोगान्मर्हान्मभिः ॥

यथाकर्मतपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

टीका—ऐसे इन मरीचि आदि दशमहर्षियोंने मेरी आज्ञा लेकर बड़ा तप करिकै कर्मयोगसे अर्थात् जिसका जैसा कर्महै उसके अनुरूप देव मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥

येषान्तु यादृशं कर्म भूतानामिहं कीर्तितम् ॥

तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगश्च जन्मनि ॥ ४२ ॥

टीका—इन जीवोंमें जिसका जो कर्म इस संसारमें पहले आचार्योंने कहा है जैसे औषधी फलपाकांत है और बहुत फल फूलोंकी देनेवाली हैं और ब्राह्मणादिकोंका पढणा आदि सो सब वैसाही और जन्मआदिके क्रमयोगको तुमसे कहूंगा ॥ ४२ ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालश्चोभयतोदतः ॥

रक्षांसिचपिशांचश्चमनुष्याश्चजरायुजाः ॥ ४३ ॥

टीका—पशु, मृग, व्याल, दोनों ओर के दांतवाले, राक्षस, पिशांच, और मनुष्य, ये सब जरायुज हैं अर्थात् झिल्लीमें उत्पन्न होतेहैं फिर उस्से छूटते हैं ॥ ४३ ॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ॥

यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

टीका—पक्षी, साँप, मगर मछली और इस प्रकारके जीव जो स्थलमें उत्पन्न होते हैं जैसे गिरगट आदि और जो जलमें उत्पन्न शंख आदि हैं वे सब अंडज हैं अर्थात् पहले अंडा उत्पन्न होता है फिर उस अंडेमेंसे वे जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥

टीका—डांस मच्छड जूँ मक्खी खट्टमल ये सब स्वेदजहैं और जो ऐसेही भुनगें चेंटी आदि हैं वे सब ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

उद्भिजास्स्थोवरास्सर्वेबीजकाण्डैप्ररोहिणः ॥

ओषधयः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

टीका—बीजके बोने और ढालियोंके लगानेसे उगनेवाले सब उद्भिज्ज हैं अर्थात् बीज और भूमिको फोड़कर ऊपरको निकलते हैं और फलोंके पकनेपर जिनका नाश होजाता है अर्थात् सूखजाती है वे धान आदि सब ओषधी हैं वे बहूतसे फूलफलों करि युक्त होती है ॥ ४६ ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्मृताः ॥

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तु भयंतरस्मृताः ॥ ४७ ॥

टीका—जिनमें फूलके विना फल आता है वे वड, पीपल, पाकरि आदि वनस्पति कहाते हैं और जिनमें फूल फल दोनो होते हैं वे दोऊ वृक्ष कहे गये हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुल्मन्तु विविधन्तथैव तृणजातयः ॥

बीजकाण्डरूहाण्येव प्रताना वक्ष्य एवं च ॥ ४८ ॥

टीका—गुच्छ अर्थात् जिनमें जड़हीसे लताओंका समूह निकलता है शाखा नहीं होती है जैसे चमेली वेला आदि और गुल्म जैसे एक जड़से ऊगे हुए बहुते ईश सरपता आदिकों और तृण अर्थात् घास आदि और प्रतान जैसे तूवी आदि तथा वल्ली जैसे गिलोय आदि येभी सब बीजके बोने और डाली योंके लगानेसे उगनेवाले हैं ॥ ४८ ॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥

अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

टीका—ये वृक्ष आदि विचित्र दुःखहै फल जिसका और धर्मकर्म हैं कारण जिसके ऐसे तमोगुणसे विरेहुए हैं और सुख दुःखकरि युक्त ये सब अन्तस्संज्ञा अर्थात् भीतर ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गर्तयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ॥

घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे भित्त्यं सततयायिनि ॥ ५० ॥

टीका—प्राणियोंके जन्महोने और मरनेसे घोर अर्थात् दुःखदेनेवाले तथा सदा नाश होनेवाले इस जगतमें ब्रह्मसे लेकर स्थावरतक उत्पात्तियाँ कहीं ॥ ५० ॥

एवं सर्वसंभूदं माँ अचिन्त्यपराक्रमः ॥

आत्मन्यन्तर्द्वेषभूर्यः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

टीका—इस प्रकार सृष्टि कहिकै अब प्रलयकी दशा कहते हैं यह अचिन्त्य शक्ति प्रजापति ऐसे उक्त प्रकारसे इस स्थावर जंगमरूप जगतको तथा मुझको

उत्पन्न करके सृष्टिके कालको प्रलयके कालसे नाश करता हुआ आत्मामें अंतर्धान होगया ॥ ५१ ॥

यदा स देवो जागति तदैदं चैष्टते जगत् ॥

यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निर्मलति ॥ ५२ ॥

टीका— इसमें कारण कहते हैं जब वह प्रजापति जागता है अर्थात् सृष्टि और स्थितिकी इच्छा करता है तब यह जगत् श्वास और प्रश्वास और आहार आदिकी चेष्टाको प्राप्त होता है और जब सोता है अर्थात् इच्छा रहित होता है तब यह जगत् लीन हो जाता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपति तु स्वस्थे कर्मात्मानर्शरीरिणः ॥

स्वकर्मभ्यो निर्वर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

टीका—पहले कहेहुएहीको स्पष्ट करते हैं उस प्रजापतिके सोने अर्थात् इच्छारहित होनेपर तथा स्वस्थ कहिये मनका व्यापार समेट लेनेपर कर्मसे देह पानेवाले क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्राणी देहधारण करने आदि अपने कर्मों से निवृत्त होजाते हैं और सब इंद्रियों समेत मनभी आपंती वृत्तिसै रहित होजाताहै ॥ ५३ ॥

युगपत्सु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ॥

तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥ ५४ ॥

टीका—अब महाप्रलय कहते हैं एकही समयमें जब सब भूत उस परमात्मामें प्रलयको प्राप्त होते हैं तब यह सब भूतोंका आत्मा जाग्रत और स्वप्नके व्यापारसे रहित हो सुखसे सोता है अर्थात् सोयासा होता है यद्यपि नित्यं ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मामें सोना नहीं हो सकता तिसपरभी जीवके धर्मका उपचार करते हैं ॥ ५४ ॥

तमोयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः ॥

न च संकुरुते कर्म तदात्क्रामति मूर्तितः ॥ ५५ ॥

टीका—अब प्रलयके प्रसंगसे जीवके निकलनेकोभी दो श्लोकोंमें कहते हैं यह जीव तम अर्थात् ज्ञानकी निवृत्तिको प्राप्त होके बहुतकालतक इंद्रिय आदि कों करि सहित स्थित रहता है और जब श्वास प्रश्वास आदि अपने कर्मोंको है तब मूर्ति जो प्रथमदेह है तिसे निकलै जात

यदाऽणुमौत्रिको भूत्वा बीजं स्थास्तु चरिष्यु ची ॥



सर्माविशति संमृष्टंस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

टीका—दूसरी देहको कब धारण करताहै सो कहतेहैं जब जीव अणु मात्रिक अर्थात् भूत १ इंद्रिय २ मन्त्र ३ बुद्धि ४ वासना ५ कर्म ६ वायु ७ अविद्या ८ रूप इस पुर्यष्टक कारि युक्त हो स्थास्तु कहिये स्थिररूप वृक्ष आदिके कारणमें प्रवेश करताहै तब वृक्ष आदिरूप स्थावर शरीरको धारण करताहै और जब चरिण्यु कहिये मनुष्य आदिके जंगमरूप बीजमें प्रवेश करताहै तब मनुष्य आदिके शरीरको कर्मके अनुसार धारण करताहै ॥ ५६ ॥

एवं स जाग्रत्सर्वप्राभ्यामिदं सर्वश्रराञ्चरम् ॥

सञ्जीवयति चाजस्रम्प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

टीका—प्रसंगसे आये हुए जीवके उत्क्रमणकी कहिकै मुख्यका कथन करते हैं इसप्रकार सदा अविनाशी वह ब्रह्मा जाग्रत् तथा स्वप्नसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को जिवाता है और मारताहै ॥ ५७ ॥

इदं शास्त्रन्तु कृत्वाऽसौ मामेवं स्वयमादितः ॥

विधिवद्ब्राह्मणामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ ५८ ॥

टीका—पहले ब्रह्मने इस शास्त्रको बनाकै सृष्टिकी अग्निमें विधिपूर्वक मुझकोही पढाया और मैने मरीचिआदिमुनियोंको पढाया ( शांका ) जो कहौ कि ब्रह्माके कहेहुये इस शास्त्रको मनुका कैसे कहते हौ ( उत्तर ) यहाँ मेधातिथि कहतेहैं कि शास्त्र शब्दसे शास्त्रका अर्थ विधिनिषेधसमूह कहा जाताहै उसको ब्रह्मने मनुको पढाया मनुने उसका प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ बनाया इस्से मनुका शास्त्र कहाया ॥ ५८ ॥

एतद्रोयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥

एतद्धि मन्ते ऽधिजगे सर्वमेषो ऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

टीका—मनु कहतेहैं कि इन्होंने मुझसे यह सब पढाहै इस कारण ये भृगुमुनि इस शास्त्रको तुझसे संपूर्ण सुनावेंगे ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः ॥

तान्ब्रवीद्विषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रुमतामि ति ॥ ६० ॥

टीका—तिस पीछे मनु कारिकै ऐसे कहेगये भृगु महर्षि प्रसन्न होकै सब ऋषियोंसे यह बोले कि सुनिये ॥ ६० ॥

स्वायम्भुवस्यास्यमनोःषड्विंश्यामनवोऽपरे ॥

मृष्ट्वन्तः प्रजाः सर्वाः स्वा महात्मनो महौजसः ॥ ६१ ॥

टीका—ब्रह्माके पौत्र इन्द्रं स्वायम्भुव मनुके वंशमें छः और महात्मा बडे परा-  
क्रमी मनु हुए उन्होंनेभी अपने २ सृष्टिपालन आदिके समयमे अपनी २ प्रजा  
उत्पन्न कीं ॥ ६१ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्चतामसोरैवतस्तथा ॥

चाक्षुषश्चमहातेजाविवस्वत्सुतृणवच ॥ ६२ ॥

टीका—स्वारोचिष १ औत्तमि २ तामस ३ रैवत ४ चाक्षुष ५ और बडे तेज-  
स्वी वैवस्वत ६ ये छः मनुनामसे कहे गये ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवाद्यास्सप्तैतेमनवोभूस्तिजसः ॥

स्वेस्वेन्तरेसर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चरार्चरम् ॥ ६३ ॥

टीका—स्वायम्भुव आदि इन सातमनुओंने अपने २ अधिकारमें इस स्थावर  
जंगम जगत्को उत्पन्न करके पालन किया ॥ ६३ ॥

निमेषो दशचोष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताःकलाः ॥

त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तुतावर्तः ॥ ६४ ॥

टीका—अब कहेहुये मन्वन्तरके सृष्टिप्रलय आदिके कालका प्रमाण जानने-  
के लिये कालका क्रम कहते हैं आपसे आंखोंके खुलने मुंदनेको निमेष अर्थात्  
पलक कहतेहैं. उन अठारह पलकोंका एक काष्ठा नाम कालको प्रमाण हुआ.  
उन तीस काष्ठाओंकी एक कला होतीहै. तीस कलाका एक मुहूर्त होताहै. और  
तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र अर्थात् दिनरातिका समय होताहै ॥ ६४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥

रात्रिः स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ६५ ॥

टीका—मनुष्यों और देवताओंके दिन रात्रिका विभाग सूर्य करतेहैं उनमें  
रात्रि प्राणियोंके सोनेके लिये और दिन काम करनेके लियेहै ॥ ६५ ॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥

कर्मचेष्टास्वर्हः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥

टीका—मनुष्योंके एक महिनेका पितरोंका रात्रिदिन होताहै उसके दोनों प  
क्षोंमें काम करनेके लिये कृष्णपक्ष दिनहै और सोनेके लिये शुक्लपक्ष रात्रिहै ॥ ६६ ॥

दैवे राज्यहनी वर्षे प्रविर्भागस्तयोः पुनः॥

अहस्तत्रोदगर्जनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

टीका- मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका रातदिन होता है उसकाभी यह वि-  
भागहै कि मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन है उसमें बहुधा देवकर्म क-  
रना चाहिये और दक्षिणायन देवताओंकी रातहै ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥

एकैकंशो युर्गान्तुं क्रमशस्तत्रिवोधते ॥ ६८ ॥

टीका—ब्रह्माके रातदिनका जो प्रमाण है वह प्रत्येक सत्ययुगादिकोंके क्र-  
मसे है उसको संक्षेपसे सुनो ॥ ६८ ॥

चत्वार्यार्षुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥

टीका—मनु आदि चार हजार वर्षका सत्ययुगका प्रमाण कहते हैं उसके उ-  
तनेही वर्षोंके सैकड़ें, संध्या और संध्यांश होताहै. युगका पहला भाग सन्ध्या  
और दूसरा संध्यांश होताहै ॥ ६९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥

एकार्पायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

टीका—त्रेता द्वापर कलियुग इन तीनों युगोंका संध्या और संध्यांश सहि-  
तोंका प्रमाण क्रमसे एक सहस्र और एक शतके घटानेसे होताहै अर्थात् तीन  
हजार ( ३००० ) वर्षका त्रेतायुग और तीनसौ ( ३०० ) वर्ष संध्या और तीन  
सौ ( ३०० ) वर्ष संध्यांश और दोहजार ( २००० ) वर्ष द्वापरयुग दोसौ ( २०० ) वर्ष  
संध्या और दोसौ ( २०० ) वर्ष संध्यांश और एक हजार ( १००० ) वर्षका  
कलियुग सौ ( १०० ) वर्ष संध्या और सौ ( १०० ) वर्ष संध्यांश ॥ ७० ॥

तदेतत्परिसंख्यातमादावैवं चतुर्युगम् ॥

एतद्वादर्शसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

टीका— यह जो मनुष्योंका चारोंयुगका प्रमाण कहा इसीका बारह गुण  
देवताओंका एक युग होताहै ॥ ७१ ॥

दैविकानां युगानान्तु सहस्रपरिसंख्यया ॥

ब्राह्ममेकमहज्ञयन्तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥

टीका—देवताओंके एकहजार युगोंका ब्रह्माका एकदिन होताहै और उतनीही राति होतीहै ॥ ७२ ॥

तद्वै युगसहस्रान्तम्ब्राह्मणपुण्यमर्हविदुः ॥ रात्रिं च तावतीमेव ते<sup>१</sup>  
 ३होरात्रविदो जर्माः ॥ ७३ ॥ तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्र  
 तिबुद्धयते ॥ प्रतिबुद्धश्च मृजति मनस्सर्दसदात्मकम् ॥ ७४ ॥

टीका—जिसकी समाप्ति हजारयुगोंमें होती है ऐसा ब्रह्माका एक पवित्र दिन कहतेहैं और वे रातिदिनके जाननेवाले जन्म उतनीही रात्रि कहतेहैं ॥ ७३ ॥ सोया हुआ वह ब्रह्मा उस अपनी रातिके अंतमें जागताहै और जागकर सत् असत् रूप मनको उत्पन्न करताहै अर्थात् भूलोक आदि तीनों लोकोंकी सृष्टिमें मनको लगाताहै उत्पन्न नहीं करताहै ॥ ७४ ॥

मनस्मृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिमृक्षया ॥ आकाशं जायते तं  
 स्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥ आकाशात्तु विकुर्व्वाणात्सर्व्व  
 गन्धवहः शुचिः ॥ बलवान् जायते वायुस्सर्व्वै<sup>२</sup> स्पर्शगुणो मर्तः ॥ ७६ ॥

टीका—परमात्माकी सृष्टिकी इच्छा करि प्रेरणगया मन सृष्टिको करंताहै तौं उससे पहले आकाश उत्पन्न होता है जिसका गुण मनुआदिकोंने शब्द कहाहै ॥ ७५ ॥ विकारको प्राप्त हुये आकाशसे सब भौतिके गंधका वहनेवाला बलवान् पवित्र पवन उत्पन्न होताहै उसका गुण स्पर्श कहा गयाहै ॥ ७६ ॥

वायोरपि विकुर्व्वाणाद्गिरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योतिरुत्पद्यते भा  
 स्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥ ज्योतिषश्च विकुर्व्वाणादीपो रसगु  
 णाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषां सृष्टिरादितः ॥ ७८ ॥

टीका—विकारको प्राप्तहुये पवनसेभी दूसरेको प्रकाशित करनेवाला तथा अंधकारका विनाशक प्रकाशमान तेज उत्पन्न होताहै उसका गुण रूपहै ॥ ७७ ॥ विकारको प्राप्त हुये तेजसे रस जिनका गुण ऐसे जल उत्पन्न होतेहैं और जलसे गन्ध जिसका गुण ऐसी भूमि उत्पन्न होतीहै यह आदिसे सृष्टि कही ॥ ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्व  
 न्तरमिहोच्यते ॥ ७९ ॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव  
 च ॥ क्रीडन्नि वैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ ८० ॥

टीका—पहले कही हुई जो बारह हजार वर्षोंकी मनुष्योंकी संख्या तथा स-

ध्यांश सहित मनुष्योंकी चतुर्युगी है वह देवताओंका एक युग होताहै उसका इकहत्तरि गुणा करनेसे एक मन्वंतर होताहै इसमें एक मनुका सृष्टि आदि करनेका अधिकार होताहै ॥ ७९ ॥ असंख्य कहिये जिनकी संख्या नहीं ऐसे मन्वंतरोंको और सृष्टि तथा संहारको वह परमेशी खेलते हुये मानो वारंवार करताहै ॥ ८० ॥

चतुर्ष्पात्सकालो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥ नार्धर्मेणागमः कं  
श्चिन्मनुष्यान्प्रति वृत्तते ॥ ८१ ॥ इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्वैव  
रोपितः ॥ चौरिकानृतभायाभिर्धर्मश्चापि ति पादशः ॥ ८२ ॥

टीका—सत्ययुगमें सब धर्म चतुष्पात् कहिये सब अंगोंसे परिपूर्ण था और सत्यभीथा सब धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेसे सत्यका पृथक् ग्रहण किया और अधर्मसे अर्थात् शास्त्रको उल्लांघिके मनुष्योंमें किसीप्रकारका धनविद्या आदिका आना नहीं होताथा ॥ ८१ ॥ त्रेता आदि और युगोंमें अधर्मसे धनके जोडने तथा विद्याके पढने से धर्म अर्थात् यज्ञ आदि क्रमसे प्रत्येक युगमें चौथाई २ घटता जाताहै और धन तथा विद्यासे जो कुछ धर्म इकट्ठा किया जाताहै सौभी चोरी झूठ और छलसे हर एकयुगमें चौथाई २ कम होनेसे चला जाताहै अर्थात् नष्ट होजाताहै क्रम २ से कमहोनेका यह कारणहै कि चोरी झूठ छल ये तीनों त्रेता आदि तीनों युगोंमें क्रमसे एक २ बढ़ता जाताहै ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥ कृतेत्रेतादिषु ह्येषामायु  
र्हसति पादशः ॥ ८३ ॥ वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्म  
णाम् ॥ फलं त्वनुयुगं लोके प्रभावंश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

टीका—सत्ययुगमें रोगका कारण अधर्म न होनेसे रोगरहित और विघ्नरूप अधर्मके नहोनेसे सिद्धिहैं कामनाओंके फल जिनके ऐसे और चारसौवर्षकी है आयु जिनकी ऐसे और अधिक आयुके करनेवाले धर्मके कास्म्य अधिक अवस्थाकेभी होतेहैं इसे रामचन्द्रने दसहजार वर्ष रीज्य किया इस वाल्मीकिके लेखसेभी विरोध न हुआ और शतायुर्वैपुरुष इत्यादि श्रुतिमें शतशब्द बहुतसे सैकरोंका कहनेवालाहै अथवा कलियुगके मध्यं कहाहै और त्रेता आदियुगोंमें फिरचौथाई २ आयु कम होती जातीहै ॥ ८३ ॥ शतायुर्वै पुरुष इत्यादि वेदमें कहीहुई आयु और काम्यकर्मोंकी फल विषयक चाहना और ब्राह्मण आदिकोंका प्रभाव अर्थात् शाप देने तथा अनुग्रह करनेकी शक्ति ये सब युगके अनुसार फलके देनेवाले होतेहै ॥ ८४ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां, द्वापररेऽपरे ॥ अन्ये कलियुगे नृणां  
युगहासानुरूपतः ॥ ८५ ॥ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमु-  
च्यते ॥ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

टीका—सत्ययुगमें और धर्ममें फिरियुगोंके घटनेके अनुरूप त्रेता तथा द्वापर-  
में और ही हुए और कलियुगमें और ही हैं ॥ ८५ ॥ यद्यपि तप आदि सब  
शुभकर्म सबयुगमें करनेयोग्य हैं तिसपरभी सत्ययुगमें तप मुख्यथा अर्थात् बड़े  
फलका देनेवाला था ऐसेही त्रेतामें आत्माका झब और द्वापरमें यज्ञ और क-  
लियुगमें दान ही एक बड़ा फल देनेवालाहै ॥ ८६ ॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥ मुखर्वाहूरुपज्जा-  
नां पृथक्कर्मण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥ अर्घ्यापनमर्घ्ययनं यजेनं  
यार्जनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

टीका—उस बड़े तेजस्वी ब्रह्माने इस सब सृष्टिकी रक्षाके लिये मुख आदि-  
से उत्पन्न चारो वर्णोंके लिये जुदे २ कर्म बनाये ॥ ८७ ॥ पढाना पढना यज्ञ  
करना यज्ञ कराना दानदेना दानलेना ये छः कर्म ब्राह्मणोंके बनाये ॥ ८८ ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्ष-  
त्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव  
च ॥ वणिकर्पथं कुंसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ९० ॥

टीका—प्रजाओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ करना ३. वेद पढना  
४. विषय जो गाना नाचना आदिहैं तिनमें चित्तका न लगाना ५. ये संक्षेपसे—  
क्षत्रियोंके कर्म बनाये ॥ ८९ ॥ पशुओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ  
करना ३. वेद पढना ४. जलमें नाव वा जहाजोंसे और स्थलमें भारवरदाड़ी  
आदिसे व्यापार करना ५. व्याज लेना और खेती करना ६. ये वैश्यके कर्म  
नियत किये ॥ ९० ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥ एतेषामेवं वर्णानां  
शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥ ऊर्ध्वं नाभिमर्घ्यतरः पुरुषः परिकी-  
र्तितः ॥ तस्मान्मर्घ्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ९२ ॥

टीका—प्रभुने शूद्रको एकही काम बताया कि वह द्वेषरहित होकर इन ती-  
नोंही वर्णोंकी सेवा करे ॥ ९१ ॥ अब मुख्यतासे तथा मृष्टिकी रक्षाके निमित्त

होनेसे और उससे धर्मका आरंभ होनेसे तथा अस्त्रके पढनेसे ब्राह्मणकी प्रशंसा लिखते है ॥ पुरुषसे भी पवित्रहै परंतु नाभिसै ऊपर तौ बहुतही पवित्रहै उससेभी पवित्र ब्राह्मणका मुख कहा गयाहै ॥ ९२ ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैवं धारणात् ॥ सर्वस्यैवांस्यसंगस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥ तं हि स्वयंभूः स्वादास्यान्तर्पस्तस्वादिंतोऽमृजत् ॥ हव्यकव्यमभिवाहाय सर्वस्यांस्यं च गुप्तये ९४ ॥

टीका—उस्से क्या हुवा सो कहतेहैं ॥ उत्तम अंग जो मुखहै तिसमेंसे उत्पन्न होनेसे तथा क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न होनेसे और पढने तथा व्याख्यान आदिसे वेदका धारण करनेसे ब्राह्मण इस सब जगत्का वेदकी आज्ञासे स्वामी-है और संस्कार विशेषसेभी सब वर्णोंका प्रभुहै ॥ ९३ ॥ किसके उत्तम अंगसे यह उत्पन्न हुवा सो कहतेहै ॥ उस ब्राह्मणको ब्रह्मानें अपने मुखसे देव पित्र्य हव्य कव्यके पहुँचानेके लिये तप करिके जगतकी रक्षाके लिये क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न किया ॥ ९४ ॥

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवोकसः ॥ कव्यानि चैवं पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिर्जीविनः ॥ बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ९६ ॥

टीका—पहले कहे हुये हव्य कव्यके पहुँचानेको बोलतेहैं ॥ जिस ब्राह्मणके मुखसे श्राद्ध आदिमें सदा देवता हव्योंको और पितर कव्योंको भोजन करतेहैं उससे अधिक कौन प्राणी होगा ॥ ९५ ॥ स्थावर जंगम भूतोंमें प्राणी कहिये प्राणवाले कीड़े आदि श्रेष्ठ हैं उनमें भी बुद्धिसे जीनेवाले पशुआदि श्रेष्ठ हैं उनसेभी उत्तम ज्ञानके होनेसे मनुष्य श्रेष्ठहैं उनसेभी ब्राह्मण सबोंके पूज्य तथा मोक्षके अधिकार योग्य होनेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९६ ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥ उत्प्रतिरेव विप्रस्य मूर्तिधर्मस्य शाश्वती ॥ स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥

टीका—ब्राह्मणोंमें तौ बडे फलवाले ज्योतिष्ठोम आदिकर्मोंका अधिकारी होनेसे विद्वान् और उनसेभी कृतबुद्धी अर्थात् शास्त्रोक्त बातोंके करनेको जिनकी बुद्धि उपस्थितहै उनसेभी करनेवाले और उनसेभी ब्रह्मज्ञानी मोक्षका लाभ होनेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणदेहका जन्मही धर्मका अविनाशी शरीरहै

जिस्से धर्मकोलिये उत्पन्न वह धर्मसे प्राप्त हुए आत्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होताहै ९८  
 ब्राह्मणो जायमानो हि, पृथिव्यामधिजायते ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां  
 धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ९९ ॥ सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जग  
 तीगतम् ॥ श्रेष्ठेनाभिज्ञनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १०० ॥

टीका—जिस्से उत्पन्न हुआ ब्राह्मण. पृथिवीमें सबसे उपर होताहै अर्थात्  
 सबसे श्रेष्ठहै और सब जीवोके धर्म समूह की रक्षाके लिये समर्थहै ॥ ९९ ॥  
 जो कुछ जगतमें धनहै वह ब्राह्मणकाहै तिस्से ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होनेके  
 कारण और श्रेष्ठ होनेसे निश्चय ब्राह्मण सब लेनेके योग्यहै ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वर्स्ते स्वं ददाति च ॥ आनृशंस्याद्ब्राह्म  
 णस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥ १०१ ॥ तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणा  
 मनुपूर्वशः ॥ स्वार्थं भुवो मनुर्धीर्मानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

टीका—जो दूसरेका अब ब्राह्मण खाताहै तथा पहिरताहै और दूसरेका ले-  
 कर औरको देताहै वहभी ब्राह्मणका धनहै ऐसा होनेपर ब्राह्मणकी कृपासे  
 और लोग भोजन आदि करतेहैं ॥ १०१ ॥ ब्राह्मणके तथा क्षत्रिय आदिकोंके  
 कर्म जाननेके लिये ब्रह्माके प्रपौत्र बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने इस शास्त्रको  
 बनाया ॥ १०२ ॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्य  
 क् नान्येन केनचित् ॥ १०३ ॥ इदं शास्त्रमधीरानो ब्राह्मणः शंसि  
 तव्रतः ॥ मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥ १०४ ॥

टीका—विदुषा कहिये इस शास्त्रके पढनेका फलजाननेवाले ब्राह्मणको व्या-  
 ख्यान तथा पढाने आदि उचित यत्नोंसे अध्ययन करना और शिष्योंके लि-  
 ये भी इसका व्याख्यान करना योग्यहै, और अन्य क्षत्रिय आदिकोंको केवल  
 पढना चाहिये व्याख्यान करना तथा पढाना न चाहिये ॥ १०३ ॥ इस शास्त्र-  
 को पढता हुआ ब्राह्मण इसके अर्थको जानि व्रतको करिके मनु वाणी तथा  
 शरीरसे उत्पन्न हुए पापोंकरि लिप्त नहीं होताहै ॥ १०४ ॥

पुनाति पितृ वंश्याश्च सप्त सप्त परावैरान् ॥ पृथिवीमपि चै वै मां  
 कृत्स्नाभिकोऽपि सोऽर्हति ॥ १०५ ॥ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बु  
 ध्दि विवर्द्धनम् ॥ इदं यशस्यमार्युष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥ १०६ ॥



टीका—इस शास्त्रको पढताहुआ ब्राह्मण जो पंक्तिके योग्य नहीं ऐसे मनुष्य करि दूषित हुई पंक्ति अर्थात् क्रमसे बैठें हुए जनोंके समूहको और सात पहले अर्थात् पितामहादिकोंको और सात आगेके पौत्र आदिकोंको पवित्र करताहै और सब धर्मका ज्ञाता होनेके कारण पात्र होनेसे वह एकभी सब पृथ्वीको लेनेके योग्यहोताहै ॥ १०५ ॥ इस शास्त्रका पढना स्वस्त्ययन अर्थात् चाहे हुए अर्थका देनेवाला है और जप होम आदिका बोधक होनेसे श्रेष्ठ है अर्थात् स्वस्त्ययनसेभी अधिकहै और बुद्धिका बढानेवालाहै क्योंकि इसके अभ्याससे संपूर्ण विधिनिषेधका ज्ञान होताहै और यशका देनेवाला तथा आयुका बढानेवाला है और मोक्षके उपायका उपदेश करनेवालाहै ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्षणाम् ॥ चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैवं शाश्वतः ७ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ ८ ॥

टीका—इसमें संपूर्णतासे धर्म कहाहै और कर्मके गुण दोष अर्थात् भलाई बुराई कहीहै और चारो वर्णोंका परंपरासे आयाहुआ आचार कहाहै ॥ १०७ ॥ श्रुति तथा स्मृतिमें कहाहुआ आचार परमधर्म है तिस्से आत्मवान् कहिये अपने धर्मका चाहनेवाला ब्राह्मण सदा आचारयुक्त रहै ॥ १०८ ॥

आचारसद्धिच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥ आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभागभवेत् ॥ १०९ ॥ एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ॥ सर्वस्य तर्पसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ११० ॥

टीका—आचारसे रहित ब्राह्मण वेदके फलको नहीं प्राप्तहोताहै और आचारयुक्त संपूर्ण फलका पानेवाला होताहै ॥ १०९ ॥ एकहे हुए प्रकारसे आचारके द्वारा ऋषियोंने धर्मकी अप्रप्तिको जानकै संपूर्ण जे चांद्रायण आदि तपहैं उनके मूलरूप, आचारका ग्रहण किया ॥ ११० ॥

जगतश्च समुत्पत्ति संस्कारविधिमेव च ॥ व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम् ॥ १११ ॥ दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ॥ महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्च शाश्वतः ॥ ११२ ॥

टीका—जगतकी उत्पत्ति और संस्कार जो जातक कर्म आदि हैं तिनकी विधि और ब्रह्मचर्यके उपचार अर्थात् गुरु आदिकोंका नमस्कार और उपासना आदि और स्नान कहिये गुरुकुलसे निवृत्तहुएका एक प्रकार

का संस्कार -उस्की बहुत अच्छी विधि कहेंगे ॥ ११३ ॥ दाराधिगमन जो विवाह तिसकी विधि और ब्राह्म आदि विवाहोंके लक्षण तथा वैश्वदेव आदि पंचमहायज्ञोंका विधान और नित्यश्राद्धकी विधि कहेंगे ॥ ११२ ॥

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ॥ भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां सिद्धिमेव च ॥ ११३ ॥ स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ॥ रत्नं च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ ११४ ॥

टीका—वृत्तिकहिये ऋत आदि जीविकाके संपादकोंको और स्नातक जो गृहस्थहै तिसके व्रत कहिये नियमोंको और भक्ष्य दही आदि तथा अभक्ष्य लहसन आदि और जो मरण आदिमें ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दश दिन आदिकी शुद्धिको और जलआदिसे द्रव्योंकी सिद्धिको कहेंगे ॥ ११३ ॥ स्त्रियोंके धर्मयोग अर्थात् धर्मके उपायकों और तापस्य कहिये वानप्रस्थके लिये हित धर्मको संन्यासको और संपूर्ण राजाके धर्मोंको और और कार्योंके निर्णय अर्थात् द्रव्यके लेन देनहैं तिनके निर्णय कहिये विचारको कहेंगे ॥ ११४ ॥

साक्षिप्रश्रविधानं च धर्म स्त्रीपुंसयोरपि ॥ किंभागधर्मव्यूतं च कण्ठकानां च शोधनम् ॥ ११५ ॥ वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ॥ आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ ११६ ॥

टीका—साक्षियोंके प्रश्नका विधान और स्त्रीपुरुषोंके समीप होने तथा न होनेमें धर्म करना तथा विभाग धर्म अर्थात् हिस्सा बांट और जुआआदिकी विधि और कंटक जे चोर आदि हैं तिनका शोधना अर्थात् दूर करना इन सबोंको कहेंगे ॥ ११५ ॥ वैश्य शूद्रोंका उपचार अर्थात् अपने २ धर्मका करना और संकीर्ण अर्थात् और और जातिसे मिलिके जे उत्पन्नहै जे अनुलोमज प्रति-लोमज आदिहै तिनकी उत्पत्ति और सब वर्णोंके आपद्धर्म अर्थात् विपत्तिके समयमें जीविका करनेका उपदेश और प्रायश्चित्त इन सबवस्तुओंको कहेंगे ॥ ११६ ॥

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ॥ निःश्रेयसं कर्मणां च शुण्ढोषपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥ देवधर्मात्प्रतिधर्मान्कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ पाषण्डगणधर्माश्च शीघ्रोऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ ११८ ॥

टीका—संसार गमन अर्थात् शुभ अशुभ कर्मोंके कारण उत्तम मध्यम अधमके भेदसे तीनिप्रकारके दूसरे देहमें जानेको और निश्रेयस कहिये आत्मज्ञानको और कहे हुए तथा निषेध कियेहुए कर्मोंके गुण दोषोंकी परीक्षा

कहेंगे ॥११७॥देशोंके धर्मोंको और नियत किये हुए जाति तथा कुलके धर्मोंको और वेदसे बाहर आगममें कहे हुए निषिद्ध धर्मोंके करनको पाषंड कहते हैं उसके करनेवाले. पाषंडी मनुष्योंके धर्मको और गण अर्थात् समूह जे व-नियाड्यापारी आदिहैं तिनके धर्मोंको इस ग्रंथमें मनुने कहाहै ॥ ११८ ॥

यथेदमुक्तवाञ्छांस्त्रं पुंरा. पृष्टो मनुर्मया ॥ तथेदं यूयमप्यद्य. मत्स  
काशात्रि बोधत ॥ ११९ ॥

इति नानवेधर्मशास्त्रेभृगुप्रोक्तान्यासंहितायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

टीका—पहले मुझकरपूछे गये मनुने जैसे इस शास्त्रको कहाहै वैसेही आप-भी अब हमसे सुनिये ॥ ११९ ॥

इतिश्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुङ्कुमभट्टानुयायिन्यांमनूक्तभाषाविवृतौप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## अध्यायः २ यः ।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ॥ हृदयेनाभ्यनुज्ञातो  
यो धर्मस्तं निबोधत ॥ १ ॥ कामात्मता न प्रज्ञस्ता न चैवहो  
स्त्यकामता ॥ काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

टीका—प्रकृष्ट परमात्माके ज्ञानरूप धर्मके ज्ञानके लिये जगत्के कारण ब्रह्मका प्रतिपादन करिके अब ब्रह्मज्ञानका अंगभूत जो संस्कार आदि धर्म है तिसके प्र-तिपादनकी इच्छासे पहले धर्मका सामान्य लक्षण कहते है वेदके जाननेवाले रागद्वेष रहित धर्मात्माओंकरिके सदा सेवन किया गया और हृदयसे जाना जो धर्महै तिसको सुनिये ॥ १ ॥ कामात्मता कहिये फलकी इच्छासे वंदनको कारणरूप कर्मका करना अछा नहींहै जैसे स्वर्ग आदि फलकी चाहनासे किये हुए कामनायुक्त कर्म फिरि जन्मके लिये कारण होतेहै और नित्यनैमित्तिक कर्म-तौ आत्मज्ञानके सहकारी होनेसे मोक्षके देनेवाले होतेहै इस्से इच्छामात्र का निषेध नहीं किया क्यों कि वेदका पढना कामनायुक्त है और वैदिक कर्मयोगभी कामनायुक्तही है ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ॥ व्रतानि यर्मधर्माश्च  
सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥३॥ अकामस्य क्रिया कांचिद्दुश्यते नेह  
कांचित् ॥ यद्यद्वि कुरुते किंचित्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

टीका— संकल्प है मूल .जिसका ऐसा काम है अर्थात् इस कर्मसे यह इष्टफल सिद्ध किया जाता है ऐसी बुद्धिको संकल्प कहते हैं तिस पीछे इस साधनता करिके निश्चय किये हुए उसमें इच्छा उत्पन्न होतीहै तब उसके लिये जतनभी करता है इस भांति यज्ञभी संकल्पसे उत्पन्न है और व्रत नियम धर्म ये सब संकल्पसे उत्पन्न कहे गये है ॥ ३ ॥ यहाँई लौकिक नियम दिखाते हैं लोकमें भोजन गमन आदि कोई क्रिया विना इच्छाके कर्मनही दिखाई देतीहै तिससे सब लौकिककर्मोंको जो करताहै वह सब इच्छाका चेष्टित कहिये कामहै ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छैत्यमरलोकताम् ॥ यथा संकल्पितांश्च  
ह सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ५ ॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले  
च तद्दिदाम् ॥ आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

टीका—अब पहले कहे हुए फलकी इच्छाका निषेध करते हुए नियम करते हैं उनकर्मोंमें अच्छी भांति वर्तमान पुरुष अमरलोकता कहिये अमरधर्मा ब्रह्म भावको प्राप्त होताहै अर्थात् मुक्त होजाताहै ऐसा पुरुष सर्वेश्वर होनेसे इस लोकमें भी सब वांछित पदार्थोंको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ वेद कहिये ऋक् यजु सां म अथर्व ये सब धर्मका मूल कहिये प्रमाणहै स्मृति तथा हारीतका कहाहुआ ब्रह्मण्यता आदि तेरंह. प्रकारका शील ये सब वेदके जाननेवालोंको धर्ममें प्रमाणहै और आचार तथा साधुओंके मनका संतोषभी धर्ममें प्रमाणहै ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ॥ सर्वोऽभिहि तो  
वेद सर्वज्ञानमयो हि संः ॥ ७ ॥ सर्व तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानं च  
क्षुषा ॥ श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशत वै ॥ ८ ॥

टीका—वेदसे भिन्न औरोंके वेद मूल होनेसे प्रामाण्य कहनेपरभी मनुस्मृति की सबसे अधिकता दिखानेके लिये वेदमूलता कहतेहै जो कोई धर्म किसी ब्राह्मण आदिका मनुने कहाहै वह सब वेदमें प्रतिपादन किया गयाहै जिससे वे मनु सबके जाननेवाले है ॥ ७ ॥ वेदके अर्थ जाननेमें सहाय करनेवाले शास्त्र समूह अर्थात् मीमांसा व्याकरणआदि इस सबको ज्ञानरूपी आँखिसे देखि अर्थात् विचारिके विद्वान् अपने धर्ममें स्थित होय ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ॥ इह कीर्तितमवाप्नोति  
प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ९ ॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु  
वै स्मृतिः ॥ ते सर्वाथैष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ ॥ १० ॥

टीका—श्रुतिस्मृतिमें कहे हुए कर्मको करता हुआ मनुष्य इस लोकमें की-  
तै और पर लोकमें सबसे उत्तम सुखको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ श्रुति वेदको कहते  
है और मनु आदिधर्मशास्त्रको स्मृति कहतेहै ये दोनों प्रतिकूल तर्कोंसे नही  
विचार करनेयोग्यहै जिस्से सब धर्म उन्हीसे प्रकटगणित हुआहै ॥ १० ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विज्ञेः ॥ स सांधुभिर्बहिष्कृत्यो  
नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य  
च प्रियमात्मनः ॥ एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

टीका—जो ब्राह्मण धर्म मूल जो वे श्रुति स्मृति दोनो तिनका अपमान क-  
रताहै अर्थात् नही मानता है वह वेदका निंदाका हेतु कहिये कारणभूत जो  
शास्त्रहै तिसके आश्रयसे नास्तिकके समान है वह शिष्टों करिके ब्राह्मणोंके कर  
नेयोग्य अध्ययन आदि कर्मोंसे निकालने योग्यहै ॥ ११ ॥ वेद स्मृति सदाचार  
कहिये शिष्टोंका आचार और अपने आत्माका प्रिय कहिये अपना जिसमें  
सन्तोष होय यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥ धर्मज्ञानासमानानां  
प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥ श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ  
स्मृतौ ॥ उभावपि हि तौ धर्मो सम्यग्भूतो मनीषिभिः ॥ १४ ॥

टीका—अर्थ और कामके पानेकी इच्छा रहित मनुष्योंको यह धर्मका उपदे-  
श है और जो धर्मको जानना चाहते है उनके लिये श्रुति सबसे अधिक प्रमाण  
है और जहाँ कहीं श्रुति और स्मृतिके अर्थमें विरोध पड़े वहाँ स्मृतिका अर्थ  
नहीं आदर करनेयोग्यहै ॥ १३ ॥ जहा फिर श्रुतियोंहीमें परस्पर विरुद्ध अर्थ  
का प्रतिपादन है वहाँ मनुने दोनोहि धर्म कहेहैं जिस्से मनु आदिकोंसे पहले पं  
डितोंने दोनो धर्म समीचीन कहे हैं इसी भांति स्मृतियोंके भी विरोधमें विकल्प  
जानना चाहिये ॥ १४ ॥

उदितेऽनुदिते चैव समर्याध्युषिते तथा ॥ सर्वथा वर्तते यज्ञ इती  
यं वेदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो  
विधिः ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

टीका—इसमें दृष्टान्त कहते हैं ॥ सूर्य नक्षत्र वर्जित कालको समर्याध्युषित  
कहते हैं और उदयसे पहले अरुणकी किरणयुक्त थोडी जिसमें तारु हैं ऐसे का  
लको अनुदित कहते हैं तो आपसमें कालका विरोध पडनेपरभी विकल्पसे आज्ञि

होत्रका होम होता है ॥ १५ ॥ मर्माभनसे लेकर श्मशानांत कहिये अंत्येष्टिपर्यंत जिस द्विजातिकी विधि वैदिक मंत्रोंसे कही है उसका इस मानवशास्त्रके पढने में अधिकार है और किसीका नहीं है ॥ १६ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्यो देवर्षिर्दन्तरम् ॥ तं देवर्षिर्दत्तं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ १७ ॥ तस्मिन्देसे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ॥ वर्णानां सान्तरालानां सै सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥

टीका—धर्मका स्वरूप प्रमाण और परिभाषाको कहिकै अब धर्मकरनेके योग्य देशको कहते हैं ॥ सरस्वती और दृषद्वती नाम देवर्षियोंके बीचके प्रदेशका जो देश है उस देवताओंके बनाये हुए देशको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं ॥ १७ ॥ बहुधा शिष्टोंके उत्पन्न होनेसे उस देशमें ब्राह्मणसे लेकर कर्णसंकरोंतक परंपराके क्रमसे चला आया हुआ आचार है वह सदाचार कहा जाता है ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ॥ एषं ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादिनन्तरः ॥ १९ ॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद्ग्रजन्मनः ॥ स्वस्वं चरित्रं शिक्षेन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥

टीका—कुरुक्षेत्र और मत्स्य आदिदेश और पांचाल कहिये कान्यकुब्जदेश और शूरसेन-कहिये मथुराकेदेश ये ब्रह्मर्षिदेश ब्रह्मावर्त्तसे कुछ न्यून हैं ॥ १९ ॥ इन कुरुक्षेत्र आदि देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे-पृथिवीमें सब मनुष्योंने अपने २ चरित्र कहिये आचार सीखे ॥ २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥ प्रत्यगेवं प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥ आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् ॥ तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

टीका—उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें स्थित हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतोंका मध्य और विनशना नाम सरस्वती नदीके गुप्त होनेका स्थान है उस्से जो पूर्व और प्रयागसे जो पश्चिम है उस देशका नाम मध्यदेश है ॥ २१ ॥ पूर्वको समुद्रसे और पश्चिमके समुद्रसे उन्हीं दोनो अर्थात् हिमाचल विन्ध्याचल पर्वतोंके बीचके भूमिभागको पंडित आर्यावर्त्त कहते हैं इस्से समुद्रके मध्यके द्वीपआर्यावर्त्तमें नहीं है यह निश्चय हुआ ॥ २२ ॥

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥ स ज्ञेयो यज्ञियो देः शो म्लेच्छदेशस्तवतः परः ॥ २३ ॥ एतान्द्विजातयो देशान्संश्रये

रन्प्रयत्नतः ॥ शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निर्वसेदृत्तिकर्षितः ॥२४ ॥

टीका—जहाँ कृष्णसार कहिये करसायल हरिण स्वभावसे वसताहै वह देश यज्ञके योग्य जानना चाहिये इससे अन्यम्लेच्छ देश अर्थात् यज्ञके योग्यनहींहै ॥२३ ॥ और देशोंमें उत्पन्नभी ब्राह्मण यज्ञ के अर्थ बडे उपायसे इन देशोंमें आके रहे और जीविकासे दुःखी शूद्र चाहै जिस देशमें जाके रहे ॥ २४ ॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ॥ संभवंश्चास्य सर्वस्य  
वर्णधर्मास्त्रिवो धन्ता ॥ २५ ॥ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्वि  
जन्मनाम् ॥ कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहं च ॥ २६ ॥

टीका—यह धर्म जाननेका कारण मैने तुमसे संक्षेपसे कहा अब इस सबजगतकी उत्पत्ति और वर्ण आश्रम आदिकोंके धर्म सुनो ॥२५ ॥ वैदिक कहिये वेदमें कहे हुए मंत्रयोग आदि शुभकर्मोंकरिके द्विजोंका गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पापके क्षयकारणहै प्रेत्यकहिये परलोकमें यज्ञादि फलोंके संबंधसे और इह कहिये इस लोकमेंभी वेदाध्ययन आदिमें अधिकारसे ॥ २६ ॥

गार्भहोमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः ॥ वैजिकं गार्भिकंचैनां  
द्विजानामपमृज्यते ॥२७ ॥ स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैश्च विद्येनेज्यया  
सुतैः ॥ महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥

टीका—गार्भकहिये जे गर्भकी शुद्धिके लिये किये जाते है और होम जात-कर्म चूडाकरण यज्ञोपवीत इन कर्मोंकरिके वैजिक कहिये प्रतिषिद्धमैथुनके संकल्प आदिसे पिताके वीर्यके दोषसे जो पाप होता है ओ गार्भिक कहिये जो अशुचिमाताके गर्भमें बसनेसे उत्पन्न हुआ ये सब पाप दूरि होजातेहैं ॥२७ ॥ स्वाध्याय कहिये वेदके पठनेसे और व्रत कहिये मधुमांस वर्जन आदि नियमोंसे और होम कहिये सावित्रचरुके होम आदिसे अथवा सायंकाल और प्रातःकालके होमसे और त्रैविधिनाम व्रतकरिके और इज्या कहिये ब्रह्मचर्यकी अवस्थामें देवऋषि पितृतर्पण रूप और सुत कहिये गृहस्थकी अवस्थामें पुत्रका उत्पन्न करना और महायज्ञ कहिये पांच ब्रह्मयज्ञआदि और यज्ञ कहिये ज्योतिष्टोम आदि इन सर्वोंकरिके ब्राह्मीय कहिये ब्रह्मकी प्राप्तियोग्य शरीर कियाजाताहै ॥२८ ॥

प्राङ्गाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ॥ मन्त्रवत्प्राशनं चास्य  
हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २९ ॥ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽ  
स्यकारयेत् ॥ पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥३० ॥

टीका—नाभिवर्द्धन जो नाल कटनाहै तिससे पहले पुरुषका जातकर्म किया जाताहै तब तो इसका स्वगृहमें कहे हुये मन्त्रोंसेसुवर्ण मधु औ धीका प्राशन कहिये चटाना होताहै ॥ २९ ॥ जन्मसे दशमें अथवा बारहें दिन इस बालक का नाम करण करावै अर्थात् नाम धरावै “अथवा आशौचे तु व्यतिक्रान्ते नाम-कर्म विधीयते” अर्थात् आशौच जो सूतक है तिसके निकलजानेपर नामकर्म किया जाताहै इस शंखके धचनसे दशमदिनके निकल जाने परग्यारहें दिन करना चाहिये उस दिनभी न कियाजाय तौ ज्योतिषसे निश्चय हुए अच्छे सुहृत्तमें वा गुणवान् नक्षत्रमें करनाचाहिये ॥ ३० ॥

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥ वैश्यस्य धनसं-  
युक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥ शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्ब्राह्मो  
रक्षासमन्वितम् ॥ वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंके नाम मंगल बल धन निंदा वाचक अर्थात् शुभ बल व सुदिन आदि करने चाहिये ॥ ३१ ॥ अब उपपदके नियमके लिये कहते हैं इनके नाम कर्मसे शर्म रक्षा पुष्टि प्रैष्यवाचक करने चाहिये अर्थात् शर्म वर्म गुप्त दास आदिकरने चाहिये जैसे शुभशर्मा दलवर्मा वसुमति दीनदास यह ईशमें यमस्मृति और विष्णुपुराणभी हैं परतु ग्रंथ बढनेके भयसे नही लिखे हैं ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां मुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ॥ मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमा  
शीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥ चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रम-  
णं गृहात् ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्देष्टुं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥

टीका—मुखसे बोलने योग्य जिसका अर्थ कूर न होय अर्थ प्रकट होय मनोहर होय मंगल वाची होय नामके अंतका स्वर दीर्घ होय कल्याणके कहनेवाले शब्द करिके युक्त होयपेसा स्त्रियोंका नाम रखना चाहिये जैसे यशोदा देवी यह ॥ ३३ ॥ बालकको चौथे महीनेमें सूर्यके दर्शनकेलिये जन्मके अर्थात् सूतिका को जन्मके घरसे निकालना चाहिये और छठे महीनेमें अन्न प्राशन करना चाहिये अथवा जैसी जैसी जिसके कुलकी रीति होवै सो करनी चाहिये इसे पहिले कहा हुवा चौथे महीनेमें निकालने आदिका नियम न रहा ॥ ३४ ॥

चूडाकर्षं द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ॥ प्रथमेऽब्दे तृतीये वा  
कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ३५ ॥ गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपना



यनम् ॥ गर्भादिकां दशे रौद्रो गर्भान्तुं द्वादशे विर्शः ॥ ३६ ॥

टीका—सब द्विजातियोंका चूडा कर्म कहिये मुंडन धर्मके लिये पहले वर्षमें अथवा तीसरे वर्षमें वेदकी आज्ञासे करना चाहिये अथवा कुलधर्मके अनुसार करै ॥ ३५ ॥ गर्भसे आठमें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना चाहिये और गर्भ से ग्यारहवर्ष क्षत्रियका और गर्भसे बारहवर्ष वैश्यका करना चाहिये ॥ ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥ रौद्रो बलार्थिनः षष्ठे वैश्य  
स्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥ आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिर्व  
र्तते ॥ आद्वाविंशत्क्षत्रबन्धोरौ चतुर्विंशतोर्विशः ॥ ३८ ॥

टीका—वेदके पढने और अर्थज्ञान आदिसे बढे हुए तेजको ब्रह्मवर्चस कहते है उसके चाहनेवाले ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे पाँचमे वर्षमें करना चाहिये और बलके चाहनेवाले क्षत्रियका छठेमें और बहुत खेत आदिकीचेष्टा चाहनेवाले वैश्यका आठमें वर्षमें करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सोलह वर्षके पीछे ब्राह्मणो को और बाईससे क्षत्रियको और चौबीससे उपरांत वैश्यको सावित्रीका उपदेश नहीं होसकता अर्थात् तीनो वर्णोंको कमसे कम सोलह बाईस चौबीस वर्ष सावित्रीके उपदेशकी परम अवाधि है ॥ ३८ ॥

अत ऊर्ध्व त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिता व्रा  
त्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥ नैतै रपूतौर्विधिं वदार्पद्यपि हि  
कीर्हचित् ॥ ब्राह्मण्योनांश्च सर्वन्धात्राचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

टीका—अत ऊर्ध्व इसके उपरांत यथाकाल कहिये सोलह अदिवर्षोंमें नहीं संस्कार किये गये तीनो सावित्रीपतित कहिये उपनयन हीन और शिष्टों कीरि निन्दित ब्रात्य संज्ञक होते हैं अर्थात् उनका ब्रात्य नाम होता है ॥ ३९ ॥ विधिपूर्वक प्रत्यक्षित न करनेवाले इन अपवित्र ब्राह्मणोंसे आपत्कालमेभी अध्यापन कन्यादान आदि संबंधोंको ब्राह्मण नकरे ॥ ४० ॥

कार्ष्णसैरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ॥ वसीस्त्रानुपूर्वेण शा  
णक्षौमादिकानि च ॥ ४१ ॥ मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्यो विप्र  
स्य मेखला ॥ क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शण्णतान्तवी ॥ ४२ ॥

टीका— ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यब्रह्मचारी क्रमसे कृष्णमृग रुरुमृग और बस्त जो छागहै तिनके चर्मोंको ऊपरके बस्तोंको धारण करै और सन अलसी औ-

र इनके नीचेके ब्रह्मणको धारण करै ॥४१ ॥ मूँजकी बराबरकी तीनलरोंसे बनीहुई चिकनी ब्राह्मणकी मेखला करनी चाहिये और क्षत्रियको मूर्वा नाम रूखडीकी धनुष की प्रत्यंचाके समान और वैश्यकी सनके सूतकी मेखला करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥ त्रिवृता ग्रन्थिनै  
केन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥ कौर्पासमुपवृत्तं स्याद्द्विप्रस्यो  
ध्ववृत्तं त्रिवृत्तं ॥ शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ ४४ ॥

टीका—मूँज न मिलै तौ तीनो वर्णोंकी मेखला-क्रमसे कुश अश्मांत बल्वज इनतीनि प्रकारके तृणोंसे मेखला बनानी चाहिये वह मेखला तीनलरोंकी होय और एक तीनि अथवा पांच गाठोंकरके युक्त होय यहाँ वा शब्दके कहनेसे गाठोंका ब्राह्मणादिकोंके साथ क्रमसे संबंध नहीं है किंतु कुलोंके आचारके अनुसार है ॥४४ ॥ प्रकार विशेषसे बने जिसकी यज्ञोपवीत संज्ञा कहेंगे वही जिसका धर्म है ऐसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासके सूतका होता है और क्षत्रियका सनके सूतका और वैश्यका मेढेके रोमों से बना हुआ होता है उसके बनानेका प्रकार यह है कि दक्षिणावर्त्त तिगुणा करके फिर तिगुना करै इस प्रकार नवतारोंका होता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणो बैल्वपालशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ ॥ पैलवौदुम्बरौ वैश्यो  
दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः  
प्रमाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासन्तिको विशः ॥ ४६ ॥

टीका—ब्राह्मण बेल और पलाशके क्षत्रिय वड और खैरके और वैश्य पीलू तथा गूलरके दंडोंके धर्मसे योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणका दंड केशतक और क्षत्रियका मस्तकतक तथा वैश्यका नासिका पर्यंत दंड बनाना चाहिये ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥ अनुद्वेगकरा नृणां स  
त्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भा  
स्करम् ॥ प्रदक्षिणं परित्याग्निं चरेद्भक्षं यथाविधि ॥ ४८ ॥

टीका—वे सब दंड सौधे और चिकने देखनेमें सुंदर अनुष्योंके मनको न बिगडनेवाले छिलके समेत और आगिमें नजले होंय ऐसे होने चाहिये ॥ ४७ ॥ वांछित दंडको ग्रहण करि और सूर्यके सन्मुख स्थित हो अग्निकी प्रदक्षिणा करि विधिपूर्वक भिक्षा मागै ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वै

इयस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥ मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं  
निजाम् ॥ भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञोपवीत जिसका होगयाहै ऐसा ब्राह्मण भवति भिक्षां देहि ऐसे पह-  
ले भवत् शब्दका उच्चारण करि भिक्षामांगै और क्षत्रियं भिक्षां भवति देहि ऐसे भ-  
वत् शब्द बीचमें कहै और वैश्य भिक्षां देहि भवति ऐसे भवत् शब्दको अंतमें कहि-  
कै भिक्षा मांगै ॥ ४९ ॥ उपनयन कर्मकी अंगभूत भिक्षाको पहले मातासे बहि-  
नसे और माताकी निज बहिनि अर्थात् मौसिसे मांगै और जो इस ब्रह्मचारीको  
नाही करके अपमान न करै पहलीके न होनेमें औरोंसे मांगना चाहिये ॥ ५० ॥

समाहृत्य तु तद्भक्ष्यं यावदर्थममायेया ॥ निवेद्यं गुरुं वेऽश्रीयादा चर्म्य  
प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ५१ ॥ आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ष्ये शस्यं दक्षिणामु-  
खः ॥ श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ष्यंतं भुङ्क्ष्ये दक्षिणामुखः ॥ ५२ ॥

टीका—तृप्तिको योग्य उस भिक्षाको बहूतोंसे लायके गुरुको निवेदन करि कपट  
रहितहो पूर्वको मुख करि आचमन करिकै भोजन करै ॥ ५१ ॥ अब काम्य भोजन कहते  
है आयुष्यकी इच्छा होय तौ पूर्वको मुख करिकै भोजन करै यशकी इच्छा होय तौ  
दक्षिणको मुख करिकै भोजन करै लक्ष्मीकी इच्छा होय तौ पश्चिमको मुख करिकै  
और सत्यकी इच्छा होय तौ उत्तरको मुख करिकै भोजन करै ॥ ५२ ॥

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥ भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सं-  
म्यगंद्रिःखानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥ पूजयेदशनं नित्यमद्यात् चैतद्  
कुत्सयन् ॥ दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

टीका—नित्य कहिये ब्रह्मचर्यके पीछे भी ब्राह्मण आचमन करिकै सावधान  
चित्त हो भोजन करै फिर भोजन करिकै शास्त्रके अनुसार आचमन करै और  
जलसे इंद्रिय जे शिरमें स्थित छः छिद्र नाक नेत्र कान आदिका स्पर्श करै  
॥ ५३ ॥ सदा अन्नका पूजन करै अर्थात् हमारे प्राणोंके रक्षक हौ ऐसे ध्या-  
न करै और इस अन्नकी निंदा न करताहुआ भोजन करै और देखकर हर्ष करै  
और प्रसन्न होय और सब अन्नको हमको सदा यहा मिलै ऐसे कहिकै भक्तिसे  
स्तुति करता हुआ नमस्कार करै ॥ ५४ ॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलं मूर्जचर्यच्छति ॥ अपूजितं तु तद्भुक्तं मुभयं  
नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥ नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नद्याच्चैव तथान्तरा ॥  
न चैवाध्यशनं कुप्योन्न चोच्छिष्टं कचिद्भजेत् ॥ ५६ ॥

टीका—कारण यह है कि पूजन किया हुआ अन्न बल तथा वीर्यको देता है और विना पूजन किये हुए खाया हुआ यह अन्न इन दोनोंका नाश करता है ॥ ५५ ॥ उच्छिष्ट जो जूठा है उसै किसीको न देवै और अंतरा कहिये दिन-और संध्याके भोजनके बीचमें न खाय और दो वारमेंभी बहुत भोजन न करै और उच्छिष्ट कहिये जूठाहोकै कही न जाय ॥ ५६ ॥

अनारोग्यमर्नायुष्यमस्वर्ग्यचातिभोजनम् ॥ अपुण्यलोकविद्विष्टं  
तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणविप्रस्तीर्धननित्यकालमु-  
पस्पृशेत् ॥ कायत्रैदशिकाभ्यार्वानपिष्यणकंदाचन ॥ ५८ ॥

टीका—अति भोजनमें क्षेप कहते हैं अतिभोजन आरोग्यता और आयुष्यकों नाश करनेवाला है और स्वर्गके कारणभूत यज्ञादिकोंका विरोधी होनेसे स्वर्गका भी नाश करनेवाला है अपवित्र है और लोकमें निन्दित है तिससे उस अतिभोजनका त्याग करै अर्थात् बहुत कभी न खाय ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण सदा ब्राह्मतीर्थसे आचमन करै अथवा क जो ब्रह्मा हैं तिनको काय और त्रिदश जे देवता है तिनके तीर्थको त्रैदशिक कहते हैं इन दोनोंसे आचमन करै और पितरोंका जो तीर्थ है उसको पिष्य कहते हैं इस पिष्य तीर्थसे कभी आचमन न करै ॥ ५८ ॥

अङ्गुष्ठमूलस्यतलेब्राह्मतीर्थप्रचक्षते ॥ कायमङ्गुलिमूलेऽग्नेद्विपि  
त्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥ त्रिराज्ञामेदपःपूर्वद्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम् ॥  
खानिचैवंपृशेदद्विरात्मानंशिरैवच ॥ ६० ॥

टीका—अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ और कनिष्ठाअंगुलीके मूलमें काय तीर्थ और अंगुलियोंके अग्रमें देवतीर्थ और अंगुष्ठप्रदेशिनीके मध्यमें पिष्य तीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥ सामान्यतासे कहे हुए आचमनके करनेका क्रम कहते हैं पहले ब्रह्मादि तीर्थोंसे जलके तीन-कुल्ले पीवै तिसे पीछे ओठोंको बंद करके दाहिनी अंगूठेके मूलसे दोवार मुखको धोवै और जलसे नाक कान आदि इंद्रियोंको छुवै फिरी आपने हृदय और शिरको जलसे छुवै ॥ ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्विस्तीर्धनधर्मवित् ॥ शौचेऽप्युःसर्वदाचामै  
देकान्तेप्राग्गुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥ हृद्भाभिः पूर्यतेविप्रः कण्ठगाभिस्तु  
भूमिपः ॥ वैश्वोऽद्विः प्राशिताभिस्तुशूद्रः स्पृष्टाभिरन्तः ॥ ६२ ॥

टीका—धर्मज्ञपुरुष गरम न किये गये और फेन रहित जलसे ब्राह्मणादि तीर्थों करिके शौचकी इच्छासे शुद्ध देशमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो सदा आचमनकरै ॥ ६१ ॥ आचमनका प्रमाण कहते हैं ब्राह्मण हृदयमें गये हुए और क्षत्रिय कंठमें गये हुये और वैश्य मुखमें गये हुए और शूद्र जीभ तथा ओठोंके किनारोंसे हुए हुए जलसे पवित्र होता है ॥ ६२ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणांबुर्पवीत्युच्यते द्विजैः ॥ सव्ये प्राचीर्न औवीती  
निवीतीकण्ठसंस्जने ॥ ६३ ॥ मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कर्मण्डलु  
म् ॥ अंशु प्रस्य विनष्टानि गल्लीतान्यानि मन्त्रवत् ॥ ६४ ॥

टीका—उपवीतकी आचमनकी अंगता दिखानेको उपवीतहीहै लक्षण जिसका ऐसे प्राचीनावीती इत्यादि लक्षणोंको कहते हैं दाहिने हातको निकाल बाएं कंधेपर रखे हुए और दाहिनी कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत अथवा वस्त्रसे द्विज उपवीती कहा जाता है और बाए कंधोको निकाल दाहिने कंधेपर स्थित और बाई कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे प्राचीनावीती कहाता है और दोनो भुजाओंमें से एककोभी न निकाल गलेमें पहिरेहुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे निवीती कहा जाता है ॥ ६३ ॥ दूटे फूटे हुए मेखला मृगचर्म दंड और कर्मण्डलुके जलमें डालकर अपने गृहमें कहे हुए मंत्रोंसे और नवीन धारण करै ॥ ६४ ॥

केशान्तचोडशेषे ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वै  
श्यस्य द्व्यधिके तर्तः ॥ ६५ ॥ अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृद्ध  
शेषतः ॥ संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥

टीका—गृहमें कहाहुआ केशांत कर्म ब्राह्मणका गर्भसे सोलहें वर्ष और क्षत्रियका गर्भसे बाईसमें वर्ष और वैश्यका गर्भसे चोवीसमें वर्ष करना चाहिये ॥ ६५ ॥ यह सब स्त्रियोंका जातकर्मादि किर्षी कलाप कहे हुए कालके क्रमसे शरीर संस्कारके लिये दिना मंत्रोंके करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥ मतिसेवां गुरौ  
वासो गृहार्थोऽग्निधरक्रिया ॥ ६७ ॥ एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनाय  
निको विधिः ॥ उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥ ६८ ॥

टीका—इसे स्त्रियोंका भी उपनयन प्राप्त होने पर विशेष कहते हैं विवाहकी विधि ही मनुआदिने स्त्रियोंका वैदिक संस्कार अर्थात् उपनयन कहाहै और पतिकी सेवा

ही गुरुकुलमें वास और वेदका पढ़ना कहा है और घरका कामही संध्यासवेरे समिधोंका होम लेप अश्विनी सेवा कही है तिससे विवाह आदिकोंकोही यज्ञोपवीत आदिके स्थानमें जानना चाहिये ॥६७॥ द्विजातियोंकी दूसरे जन्मका सूचक और पवित्र यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीतकी विधि आदिका क्रिया कलाप कहा ॥६८॥

उपनीयं गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥ आचारमग्निकार्यं च  
संध्योपासनमेव च ॥६९॥ अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमु  
दईमुखः ॥ ब्रह्माञ्जलिं कृतोऽध्याप्यो लघुर्वासा जितेन्द्रियः ॥७०॥

टीका—अब यज्ञोपवीत किये हुए को जो कर्म करने चाहिये सो कहते हैं गुरु शिष्यका यज्ञोपवीत करिके उसको पहले एका लिङ्गे गुदे पंच इत्यादि अंगे कहा शौच और स्नान आचमन आदि आचार और अग्निमें संध्या सवेरे होम करना और मंत्रों समेत संध्योपासन आदिविधिको सिखावै ॥६९॥ वेद पढ़नेकी इच्छावाला शिष्य शास्त्रके अनुसार आचमन करि उत्तराभिमुख हो हाथोंको जोरि पवित्रब्रह्मो को धारण करि जितेन्द्रिय हो गुरु करि पढ़ाने योग्य है ॥७०॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥ संहृत्य हस्तावध्वेयं  
सं हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥७१॥ व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रह  
णं गुरोः ॥ संव्येन संव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥७२॥

टीका—वेदाध्ययनके आरंभमें और अंतमें सदा गुरुके चरण ग्रहण करने योग्य है और हाथोंको जोरि कैं पढ़ना चाहिये उसको ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ॥७१॥ फेरहुएचित्त हाथसे गुरुके चरणोंका ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दाहिनेसे दाहिना और वाएसे वाएको ग्रहण करै ॥७२॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यं कालमर्तुन्द्रितः ॥ अधीष्व भो इति ब्रूया  
द्विरामोऽस्तिर्वतिचारमेतत् ॥७३॥ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते  
च सर्वदा ॥ स्रवत्यंऽनोकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥७४॥

टीका—गुरु आलस्यं रहितहो पढ़नेके लिये उपस्थित शिष्यसे भी अधीष्व अर्थात् पढी ऐसे पहले कहै और विराम हो ऐसे कहिके पढ़ानेसे बंद होया ॥७३॥ ब्राह्मण वेदपाठके आरंभमें और अंतमें ओंकारका उच्चारण करै क्योंकि जिसमें पहले ओंकारका उच्चारण न हुआ वह हौले २ नष्ट हो जाता है और जिसमें पीछे ओंकारका उच्चारण न हुआ वह बिसर जाता है ठरता नहीं ॥७४॥

प्राङ्मूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवं पांक्तिः॥ प्राणायामैस्त्रिभिः पूतं  
स्तंत ओंकारमर्हति ॥७५॥ अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजा  
पतिः ॥ वेदत्रयान्निरदुहं भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥

टीका—पूर्वको हैं अंग्र-जिनके ऐसे कुशोपर बैठा हुआ और हाथोंमें स्थितपवित्र कुशोसे पवित्र किया हुआ और पंद्रह मात्रारूप तीनि प्राणायामोंकरिके पवित्र किया हुआ द्विज ओंकारके उच्चारण योग्य होता है ॥ ७५ ॥ ब्रह्माने अकार उकार और मकारको ऋक् यजु साम इनी वेदोसे तथा भूः भुवः स्वः इने व्याहृतियों क्रमसे निकाला ॥ ७६ ॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदुहत् तदित्यृचो ऽस्याः सावि  
त्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥७७॥ एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपू  
र्विकाम् । संध्यायोर्वेदविद्विप्रौ वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥

टीका—तैसेही परम उत्कृष्ट स्थानमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने ऋक् यजु साम इन तीनवेदोंहीसे तदृच इस प्रतीकसे कहे हुए सावित्रीके चौथाई २ तीनि पाद निकाले ॥ ७७ ॥ इस ओंकाररूप अक्षरको और भूर्भुवस्स्व इन व्याहृतियों समेत त्रिपदा सावित्रीको संध्याकालमें जपता हुआ वेदका जानने वाला ब्राह्मण आदि तीनो वेदोंके पढनेके फलको प्राप्त होता है इसीसे संध्याके कालमें प्रणव और तीनो व्याहृतियों समेत सावित्रीका जप करे यह विधि है ॥ ७८ ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मांसा  
त्वेचे वाहिविसुच्यते ॥ ७९ ॥ एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रिय  
यास्वैया । ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां यांति साधुषु ॥ ८० ॥

टीका—संध्यामें अथवा और कालमें- प्रणव तीनो व्याहृती और सावित्री रूप तिगुडेको ग्रामसे बाहर नदीके तीर वन आदिमें हजारवार जपके बडेभी पापसे ऐसे छूटि जाता है जैसे काँचलीसे साँप तिसके पाप दूर होनेके लिये इस का जप अवश्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ संध्याके समय अथवा और कालमें इस सावित्री ऋचा करिके विसंयुक्त कहिये- त्याग किया हुआ और सावित्री जपकी निजक्रियाकहिके सायंकाल प्रातःकाल होम आदिरूपक्रिया करि अपनेकालमें त्यागकिया हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सज्जनोंमें निंदाको प्राप्त होता है तिससे अपने कालमें सावित्रीके जपको और अपनी क्रियाको न छोड़े ॥ ८० ॥

ओंकारपूर्विकास्तिष्ठो महाव्याहृतयोऽव्ययः। त्रिपदा चैवं सावित्री  
 त्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ ८१ ॥ योऽधी तेऽहन्यहन्येतां स्त्रीणि व  
 र्षाण्यतन्द्रितः । स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ ८२ ॥

टीका—ओंकार जिनके पहले है ऐसी भूर्भुवस्स्वः ये तीन व्याहृती और अक्षर ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अव्यय कहिये अविनाशिनी त्रिपदा सावित्री ब्रह्म जो वेद है तिसका मुख कहिये आदि जानना चाहिये क्योंकि इनको पहले पढ़कर वेदाध्ययनका आरंभ होता है ॥ ८१ ॥ जैसे प्रतिदिन आलस्यरहित हो प्रणव व्याहृतियुक्त सावित्रीको तीनवर्षपर्यंत पढता है वह वायुभूत अर्थात् वायुके समान कामचारी और ख जो ब्रह्म है सोई मूर्ति जिसकी ऐसा होजाता है शरीरके नाश होनेपर ब्रह्महीमें मिलजाता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति  
 मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ ८३ ॥ क्षरति सर्वा वैदिक्यो जुहोति य  
 जतिक्रियाः । अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैवं प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

टीका—ओं यह एक अक्षर परब्रह्मकी प्राप्ति कारण होनेसे अक्षय ब्रह्म है और प्राणायाम परम तप है और सावित्रीसे अधिक और भंत्र नहीं है और मौनसेभी सत्य अधिक है ॥ ८३ ॥ वेदमें कहीहुई सब होमयज्ञ आदि क्रिया स्वरूपसे और फलसे नष्ट हो जाती हैं और प्रणवरूप अक्षर तौ अक्षय जानना चाहिये जिसे प्रजाओंका अधिपति जो ब्रह्म है सोई यह ओंकार है ॥ ८४ ॥

विधियज्ञाज्जपर्यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ॥ उपांशु स्याच्छतगुणः  
 साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ८५ ॥ ये पाकर्यज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञस-  
 मन्विताः ॥ सर्वे ते जपयज्ञस्य कूलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८६ ॥

टीका—विधियज्ञ जे दश पौर्णमास आदि है तिनसे प्रणव आदिकोंका जो जपयज्ञ है सो दशगुणा अधिक है वहभी जो उपांशु होय अर्थात् जिसको समीपकाभी मनुष्यन सुनसके उससे सौगुणा अधिक है और जो मात्रस है अर्थात् जिसमें जीभ और ओठ कुछभी नचलें वह उससे भी हजार गुणा अधिक है ॥ ८५ ॥ ब्रह्मयज्ञसे अन्य जे पांच महायज्ञोंके अंतर्गत होम बलिर्कर्म नित्यश्राद्ध अतिथि भोजन ये चारि पाकयज्ञ और दशपौर्णमास आदि विधियज्ञ ये सब जपयज्ञकी सोलहों कलाको भी नहीं प्राप्त होतेहैं अर्थात् ये सब जपयज्ञके सोलहें हिस्सेकी भी बराबर नहीं हैं ॥ ८६ ॥



जप्येनैव तु संसिंध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः॥ कुर्याद्व्यर्थां कुर्व्यां  
 नैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ ८७ ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपे  
 हारिषु ॥ संयमे यत्नमार्तिं ष्टेद्रिद्रान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

टीका— ब्राह्मण जपसेही निस्संदेह सिद्धिको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्तिके योग्य होता है और जो वैदिक यागादिक हैं तिनको कुरै अथवा न कुरै क्यों कि ब्राह्मण भैत्र कहा जाता है ॥ ८७ ॥ अब सब वर्णोंके करनेयोग्य और सब पुरुषार्थोंका उपग्रोमी ऐसे इंद्रियोंके संयमको कहते हैं चित्तके हरणेवाले विषयोंमें वर्तमान इंद्रियोंके रोकनेमें ऐसे यत्न करै जैसे सारथी घोड़ोंके रोकनेमें करता है ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्यर्थाहुर्मानि पूर्वे मनीषिणः ॥ तानि सम्यक्प्रवक्ष्या  
 मि यथावदनुपूर्वशः॥ ८९ ॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिकाचै  
 व पञ्चमी ॥ पारूपस्थं हस्तपादं वाक्चै व दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

टीका— पहले पंडित जिन ग्यारह इंद्रियोंको कहते हैं उन सबको अबके लोगोकी शिक्षाके लिये कर्मसे और नामसे क्रमसे कहोंगा ॥ ८९ ॥ उन ग्यारहोंमें कान त्वचा आसँ जीभ और पाचमी नाक गुदा लिंग हाथ पैर और दशमी वाक् ये दशो इंद्रियां है ॥ ९० ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां  
 पायादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥ एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्म  
 कम् ॥ यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

टीका— इनमें क्रमसे पाँच श्रोत्र आदि बुद्धि इंद्रिय हैं और पायु कहिये गुदा आदि पाँच इंद्रियोंको कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ ९१ ॥ ग्यारहों भीतरी इंद्रिय मन जानिये जो संकल्परूप दोनों इंद्रियोंके गणका प्रवर्तक रूप है इसीसे जिस मनके जीतनेपर दोनों पंचक अर्थात् बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके गण जीतेजाते हैं ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥ संनियम्य तु तान्येव तं  
 तः सिद्धिं नियच्छति ॥ ९३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन  
 श्मम्यति ॥ हविषां कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिर्वर्द्धते ॥ ९४ ॥

टीका— इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे निस्संदेह दृष्ट अदृष्ट दोषको प्राप्त होता है फिरि उन्ही इंद्रियोंको भली भाँति रोकके सिद्धि जो मोक्ष आदि पुरुषार्थ कीयोग्यता-

को प्राप्त होता है तिससे इन्द्रियोंको रोकै ॥ ९३ ॥ काम जो अभिलाष है सो काम जे विषयहैं तिनके भोगनेसे कभी नही शान्त होता है धीके डालनेसे अग्नि-के समान पुनः अधिक बढ़ता है ॥ ९४ ॥

यश्चेत्तान्प्राभुर्यात्सर्वानर्थैश्चेत्तान्केवलान्स्त्यजेत् ॥ प्रापणान्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यति ॥ ९५ ॥ न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तु मसेवयां ॥ विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यैः ॥ ९६ ॥

टीका—जो इन सब विषयोंको प्राप्त होय और जो इनकी उपेक्षा करै उन दोनोमे विषयोकी उपेक्षा करनेवाला श्रेष्ठ है तिससे सब कामोंकी प्राप्तिसे उनकी उपेक्षा प्रशंसा योग्य है ॥ ९५ ॥ अब इन्द्रियोंके संयमका उपाय कहतेहैं । विषयोंमे लगीहुई इन्द्रिय उनविषयोंके छोडनेसे रोकनेको नही समर्थ हैं जैसे सदा ज्ञानसे रुकि जाती हैं ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमश्च तपांसि च ॥ न विप्रदुष्टभावंस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् १७ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ॥ न हृष्यति म्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

टीका—वेद अथवा दान यज्ञ नियम और तप माला आदि विषयो की सेवा वाले पुरुषको कभी सिद्धिके लिये नही होते ॥ ९७ ॥ स्तुतिका वचन तथा निंदाका वचन सुनिके और छूनेमे सुख देनेवाले वस्त्र आदि तथा छूनेसे दुःख देनेवाले मेढोके वालोंके कंबल आदिको छूके और कुरूप मुरूपको देखि और स्वाद युक्त तथा विना स्वादकी वस्तुको स्वायके और सुगंधि तथा विना सुगंधकी वस्तुको सूंघके जिसको हर्षविषाद नही होता वह जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥ तेनास्य क्षरति प्रज्ञा हृतेः पात्रादि बोधकम् ॥ ९९ ॥ वज्ञो कृत्वेन्द्रियत्रामे संयम्य च मनस्तथा ॥ सर्वान्संधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

टीका—सब इन्द्रियोंमेंसे जो एक इन्द्रिय विषयोमें लय होजाय तो विषयोंमे लगे हुये इस मनुष्यके दूसरी इन्द्रियोंमेंभी तत्त्वज्ञान ऐसे जाता रहताहै जैसे चर्मके जलपात्रके जल ॥ ९९ ॥ बाहरके इन्द्रिय समूहको वशमें करिके और मनको रोकिके उपायोंसे अपनी देहको पीडा न देता हुआ सब पुरुषार्थोंका भली भाँति साधन करै ॥ १०० ॥

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमाकं दर्शनात् ॥ पश्चिमां तु समां-  
सीनः सम्यग्गृक्षविभावनात् ॥ १०१ ॥ पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो  
व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समांसीनो मूलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ १०२ ॥

टीका—प्रातःकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ सूर्यके उदयपर्यंत स्थित रहै और सायंकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ नक्षत्रोंके भली भांती लक्षित होनेतक स्थित रहै ॥ १०१ ॥ प्रातःकालकी संध्यामें स्थित जप कस्ता हुआ रात्रिके पापको दूरि करता है और सायंकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ दिनमें किये हुए पापको दूरि करता है ॥ १०२ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमां ॥ स शूद्रवद्ब्रह्मिष्का  
र्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ १०३ ॥ अपां समीपे निर्यतो नैत्यं कं वि  
धिमास्थितः ॥ सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ १०४ ॥

टीका—जो प्रातःकालकी संध्या नहीं करता और पिछिली अर्थात् सायंकालको संध्याकी उपासना नहीं करता अर्थात् उस कालमें कहे हुए जप आदि-को नहीं करता है वह शूद्रके समान सब ब्राह्मणके कर्म और अति सत्कारसे बा-हर करने योग्य है ॥ १०३ ॥ बहुत वेदके पढनेकी असमर्थतामें ब्रह्मयज्ञरूप यह सावि-त्रीमात्रके पढनेका विधान कहते हैं वने आदि अन्यदेशमें जाके नदीआदिके जल-के समीप इंद्रियोंको रोकि सावधान मन हो ब्रह्मयज्ञरूप नित्य विधिको किया चाह ता पुरुष प्रणव तथा तीन व्याहृतियों करी युक्त सावित्रीकाभी जपकरै ॥ १०४ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥ नानुरोधोऽस्त्यनंध्या  
ये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १०५ ॥ नैत्यके नास्त्यनंध्यायो ब्रह्मस  
त्रं हि तस्मृत्तम् ॥ ब्रह्माहुतिहुत्रं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

टीका—वेदोपकरण कहिये वेदके अंगशिक्षा आदिमें और नित्य करनेयोग्य स्वाध्यायमें और ब्रह्मयज्ञरूप होमके मंत्रोंमें अनध्यायका आदर नहीं है ॥ १०५ ॥ नित्य करनेयोग्य जपयज्ञमें अनध्याय नहीं है मनु आदिमें उसको ब्रह्मयज्ञ क-हा है ब्रह्माहुति जो हविहै उसका होम वह अनध्यायमें भी वषट्कार किया गया पुण्य कहिये पवित्रही है ॥ १०६ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽदं विधिना निर्यतः शुचिः ॥ तस्य नित्यं क्ष  
रत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥ १०७ ॥ अग्नीन्धनं भैक्षत्रयामधः

श्रय्यां गुरीर्हितम् ॥ अंसमावर्तनात्कुंर्यात्कृतोपनयनो द्विजः १०८  
टीका—जो जितेंद्रिय शुद्धपुरुष एक वर्षतक विधिपूर्वक कहे हुए अंगो समेत स्वाध्याय  
काहिये जपयज्ञको करता है उसका यह जपयज्ञ क्षीर आदिकोंसे पितरोंको प्रसन्न  
करता है वे प्रसन्न हो जपयज्ञ करनवालेको सब कामोंसे तृप्त करते हैं ॥ १०७ ॥  
यज्ञोपवीत किया हुआ ब्रह्मचारी सायंकाल प्रातःकाल सर्माधोंका होम भिक्षासमू  
हका लाना खीटपर न सोना अर्थात् नीचे सोना और जलका लाना आदि गुरु-  
का हित गृहस्थीमें जानेपर्यंत करै ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ॥ आर्तःशक्तोऽर्थदः  
साधुःस्वोऽध्याय्या दक्ष धर्मतः ॥ ९ ॥ नापृष्टः कस्यचिद्भूया ब्रचा  
न्यायेन पृच्छतः ॥ जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् १०

टीका—कैसा शिष्य पढाना चाहिये सो कहते हैं । आचार्यका पुत्र १  
सेवाकरनेवाला २ दूसरेप्रकारके ज्ञान देनेवाला ३ धर्मका जाननेवाला ४  
मृत्तिका तथा जल आदिसे शुद्ध ५ बांधव ६ लेने देनेमें समर्थ ७ धनदेनेवाला ८ द्रो-  
हन करनेवाला ९ ज्ञातिका १० ये दशप्रकारके शिष्य पढाने योग्य है ॥ १०९ ॥  
जो किसीने थोड़े अक्षरोंमें अथवा विना स्वरके पढा होय उसको अर्थविना पूछे उस-  
के तत्व न प्रकाशित करै और शिष्यसे तौ विना पूछे भी कहै और भक्ति श्रद्धा आ-  
दि जे पूछनेके धर्म हैं तिनको छोडकर पूछे ऐसेके पूछनेपर भी न कहै बुद्धिमान्  
पुरुष जानता हुवाभी लोकमें गुंके समान रहै ॥ ११० ॥

अधर्मेण चै यः प्राह यश्चा धर्मेण पृच्छति ॥ तयोरन्यतरः प्रैति  
विद्वेषं वोऽधिगच्छति ॥ १११ ॥ धर्मार्थो यत्र न स्यातां शुश्रूषा  
वापि तद्विधा ॥ तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमि वोषरे ॥ ११२ ॥

टीका—अधर्मसे पूछा हुआभी जो जिस्से कहता है और जो जिस्से अन्यायकारि  
पूछता है उनमेसे एक मरजाता है अथवा उसके साथ द्वेषी होजाता है ॥ १११ ॥  
जिस शिष्यके पढानेमें धर्म अर्थ न होय अथवा पढनेके अनुरूप सेवा न होय व-  
हो विद्या न देनी चाहिये वह देना ऐसे निष्फल है जैसे ऊपरमें बोया हुआ धान  
आदि बीज नहीं ऊगता ॥ ११२ ॥

विद्ययैव समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥ आपद्यपि हि चोरायां न  
त्वेनामिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शर्वधिस्ते ३

स्मिं रक्षं मास् ॥ असूर्यकाय मां मादास्तर्थास्यां वीर्यवत्तमां ११४

टीका—वेद पढानेवालेको विद्याके साथही मरना अच्छा सब भांति पढानेके योग्य शिष्यके नहोनेरूप आपत्तिमेंभी इस विद्याको ऊसरमें न बोवै ॥११३॥ विद्याकी अधिष्ठाता देवता किसी अध्यापकके समीप आके ऐसे बोली कि मैं तुम्हारी निधि हौं मेरी रक्षा करौ और असूया आदिदोषवाले मनुष्यको मुझे मृत दे सब्यकी अधिकतासे मैं वीर्यवती होऊं ॥ ११४ ॥

यं मेवं तुं शुचिं विद्यान्निषत्तर्ब्रह्मचारिणम् ॥ तस्मै मां ब्रूहि विप्रायं  
निधिर्पायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥ ब्रह्म यस्त्वेननुज्ञातमधीयानाद्  
वाभुर्यात् ॥ सँ ब्रह्मस्तेर्यसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ ११६ ॥

टीका—जिस शिष्यको शुद्ध जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी जानतेहो उस विद्यारूपी निधिके रक्षा करनेवाले प्रमाद रहितको मुझे दे ॥११५॥ जो अभ्यासके लिये पढते हुए अथवा औरको पढाते हुएसे उसकी आज्ञा विना वेदको गृहण करता है तौ वेदका चोर ब्रह्म मनुष्य नरकको जाताहै तिस्से ऐसा न करै ॥ ११६ ॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव च ॥ आददीत यतो  
ज्ञानं तं पूर्वमाभिवादयेत् ॥ ११७ ॥ सावित्रीमात्रं सारोऽपि वरं वि  
प्रः मुयन्त्रितः ॥ नान्यान्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाङ्गी सर्वविष्कथी ॥ ११८ ॥

टीका—लौकिक कहिये अर्थशास्त्र आदिका ज्ञान और वैदिक कहिये वेदके अर्थका ज्ञान तथा आध्यात्मिक कहिये ब्रह्मज्ञान इनको जिस्से ग्रहण करै बहुमान्योंके मध्यमें स्थित उसको पहले नमस्कार करै लौकिक आदि ज्ञान देनेवाले तीनोके समूहमें क्रमसे एकसे एक मान्यहै ॥११७॥ केवल सावित्रीहीका जाननेवाला जितेंद्रिय ब्राह्मण मान्य है और निषिद्ध भोजनआदिका करनेवाला और निषिद्ध वस्तुओंका वेचनेवाला तीनिवेदोंका ज्ञाताभी मानने योग्य नहींहै ॥ ११८ ॥

शय्यासनैऽध्याचरिते श्रेयसाने समाविशेत् ॥ शय्यासनस्थश्चैवं न  
प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥ ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थ  
विरं आयाति ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तां प्रतिपद्यते १२० ॥

टीका—विद्या आदि मे अधिक अथवा गुरुकरके मुख्यतासे अंगीकार कियी हुई शय्या अथवा आसनपर न बैठै और आप जो शय्या अथवा आसनपर बैठा होय तौ गुरुके आनेपर उठिके नमस्कार करै ॥ ११९ ॥ अवस्था

और विद्या आदिसे वृद्धके आनेपर थोड़ी अवस्थावालेके प्राण उपरको चढते हैं अर्थात् देहसे बाहर निकलना चाहतेहैं उन प्राणोंको वृद्धके अभ्युत्थान देने और नमस्कार करनेसे फिरि स्वस्थ करताहै तिससे बूढेको उठिकर प्रणामकरना चाहिये ॥ १२० ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥ चत्वारि तस्य वर्धन्ते  
आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥ अभिवादात्परं विप्रो ज्योयांसम  
भिवादेयन् ॥ असौ नामार्हमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् १२२

टीका—उठकर सदा वृद्धको नमस्कार करनेवाले और वृद्धकी सेवा करने-वाले मनुष्यकी आयु विद्या यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥ अब नमस्कारकी विधि कहते है वृद्धको नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण आदि नमस्कारके पीछे में नमस्कार करताहैं यह कहनेके पीछे मेरा यह नाम है ऐसे अपने नामको कहें ॥ १२२ ॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादनं न जानते ॥ तान्प्राज्ञोहं ऽमिति ब्रूया  
त्स्त्रियः सर्वास्तैर्वै च ॥ १२३ ॥ भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नो  
ऽभिवादाने ॥ नाम्नां स्वरूपभावो हि भोर्भाव ऋषिभिः स्मृतः १२४ ॥

टीका—नमस्कार करनेके योग्य जो कोई पुरुष संस्कृतविद्या न जाननेके कारण नामधेयके उच्चारण पूर्वक नमस्कारको नही जानते है उनसे नमस्कार करनेवाला बुद्धिमानऐसे कहै कि मैं नमस्कार करता हौं और सब स्त्रियोंसेभी ऐसे ही कहै ॥ १२३ ॥ नमस्कारमें कहे हुए अपने नामके पीछे नमस्कार करनेयो ग्यके संबोधनके लिये भो शब्दका उच्चारण करै इसीसे ऋषियो नमस्कार करने योग्यके नामके स्वरूपकी सत्ता भो शब्दहीमें कही है जैसे अभिवादेय शुभशर्मा ऽह मस्मिभोः अर्थ यह है कि नमस्कारकरनेवाला मैं शुभशर्मा हौं ॥ १२४ ॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादाने ॥ अकारश्चास्य  
नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः पुनः ॥ १२५ ॥

टीका—नमस्कार करनेपर बदलेका नमस्कार करनेवाला ब्राह्मण भो सौम्यआयुष्मान्भव ऐसा कहै और नमस्कार करनेवालेके नामके अंतके पहले अक्षरके पुन उच्चारण करै ॥ २५ ॥

यो न वेत्यभिवादनस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ॥ नाम्निवाद्यः सं विदु  
षा यथा शूद्रस्तथैव सं ॥ १२६ ॥ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रं च

न्धुमनामयम् ॥ वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥१२७॥

टीका—जो ब्राह्मण किये हुए नमस्कारके योग्य बदलेका नमस्कार नहीं जानता है वह विद्वान् करिके नमस्कार करनेयोग्य नहीं है यह शूद्रके समान है ॥ २६ ॥ मिलनेपर छोटी अवस्थावाले अथवा बराबर अवस्थाके नमस्कार न करनेवाले भी ब्राह्मणसे कुशल पूछे और क्षत्रियसे अनामय तथा वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्य पूछे ॥ २७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ॥ भोभवत्पूर्वकं  
त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८ ॥ परंपत्नी तु या स्त्रीस्यादसंब-  
न्धा च योनितः ॥ तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनी ति च ॥ १२९ ॥

टीका—बदलेके नमस्कारके समय अथवा और समयमें दीक्षित अवस्थामें छोटा-भी हो तौभी धर्मज्ञपुरुष उसका नाम न उच्चारण करै किंतु भोदीक्षित ऐसे कहकै बोलै ॥२८॥ जो पराईस्त्री होय और जिस्से कुछ योनिसंबध न होय अर्थात् बहिन आदि न होय उससे बोलनेके समय भवति, सुभगे, भगिनी.. ऐसे कहिकै बोलै ॥२९॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरुन् ॥ असावहमिति ब्रू-  
यात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥ मातृष्वसां मातुलानी श्वश्रू-  
रथं पितृष्वसा ॥ संपूज्या-गुरुपत्नीवत्समास्तां गुरुभार्यया ॥ १३१ ॥

टीका—मामा चाचा ससुर ऋत्विज गुरु जो ये छोटेभी होयतौ इनके आनेपर उठकै असौ अहं अर्थात् यह मैं ऐसा कहै निजनाम प्रकट करै नमस्कार न करै ॥३०॥ मावसी, मामी, सास, बुआ ये सब गुरुकी स्त्रीके समान उत्थान अभिवादन आसन देने आदिसे पूजनेयोग्य हैं क्योंकि वे गुरुभार्याके समान हैं ॥३१॥

भ्रातृभार्यापसंग्राह्या सर्वेर्णहन्थहर्न्यपि ॥ विप्रोप्य तूपसंग्राह्या ज्ञा-  
तिसंबन्धियोषितः ॥ १३२ ॥ पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च  
स्वसर्यापि ॥ मातृवदृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ १३३ ॥

टीका—जेठेभाईकी सजातीया स्त्रीके प्रतिदिनि चरण छुवै और जातिकी अर्थात् पितृपक्षकी चाचा आदि और संबंधी मातापक्षके तथा ससुरआदि इनकी स्त्रियोंके परदेशसे आकै चरण छुवै प्रतिदिन नहीं ॥ ३२ ॥ पिताकी बहिन तथा माताकी और अपनी बड़ी बहिन इन सबका आदरभान माताके समानकरै परन्तु माता इन सबसे बहुतही अधिक है ॥ ३३ ॥

दशाब्दीख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ॥ त्र्यब्दपूर्वं श्रो-  
त्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनितुं ॥ १३४ ॥ ब्राह्मणं दशवर्षं तु श-  
तवर्षं तु भूमिर्षम् ॥ प्रितापुत्रौ विजांनीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ३५

टीका—आगे कहे हुए विद्यादि-गुणहीन एक पुरवाग्रामके वसनेवालोंमें एक दशवर्ष बड़ा होय और एक उतनाही छोट्य होय तौभी सख्य कहिये मित्रता होती है और गीत आदि कलाओंके जानने वालोंमें पांचवर्षकी बड़ाई छुटाईमें मित्रता होती है और श्रोत्रियों तीनिवर्षकी छुटाई बड़ाईमें और सर्पिण्डोकी बहुतही थोड़े कालकीमें मित्रता होती है और सर्वत्र कहे हुए कालसे उपरांत ज्येष्ठका व्यवहार होता है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण दशवर्षका होय और क्षत्रिय सौ वर्षका तौ उन दोनोको पितापुत्रके समान जानै उनमें ब्राह्मण पिता है ॥ ३५ ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ॥ एतानि मान्यस्थाना-  
नि गरीयो यद्यद्भुत्तरम् ॥ ३६ ॥ पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुण-  
वन्ति च ॥ यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥ १३७ ॥

टीका—वित्तकहिये न्यायसे जोड़ा हुआ धन बंधु कहिये चांचा आदि तथा वय अधिक अवस्था कर्म श्रौत स्मार्त्त आदि विद्या वेदके अर्थका तत्व जानना ये पांच मान्यताके कारण है इनमें आगे आगे एकसे एक अधिक है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण आदि तीनोंवर्णोंमें पहलै कहे हुए पांच गुणोंमेंसे जिसमें जितने अधिक हैं वह उतनाही माननेयोग्य है और नव्वे वर्षसे अधिक अवस्थाको पहुँचा हुआ शूद्र द्विजोक्तोभी माननेयोग्य है सौवर्षके दशभाग करनेपर नव्वेसे ऊपर दशमी अवस्था होती है ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥ स्नातकस्य च  
रार्क्षं पन्था देयो वरस्य च ॥ ३८ ॥ तेषां तु समनेतानां मान्यो र्स्ना-  
तकपार्थिवौ ॥ राजस्नातकयोश्चैवं स्नातको नृपमानंभाक् ॥ ३९ ॥

टीका—चक्रयुक्त रथ आदि सवारीमें बैठे हुएको, और नव्वेसे अधिक अवस्थावालेको, रोगीको, वोज्जवालेको, स्त्रीको, स्नातकको, राजाको वर जो विवाहको जाताहो उसको मार्ग देना चाहिये अर्थात् इनमेंसे कोई आगे आता होय तौ मार्गसे दृष्टि जाय ॥ ३८ ॥ इकट्ठे हुए उन सबोंमें राजा और स्नातक मान्य हैं और राजा तथा स्नातकमें राजाकी अपेक्षा स्नातक मान्य है ॥ ३९ ॥



उपनीयं तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विज्ञः ॥ सर्वकल्पं सरहस्यं च तं-  
माचार्यं प्रचक्षते ॥१४०॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुं-  
नः ॥ योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

टीका—जो ब्राह्मण शिष्यका यज्ञोपवीत करके कल्प कहिये यज्ञविधि और रहस्य कहिये उपनिषद सहित सब वेदकी शास्त्राको पढ़ाताहै उसको आचार्य्य कहते हैं ॥ १४० ॥ वेदके एकदेश अर्थात् मंत्र वा ब्राह्मणको और वेदके अंग व्याकरण आदिकोंको जीविकाकेलिये जो पढ़ताहै वह उपाध्याय कहा जाता है ॥१४१॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभविंयति चात्रे-  
नं स विप्रो गुरुरुच्यते ॥४२॥ अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादि-  
कान्मखान् ॥ यः करोति वृतो यस्य संतर्स्यात्विंगि होच्यते ॥४३॥

टीका—जो गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करता है और अन्नसे बढाता है वह ब्राह्मण गुरु कहा जाता है गर्भाधान करनेसे यहाँ पिताहीको गुरु कहाहै ॥ ४२ ॥ वरण किया हुआ जो ब्राह्मण अग्न्याधेय कहिये आहवनीय आदि अग्नि योंके उत्पन्न करनेवाले कर्मको और पाकयज्ञ कहिये अष्टकादिकोंको और अग्निष्टोम आदियज्ञोंको जिसकी औरसे करताहै वह उसका ऋत्विक्कहाताहै ॥४३॥

य आवृणोत्यवित्तथं ब्रह्मणा श्रवणाबुभौ ॥ स मातां स पिता ज्ञेय-  
स्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥ ४४ ॥ उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां  
शतं पिता ॥ सहस्रं तु पितृन्मातां गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

टीका—जो ब्राह्मण वर्ण और स्वरकी विगुणतासे रहित सत्यरूप वेदसे दोनों कानोंको भरताहै वह बड़े उपकार करनेवाले गुणके योगसे मातापिताके समान जानना चाहिये उससे कभी द्रोह न करे ॥ १४४ ॥ दशउपाध्यायोंकी अपेक्षा एक आचार्य्य और एकसो आचार्य्योंकी अपेक्षा एक पिता और हजार पिताओंकी अपेक्षा एक माता गौरवमें अधिक होती है ॥ १४५ ॥

उत्पादकं ब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रे-  
त्यं चेहं च शाश्वतम् ॥४६॥ कामान्मातां पितां चैनं यदुत्पाद-  
यतो मिथः ॥ संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥ ४७ ॥

टीका—उत्पन्नकरनेवाला और वेद पढानेवाला ये दोनों पितहैं उनमें आचार्य्य पितरसे श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही इस लोक तथा परलो-

कमें शाश्वते कहिये सदा मोक्षरूप फलका देनेवाला है ॥ ४६ ॥ मातापिता जो कामके वशमें होके इस बालकको उत्पन्न करतेहैं जिस जिस योनीकी माताकी कोखमें उत्पन्न होताहै उसके वैसेही हाथ पैर होतेहैं ॥ ४७ ॥

आचार्यस्त्वस्यै यो जातिं विधिर्वद्रेदपारंगः ॥ उत्पादयति सावि-  
त्र्यासां सत्या साऽजराऽमरा ॥ ४८ ॥ अल्पं वा बहु वा यस्य श्रु-  
तस्योपकर्णोति यः ॥ तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तथा ॥ ४९ ॥

टीका—वेदका जाननेवाला आचार्य जिस जाति कहिये जन्मको विधिपूर्वक गायत्रीके उपदेशसे करताहै वह जन्म सत्यहै और ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अजर अमर है ॥ ४८ ॥ जो उपाध्याय जिस शिष्यका थोडा वा बहुत वेदके पढानेसे उपकार करताहै उसको भी शास्त्रपाठनरूप उपकारसे इस शास्त्रसे गुरु जानै ४९ ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ॥ बालोऽपि विप्रो  
वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥ १५० ॥ अध्यापयामास पितृन् शि-  
शुराङ्गिरसः कविः ॥ पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ५१

टीका—वेद सुननेके लिये जन्मका देनेवाला अर्थात् मज्ञोपवीत करनेवाला और अपने धर्मका सिखानेवाला अर्थात् वेदके अर्थका व्याख्यान करनेवाला बालक वृद्ध कहिये जेठेका धर्मसे पिता होताहै अर्थात् पिताके समान मानने योग्य है ॥ १५० ॥ आंगिरस ऋषिका पुत्र विद्वान् बालक अधिक अवस्थानके पितृव्य कहिये चचा ताऊ और उनके पुत्रोंको पढाताथा उनको ज्ञानसे शिष्य जानि भोपुत्रकाः अर्थात् हे पुत्रो ऐसा बोले ॥ १५१ ॥

ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः ॥ देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्या-  
य्य वै शिशुरुक्तवान् ॥ १५२ ॥ अज्ञो भवति वै बालः पिता भव-  
ति मन्त्रदः ॥ अज्ञ हि बालमित्याहुः पि ते त्येव तु मन्त्रदम् १५३

टीका—पिताकेतुल्य और पुत्रकाः ऐसे कहे गये वे क्रोधयुक्त हों पुत्रक श-  
ब्दका अर्थ देवतासे पूछते भये तब देवताओंने मिलकर इनसे कहा कि बालकने तुमको योग्य कहा ॥ १५२ ॥ जो कुछ नहीं जानताहै वही बालक होता है और मन्त्रका देनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला पिता होताहै इस कारण अज्ञ को बालक और मन्त्रदेनेवालेको पिता कहते हैं ॥ १५३ ॥

न हायैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥ ऋषयश्चक्रिरे धर्मो योऽनू

चानः सं नो महान् ॥ १५४ ॥ विप्रानां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां  
तु वीर्यतः ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेवं जन्मतः ॥ १५५ ॥

टीका—न बहुत वर्षोंसे और न सपेद ढाढीमूछीसे न बहुत धनसे न चचाता-  
ऊ आदि बहुतसे भाइयोंसे अथवा इकट्ठे-हुएभी इन सबोंसे बडापन नहीं होता  
है किंतु ऋषियोंने यह धर्म कियाहै कि जो हम लोगोंमें अंगोंसमेत वेदका पढ-  
नेवालाहै वही बडाहै ॥ १५४ ॥ ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे ज्येष्ठता होतीहै और क्षत्रि-  
योंकी बलसे और वैश्योंकी धनधान्यसे और शूद्रोंकी जन्मसे श्रेष्ठता होतीहै १५५

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥ यो वै युवाप्यधीर्यान  
स्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ १५६ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म  
मयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीर्यानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति ॥ १५७ ॥

टीका—शिरकेवाल सपेद होनेसे वृद्ध नहीं होताहै जो जवानभी पढा लिखा  
होय तौ उसको वृद्ध कहतेहैं ॥ १५६ ॥ जैसे काठका बना हुआ हाथी और जैसे  
चमडेका बना हुआ मृग और विना पढा हुआ ब्राह्मण ये तीनों केवल नामको  
धारण करते हैं शत्रुवध आदि हाथी आदिकोंके कामको नहीं करसकते हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला ॥ यथा चाज्ञेऽफलं  
दानं तथा विप्रोऽनुचोऽफलः १५८ अहिंसयैवं भूतानां कार्यं श्रेयो  
ऽनुशासनमवाक् चैवं मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धैर्यमिच्छता ५९

टीका—जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें निष्फल होताहै और गौवोधे गौ और जैसे  
मूर्खमें दान निष्फल होताहै तैसे श्रौत स्मार्त्तकर्मोंमें अयोग्य होनेसे विना पढा  
ब्राह्मण निष्फल होताहै ॥ १५८ ॥ शिष्योंको अतिहिंसाके विनाही कल्याण  
देनेवाले अर्थकी शिक्षा करनी चाहिये और धर्म बुद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरु-  
षको मधुर कहिये प्रीति उत्पन्न करनेवाली वाणी मंदस्वरसे कहनी चाहिये ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ॥ सं वै सर्वम्वाप्नोति वेदा  
न्तोपमतं फलम् ॥ १६० ॥ नारुंतुदः स्यादात्तोऽपि न परद्रोहकं  
मधीः ॥ ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

टीका—जिसके वाणी और मन दोनो शुद्ध होते हैं और वाणी मिथ्या आ-  
दिसे दूषित नहीं होती और मन रागद्वेष आदिसे दूषित नहीं होताहै अर्थात्

जिसके वाणी और मन निषिद्ध विषयोंसे भली भांति बचे रहतेहैं वह वेदांतके संपूर्ण मोक्षरूप यथार्थ फलको प्राप्त होताहै ॥ १६० ॥ पीडित होनेपरभी किसीसे मर्मको दुःख देनेवाले वचन न कहै और दूसरेके द्रोहकी बुद्धि न करै इसकी जिसवाणीसे दूसरेका मन दुःखी होय ऐसी अनालोक्या कहिये स्वर्गआदि लोकोंकी प्राप्तिसे विरुद्ध वाणीको न कहै ॥ ६१ ॥

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिर्व ॥ अमृतस्येव चांकाई-  
क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ ६२ ॥ सुखं ह्यवपतः शेते सुखं च प्रतिबु-  
ध्यते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ ६३ ॥

टीका—ब्राह्मण सन्मानसे सदा विषके समान ढरै और सदा अमृतके समान अपमानकी चाहना करै ॥ ६२ ॥ दूसरेकरि अपमान किया हुआ पुरुष सुखसे सोता-है और सुखसे जागताहै और सुखसे इस लोकमें विचरताहै और अपमान करनेवाला उस पापसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ॥ भुरौ वसन् संचिनुया-  
द्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ ६४ ॥ तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचो-  
दितैः ॥ वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ ६५ ॥

टीका—जातकर्मको आदिले यज्ञोपवीततक क्रमसे कहे हुए उपायसे संस्कार कियागया ब्राह्मण गुरुकुलमें वास करता हुआ हीले हीले वेदकी प्राप्ति-रूप तपको करै ॥ ६४ ॥ विधिकारिके बतलाये और अपने गृहमें कहे हुए वक्ष्य-माण नियमोंको करके और गुरुकी सेवा आदि व्रतों करिके उपनिषदों समेत मंत्र ब्राह्मणरूप संपूर्ण वेद ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य करि पढनेयोग्य हैं ॥ ६५ ॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तपस्यन्द्विजोत्तमः ॥ वेदाभ्यासो हि विप्र-  
स्य तपः परमिहोच्यते ॥ ६६ ॥ औ हे वस मखाग्रेभ्यः परमं तप्यते  
तपः ॥ यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥ ६७ ॥

टीका—तपको करता हुआ ब्राह्मण सदा वेदहीका अभ्यास करै क्योंकि वेदका पढनाही इस लोकमें ब्राह्मणका परम तप मुनीश्वरोंने कहाहै ॥ ६६ ॥ जो द्विज फूलोंकी मालाको धारण करकेभी अर्थात् ब्रह्मचारीके नियमोंको छोडकरभी प्रतिदिन शक्तिके अनुसार वेदको पढता है वह नस्वशुखतक सर्व देहव्यापी बडेभारी तपको करता है ॥ ६७ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्रं कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव शूद्रं  
त्वमांशु गच्छति सान्वयः ॥ ६८ ॥ मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौ  
ञ्जिवन्धने ॥ तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥ ६९ ॥

टीका—जो द्विज वेदको न पढ़कर अन्यत्र कहिये शास्त्र आदिकोमें श्रम करता है वह जीते हुए पुत्र पौत्रादिको समेत शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ वेदसे द्विजत्वको कहते हैं पहला पुरुषका जन्म मातासे होता है फिर दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकी दीक्षासे होता है यह प्रथम द्वितीय तृतीय जन्मका कहना द्वितीय जन्मकी बडाईके लिये है ॥ ६९ ॥

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सा  
वित्री पिता त्वार्चार्य उच्यते ॥ ७० ॥ वेदप्रदानादाचार्य पितरं  
परिचक्षते ॥ न ह्यस्मिन्नुच्यते कर्म किंचिदामौञ्जिवन्धनात् ॥ ७१ ॥

टीका—उन पहले कहे हुए तीनों जन्मोंमें वेदके ग्रहणके लिये जो यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्म है उसमें इस बालककी माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है ॥ ७० ॥ वेदके पढ़ानेसे मनु आदि आचार्यको पिता कहते हैं उस बालकमें यज्ञोपवीतसे पहले कोई श्रौत स्मार्त्तरूप कर्म नहीं हो सकतौ है ॥ ७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानियमनादृते ॥ शूद्रेण हि समस्तावर्थाव  
द्वेदे न जायते ॥ ७२ ॥ कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥  
ब्रह्मणो ग्रहणं चैवं क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ ७३ ॥

टीका—मौञ्जीबन्धनसे पहले वेदके मंत्रोंका उच्चारण न करै और जिनमंत्रोंसे श्राद्ध क्रिया जाता है उनको छोडकै अर्थात् जिसका पिता मरगया है वह नवश्राद्ध आदिमें मंत्रोंका उच्चारण करै परन्तु उनके सिवाय वेदका उच्चारण न करै क्योंकि जबतक वेदमें अधिकारी नहीं होता तबतक वह शूद्रके तुल्य है ॥ ७२ ॥ जिसे इस बालकको समिध होमो और दिनमें न सोवो इत्यादि व्रतोंका बताना और मंत्रब्राह्मणके क्रमसे वेदका पढ़ना यज्ञोपवीत किये हु-एको कहा है तिससे यज्ञोपवीत न होनेके पहले वेद न पढ़ै ॥ ७३ ॥

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं यां च मेखला ॥ यो दण्डो यच्च वसनं  
तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥ ७४ ॥ सेवेतेर्मास्तु नियमान्ब्रह्मचारी गु-

रौ वसन् ॥ संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्धैर्यथात्मनः ॥ ७५ ॥

टीका—उपनयनकालमें जिस ब्रह्मचारीको जौनसे चर्मसूत्र मेखला दंड वस्त्र गृह्णने कहे हैं गोदानादिक ब्रतोंमेंभी बेई नवीन करै ॥ ७४ ॥ ब्रह्मचारी गुरुके समीप वसता हुआ इंद्रियोंके समूहको वशमें करिके इन आगे कहे हुए नियमोंको अपने तपकी वृद्धिके लिये करे ॥ ७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुंयद्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चैवं  
समिदाधानमेवं च ॥ ७६ ॥ वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसां  
न्ध्रियैः ॥ शुक्तानि र्यानि सर्वाणि प्राणिनां चैवं हिंसनम् ॥ ७७ ॥

टीका—ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करि शुद्ध हो देवऋषि तथा पितरोंका तर्पण करै और प्रतिमाआदिकोंमें हरिहरादिकोंका पूजन करै और प्रातःकाल तथा सायंकाल समिधोंका होम करे ॥ ७६ ॥ शहत और मांसको ब्रह्मचारी त्याग करै और गंध कहिये कपूर चंदन कस्तूरी आदिको न खाय न देहमें लगावै फूलोंकी माला न पहिरै रस जे गुड आदि है तिनको न खाय स्त्रीगमन न करै और शुक्त कहिये सिरका आदि न खाय और जीव हिंसा न करै ब्रह्मचारीको ये सब वर्जित है ॥ ७७ ॥

अभ्यङ्गमर्जनं चाक्षणेरूपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लोभं  
भयं च नर्तनं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परिव्राटं त  
थानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपधातं परस्त्र्यं च ॥ ७९ ॥

टीका—तिल आदिका लगाना आंखोंका आंजना जूता और छातेका धारण करना और काम क्रोध लोभ नाचना गाना बजाना इन सबोंको ब्रह्मचारी वर्जित करै ॥ ७८ ॥ द्यूत कहिये फूसोसे खेलना और वाद कहिये विना प्रयोजन खेगोंसे झगडा करना पराये दोषका कहना झूठ बोलना और मैथुनकी इच्छासे स्त्रियोंका देखना अथवा आलिंगन करना और पराया अपकार इन सबोंका त्याग करै ॥ ७९ ॥

एकैः शयीत सर्वत्र न रतैः स्कन्दयेत्कचित् ॥ कामार्द्धिं स्कन्दय  
ने तो हिंस्ति ब्रतमात्मनः ॥ १८० ॥ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः  
शुक्रमकर्मतः ॥ स्नात्वा कर्मचरित्वा त्रिः पुनर्मासित्यृचं जपेत् ८१

टीका—सदा अकेला सोवै इच्छासे वीर्यको न गिरावै इच्छासे वीर्यको

गिराता हुआ ब्रह्मचारी आपने व्रतका नाश करता है ॥ १८० ॥ ब्रह्मचारी द्विज इच्छाके विना स्वप्नमें वीर्यको गिराकै चंदन पुष्प धूप आदिसें सूर्यका पूजन करि पुनर्माँमैर्विद्वियं इस ऋचाको तीनिवार जपे यही यहां प्रायश्चित्तहै ॥ ८१ ॥

उदकुम्भं समनसो गोशकृन्मृत्तिकांकुशान् ॥ आहरेद्यावदर्थानि  
भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ ८२ ॥ वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म  
सु ॥ ब्रह्मचर्याहरेद्रेक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ ८३ ॥

टीका—पानीका घट फूल गोबर मृत्तिका कुश इनको जितनेसे गुरू का प्रयोजन होय उतनेही गुरूके लिये लावै और प्रतिदिन भिक्षाको लावै ॥ ८२ ॥ वेद यज्ञसे जे हीन नहीं है और अपने नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें कुशलहै उनके घरोंसे सावधान ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा लावै ॥ ८३ ॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥ अर्लाभे त्वन्यगेहानां  
पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ सर्वं वापि चरेद्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ॥  
नियम्य प्रयतो वाचमभिर्शस्तांस्तु व्रजेत् ॥ ८५ ॥

टीका—आचार्यके सपिंडोमे और अपनी ज्ञातिमें कुलमें और बंधु तो मामा आदि हैं तिनमें भीख न मागै और जो अन्यघरोंमें न मिलै तो पहला पहिला छोडिदे अर्थात् पहले बंधुओंमे मागै वहां न मिलै तो ज्ञातिमें और जो ज्ञातिमेंभी न मिलै तो आचार्यकीभी जातिमें मागै ॥ ८४ ॥ पहले कहे हुए वेद यज्ञयुक्त न होय तो कहे हुए गुणो करि हीनभी सब ग्राममें शुद्ध और मौन व्रतधरण करके मागै और पातकी आदिकोंको छोड दे ॥ ८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायासि ॥ सायंप्रातश्च जुहुयात्ता  
भिरग्निमतन्द्रितः ॥ ८६ ॥ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्यं च पाव  
कम् ॥ अनातुरैः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ ८७ ॥

टीका—दूरसे समिधोंको लायके उनहै ऊचे स्थानमें धरै उन समिधोंसे आ-  
लस्य रहित हो संध्या सवरे अग्निमें होम करै ॥ ८६ ॥ रोगी होनेके विना जो  
ब्रह्मचारी सातदिनतक भिक्षा न मागै और सायंकाल प्रातःकाल अग्निमें समि-  
धोंका होम न करै तो उसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजाय तिस पीछे अवकीर्णा  
जो क्षतव्रत है तिसका प्रायश्चित्त करै ॥ ८७ ॥

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्भृती ॥ भैक्षेण वर्तिनो वृत्तिरूप

वाससमां स्मृता ॥ ८८ ॥ व्रतवद्देवदेवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथार्थिवत् ॥  
काममभ्यर्थितोऽश्रीयाद्ब्रतमस्य न लुप्यते ॥ ८९ ॥

टीका—ब्रह्मचारी एकका अन्न न खाय किंतु बहुत घरोंसे लाये हुए भिक्षाके समूहसे जीवै जिस्से भिक्षाके समूहसे ब्रह्मचारीकी जीविका मुनियोने उपवासके तुल्य कही है ॥ ८८ ॥ देव देवसकर्ममें देवताके उद्देश करिके प्रार्थना किया गया ब्रह्मचारी व्रतके समान अर्थात् व्रतसे विरुद्ध मधुमांस-आदिको छोड़के एककाभी अन्न इच्छापूर्वक भोजन करै तौभी भिक्षावाचि नियमरूप इसका व्रत लुप्त नहीं होता है ॥ ८९ ॥

ब्राह्मणस्यैवं कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ॥ राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नै-  
तत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव  
वा ॥ कुर्यादयने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥ १९१ ॥

टीका—वेदार्थक जाननेवाले पंडितोने यह एकान्न भोजनरूप कर्म ब्राह्मण-  
हीके लिये कहा है क्षत्रिय वैश्यके लिये तौ यह ऐसा नहीं कहा है ॥-१९० ॥  
आचार्यके कहनेसे अथवा न कहनेसे आपही प्रतिदिन पढ़नेमें और गुरुके  
हितकारी कामोंमें उद्योग करै ॥ १९१ ॥

शरीरं चैवं वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ॥ निर्यम्य प्राञ्जलिस्ति-  
ष्ठेद्रीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ १९२ ॥ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वा-  
चारः सुसंयतः ॥ आस्यतामिति चोक्तः संन्यासीतांभिर्मुखं गुरोः १९३

टीका—देह बुद्धि इंद्रिय मन इनको रोकि हाथ जोरिके गुरुके मुखको देख-  
ता हुआ खडा रहै बैठे नहीं ॥ १९२ ॥ सदा ओढ़नेके वस्त्रसे दाहिनी बाँहको  
बाहर किये हुए सुंदर आचारयुक्त वस्त्रसे देह ढके हुए बैठिये ऐसे गुरुकरि  
कहा गया ब्रह्मचारी गुरुके सन्मुख बैठे ॥ १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेपथुः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ ॥ उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्यं  
चरमं चैवं संविशेत् ॥ १९४ ॥ प्रतिश्रवणसंभाषे श्यानो न सर्मा  
चरेत् ॥ नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥ १९५ ॥

टीका—गुरुके समीप सदा गुरुसेहीन अन्न वस्त्र खाय पहिरै और सबेरे दोघड़ी  
रातिरहे गुरुसे पहले उठै और संध्याको गुरुके सोनेके पीछे आप सोवै ॥ १९४ ॥



शय्यामें पड़ा हुआ आसनपर बैठा हुआ भोजन करता हुआ और मुह फेरे खड़ा हुआ ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञाका स्वीकार और उनसे वार्त्तालाप न करै ९५॥

आसीनस्य स्थितः कुंर्यादभिगच्छंस्तु निष्ठितः ॥ प्रत्युद्गम्य त्वां  
व्रजतः पश्चाद्भ्रूवस्तुं धावतः ॥ ९६ ॥ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरं  
स्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥ प्रणम्य तु शयानस्यनिदेशे चैवतिष्ठतः ९७ ॥

टीका—आसनपर बैठे हुए गुरु आज्ञादे तौ आप आसनसे उठि खड़ा होकै और जो खड़े होकै गुरु आज्ञादे तौ उनके सन्मुख दो चार कदम चलकै और जब गुरु सन्मुख आवै तौभी उनके सन्मुख जायकै और जब गुरु दौड़ते आज्ञा दे तब उनके पीछे दौरकै आज्ञाका अंगीकार और वार्त्तालाप करै ॥ ९६ ॥ गुरुमुख फेरे हुए आज्ञा देते होय तौ उनके सन्मुख होकै और दूरस्थित होय तौ उनके समीप आयकै और सोते हुए आज्ञा करै तौ नम्र होकै और जो समीप होय तौभी नम्र होकै आज्ञाका अंगीकार और वार्त्तालाप करै ॥ ९७ ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न  
यथेष्टासनो भवेत् ॥ ९८ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केव  
लम् ॥ न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ ९९ ॥

टीका—गुरुके समीप शिष्यके शय्या और आसन नीचे ही होने चाहिये और गुरुके देखते हाथ पाँव फैलाकै इच्छा पूर्वक नबैठै ॥ ९८ ॥ पीठ पीछे भी गुरुका केवल नाम अर्थात् उपाध्याय आचार्य इत्यादि सत्कारके उपनामोंके बिना उच्चारण न करै और हँसीसे इनके चलने बोलने आदिकी नकल नकरै ९९

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ॥ कर्णौ तत्र पिधांतव्यौ ग  
न्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ २०० ॥ परीवादात्स्वरो भवति श्वा वै भ  
वति निन्दकः ॥ परिभोक्ता कृमि भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ १ ॥

टीका—जहां गुरुका परिवाद अर्थात् उनमें वर्त्तमान दोषोंका कहना और निन्दा अर्थात् झूठे दोष लगाना ये दोनोवातै जहां होतै होय वहां स्थित शिष्यको कान मूंदलेने चाहिये अथवा वहांसे अन्यत्र चला जाना चाहिये ॥ २०० ॥ गुरुके परीवादसे शिष्य गधा होताहै और निन्दा करनेवाला कुत्ता होता है और परिभोक्ता कहिये अनुचित गुरुके धनसे जीनेवाला कृमि होताहै और मत्सरी कहिये गुरुका उत्कर्ष न सहनेवाला कीट कहिये कृमिसे कुछ मोटा होताहै ॥ १ ॥

दूरस्थो नात्र येदेनं न कुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ॥ यानासनस्थश्चै<sup>२</sup>  
 वै<sup>३</sup> नमवरुह्याभिर्वादयेत् ॥२॥ प्रतिवातेऽनुवाते च नासीतं गुरुणा  
 सह ॥ असंश्रवे चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥ ३ ॥

टीका—दूरस्थित शिष्य दूसरेको नियुक्त करके मालावस्त्र आदिसे गुरुकी पूजाको न करै तथा क्रोधमें होके न करै और स्त्रीके पास स्थित गुरुकी आपभी पूजा न करै और सवारी तथा आसनपर बैठा हुआ शिष्य, यान तथा आसनको छोडके गुरुको नमस्कार करै ॥ २ ॥ जो पवनं गुरुकी ओरसे शिष्यकी और आवै वह प्रतिवातहै और जो शिष्यकी ओरसे गुरुकी और आवै वह अनुवा-तहै इन दोनोमें गुरुके साथ न बैठै और जहां गुरु न सुनै वहां गुरुके मध्ये अथवा और किसीके मध्ये कुंठ न कहै ॥ ३ ॥

गोऽश्वोऽयानप्रासादप्रस्तरेषु कैटेषु च ॥ आसीत गुरुणा सार्धं  
 शिलाफलकनौषु च ॥ ४ ॥ गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिर्माचरे  
 त् ॥ न चानिमृष्टो गुरुणा स्वान्गुरुनभिर्वादयेत् ॥ ५ ॥

टीका—बैल घोड़ा ऊंट जिनमें जुते होंव ऐसी सवारियोंमें अर्थात् रथ छक-डा आदिमें महलके ऊपर गचपर चटाईपर शिलापर तख्तपर और नावमें गुरुके साथ बैठै ॥ ४ ॥ जो गुरुके गुरु आवैं तो गुरुके समान उनकाभी नमस्कार आदि सत्कार करै और गुरुके घरमें बसता हुआ शिष्य गुरुकी आज्ञा विना अपने गुरु माता चाचा आदिको प्रणाम न करै ॥ ५ ॥

विद्यागुरुष्वेतदेवं नित्यां वृत्तिः स्वयोनिषु ॥ प्रतिषेधत्सु चार्धमा  
 न्हितं चोपदिशस्त्वपि ॥ ६ ॥ श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समा  
 चरेत् ॥ गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्ववन्धुषु ॥ ७ ॥

टीका—आचार्यसे भिन्न उपाध्याय आदि विद्यागुरु होते हैं उनमें तथा स्व-योनि जे चाचा ताऊहैं उनमें और अघर्मसे जो वचावैं तथा जो हितका उपदे-श करै उनमें गुरुके समान वर्तना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रेयस्सु कहिये विद्या और तपसे भरे पुरोमें और श्रेष्ठ गुरुपुत्रोंमें तथा समान जातिके गुरुपुत्रोंमें औ-र गुरुके भाई बंधुओंमें और चचाताऊ आदिकोंमें गुरुके समान वर्तै ॥ ७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥ अर्घ्यापयन्गुरुमुं

तो गुरुवन्मानमर्हति ॥ ८ ॥ उत्सादनं च गात्राणां स्नोपनोच्छि  
ष्टभोजने ॥ न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पार्दयोश्चावनेजनम् ॥ ९ ॥

टीका—छोटा होय अथवा समान अदस्था का होय वा ज्येष्ठ होय अथवा शिष्य होय वेदपठानेको समर्थ अर्थात् वेद पढाहुआ गुरुपुत्र जो यज्ञकर्ममें ऋत्विक् होय अथवा नहोय यज्ञ देखनेके लिये आया हुआ गुरुके समान पूजाके योग्य है ॥ ८ ॥ देहमें उवटना करना स्नान कराना जूटा भोजन करना और पैरोंका धोना इतनीवाते गुरुपुत्रकी न करै अर्थात् गुरुहीकी करै ॥ ९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सर्वर्णा गुरुर्योषितः ॥ असवर्णास्तु संपूज्याः  
प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २१० ॥ अभ्यंजनं स्नोपनं च गात्रोत्सा  
दनमेव च ॥ गुरुपत्न्यां न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥ ११ ॥

टीका—गुरुकी सवर्णास्त्रियाँ गुरुके समान पूजने योग्य हैं और जो असवर्णा होंय तो अभ्युत्थान और नमस्कारसे सत्कार करने योग्य हैं ॥ २१० ॥ देहमें तेल आदिका लगाना न्हवाना देहमें उवटना करना और फूलोंकी माला आदिसे बाल गूथना इतनी बातें गुरुकी स्त्रीकी न करै ॥ ११ ॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पार्दयोः ॥ पूर्णविंशतिवर्षेण गुण  
दोषौ विज्ञानता ॥ १२ ॥ स्वभाव एष नारीणां नारीणामिह दूषण  
म् ॥ अतोऽर्थात्र प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ १३ ॥

टीका—गुणदोषके जाननेवाले तरुण पूरेवीसवर्षके शिष्य करि तरुणी गुरुकी स्त्री पावपकडकर नहीं नमस्कार करने योग्य हैं किन्तु दूरसे भूमिमें दंडवत प्रणाम करै ॥ १२ ॥ यह स्त्रियोंका स्वभाव है कि अपने शृंगार आदि चेष्टाओंसे मोहित कर पुरुषोंको दूषण देना इसी कारणसे पंडितस्त्रियोंमें प्रमत्त नहीं होते है ॥ १३ ॥

अविद्वांसर्मलं लोके विद्वांसर्मपि वापुनः ॥ प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं का  
मक्रोधवशानुगम् ॥ १४ ॥ मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्षासना  
भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसर्मपि कर्षति ॥ १५ ॥

टीका—मैं विद्वान् हौं जितेन्द्रिय हौं ऐसा समझके स्त्रियोंके समीप न बैठना चाहिये देहके धर्मसे कामक्रोधके वशीभूत पुरुष विद्वान् हो अथवा मूर्ख होय उसको स्त्रियाँ कुमारीमे लेजानेको समर्थ है ॥ १४ ॥ माता बहिनि अथवा पुत्री इन-

के साथ एकान्तस्थानमें न बैठे क्योंकि इंद्रियोंका समूह बलवान् है शास्त्रकी री-  
तिसे चलनेवालेभी पुरुषको वशमें करलेताहै ॥ १५ ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युक्तीनां युवां भुवि ॥ विधिवद्रन्दनं कुर्याद  
सावर्हमिति श्रुवन् ॥ १६ ॥ विप्रोप्य पादग्रहणमन्वहं चाभिर्वादन  
म् ॥ गुरुद्वारेषु कूर्वात सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥

टीका—तरुणशिष्य तरुणी गुरूकी स्त्रियोंको अमुकशर्मा यह मैं तुमको न-  
मस्कार करता हूँ ऐसे कहिके पहले कही हुई विधिसे भूमिमें दूरसे नमस्कार  
करै ॥ १६ ॥ शिष्टपुरुषोंका यह आचार है इस बातको जानताहुआ तरुण  
शिष्य परदेशसे आयके तरुणी-गुरूकी स्त्रियोंके कही हुई विधिसे चरण छुवै  
और प्रतिदिन दूरसे भूमिमें नमस्कार करै ॥ १७ ॥

यथा खनन्वनित्रेण नरो वार्याधिगच्छति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां  
शुश्रुपुरधिगच्छति १८ मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छि  
खाजटः ॥ नै न ग्रामेऽभिनिर्मलोचेन् सूर्यो नाभ्युदित्यत्कचित् १९

टीका—जैसे कुदालीसे खोदता हुआ पानीको प्राप्त होता है ऐसेही गुरुमें  
स्थित विद्याको शिष्य सेवा करनेसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारीके तीनि  
प्रकार कहते हैं सब शिर और डाढी मूछ मुडें होय अथवा जटाधारी होय अ-  
थवा जिसकी शिखाही जटा होगई होय ऐसे ब्रह्मचारीको ग्राममें सोते हुए क-  
भी सूर्य अस्त न होय और न उदय होय ॥ १९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ॥ निर्मलोचेद्राप्यविज्ञा-  
नार्जपञ्चपवसेदिनम् ॥ २२० ॥ सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽ-  
भ्युदितश्च यः ॥ प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महत्तैनासा ॥ २१ ॥

टीका—इच्छासे सोते हुए ब्रह्मचारीको निद्राके वशमें होनेसे अज्ञाननासे जो  
सूर्य उदय हो आवें अथवा अस्त होजाय तौ सावित्रीको जपताहुआ एकदिन उ-  
पवासकरे रात्रिकी भोजनकरै ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी सूर्यके अस्तसमय अथवा  
उदयके समय सोता रहै और प्रायश्चित्त न करै तौ पापकरि युक्त होकै नरकको  
जाय तिससे यथोक्त प्रायश्चित्त करै ॥ २१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुंभे संध्ये समाहितः ॥ शुचौ देशे जपञ्च  
प्यमुपासीत यथाविधि ॥ २२ ॥ यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चि

त्समाचरेत् ॥ तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्यं रमेभ्यः ॥ २३ ॥

टीका—आचमन करिकै पवित्र हो मनको एकाग्र करि शुद्धदेशमें सावित्रीको जपता हुआ विधिपूर्वक दोनो कालकी संध्यर्षोकी उपासना करै ॥ २२ ॥ जो स्त्री अथवा शूद्र कुछ श्रेय अर्थात् अच्छा काम करै तौ उसकोभी मन लगाकै करै अथवा शास्त्रकरि नही मने किये हुए जिस काममें इसका मन लगे उसकोभी करै ॥ २३ ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थां धर्म एव च ॥ अर्थ एवैर्वा श्रेय-  
स्त्रिवर्गै ति तु स्थितिः ॥ २४ ॥ आचार्या ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्ति  
प्रजापतेः ॥ माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः ॥ २५ ॥

टीका—श्रेय क्या है सो कहते हैं ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि सुखके कारण होनेसे धर्म और अर्थ श्रेय है और कोई कहते हैं कि सुखका हेतु और अर्थका-  
मका उपाय होनेसे धर्मही श्रेय है और कोई कहते हैं कि धर्म और कामकाभी सहायक होनेसे लोकमें अर्थही श्रेय है अब कुछकभट्ट अपना मत कहते हैं आप-  
समें विरोध न रखनेवाला धर्म अर्थ कामरूप त्रिवर्गही पुरुषार्थतासे श्रेय है यह निश्चय है ॥ यह बुभुक्षु जो भोगकी इच्छावाले है उनको उपदेश है मुमुक्षु जो मोक्षचाहनेवाले है उनको नही उनको तौ मोक्षही श्रेय है सो छठे अध्यायमें क-  
है ॥ २४ आचार्य वेदांतमें कहे हुए ब्रह्म परमात्मकी मूर्ति कहिये शरीर है और पिता हिरण्यगर्भकी मूर्ति है और माता धारण करनेसे पृथिवीकी मूर्ति है और अपना सहो-  
दर भाई क्षेत्रज्ञकी मूर्ति है तिससे देवतारूपये अपमान करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥ नार्तेनाप्यवमन्त-  
व्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २६ ॥ यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सं-  
भवे नृणाम् ॥ न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तु वर्षशतैरपि ॥ २७ ॥

टीका—आचार्य, पिता, माता, ज्येष्ठसगा भाई ये पीडितपुरुष करकैभी न-  
ही अपमान करनेयोग्य हैं और विशेषतासे ब्राह्मण करके ॥ २६ ॥ संततिके संभव कहिये गर्भाधानके पीछे उत्पत्ति पालन आदिमें मातापिता जिस क्लेशके सहते हैं उसका ऋण सैकरों वर्षोंमेंभी नही दूरि होसकता है इसकारण देवतारूप माता पिता अपमान करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २७ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥ तेष्वेव त्रिषु तृष्टेभुं

तपैः सर्वं समाप्यते ॥ २८ ॥ तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उ-  
च्यते ॥ न त्रैभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २९ ॥

टीका—मातापिताका और आचार्यका सदा प्रिय करै अर्थात् जिसमें वे-  
प्रसन्न रहैं सो करै क्योंकि उनके प्रसन्न रहनेसे सब तप पूरे होते हैं ॥ २८ ॥  
उन तीनोंकी सेवा परम कहिये उत्कृष्ट तप कहाताहै उनकी आज्ञाविना  
और किसी धर्मको न करै ॥ २९ ॥

त एव हि त्रयो लोकैस्तु एव त्रय अंश्रमाः । त एव हि त्रयो  
वेदास्तु एवोक्तान्त्रयोऽग्र्यः ॥ २३० ॥

टीका—वेद तीनों अर्थात् माता पिता और गुरु तीनों लोकोंकी प्राप्तिका  
कारण होनेसे तीनोंलोकहैं और वेही गृहस्थ आदि तीनों आश्रमोंके देनेवाले  
होनेसे ब्रह्मचर्य आदि तीनों आश्रमहैं और वेही तीनों वेदोंके जपफलका उपाय  
होनेसे तीनों वेदहैं और वेही तीनों अग्नियोंमें करनेयोग्य यज्ञ आदिके फल देने  
वाले होनेसे तीनों अग्नि हैं ॥ २३० ॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु ।  
साग्नित्रेता गरीयसी ॥ ३१ ॥ त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीँल्लोकां न्वि-  
जयेद्गृही । दीप्यमानः स्वर्वपुषा देववर्दि वि मोदते ॥ ३२ ॥

टीका—पिताही गार्हपत्य अग्नि है और माता दक्षिणाग्नि है और आचार्य  
आहवनीय है सो ये तीनों अग्नि अतिश्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें प्रमादको न  
करता हुआ ब्रह्मचारी तौ सर्वोत्कर्षसे वर्त्तमान होताही है परंतु गृहस्थभी तीनों  
लोकोंको जीति लेता है और अपने शरीरसे प्रकाशमान हो सूर्यआदिदेवता-  
ओंके समान स्वर्गमें आनंद करताहै ॥ ३२ ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया  
त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥ सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते  
त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्यां फलाः क्रियाः ३४

टीका—माताकी भक्तिसे इस भूलीकको और पिताकी भक्तिसे मध्यम  
लोकको और आचार्यकी भक्तिसे हिरण्यगर्भके लोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥  
जिसने इन तीनों अर्थात् माता पिता और आचार्यका आदर किया उसको स-  
ब धर्मफल देनेवाले होतेहैं और जिसने अनादर किया उसको सब श्रौत स्मार्त  
कर्म निष्फल होते हैं ॥ ३४ ॥

यावन्नयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥ तेष्वेवं नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥ ३५ ॥ तेषामनुपरोधेन पारत्रयं यद्यदाचरेत् । तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ ३६ ॥

टीका—जबतक ये तीनों जीवें तबतक स्वतंत्र होकै और धर्मको न करै प्रिय और हितमें मन लगाकै उन्हीकी सेवा करै ॥ ३५ ॥ उनकी सेवामें अंतर न पडनेसे उन्हीकी आज्ञासे मन वचन कर्मसे जो परलोकसंबंधी कर्म करै सो मैने यह कियाहै ऐसे उनसे प्रीछे कहदे ॥ ३६ ॥

त्रिष्वेते ष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समार्ष्यते । एष धर्मः परः साक्षाद्दुर्धर्मोऽन्य उच्यते ॥ ३७ ॥ श्रद्धधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ ३८ ॥

टीका—इन तीनोंकी सेवा करनेपर पुरुषका संपूर्ण श्रौत स्मार्त्त कर्मफल मिलनेसे किया हीसा होताहै तिससे यह धर्म श्रेष्ठ है और साक्षात् पुरुषार्थका साधनहै और अन्य अग्निहोत्र आदि स्वर्गादिकोंका साधन होनेसे छोटाही धर्म है ॥ ३७ ॥ श्रद्धायुक्त हो शुभकहिये जिसकी शक्ति देखीहै ऐसी गारुड आदि विद्याको शूद्रसेभी ग्रहण करले और चांडालसेभी मोक्षके उपाय तत्वज्ञानको ग्रहण करै और अपने कुलसे नीचे कुलकेभी स्त्रीरत्नको व्याह करनेके लिये ग्रहण करै ॥ ३८ ॥

विषादमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सदृत्तं ममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ ३९ ॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः २४० ॥

टीका—विषमं जो अमृत मिलाहोय तौ विषको दूरि करकै अमृत लेना चाहिये और बालकसेभी हितवचन लेना चाहिये और सज्जनका चरित्र शत्रुसेभी लेना चाहिये और अपवित्र स्थानसेभी सुवर्ण आदि लेने चाहिये ॥ ३९ ॥ स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुंदरवचन और नानाप्रकारके शिल्प कहिये कारीगरी चित्रलिखनां आदि सर्वोंसे लेने चाहिये ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥ अनुव्रज्या च शुश्रूषायावदध्ययनं गुरोः ॥ ४१ ॥ नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं बसेत् ॥ ब्राह्मणे चाननूचने काङ्क्षन्नातिमनुत्तमाम् ॥ ४२ ॥

टीका—आपत्तिप्रसमयमें अब्राह्मणसे अर्थात् ब्राह्मण भिन्न क्षत्रिय अथवा वैश्यसे पढना कहाहै और अनुगम आदि रूप सेवा जबतक पढै तभीतक करै गुरु होनेसे पैर धोना जूठा खाना आदिभी प्राप्तहुए से न करै जबतक पढै तभीतक क्षत्रियका गुरुत्वहै पीछे नहीं सो व्यासने कहाहै (मंत्रदः क्षत्रियो विप्रैः शुश्रूष्योऽनुगमादिना॥ प्राप्तविद्यो ब्राह्मणस्तु पुनस्तस्य गुरुः स्मृतः) अर्थ—मंत्रका देनेवाला क्षत्रिय ब्राह्मणों करिके अनुगमनआदिसे सेवा करनेयोग्य है और विद्या पानेके पीछे फिर उसका गुरु कहा गयाहै इति ॥ ४१ ॥ अनुत्तमा कहिये मोक्षरूप गतिको चाहता हुआ शिष्य ब्राह्मण भिन्न अर्थात् क्षत्रिय आदि गुरुके स्थानमें जन्मभर ब्रह्मचर्ययुक्त वास न करै और जो अंगोसमेत वेद न पढा होय ऐसे ब्राह्मणकेभी स्थानमें वास न करै ॥ ४२ ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोःकुले ॥ युक्तः परिचरेदेनमां  
शरीरविमोक्षणात् ॥ ४३ ॥ आं सर्भास्ते शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते  
गुरुम् ॥ स गच्छत्यर्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्भ्यं शाश्वतम् ॥ ४४ ॥

टीका—जो गुरुके कुलमें नैष्ठिक ब्रह्मचर्यरूप जन्मभर वास करना चाहै तौ जबतक जीवै तबतक अर्थात् देह छूटनेपर्यंत तत्पर होके गुरुकी सेवा करै ॥ ४३ ॥ इसका फल कहतेहैं ॥ जो शिष्य शरीरकी समाप्ति कहिये मरनेतक गुरुकी सेवा करताहै वह ब्रह्मके शाश्वत कहिये अविनाशी स्थानमें प्राप्त होताहै, अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ ४४ ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ॥ स्नास्यस्तु गुरुर्णाज्ञप्तः  
शक्त्यां गुर्वर्थमाहरेत् ॥ ४५ ॥ क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानह  
मासनम् ॥ धान्यं शार्कं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥ ४६ ॥

टीका—गुरुदक्षिणा देनेके धर्मका ज्ञाननेवाला ब्रह्मचारी स्नानसे गौ वस्त्र आदि कुछ धन गुरुको अवश्य न देवै और स्नान करता हुआ गुरुकी आज्ञा पाके शक्तिके अनुसार किसी धनीसे मागकरभी अथवा दान आदिसे धनको लायके गुरुको अवश्य दे ॥ ४५ ॥ खेत, सोना, गौ, घोडा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शार्क, और वस्त्र ये सब अथवा इनमेंसे पहले कहे हुएओंको छोडके जो मिलसके सो गुरुको दे और जो कुछ न मिलै तौ शाकही दे ॥ ४६ ॥

आचार्यं तु खलु प्रेतं गुरुपुत्रे गुणान्विते ॥ गुरुदारे सपिण्डे वा



गुरुवद्वृत्तिर्माचरेत् ॥ ४७ ॥ एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहा-  
रवान् ॥ प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ ४८ ॥

टीका—नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुके मरनेपर जो गुरुपुत्र गुणयुक्त होय तौ उस-  
को गुरुके समान मानै और गुरुपुत्र नहोयतौ गुरुकी स्त्रीको स्त्री न होय तौ स-  
पिंड भाई आदिकोंको गुरुके समान मानै ॥४७॥ जो इनमेंसे गुरुपुत्रआदि कोई न  
होय तौ आचार्यकी अग्निके समीप रहने बैठने और संध्या सवेरे समिधोंके हो-  
म आदिसे अग्निकी सेवा करता हुआ अपनी देह अर्थात् अपनी देहमे स्थित जी-  
वको ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य करै ॥ ४८ ॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविर्भूतः ॥ स गच्छत्युत्तमस्थानं  
न चेहाज्जायते पुनः ॥ २४९ ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

टीका—जो ब्राह्मण ऐसे अखंड ब्रह्मचर्यको निवाहताहै वह उत्तम ब्रह्मके  
स्थानमें प्राप्त होताहै और कर्मोंके वशसे इस संसारमे जन्मको नही लेताहै ॥४९॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुल्लुकभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरो वैवेदिकं व्रतम् ॥ तदार्धिकं पादिकं वा  
ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥ वेदानधीत्यं वेदो वा वेदं वापि यथा  
क्रमम् ॥ अविर्भूतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

टीका—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, इन तीनोंको गुरुकुलमें छत्तीस वर्ष पढ़ै अर्थात्  
प्रत्येक वेदकी शाखाको बारहवर्ष पढ़ै अथवा उसके आधे अठारहवर्षतक पढ़ै तब  
प्रत्येक वेदकी शाखाका छ वर्ष पढ़ना हुआ अथवा उसकी चौथाई नववर्ष पर्यंत  
पढ़ै तौ प्रत्येक वेदकी शाखाके तीनिवर्ष हुए अथवा कही हुई अवधिके भीतर  
बाहर जितने कालमें वेदोंको पढ़ै उतने कालपर्यंत गुरुकुलमें वासिकै ब्रह्मचर्य  
व्रत करै ॥१॥ क्रमसे तीनोवेदोंकी शाखाओंको अथवा दो वेदोंकी शाखाओंको  
अथवा एक वेदकी शाखाको मंत्र ब्राह्मणके क्रमसे पढ़कै अविर्भूत ब्रह्मचर्य कहिये  
पहले कहे हुए स्त्रीसंग मधुमांसका त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे युक्त वह गृहस्थाश्रममें  
प्रवेश करै अर्थात् गृहस्थके लिये कहे हुए कर्मोंको करै ॥ २ ॥

तं प्रतीतिं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥ स्रग्विणं तल्पं आसीन  
मर्हयेत्प्रथमं गवां ॥ ३ ॥ गुरुणोनुमतैः स्नात्वा समावृतो यथा  
विधि ॥ उद्वहेत द्विजो भार्या-सर्वणी लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

टीका—ब्रह्मचारीके धर्म करनेसे प्रसिद्ध और पिता वेदरूप भागके लेनेवा-  
ले अर्थात् पितृसे अथवा पिताके अभावमें आचार्य आदिसे वेद पढे हुए ब्रह्म-  
चारीको मालासे अलंकृत करि उत्तम शय्यापर बैठाया पिता अथवा आचार्य  
विवाहसे पहलेगौ है साधन जिसका ऐसे मधुपर्कसे पूजन करै ॥ ३ ॥ गुरुकी  
आज्ञासे निजगृहकी विधिपूर्वक स्नान समावर्त्तन करि समान वाणीऔर शुभ ल-  
क्षणो करि युक्त कन्यासे विवाह करै ॥ ४ ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ सां प्रशस्तां द्वि  
जांतीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ महान्त्यं पिं समृद्धानि गो  
जाविधनधान्यतः ॥ स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो माताकी सपिंडा कहिये सातपीढीमें न होय सगोत्राभी न होय और  
पिताके गोत्रमें न होय ऐसी स्त्री ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको अग्निहोत्र और संतति  
उत्पन्न करना आदि कर्मोंमें उत्तमहै ॥ ५ ॥ ऊंचेभी होय और गौ, बकरी, भेड़, धन-  
धान्य इनसे भरे पूरे भी होनेपर आगे कहे हुए सात कुलों कन्यासे विवाह न करै ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामर्याव्यप  
स्मारिष्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥ नोद्वहेत्कपिलां कन्यां  
नाधिकार्ङ्गिर्न रोगिणीम् ॥ नांलोमिकां नातिलोमां न वाचां  
टां न पिङ्गलां ॥ ८ ॥

टीका—वे कुल कहते हैं ॥ हीनक्रिय अर्थात् जातकर्मआदि क्रियाओंसे र-  
हित १ स्त्रीजनक जिसमें स्त्रियाँही उत्पन्नहोतीहोय २ वेद पढेबेसे रहित ३ बहुत-  
से रोमाओंसे युक्त ४ बवासीररोगयुक्त ५ क्षयरोगयुक्त ६ मंदाग्रियुक्त ७ अ-  
पस्मारकहिये मिरगीयुक्त ८ श्वेतकुष्ठयुक्त ९ गलत कुष्ठयुक्त १० इन दशकुलोंको  
छोडदे अर्थात् इन कुलोंकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ७ ॥ भूरे बालोंकी अधिक  
अंगकी जैसे छ अंगुलीकी सदारोगिनरहै जिसके रोम न होय जिसके बहुत रोम  
होय बहुत बोलनेवाली आसोंमें कंजी होय ऐसी कन्यासे विवाह नकरै ॥ ८ ॥

नेक्षवृक्षनदीनाम्नी नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यह्यिप्रेष्यनां

म्रीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गांगीं सौम्यनैम्रीं हंस  
वारणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां सूद्रङ्गी मुद्रहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

टीका—नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ पर्वत पक्षी सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ९ ॥ जिसके अंगमें कुछ व्यंग नहीं मधुरनामवाली हंस अथवा हाथी इनोके समान गमनकरनेवाली सूक्ष्म लोमवाली बारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाहकरना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत तां  
प्राज्ञः पुत्रिकार्धमशङ्कया ॥ ११ ॥ सर्वर्णस्य द्विजातीनां प्रशस्ता  
दारकर्मणि ॥ कर्मतस्तु प्रवृत्तानामिमांः स्युः क्रमशो वरैः ॥ १२ ॥

टीका—जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहै पुत्रिका उसको कहते हैं कि जिसका पिता पहले यह कहै कि इसका पुत्र होगा वह मेरा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न होय उसकीभी बुद्धिमान न व्याहै अथवा जिसका पिता न जाना जाय उसको अधर्म शंका कहिये जारकी शंकासे न व्याहै ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको प्रथम विवाह करनेमें सर्वर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्या श्रेष्ठ है और फिर क्रमसे जो विवाह करना चाहै तौ उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो कही जायगी वे श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वां च विशः स्मृते ॥ ते च स्वां  
च व राज्ञश्च ताश्च स्वां चार्जन्मनः ॥ १३ ॥ न ब्राह्मणक्षत्रिय  
योरापि द्यपि हि तिष्ठतोः ॥ कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्या  
पदिश्यते ॥ १४ ॥

टीका—शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊंची जातिकी वैश्या आदि तीनि नही होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोने कही है और क्षत्रियके वैश्या शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया वैश्या शूद्रा और ब्राह्मणी ये चार स्त्रिया कही है ॥ १३ ॥ गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको आपत्तिमें भी अर्थात् सर्वर्णकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी कन्यासे विवाह करना नहीं कहा है यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उलटे विवाहके मध्ये है और अनुलोम कहिये सीधेमें तौ कही चुके हैं ॥ १४ ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्ग्रहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येवं नयन्त्या  
शुं संसंतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतन  
यस्य च । शौनकस्य सुतोर्पत्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

टीका—सवर्णाको विनाश्याहे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शास्त्रके विचार  
विना हीन जाति कहिये शूद्रसे विवाह करताहै वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र  
पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र कर देता है ॥ १५ ॥ शूद्राकन्याके साथ वि-  
वाह करनेसे पतितहीसा होताहै यह अत्रि और गौतमका मतहै और शूद्रामें पुत्र  
उत्पन्न होनेसे पतित होताहै यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान  
होनेसे पतित होता है यह ऋगुका मतहै अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रसे  
उत्पन्नहैं पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होताहै ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो धान्यधोगतिम् ॥ जनयित्वा सुतं  
तस्यां ब्राह्मण्यादेवं हीयते ॥ १७ ॥ देवपिन्यातिथेयानि तत्प्रधा  
नानि यस्य तु ॥ नांश्नन्ति पितृदेवास्तत्र च स्वर्गं स गच्छति ॥ १८ ॥

टीका—शूद्राके साथ भोगकरकै ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र  
उत्पन्न करकै ब्राह्मणपदसे ही रहित होजाताहै ॥ १७ ॥ देवहोमआदि और पित्र्य-  
श्राद्धआदि तथा आतिथ्यअतिथिभोजनआदि इनको जिसके शूद्रा करतीहै उस हव्य  
और कव्यको देवता और पितृ नही खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैवं प्रसूर्तस्य  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेहं हि  
ताहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्नि बोधत ॥ २० ॥

टीका—शूद्राका ओठचुंबन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और  
उसीमें संतति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणआदि चारो  
वर्णोंके कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आंगे कहते हैं-  
ऐसे आठविवाहोंकी संक्षेपसे सुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो देवस्तथैवोषः प्रजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैवं  
पैशाचश्चाष्टमोऽर्धमः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च  
यस्य यौ ॥ तद्गः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

म्रीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गार्गी सौम्यनैर्मीं हंस  
वौरणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदर्शनां मृद्वङ्गी मुद्वहेत्त्रियम् ॥ १० ॥

टीका—नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ  
पर्वत पक्षी सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ९ ॥  
जिसके अंगमें कुछ व्यंग्र नहीं मधुरनामवाली हंस अथवा हाथी इनोके समान  
गमनकरनेवाली सूक्ष्म लोमवाली बारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर  
है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाहकरना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपर्यच्छेत तां  
प्राज्ञः पुत्रिकार्धमशङ्कया ॥ ११ ॥ सर्वर्णामे द्विजातीनां प्रशस्ता  
दारकर्मणि ॥ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमांः स्युः क्रमशो वराः ॥ १२ ॥

टीका—जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहै पुत्रिका  
उसको कहते हैं कि जिसका पिता पहले यह कहै कि इसका पुत्र होगा वह मे-  
रा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न हो-  
य उसकीभी बुद्धिमान न व्याहै अथवा जिसका पिता न जाना जाय उसको  
अधर्म शंका कहिये जारकी शंकासे न व्याहै ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वै-  
श्यको प्रथम विवाह करनेमें सवर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्यार श्रेष्ठ है और  
फिर क्रमसे जो विवाह करना चाहै तौ उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो क-  
ही जायगी वे श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वां च विशः स्मृते ॥ ते च स्वां  
च व राज्ञश्च ताश्च स्वां चाग्रजन्मनः ॥ १३ ॥ न ब्राह्मणक्षत्रिय  
योरार्षं द्यपि हि तिष्ठतोः ॥ कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्या  
पदिश्यते ॥ १४ ॥

टीका—शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊँची जातिकी वैश्या आदि तानि नहीं  
होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोने कही है और क्षत्रि-  
यके वैश्या शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया वैश्या शूद्रा और ब्राह्मणी  
ये चार स्त्रिया कही है ॥ १३ ॥ गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको  
आपत्तिमें भी अर्थात् सवर्णकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी क-  
न्यासे विवाह करना नहीं कहा है यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उल्टे विवाहके  
मध्ये है और अनुलोम कहिये सीधेमें तौ कही चुके हैं ॥ १४ ॥

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्ग्रहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येवं नयन्त्या  
शुं संतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रैरुतथ्यतन  
यस्य च । शौनकरस्य सुतोर्पत्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

टीका—सवर्णाको विनाश्याहे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शास्त्रके विचार  
विना हीन जाति कहिये शूद्रासे विवाह करताहै वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र  
पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र कर देता है ॥ १५ ॥ शूद्राकन्याके साथ वि-  
वाह करनेसे पतितहीसा होताहै यह अत्रि और गौतमका मतहै और शूद्रामें पुत्र  
उत्पन्न होनेसे पतित होताहै यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान  
होनेसे पतित होता है यह भृगुका मतहै अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रसे  
उत्पन्नहै पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होताहै ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो धान्यधोगतिम् ॥ जनयित्वा सुतं  
तस्यां ब्राह्मण्यादेवं हीर्यते ॥ १७ ॥ देवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधा  
नानि यस्य तु ॥ नाश्रन्ति पितृदेवास्तत्र च स्वर्गं संगच्छति ॥ १८

टीका—शूद्राके साथ भोगकरके ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र  
उत्पन्न करके ब्राह्मणपनसे ही रहित होजाताहै ॥ १७ ॥ देवहोमआदि और पित्र्य-  
श्राद्धआदि तथा आतिथ्यअतिथिभोजनआदि इनको जिसके शूद्रा करतीहै उस हव्य  
और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैवं प्रसूतस्य  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेहं हि  
ताहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहाग्निं बोधत ॥ २० ॥

टीका—शूद्राका ओठचुवन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और  
उसीमें संतति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणआदि चारो  
वर्णोंके कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आंगे कहते है-  
ऐसे आठविवाहोंकी संक्षेपसे सुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो देवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गार्ध्वो राक्षसश्चैवं  
पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च  
यस्य यौ ॥ तद्गः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

टीका—उन आठोंके नाम कहते हैं जैसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ राक्षस ७ और आठवाँ सबसे अधम पैशाच ८ ॥ २१ ॥ जो विवाह जिसवर्णका धर्मसंबंधी है और जिसके गुण तथा दोष अर्थात् भलाई बुराईको और उन २ विवाहोंसे उत्पन्न संततिमें जे गुणदोष हैं तिनको सुनिये २२

षडौतुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवर्षान् ॥ विदुःशूद्रयोस्तु तां  
नेवं विद्याद्धर्म्यानांक्षसान् ॥ २३ ॥ चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशं  
स्तान्कर्षयो विदुः ॥ राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥

टीका—ब्राह्मणको क्रमसे ब्राह्मच १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ ये ६ विवाह धर्म्य हैं और क्षत्रियको आर्ष १ प्राजापत्य २ आसुर ३ गांधर्व ४ ये ४ विवाह धर्म्य हैं और वैश्य तथा शूद्रके भी वेही आसुर गांधर्व पैशाच जानिये और राक्षस उनके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ ब्राह्मणके ब्राह्म आदि चारि और क्षत्रियके एक राक्षस और वैश्य तथा शूद्रके आसुर इन विवाहोंको जानेवाले श्रेष्ठजानते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्या स्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैवं  
नैर्कैर्तव्यौ कैदाचन ॥ २५ ॥ पृथक्पृथक्वा मिश्रौ वा विवाहौ  
पूर्वचोदितौ ॥ गान्धर्वा राक्षसश्चैवं धर्म्या क्षत्रस्य तौ स्मृतौ २६

टीका—प्राजापत्य आदि पाँच विवाहोंमें प्राजापत्य गांधर्व और राक्षस ये तीनि विवाह धर्मसंबंधी हैं दो धर्मसंबंधी नहीं हैं पैशाच और आसुर ये दो कभीकरनेयोग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥ जुदे २ अथवा मिलेहुए पहले कहेहुए गांधर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियको धर्मके अनुसार मनुआदिकोंने कहे हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ॥ आहूय दानं  
कर्त्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ ग्रंज्ञे तु धिते सम्यग्  
त्विजे कर्म कुर्वते ॥ अलंकृत्य सुतादानं देवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

टीका—विद्या और आचार युक्त वरको बुलायके उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंसे कन्या तथा वरको भूषित करि वरके लिये जो दान कियाजाता है उसको मनुआदि ब्राह्मविवाह कहते हैं ॥ २७ ॥ ज्योतिष्टोम आदियज्ञके आरंभ होनेमें अच्छेप्रकारसे कर्म करतेहुए ऋत्विजकेलिये वस्त्र आभूषणोंसे शोभित करि जो कन्याका देना है उसको मुनीश्वर देवविवाह कहते हैं ॥ २८ ॥

एकं गौमिथुनं द्वे वा वराद्रादाय धर्मतः ॥ कन्याप्रदानं विधिं  
वदाषो धर्मः सं उच्यते ॥ २९ ॥ सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचा  
तुभाष्य च ॥ कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्रजापत्यो विधिः स्मृतः ३० ॥

टीका—एक गौ और एक बैल ऐसे गौओंका एक जोड़ा अथवा दो जोड़े  
बरसे यज्ञ आदिकी सिद्धिकेलिये अथवा कन्याके देनेकालिये लेकर शास्त्रके अ-  
नुसार जो कन्यादान कियाजाताहै उसको आर्षविवाह कहते हैं ॥ २९ ॥ तुम  
दोनों मिलिके धर्म करै करौ ऐसे कन्यादानके समय पहले नियम करके पूजन  
करि जो कन्यादान कियाजाताहै उसको प्राजापत्य विवाह कहतेहैं ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ॥ कन्याप्रदानं स्वां  
च्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ३१ ॥ इच्छयान्योन्यसंयोगः क  
न्यायाश्च वरस्य चागान्धर्वः सं तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ३२

टीका—कन्याके पिता आदिको अथवा कन्याको यथाशक्ति धन देकर जो  
अपनी इच्छासे कन्याका लेना है उसको आसुरविवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥ कन्या और  
वरकी आपसकी प्रीतिसे जो परस्पर आलिंगन आदिरूप मिलनाहै उसको  
गान्धर्व विवाह कहते है ॥ ३२ ॥

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशती रुदती गृह्णात् ॥ प्रसह्य कन्या  
हरणं राक्षसो विधि रूच्यते ॥ ३३ ॥ सुतां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रो  
पगच्छति ॥ स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ३४ ॥

टीका—बलात्कारसे कन्याका हरलेना राक्षसविवाहका यही लक्षणहै कन्या-  
के पक्षवालोंको मारिके और उनके अंगोंको काटिके और परकोटा आदिको फो-  
डकर हाय पिता हाय भाई अनाथ मैं हरीजाती हौं ऐसे कहती हुई और आसु-  
ओंको छोडती हुई कन्याको जो उसके घरसे हरलेना है उसको राक्षसविवाह कह-  
तेहैं इस्से कन्याकी अनिच्छा प्रकट होती है ॥ ३३ ॥ सोतीहुईको मद्यसे व्याकुलको  
और शीलकी रक्षासे रहितको एकांतस्थानमें जो विषयकी इच्छासे प्रवृत्त होताहै  
उस पापमूल विवाहको सब विवाहोंमें अधम पैशाचविवाह कहते हैं ॥ ३४ ॥

अद्विरेव द्विजाग्न्याणां कन्यादानं विशिष्यते ॥ ईतरेषां तु वर्णा-  
नामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥ यो यस्यैषां विवाहानां मनुना



कथितो गुणः॥सर्वं शृणुत तं विप्राः सम्यक् कीर्तयतो मम॥३६॥

टीका—ब्राह्मणोंको जलदानपूर्वकही कन्यादान करना उत्तमहै और क्षत्रिय आदि अन्यवर्णोंको जलके विनाभी आपसकी इच्छासे वाणीमात्रसेभी कन्यादान होताहै ॥ ३५ ॥ इन विवाहोंमें जिसका जो गुण मनुने कहाहै वह सब हे ब्राह्मणों कहते हुए मुझसे सुनो यह भृगुने ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ३६ ॥

दश पूर्वान्पितृन्वश्यं यानात्मानं चैकविंशकम् ॥ ब्राह्मीपुत्रः सुकृतं  
कृन्मोचयेदेनसः पितृन् ॥३७॥ दैवोऽजः सुतश्चैव सप्त सप्त परा  
वरान्।आर्षोऽजः सुतस्त्रीस्त्री न्षट्षट् कायोऽजः सुतः ॥३८॥

टीका—ब्राह्मणविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र जो शुभकर्म करनेवाला होय तौ पिता आदिकों नरकसे निकार लेता है और उसके कुलमें पुत्र आदि निष्पाप उत्पन्न होते है ३७ दैवविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पिता आदि सात पीढी पहली औ पुत्र आदि सातपीढी पिछली और आर्षविवाहमें व्याही हुईका पुत्र तीनि पीढी पहली और तीनि पिछली और आज्ञापत्यमें व्याही हुईका पुत्र छःपीढी पहली और छःपिछलीको और आपको पापसे छुडाताहै ॥३८॥

ब्राह्मादिषु वित्राहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ॥ ब्रह्मवच्चस्विनः पुत्रां जा  
यन्ते शिष्टसंमताः॥३९॥ रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः  
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतसर्माः ॥१४०॥

टीका—ब्राह्म आदि चारि विवाहोंमें श्रुताध्ययन सम्पत्तिरूप तेजकारि युक्त और शिष्टोंके प्यारे पुत्र उत्पन्न होतेहैं॥३९॥ रूपवान् पराक्रमी धनवान् गुणवान् वंशस्वी और अपनी इच्छासे वस्त्र माला गंधलेप आदिसे शोभित धर्मात्मा और सौवर्षकी आयुष्यतक जीनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १४० ॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥ जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्म  
धर्मद्विषः सुताः ॥४१॥ अनिन्दितैः स्त्री विवाहैरनिन्द्या भवति  
प्रजां ॥ निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यानिर्वर्जयेत् ॥ ४२ ॥

टीका—और ब्राह्म आदि चारि विवाहोंसे अन्य आसुर आदि चारोंमें क्रूरकर्म करनेवाले मिथ्यावादी वेदसे द्वेष करनेवाले यज्ञ आदि धर्मसे द्वेष करनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं॥४१॥स्त्रीकी प्राप्तिके कारण जे अच्छे विवाहहैं उनसे पुरुषके सं-

दानभी अच्छी होती है और निन्दित विवाहोंसे प्रजाभी निन्दित होती है तिस्से निन्दित विवाहोंका त्याग करै ॥ ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सर्वेषामूपदिश्यते ॥ असेवर्णास्वयं ज्ञेयो विधि-  
रुद्राहकर्मणि ॥ ४३ ॥ शूरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यक-  
न्यया ॥ वर्सनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

टीका—पाणिग्रहणसंस्कार कहिये हाथ पकड़नेकी विधि समानजाति क-  
न्याके विवाहमें किया जाता है और अन्यवर्णकी कन्याके विवाहमें आगेके श्लो-  
कमें कही हुई विधि जानिये ॥४३॥ उंची जातिके पुरुषके साथ व्याहमें क्षत्रियाक-  
न्याको पाणिग्रहणके स्थानमें ब्राह्मणके विवाहमें ब्राह्मणके हाथमें पकड़े हुए ती-  
रका एका भागं ग्रहण करने योग्यहै और वैश्या स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रियके विवा-  
हमें ब्राह्मण क्षत्रिय करि पकड़े हुए चाबुकका एक सिरा पकड़ना चाहिये और  
शूद्रा स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके लिपटे हुए कपड़ेकी बत्ती ग्रहण करनीचा-  
हिये ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥ पूर्ववर्जं व्रजेच्चैनां  
तद्गतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः  
षोडश स्मृताः ॥ चतुर्भारतरैः सार्धमहोभिः सद्भिर्गाहैतैः ॥ ४६ ॥

टीका—रुधिरके दर्शनसे जाने गूये गर्भ रहनेके समयको ऋतुकाल कहते है  
उसमें स्त्रीसे पुत्रकीप्राप्तिके लिये भोग करै और अपनी स्त्रीमें सदा संतुष्ट रहै और  
र पूर्व जो अमावास्या आदि है तिनको छोड़के भार्यासे अतिप्रीति करनेवाला  
पुरुष ऋतुकालसे भिन्न कालमेंभी रतिकी कामनासे गमन करै पुत्र उत्पन्न करने  
की वृद्धिसे नही ॥ ४५ ॥ सज्जनों करि निन्दित रुधिर दीखनेके चार दिनों स-  
मेत स्त्रियोंके सोलह रातिदिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है रोग आदिसे न्यू-  
नाधिकभी होजाती है ॥ ४६ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषा  
स्तु प्रशस्ता दशै रात्रयः ॥ ४७ ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽ-  
युग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी सर्वे शेदांतवे स्त्रियम् ४८ ॥

टीका—फिर उन सोलह रातिदिनोंमें रुधिर दर्शनसे लगाके पहले चार रातिदिन  
और एकादशी तथा तेरसि गमनमें निन्दितहै और शेष दशरात्रियां उत्तमहै ॥४७॥

पहले कही हुई दश तिथियोंमें युग्मकहिये षष्ठी और अष्टमी रात्रिमें पुत्र उत्पन्न होते हैं तिससे पुत्रका चाहनेवाला पुरुष युग्मरातोंमें ऋतुके समय स्त्रीसे गमन करे ॥४८॥

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ समे पुमान्पुंसि  
यौ वी क्षी णेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९॥ निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु  
स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥५०

टीका—पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषमरात्रिमें भी पुत्रही होता है और स्त्रीका वीर्य अधिक होनेसे युग्ममें भी कन्याही होती है और दोनोका वीर्य बराबर होनेसे नपुंसक होय अथवा जोड़िया स्त्रीपुरुष उत्पन्न होंय अथवा दोनोका वीर्य क्षीण अथवा थोडा होयतौ गर्भका संभव होय अर्थात् गर्भ न रहै ॥४९॥ पहले कही ऋतुकालकी निन्द्याः रात्रियोंमें और अन्य अनिन्द्या जिन किन्ही आठ रात्रियोंमें भी स्त्रीको त्यागता हुआ वाकी पूर्वकी दो रात्रियोंको छोड गमन करनेवाला जिस किसी आश्रममे बसता हुआ पुरुष अखंड ब्रह्मचर्य व्रतको प्राप्त होता है ॥५०॥

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहीत्याच्छुल्कमर्षपि ॥ गृह्णाच्छुल्कं हि  
लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ५१ स्त्रीधनानि तु ये मोहा दुपजीव  
न्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापान्त्य धोगतिम् ५२

टीका—धन लेनेके दोषका जाननेवाला कन्याका पिता कन्यादानके निमित्त थोडाभी धन न ले, जो लोभसे लेतौ संतानका वेंचनेवाला होय ॥ ५१ ॥ पति पिता भ्राता आदि जे बांधव स्त्री पुत्री आदिका धन और नारीके वाहन अश्व आदिको और वस्त्रोंको ले लेते है वे पाप करनेवाले नरकको जाते है तिससे स्त्रीधन किसीको न लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मूषैव तत् ॥ अल्पोऽप्येवं म-  
हान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥५३॥ यासां नोददते शुल्कं ज्ञातयो  
न स विक्रयः ॥ अर्हेण तत्कुमारीणां मानृशस्यं च केवलम् ॥५४॥

टीका—कोई आचार्य कहते हैं कि आर्षविवाहमें घरसे गौका जोडा लेना चाहिये वह झूठही है जिस्से थोडा होय अथवा बहुत होय वह वेंचनाही है ॥ ५३ ॥ जिन कन्याओंका वरकरि प्रीतिसे दियाहुआ धन पिता आदि नहीं लेते किंतु कन्याको दे देते हैं बहभी वेंचना नहीं है जिस्से कुमारियोंका पूजन केवल दयारूप है ॥५४॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिं भिदेवैस्तथा ॥ पूज्यां भूषयितव्या  
 श्वं बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥५५॥ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते  
 तत्र देवताः ॥ यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५६॥

टीका—केवल विवाहकालहीमें वरंका दिया हुआ धन कन्याको देना चा-  
 हिये किंतु इसक्रे पीछेभी पिता आदि करिये कन्या भोजन आदिसे पूजन योग्य  
 हैं और बहुत धन आदि संपत्तिके चाहनेवाले पिता भ्राता आदिको वस्त्र अलंकार  
 आदिसे भूषित करनेयोग्यभीहैं ॥५५॥ जिस कुलमें पिताआदि करिकै स्त्री पूजीजाती  
 है वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जाती हैं वहाँ देवताओंकी  
 प्रसन्नता न होनेसे सब यज्ञादिक क्रिया निष्कल होजाती हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशुं तत्कुलम् ॥ न शोचन्ति  
 तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥ जामयो यानि गेहानि श  
 पन्त्यप्रतिपूजिताः ॥ तानि कृत्याहतानीर्व विनश्यन्ति समन्ततः ५८

टीका—जिस कुलमें वहिन स्त्री पुत्री और पुत्रकी बहूआदि दुखी होती हैं  
 वह कुल शीघ्रही निर्धन होजाताहै और देवता तथा राजा आदि करि पीडित  
 होताहै और जहाँ ये नहीं शोचतीहैं वह धन आदिसे सदा वृद्धिको प्राप्त होताहै  
 ॥ ५७ ॥ भगिनी पत्नी बेटी बहू ये दुखी हो जिन घरोंको कोसतीहैं वे घर  
 कृत्या जो अभि चाहै तिस करकै नाश किये की समान धन पशु आदि समेत  
 नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूतिकामैर्न रीर्न  
 त्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥५९॥ संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या  
 तथैव च ॥ यस्मिन्नेवं कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥

टीका—तिस्से ये भगिनी आदि कौमुदी आदि सत्कारोंमें और यज्ञोपवीत-  
 आदिउत्सवोंमें समृद्धि चाहनेवाले पुरुषों करिकै सदा पूजनेयोग्यहैं ॥५९॥ जि-  
 सकुलमें स्त्रीसे पुरुष प्रसन्न रहताहै अर्थात् दूसरी स्त्री आदिकी इच्छा चही करता  
 है और पुरुषसे स्त्री प्रसन्न रहतीहै उस कुलमें चिरकाल पर्यंत श्रेय रहताहै ॥६०॥

यदि हि स्त्री न रोचेत् पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥ अप्रमोदात्पुंनः पुं  
 सः प्रजनं न प्रवर्तते ६१ ॥ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्गोचते

कुलम् ॥ तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेवं न रोचते ॥ ६२ ॥

टीका—जो स्त्री वस्त्राभरण आदिकोसे शोभित न होय-तौ यह अपने स्वामीको प्रसन्न न करैतौ फिरि पुरुषके प्रसन्न न होनेसे गर्भाधान नहीं होताहै ॥ ६१ ॥ मंडन आदिसे स्त्रीके कांतिमंती होनेपर पतिके स्नेहसे परपुरुषका संसर्ग न होनेके कारण वह कुलप्रकाशमान होताहै और उसके न शोभित होनेपर भक्तिके द्वेषसे दूसरे पुरुषका मेल होनेसे सब कुल मलिन होजाताहै ६२

कुंविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्यापनेन च ॥ कुलान्यकुलतां यान्ति  
ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥ शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केषु  
लैः ॥ गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ ६४ ॥

टीका—आसुर आदि बुरे विवाहोंसे और जातकर्म आदि क्रियाओंके लोपसे और वेदके न पढनेसे और ब्राह्मणका पूजन न करनेसे प्रसिद्ध कुलहीन हो जाते हैं ॥ ६३ ॥ चित्र स्त्रीचना आदि शिल्पसे और व्याजके लिये धनके व्यवहारसे और केवल शूद्रोमे उत्पन्न पुत्रसे और गौ घोडा रथके वेचनेसे स्वेन्ती करनेसे राजाकी नौकरी करनेसे कुलोंका नाश होजाताहै ॥ ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैवं नास्तिव्येन च कर्मणाम् ॥ कुलान्याशु वि  
नश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ ६५ ॥ मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलां  
न्यल्पधनान्यपि ॥ कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ६६

टीका—अयाज्य जो हैं ब्राह्म्य आदि तिनको यजनकरानेसे और श्रौत स्मार्त कर्मोंके न माननेसे और वेदके मंत्रों करि हीन होनेसे सब कुल शीघ्र नाश होजातेहै ॥ ६५ ॥ यद्यपि धनसे कुल होतेहैं यह बात लोकमें प्रसिद्ध है तिसपर भी थोड़े धनवालेभी कुल वेदके पढने और उसके अर्थके ज्ञाननेसे ऊंचे कुलोंकी गणनामें गने जाते हैं और बड़ीभारी प्रसिद्धि पातेहैं ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वन्तं गृह्यं कर्म यथाविधि ॥ पञ्चयज्ञविधानं च  
पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥ ६७ ॥ पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पे  
षण्युपस्करः ॥ क्रण्डनी चोदकुम्भश्च वर्धते यास्तु वाहयन् ॥ ६८ ॥

टीका—वैवाहिक अग्निमें सायंकाल और प्रातःकालका गृह्यमें कहा हुआ

होम और अष्टका आदि विधिपूर्वक और पंचयज्ञोंमेंसे प्रतिदिन करनेयोग्य बलि वैश्वदेव आदिको और नितके पाककोभी गृहस्थ उसी अग्निमें करै ॥ ६७ ॥ गृहस्थके ये पाँच हिंसाके स्थान हैं चूल्हा १ चक्री २ बुहारी ३ ओखली मूसल ४ जलकाघट ५ इनको अपने-काममें लाता हुआ पुरुष पापों करि युक्त होताहै ६८

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं मर्हर्षिभिः ॥ पञ्च कृतां महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

टीका—उन चूल्हा आदि पाँच वधके स्थानोंसे उत्पन्न पापके नाशके लिये क्रमसे पाँच यज्ञ मनु आदि आचार्योंने प्रतिदिन गृहस्थोंके करनेको कहे हैं ॥ ६९ ॥ उन पंचयज्ञोंके नाम लिखते हैं ॥ वेदका पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्मयज्ञहै १ तर्पण कहिये अन्न आदिसे अथवा जलसे पितरोंका तृप्त करना पितृयज्ञहै २ आगिमें होम करना देवयज्ञहै ३ भूतोंको बलि देना यह भूतयज्ञ है ४ अभ्यागतका सत्कार करना यह मनुष्ययज्ञहै ये पाँचो महायज्ञ कहे गये ॥ ७० ॥

पञ्चैतान्यो महायज्ञान् हापयति शक्तिः ॥ स गृहेऽपि वसन्नि-  
त्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥ देवतातिथिभृत्यानां पितृणामा-  
त्मनश्च यः ॥ न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्नं स जीवति ॥ ७२ ॥

टीका—जो पुरुष इन पाँच महायज्ञोंको शक्तिसे कभी नहीं छोड़ता है वह सदा घरमें बसता हुआभी सूनाके दोषों करि लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥ देवता कहनेसे देवता और भूत दोनो जाने चाहिये क्यों कि भूतोंकोभी देवता-रूपसे बलि दीजातीहै और भृत्य कहिये सेवक और पितृ कहिये बूढ़े मातापिता आदिका और सब भावसे अपना पालन तौ अवश्यही करतव्यहै और जो देवता आदि पांचका अन्न नहीं देताहै वह श्वास लेताभी. जीत्रा नहीं है किंतु मरे हुएके समान है ॥ ७२ ॥

अहुतं च हुतं चैव तर्था प्रहुतमेव च ॥ ब्राह्मं हुतं प्राशितं च पञ्चय-  
ज्ञान्प्रर्चक्षते ॥ ७३ ॥ जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बली  
ब्राह्मं हुतं द्विजाग्रिर्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

टीका—अन्य मुनीश्वरोंने इन्ही पंचयज्ञोंके नाम दूसरें प्रकारसे कहे हैं जैसे अहुत १ हुत २ प्रहुत ३ ब्राह्म्यहुत ४ और प्राशित ५ ॥ ७३ ॥ अहुत कहिये ब्र-

ह्ययज्ञ नाम जप और हुत कहिये देवयज्ञ नाम होम प्रहुत कहिये भूतयज्ञ नाम भूतबलि और ब्राह्मयहुत कहिये मनुष्ययज्ञ नाम श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा और प्राशित कहिये पितृयज्ञनाम नित्य श्राद्ध ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादैवै चैवे हं कर्मणि ॥ दैवकर्मणियुं  
क्तो हि विभर्ती दं चराचरम् ॥ ७५ ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगा  
दित्यमुपतिष्ठते ॥ आदित्यार्जायते वृष्टिवृष्टेस्त्रं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

टीका—जो दरिद्रता आदि दोषसे अतिथिको भोजन देना आदि करनेको न समर्थ होय तो ब्रह्मयज्ञमें सदा लगा रहै क्यों कि दैव कर्ममें लगा हुआ पुरुष इस चराचरसंसारको धारण करताहै ७५ यजमान करि अग्निमें अच्छी तरहसे डाली हुई आहुति रसोंके स्वीचनेवाले होनेसे सूर्यको पहुचती है और सूर्यसे वर्षा होताहै वर्षासे अब्र उत्पन्न होताहै और अब्रके भोजन आदिसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ॥ तथा गृहस्थमश्रि-  
वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥ यस्मात्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञाने-  
नाग्नेन चान्वहम् ॥ गृहस्थेनैवं धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ७८

टीका—जैसे हृदयमें स्थित प्राणनाम पवनके आश्रयसे सब जीव जीतेहैं वै-  
सेही गृहस्थके सहारेसे सब आश्रम निर्वाह करते है ॥ ७७ ॥ गृहस्थ सब आश्र-  
मवालोंके प्राणके समान है यह कहा है इसीको सिद्ध करते हैं जिसे गृहस्थके  
सिवाय तीन आश्रमी वेदका अर्थ व्याख्यान करनेसे और अब्रके देनेसे सद्-  
गृहस्थोंहि करि सदा उपकार किये जाते हैं तिससे गृहस्थ जेठा आश्रम है ७८ ॥

संघार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥ सुखं चैहं च्छता नि-  
त्यं योऽर्थायो दुर्वलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥ ऋषयः पितरो देवा भूता-  
न्यतिथर्यस्तथा ॥ आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ८०

टीका—अक्षय स्वर्गकी इच्छा करनेवाले और इस लोकमें स्त्रीका भोग तथा  
स्वादिष्ट अब्र आदिके भोजनके सुखको सदा चाहनेवाले पुरुषको यह ग्रहस्था  
श्रम यत्नसे धारण करनेयोग्य है दुर्वलेन्द्रिय कहिये इंद्रिय जिनके वशमें नहीं है  
उनको जिसका धारण करना कठिन है ॥ ७९ ॥ ऋषि पितर देवता भूत और  
अभ्यागत थे गृहस्थोंसे प्रार्थना करते हैं इसीसे शास्त्रके जाननेवालेको उनके  
लिये करन चाहिये ॥ ८० ॥

स्वाध्यायेनार्चयेत्पीन्हो मर्देषान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्च नृ-  
नन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ कुर्याद्दहरहः श्राद्धमन्नाद्येनो-  
दकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्धीपि पितृभ्यः प्रीतिर्मावहन् ॥ ८२ ॥

टीका—स्वाध्याय जो वेदपाठ है तिस्से ऋषियोंको और होमसे देवताओंको और श्राद्धोंसे पितरोंको और अन्नसे मनुष्योंको और बलिकर्मसे भूतोंको यथाविधि कहिये शास्त्रके अनुसार पूजै ॥ ८१ ॥ अन्न-आदिसे वा जलसे अथवा दूध मूल फलोंसे पितरोंके अर्थ प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रथे पाञ्चयज्ञिके ॥ न चैवात्राशयेत्किं-  
चिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥ ८३ ॥ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ  
विधिपूर्वकम् ॥ अर्थाभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ८४

टीका—पितरोंके निमित्त पंचयज्ञोंमेंसे एकभी ब्राह्मणको भोजन करावै और वैश्वदेवके लिये किसी ब्राह्मण को यहा भोजन न करावै ॥ ८३ ॥ आवसथ्यअग्निमें सिद्ध किये हुए वैश्वदेव अन्नका इन देवताओंके लिये ब्राह्मण प्रतिदिन विधिपूर्वक होम करै ॥ ८४ ॥

अग्नये सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥ विश्वेभ्यश्चैव दे-  
वेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥ ८५ ॥ कुर्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय-  
एव च ॥ सहद्यावापृथिव्योश्चै तथो स्विष्टकृतेऽन्तर्तः ॥ ८६ ॥

टीका—वे देवता येंहैं ॥ पहले अग्नये स्वाहा सोमायस्वाहा फिर अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ए दोनोका एकसाथ करकै फिरि समस्त देवताओंका होम करै तिस पीछे विश्वेदेवोंके निमित्त और धन्वन्तरिके लिये होम करै ॥ ८५ ॥ कुर्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यां अग्नये स्विष्टकृते इन सर्वोंके अंतमें स्वाहा लगाकै होम करै ॥ ८६ ॥

एवं सम्यग्घाविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥ इन्द्रान्तकाप्पतीन्दु-  
भ्यः सांनुगेभ्यो बलिंहरेत् ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेद-  
प्स्वद्भ्य इत्यपि ॥ वर्नस्पतिभ्य इत्येवं मुसंलोलुखले हरेत् ॥ ८८

टीका—ऐसे उक्त प्रकारसे अच्छी भांति चित्तलगाकै देवताके ध्यानमें तत्पर हो होम करकै सब पूर्व आदि दिशाओंमें प्रदक्षिण पुरुषसहित इंद्र आदि देवताओंके लिये बलिदे सो जैसे प्राच्यां इन्द्रायनमः । इंद्रपुरुषेभ्योनमः । दक्षिण-



स्यां यमायनमः यमपुरुषेभ्योनमः । पश्चिमैश्यां वरुणायनमः वरुणपुरुषेभ्योनमः  
उत्तरस्यां सोमायनमः । सोम पुरुषेभ्योनमः ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्योनमः ऐसे कहकर  
द्वारमें बलिदे और अद्रघ्नोनमः ऐसे कहकर जलमें बलि दे और वनस्पति  
भ्योनमः ऐसे कहकर ओखलीमूसलमें बलि दे ॥ ८८ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ॥ ब्रह्मवास्तोष्पति  
भ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमा  
कांश उत्क्षिपेत् ॥ दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तं चारिभ्य एव च ॥ ९० ॥

टीका—वास्तुपुरुषके शिरपर उत्तर पूर्व दिशामें श्रीके लियेदे और उसीके  
पायोंपर दक्षिण पश्चिम दिशामें भद्रकालीके लिये बलि दे और कोई आचार्य  
उच्छीर्षका रहस्यके सोनके सिरहोनेको और पादतः यह उसीकी पैरोंकी भूमि  
को कहते हैं और ब्रह्म तथा वास्तुका पति इन दोनोके लिये घरके बीचमें बलि  
दे ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्योनमः ऐसे कहिके घरके आकाशमें बलिदे दिवाचरे-  
भ्यो भूतेभ्यो नमः ऐसे कहिके दिनमें बलिदे और नक्तं चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः  
ऐसे कहिके रात्रिमें बलिदे ॥ ९० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ॥ पितृभ्यो बलिशेषं तु  
सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पाप  
रोगिणाम् ॥ वार्यसानां कृमीणां च ज्ञानकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥

टीका—घरके ऊपर जो घर होता है उसको पृष्ठ वास्तु कहते हैं वहाँ अथवा  
बलि देनेवालेके पीछेकी भूमिमें सर्वात्मभूतयेनमः ऐसे कहिके बलि दे कहे हु-  
ए बलिदानसे बचाहुआ सब अन्न दक्षिणको मुख करि दक्षिणदिशामें स्वधा पि-  
तृभ्य ऐसे कहिके बलि दे प्राचीनावीती हो इस बलिकोदे ॥ ९१ ॥ और अन्नपात्रमें  
निकालकर कुत्ता पतित चण्डाल और पापरोगी कहिये कुष्टी और क्षयी रोगवाला  
कौआ और कीड़े इनके लिये हौलेसे जिसमें रज न लगे ऐसे भूमिमें बलिदे ॥ ९२ ॥

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥ स गच्छति परं स्थां  
न तेजोमूर्तिः पृथजुना ॥ ९३ ॥ कुत्वैतद्बलिकर्मवर्मातिथिं पूर्वमाशं  
येत् ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्भिषिब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंको अन्नदान आदिसे नित्य पू-  
जाता है वह परम स्थान कहिये ब्रह्मरूप तेजोमूर्ति स्वप्रकाशको अर्चिरादि मा-

र्गसे प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीज होजाताहै क्यों कि ज्ञानसे और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९३ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इस बलिकर्मको करिकै घरके मनुष्योंसे पहले अतिथिको भोजन करावै और संन्यासी तथा ब्रह्मचारीको गौतम आदि करि कही हुई विधिसे भिक्षाका दान करै ॥ ९४ ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिपूर्वकः ॥ तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥ भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विधिवत् कहिये सोनेके सींग आदि मढाकै गुरुको गौ देनेसे जो फल होताहै वह फल गृहस्थको विधिपूर्वक भिक्षा देनेसे प्राप्त होताहै ॥ ८९ ॥ अधिक अन्न न होनेपर एक ग्रासके प्रमाण व्यंजन आदि करि युक्त भिक्षाको भी उसके भी होनेमें जलसे भरे हुए पात्रकोभी फल पुष्प आदिसें सत्कार करिकै तत्त्वसे वेदका अर्थ जाननेवाले ब्राह्मणके अर्थ स्वस्तिवाच्य इत्यादि विधिसे दान करै ॥ ९६ ॥

नश्यन्ति हर्व्यकव्यानि नराणामविज्ञानताम् ॥ भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाददत्तानि दातृभिः ९७ ॥ विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥ निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥

टीका—अज्ञानसे पात्रको न पहिचानकर देवता और पितरोंके निमित्त वेदके पढने और उसके अर्थके जाननेरूप तेजके न होनेसे भस्मके समान पात्रोंमें दाताओं करि दिये हुए दान निष्फल होते हैं ॥ ९७ ॥ विद्या तथा तप रूप तेजसे युक्त ब्राह्मणोंके मुख अग्निके समान होते हैं उनमें डाला गया हव्य कव्य आदि इस लोकमें कठिन रोग और शत्रु तथा राजपीडा आदि भयसे और बडे प्रापसे बचाता है ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ॥ अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ शिलानप्युद्धृतो नित्यं पञ्चीनीर्नपि जुह्वतः ॥ सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽर्चितो वर्सन् ॥ १०० ॥

टीका—आमसे आये हुए अतिथिके लिये आसन और पेरधोने के लिये जल और शक्तिके अनुसार व्यंजन आदियुक्त अन्न आगे कही हुई विधिसे दे ॥ ९९ ॥ कटे हुए खेतमें जो पडा हुआ वाकी रहजाताहै उसको शिलकहते है उसशिलसे

जीविका करनेवाले और दक्षिणाग्नि १ गार्हपत्य २ आहवनीय ३ तीनि ये और आवसथ्य ४ तथा सभ्य ५ इन पांचो अग्नियोंमें होम करते हुए पुरुषके संपूर्ण पंचाग्निमें होम आदि करनेसे जोडे हुए पुण्योंके विना पूजा हुआ अतिथि बसते हुए ले लेताहै ॥ १०० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्तुर्थी च सूनृता ॥ एतान्यपि संतां गेहे<sup>१</sup>  
नोच्छेद्यन्ते कदाचन ॥ १ ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः  
स्मृतः ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मार्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २ ॥

टीका—अन्न न होय तौ तृण १ विद्यानेके लिये विश्रामके लिये भूमि २ पैर धोने आदिके लिये जल ३ प्यारे वचन ४ ये सब अतिथिके लिये धर्मात्मा गृहस्थके घरमें कभी नहीं दूर होते हैं अर्थात् अवश्य देने पढते हैं ॥ १ ॥ अतिथिका लक्षण कहते हैं ॥ केवल एक राति पराये घरमें बसता हुआ ब्राह्मण सदा न रहनेसे अतिथि होताहै नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥ २ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सार्द्धतिकंतथा ॥ उपस्थितं गृहे विद्या  
द्रौर्या यत्राग्रयोऽपि वा ॥ ३ ॥ उपासते ये गृहस्थाः परंपाकमबु  
द्धयः ॥ तेन ते प्रेत्यं पशुतां ब्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ ४ ॥

टीका—एक गांवका रहनेवाला होय और लोकमें विचित्र हंसीकी कथा आदिसे संगति करि जीविका चाहनेवाला जो भार्या और अग्नियुक्त घरमें वैश्वदेवके समयमेंभी आवै तौ उसको अतिथि न जानिये ॥ ३ ॥ निषिद्ध पराये अन्नके दोषको न जाननेवाले जे गृहस्थ आतिथ्यके लोभसे दूसरे ग्रामोंमें जाके पराये अन्नका सेवन करते हैं वे उस पराये अन्नके भोजनसे दूसरे जन्ममें अन्न आदि देनेवालोंके पशु होते हैं तिस्से इसको न करै ॥ ४ ॥

अप्राणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योदो गृहमेधिना ॥ काले प्रातस्त्वर्का  
ले वा नस्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥ ५ ॥ न वै स्वयं तदश्रीयार्दतिथि  
यन्न भोजयेत् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥ ६ ॥

टीका—सूर्यके अस्तहोनेपर आये हुए अतिथिको निषेध न करै, क्योंकि सूर्य करि पहुंचाया गया वह रात्रिमें अपने घरको नहीं जा सकताहै, द्वितीय वै-

श्वदेवके समय आया होय अथवा कुम्भमयमें सायंकालका भोजन हो चुकनेपर आया होय तौभी अतिथि इस गृहस्थके घरमें विना भोजनके न बसै अर्थात् उसके कुछ भोजन अवश्य देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो मी दही आदि उत्तम भोजन अतिथिको न दे वह असंको विना दिये आपभी न खाय क्योंकि अतिथिका भोजन घन्य कहिये धनके लिये हित है और यशका देनेवाला तथा आयुष्यका बढ़ानेवाला है और स्वर्गको देता है ॥ ६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥ उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ ७ ॥ वैश्वदेवे तु निवृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ॥ तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ ८ ॥

टीका—आसन अथवा मृगचर्म और सोनेको शय्या तथा खटिया आदि और जानेके समय पहुँचानेको साथ जाना और सेवा ये सब जो बहुतसे अतिथि एकही समय आवैं तौ उनमें आपसकी अपेक्षासे उत्तम मध्यम और निकृष्ट स्वातिरी अर्थात् जो जैसा होय उसकी वैसीहि करै सबकी एकसी न करै ॥ ७ ॥ अतिथि भोजनतक वैश्वदेव करनेपर जो और अतिथि आवैं तौ उसके लिये फिरि रसोई करकै अन्न दे और उसमेंसे बलि न निकालै ॥ ८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलं गोत्रे निवेदयेत् ॥ भोजनार्थं हि ते शंस्वन्वांताशीत्युच्यते बुधैः ॥ ९ ॥ न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ॥ वैश्यशूद्रौ संखा चैवं ज्ञातयो गुरुरेवं च ॥ ११० ॥

टीका—ब्राह्मणअपने कुल तथा गोत्रको भोजनकेलिये न कहै जिस्से भोजनके लिये उनको कहता हुआ वह पंडितों करिकै वांताशी कहा गयाहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके घरमें क्षत्रिय आदि अतिथि नहीं होते है क्योंकि क्षत्रिय आदि ब्राह्मणसे हीन जातिहै और मित्र तथा ज्ञातिको अपने संबंधसे तथा गुरु प्रभु होनेसे अतिथि नहीं होता इस न्यायसे क्षत्रियके ऊँची ज्ञाति ब्राह्मण और अपनी जातिका क्षत्रिय अतिथि होताहै और हीन वैश्य शूद्र नहीं ऐसेही वैश्यके द्विजाति अतिथि होतेहैं शूद्र नहीं ॥ ११० ॥

यदि त्वतिथिर्धर्मेण क्षत्रियो गृहमार्रजेत् ॥ भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु कांमं तमपि भोजयेत् ॥ ११ ॥ वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथि धर्मिणौ ॥ भोजयेत्सहभृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥ १२ ॥

टीका—जो दूसरे ग्रामसे आने और अतिथिके कालमें प्राप्त होनेसे क्षत्रिय अतिथि धर्मसे ब्राह्मणके घर आवै तौ ब्राह्मणके घर आये हुए ब्राह्मणोंके भोजन करके बैठनेपर इच्छासे उसकोभी भोजन करावै ॥ ११ ॥ जो वैश्य शूद्रभी ब्राह्मणके घरमें आवैं और दूसरे ग्रामसे आनेके कारण अतिथि धर्म करि युक्त होय तौ उनकोभी क्षत्रिसके भोजनके पीछे स्त्री पुरुषके भोजनसे पहले सेवकोंके भोजन समय दया करके भोजन करावै ॥ १२ ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ॥ सस्कृत्यान्नं यथांशं  
क्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ १३ ॥ सुवासिनीः कुमाराश्च रोगि  
णो गर्भिणीस्तथा ॥ अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—कहे हुए भोजनके समय क्षत्रिय आदिकोंके बिना प्रीतिसे घरमें आये हुए अतिथि धर्मसे नहीं ऐसे मित्र सहपाठी आदिकोंको शक्तिके अनुसार अच्छा अन्नकरके भार्याके भोजन समयमें भोजन करावै ॥ १३ ॥ सुवासिनी कहिये नवीन व्याही हुई स्त्री वह बेटीको बालकोंको रोगियोंको और गर्भवाली स्त्रियोंको अतिथिभोजनसे पहलेही विनाविचारके भोजनकरावै ॥ १४ ॥

अदत्त्वा तु र्य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः । स भुञ्जानो न जा  
नाति श्वगृध्रैर्जग्धिर्मात्मनः ॥ १५ ॥ भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु  
भृत्येषु चैव हि भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ १६ ॥

टीका—व्यतिक्रम भोजनके दोषको न जानता हुआ जो इन अतिथिको आदिले भृत्योंतकको भोजन न देकर पहले आप भोजन करताहै वह मरनेके पीछे कुत्ता गीध करिके अपना भक्षण नहीं जानताहै ॥ १५ ॥ ब्राह्मण अतिथि ज्ञाति सेवक इन सबोंके भोजन करनेपर बचे हुए अन्नको पीछे स्त्रीपुरुष भोजन करै १६

देवान् नृषीन्मनुष्यांश्च पितृन्गृह्याश्च देवताः । पूजयित्वा ततः पश्चां  
द्गृहस्थः शेषं भुग्भवेत् ॥ १७ ॥ अघं स केवलं भुंक्ते र्यः पचत्यात्म  
कारणात् । यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सर्तमन्नं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका—देवता ऋषि मनुष्य पितृ और गृह्यदेवता इन सबोंका पूजन करके तिस पीछे गृहस्थ वाकीरहे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ जो अपनेही लिये अन्नका पाक करके भोजन करताहै वह केवल पापहीको खाताहै अन्नको नहीं पाकयज्ञसे शेष रहे अन्नको अन्न कहते है और इसीको सजनोंका अन्न कहते है ॥ १८

राजत्विक्स्नातकगुरून्प्रियंश्वशुरमातुलान् । अर्हयेन्मधुपर्केण  
परिसंवत्सरात्पुनः ॥ १९ ॥ राजा च श्रोत्रियैश्चैव यज्ञकर्मण्युपे  
स्थितौ । मधुपर्केण संयुज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥ १२० ॥

टीका—अतिथिकी पूजाके असंगसे घरमें आये हुए राजा आदिकों कीभी पूजा कहते हैं । राजा ऋत्विक् स्नातक गुरू जामाता ससुर और मामा घरमें आये हुए इन सातोंका एक वर्ष पीछे आनेपर गृहमें कहे हुए मधुपर्कसे पूजन करै ॥ १९ ॥ जो राजा और स्नातक एकवर्षके उपरांतभी यज्ञकर्ममें आवें तौ मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं यज्ञके विना नही वह मर्यादा है और जामाता आदि तौ वर्षके उपरांत यज्ञके विनाभी मधुपर्कके योग्य है और संवत्सरके मध्यमें तौ सबको यज्ञ और विवाहदीमें मधुपर्कदिया जाता है अन्यत्र नही ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्नं बलिं हरेत् । वैश्वदेवं हि नामै  
तत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ २१ ॥ पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चैन्दुक्षये  
ऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ २२ ॥

टीका—संध्यासमय सिद्ध किये हुए अन्नसे पत्नी विनामंत्रके बलि निकाले जिस्से अन्नसे करने योग्य होम बलिदान अतिथिभोजनरूप वैश्वदेवनामकर्म सायंकाल प्रातःकाल गृहस्थके लिये कहा गया है ॥ २१ ॥ अग्निहोत्री द्विज अमावास्याके दिन पिंडपितृयज्ञनाम कर्म करिके श्राद्ध करै पितृयज्ञ और पिंडोंके पीछे जो किया जाय उसको पिंडान्वाहार्यक श्राद्ध कहते हैं वह प्रतिमास कहिये महीने २ में करना चाहिये ॥ २२ ॥

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः । तर्क्षामिषेण कर्तव्यं  
प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वैज्या  
द्विजोत्तमाः । यावन्तश्चैवैश्चान्ने स्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २४ ॥

टीका—पितरोंके मासिक श्राद्धको पंडित अन्वाहार्य कहते हैं वह श्राद्ध आगे कहे हुए अच्छे मनोहर दुग्ध आदि करि रहित मांससे यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २३ ॥ उस श्राद्धमें जे भोजन करानेयोग्य हैं और जे छोडने योग्य हैं और जितने तथा जिन अन्नों करिके सो सब कहता हौं ॥ २४ ॥

द्वौ द्वौ वै पितृकार्ये त्रीनैकैर्कर्मभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न

प्रसंज्ञेत विस्तरे ॥२५॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसं  
पदः । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्ने हेतुं विस्तरम् ॥ २६ ॥

टीका—दैव श्राद्धमें दो ब्राह्मण और पिता पितामह तथा प्रपितामहके श्राद्धमें तीनि ब्राह्मण अथवा दैवमें एक और पित्र्यमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै धनधान्य युक्त होनेपर भी कहे हुए ब्राह्मणोंसे अधिकको भोजन न करावै अर्थात् विस्तार न करै ॥ २५ ॥ सत्क्रिया कहिये ब्राह्मणकी पूजा और देश कहिये दक्षिणप्रवणत्व आदि जो आगे कहेंगे काल अपराह्न और शौच कहिये शुद्धता और ब्राह्मण संपति कहिये गुणवान् ब्राह्मणका लाभ इन-पाचोका विस्तार नाश करना है इस कारण ब्राह्मणोंका विस्तार न करै ॥ २६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये । तस्मिन्पुत्रस्येति नि-  
त्यं प्रेतकृत्यैर्व लौकिकी ॥ २७ ॥ श्रोत्रियायैर्व देयानि हव्यक-  
व्यानि दातृभिः । अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥२८॥

टीका—जो यह श्राद्धरूप पितरोंका कर्म है सो प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारके लिये क्रिया प्रसिद्ध है सो विधुक्षये कहिये अमावास्याको करनी चाहिये उस पितरोंके कर्ममें लगे हुए पुरुषकी लौकिकी तथा स्मार्त्तिकी प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारार्थ क्रिया गुणवान् पुत्र पौत्र और धन आदिफलके प्रबंध रूपसे कर्त्ताको प्राप्त होती है तिससे यह कर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ दातृओंको दैव पित्रन्न अर्थात् हव्य कव्यके अन्न श्रोत्रिय जो वेदपाठी है तिसको यत्नसे देने चाहिये क्योंकि वेद आचार और कुटुंबसे अतियोग्य ब्राह्मणको दिया हुआ बड़े फलका देनेवाला होता है ॥ २८ ॥

एकैकमपि विद्वांसं देवे पित्र्ये च भोजयेत् । पुष्कलं फलमाप्नो-  
ति नामन्वज्ञान्बहूनिपि ॥२९॥ दूरादेर्व परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारग-  
म् ॥ तीर्थं तद्व्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥१३०॥

टीका—दैव और पित्र्यकर्ममें एक एक वेदके तत्त्वं जाननेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै तो भी अधिक श्राद्धके फलको प्राप्त होय बहुतसे मूर्ख ब्राह्मणोंको न भोजन करावै ॥ २९ ॥ पहले वेदकी संपूर्ण शाखा पढ़नेवाले ब्राह्मणकी परीक्षा करै जिससे वह उसप्रकारका ब्राह्मण हव्य कव्योंका तीर्थ कहिये पात्र है देनेमें वह अतिथिके समान बड़े फलकी प्राप्ति का कारण है ॥ १३० ॥

सहस्रं हि' सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ॥ एकस्तांन्मन्त्रिविप्रीतः  
सर्वानंहतिर्धर्मतः ॥३१॥ ज्ञानोत्कृष्टाय देर्यानि कव्यानि च हवीं  
षि च ॥ न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरैरेव शुद्ध्यतः ॥ ३२ ॥

टीका—जिस श्राद्धमें वेदके न जाननेवाले ब्राह्मण दसलाख भोजन करै व-  
हां वेदका जाननेवाला भोजनसे संतुष्ट हुआ एक ब्राह्मण धर्मसे उन सबोंकी व-  
रावर है अर्थात् जो फल दसहजार मूर्खोंके भोजनकरानेसे होता है वह एक वे-  
दपाठीके भोजन करानेसे मिलता है ॥ ३१ ॥ विद्यासे बड़े ब्राह्मणोंको हव्यक-  
व्य देने चाहिये मूर्खोंको नहीं क्योंकि रुधिरके भरे हुए हाथ रुधिरहीसे शुद्ध न-  
ही होते है किंतु निर्मल जलसे ऐसे मूर्खके भोजनसे उत्पन्न हुआ दोष मूर्खके  
भोजनसे नहीं दूरि होता है किंतु विद्वानके ॥ ३२ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥ तावतो ग्रसते  
प्रेत्य दीर्तशूलघृचयोगुडान् ॥३३॥ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः कर्चिर्तपो  
निष्ठास्तथापरे ॥ तर्पः स्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ ३४ ॥

टीका—वेदका न जाननेवाला ब्राह्मण हव्यकव्योंमें जितने ग्रासोंको खाता-  
है उतनेही जलते हुए शूलों और ऋष्टिनाम शंखोंको और लोहके पिंडोंको श्राद्ध  
करनेवाला मरके यमलोकमें खाता है ॥ ३३ ॥ कोई आत्मज्ञानमें तत्पर होते हैं  
और कोई प्राजापत्य आदि तपमें, और कोई तप तथा वेदाध्ययनमें लगे रह  
ते हैं और कोई यज्ञ आदि कर्मोंमें तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठयाप्यानि यत्नतः ॥ हव्यानितुं यथान्या  
यं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥३५॥ अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्देद  
पारगः ॥ अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्देदपारगः ॥ ३६ ॥

टीका—पितरोंका अन्न यत्नसे ज्ञान प्रधान ब्राह्मणको देना चाहिये और दे-  
वताओंका अन्न तौ न्यायसे अर्थशास्त्रके अनुसार चारोंको देना योग्य है ॥३५॥  
जिसका पिता वेद नहीं पढा है और आप पुत्र वेदका पारगामी है अथवा  
पुत्र वेद नहीं पढा है पिता वेदका पारगामी है ॥ ३६ ॥

जायामनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ॥ मन्त्रसंपूजनार्थं तु  
संस्कारमितरोऽर्हति ॥३७॥ श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य



संग्रहः॥नारिं न मित्रं यं विद्यांश्चाद्धे भोजयेद्विजम् ॥३८॥

टीका—इन दोनोमेसे जिसका पिता वेदपाठी है उसको चाहे आप वेद न पढा हो परन्तु श्रेष्ठ जानिये और जिसका पिता वेदपाठी नहीं है और आप वेदपाठी है वह वेदमंत्रोंकी पूजाके लिये सत्कारके योग्य है ॥ ३७ ॥ श्राद्धमें मित्रको न भोजनकरावै अन्यधनोसे उसकी मित्रता पूरी करनी चाहिये जिसको शत्रु और मित्र न जानै अर्थात् उदासीन वृत्ति होय उस ब्राह्मणको भोजनकरावै ॥३८

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविः षु च ॥ ३९ ॥ यं संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ॥ सर्वगाश्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ॥ १४० ॥

टीका—जिसके श्राद्ध और हवामें अर्थात् दैवपितृय कर्ममें मित्रोंकी प्रधानता होती है उस श्राद्ध और हविका फल परलोकमें नहीं मिलता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य शास्त्रके न जानेसे श्राद्धके द्वारा संगत जो मित्रभाव है ताहि कर्ता है वह श्राद्धमित्रद्विजोंमें अधम स्वर्गलोकसे पतित होता है अर्थात् स्वर्गको नहीं पाता है ॥ १४० ॥

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ईहवांस्ते तु सां लोके गौरं न्धैवैकवेर्मनि ॥ ४१ ॥ यथे रिणे वीजमुर्वा न वप्ता लभते फलम् ॥ तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ ४२ ॥

टीका—जिसमें बहुतसे मनुष्यमिलिके साथ भोजन करै वह सहभोजिनी दक्षिणापिशाचका धर्म होनेसे द्विजों करि पैशाचीकही गई है उसका फल मैत्री है इसकारणसे वह इसीलोकमें है परलोकमें ऐसे फल देनेवाली नहीं होती है जैसे एकघरमें स्थित अंधी गौ दूसरे घरमें नहीं जासकती ॥ ४१ ॥ जैसे उसरमें वीजवोयकै बोनेवाला फलको नहीं पाता है ऐसे मूर्खको भोजन कराकै दाता श्राद्धके फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

दान्तृप्रति ग्रहितंश्च कुरुते फलभागिनः ॥ विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चे ह च ॥ ४३ ॥ कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ॥ द्विषता हि हवि भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ४४ ॥

टीका—वेदतत्वके जाननेवाले ब्राह्मणको शास्त्रके अनुसार दिया हुआ दान देनेवाले और लेनेवाले दोनोंको इस लोक तथा परलोकमें फल देता है ॥ ४३ ॥ विद्वान् ब्राह्मणके न मिलनेपर गुणवान् मित्रको भोजन करावै और शत्रु वि-

द्वानभी होय तौ उसको भोजन न करावै क्योंकि शत्रु करि स्वाया श्राद्ध-  
पर लोकमें निष्फल होताहै ॥ ४४ ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वचं वेदपारगम् ॥ शाखान्तगमर्थार्थैर्वयुं  
छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ ४५ ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्ध  
मर्चितः । पितृणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती सातपौरुषी ॥ ४६ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप शाखा पढ़नेवाले ऋग्वेदीको श्राद्धमें यत्नसे भोजन  
करावै और वैसेही अर्थात् समस्तवेदके पढ़नेवाले यजुर्वेदीको भोजन करावै और  
समाप्तिपर्यन्त वेद पढ़नेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै ॥ ४५ ॥ इन संपूर्ण शाखा  
पढ़नेवाले बह्वच आदिमेंसे जिसके यहां सत्कारपूर्वक भोजन करताहै उसकी पुत्र  
आदि सात पुरुषोंकी सदा बरोबर सातपुरुषोंतक पितरोंकी तृप्ति होतीहै ॥ ४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं ज्ञे  
यः सदा सद्भिर्नुष्ठितः ॥ ४७ ॥ मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशु  
रं गुरुम् । दौहित्रं विपतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ ४८ ॥

टीका—हव्यकव्य दोनोके देनेमे जो संबन्ध रहित श्रोत्रिय आदिकोंको दि-  
या जाता है यह मुख्य कल्प है और मुख्यके न होनेमें आगे कहा हुआ अनुक-  
ल्प जानिये जो सदा सज्जनो करिकै किया गयाहै ॥ ४७ ॥ नाना मामा भान-  
जा ससुर गुरु दौहिता जमाई और बंधु कहिये मौसी तथा बुआका पुत्र आदि  
ऋत्विक् तथा याज्य इन दशको मुख्य श्रोत्रिय आदिके न होनेमे भोजन करावै ४८

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तुं प्राप्तिं पं  
रीक्षेत प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥ ये स्तेनपतितकृषीवा ये च नास्तिकवृत्त  
यः । तान्हव्यकव्ययोर्विप्रानर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ ५० ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला दैव श्राद्धमें ब्राह्मणकी भोजनकेलिये यत्नसे  
परीक्षा न करै लोककी प्रसिद्धिहीसे यह साधुतासे भोजन कराने योग्यहै और  
फिर पितृसंबंधी कार्यके अन्तेपर पिता पितामह आदिकी परीक्षा करनी योग्य  
है ॥ ४९ ॥ चोर पतित कहिये महापातकी नपुंसक नास्तिक कहिये जो पर-  
लोकको नमानै इन सबोंको दैव और पित्र्यकर्ममें मनुने अयोग्य कहाहै ॥ ५० ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कर्तव्यं तथा । याजयन्ति च ये पूर्णास्तां

श्रैश्च श्रौद्धे न भोजयेत् ॥ ५१ ॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्र  
यिणस्तथा । विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥ ५२ ॥

टीका—जटाधारी होय अथवा मूडमुढाये होय ऐसा ब्रह्मचारी और वेदपढने रहित अर्थात् जिसका यज्ञोपवीतही हुआ है वेद नहीं पढाया गया और बुरीचमडीवाला और जुआरी और जो बहुतसे मनुष्योंको रंजनकराताहै जैसे ग्राम याजक इन सर्वोको श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ५१ ॥ वैद्योको मंदिर धारियोंको मासवेचनेवालोको वणिज करनेवालोको दैवपित्र्यकर्ममें भोजन न करावै ॥ ५२ ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुन्खी श्यावदन्तकः । प्रतिरोद्धा गुरोश्चै  
र्व त्यक्ताग्निर्वाङ्मुषिस्तथा ॥ ५३ ॥ यक्ष्मी च पशुपालश्च परि-  
वेत्ता निराकृतिः । ब्रह्माद्विद् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥ ५४ ॥

टीका—गाँवकी और राजाकी आज्ञा करनेवाला जैसे हलकारा कुन्खी कहिये जिसके नखरोगसे विगडे होय और काले दातवाला गुरुकी आज्ञा न माननेवाला और जिसने श्रौत स्मार्त अग्नि छोडदी है और व्याजस्नानेवाला ये सब दैवपित्र्यकर्ममें वर्जित है ॥ १५३ ॥ क्षयरोगवाला और पशुपाल जो जीविकाके लिये बकरी भेड आदिका चरानेवाला और परिवेत्ता परिवित्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और निराकृति कहिये पंचयज्ञोंका न करनेवाला और ब्राह्मणोसे द्वेष करनेवाला और गणाभ्यन्तर कहिये गणके लिये त्याग किये हुए धनआदिसे जीविकाकरनेवाला ये दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

कुशीलवोऽवकीर्णा च वृषलीपतिरेव च । पौर्नर्भवश्च काणश्च य-  
स्य चोपपतिर्गृहे ॥ ५५ ॥ भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापित  
स्तथा । शूद्राशिष्यो गुरुश्चैव वाङ्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ ५६ ॥

टीका—कुशीलव कहिये नाचनेवाला स्वांग आदिसे जीविका करनेवाला और अवकीर्णा जिसका व्रत स्त्रीकेयोगसे विगडगया होय चाहे ब्रह्मचारी हो वा संन्यासी और वृषलीपतिकहिये जिसने सर्वा न व्याहि शूद्रासे व्याह किया होय और पुनर्भू पुत्र जो आगे कहेंगे और काना जिसके घरमें उपपति कहिये जा रहै ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५५ ॥ नौकरीलेकर पढानेवाला तथा नौकरी लेकर पढनेवाला और व्याकरण आदिमें शूद्रका शिष्य और तैसेही शूद्रका गुरु और कठोर वाणी बोलनेवाला और कुण्ड जो पतिके जीते हुए जा-

रसे उत्पन्न होय और गोलक जो पृथिके मरने पीछे जारसे उत्पन्न होय ये स-  
दैव पित्र्यकर्ममें वर्जितहैं ॥ ५६ ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा । ब्राह्मिण्यौ नैश्वं सर्वन्धैः  
संयोगं पतितैर्गतः ॥ ५७ ॥ अंगारदाही गरुदः कुण्डाशी सोमैवि  
क्रयी । समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ ५८ ॥

टीका—विनाकारणके मातापिता और गुरुका त्याग करनेवाला अर्थात् उ-  
नकी सेवा आदि न करनेवाला और पढना तथा कन्यादान आदिसे जिसका पति-  
तोंसे मेल है ये सब दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करनेयोग्य हैं ॥ ५७ ॥ घरजलानेवा-  
ला और विषदेनेवाला और कुंडका अब खानेवाला और सोमलताका वेचने-  
वाला और समुद्रमें जो जहाजपर चढिके द्वीपांतरको जाय और राजा आ-  
दिकोंकी स्तुति पढनेवाला और तेलके लिये तिल आदि बीजोंका, पीसनेवाला  
और झूठीगवाही देनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ५६ ॥

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा । पांपरोग्यभिर्शस्तश्च  
दांभिको रसविक्रयी ॥ ५९ ॥ धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्नेदि  
धिषूपतिः ॥ मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

टीका—पिताके साथ शास्त्रार्थमें अथवा लोकमें जो, व्यर्थ विवाद करताहै  
और कितव जो आप जुआ खेलना नही जानताहै परंतु अपनेलिये औरोंका  
खेलानेवाला तथा मद्यपीनेवाला और कोढी और निर्णय न होने परभी जिस-  
को महापातक आदि लगि रहे हैं और छलसे धर्म करनेवाला और ईस आ-  
दिके रसका वेचनेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ५९ ॥ धनुष और बाणका बनाने-  
वाला और जेठी बहिनका व्याह न होनेपर जो व्याही जाय उसको अग्नेदिधि-  
षू कहते है उसका पति और जे मित्रकी बुराई करे और जो जुआ खेलनेवाला  
और पुत्र करि पढाया हुआ पिता ये भी सब वर्जितहैं ॥ १६० ॥

भ्रामरी गण्डमाली च श्विर्वैर्यथो पिशुनस्तथा । उन्मत्तोऽन्धश्च  
वैज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ ६१ ॥ हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रै  
र्यश्च जीवति । पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ ६२ ॥

टीका—भ्रामरीरोगवाला और कंठमालारोगवाला और श्वेतकुष्ठयुक्त और  
दुर्जन और उन्मादरोगवाला और अंधा और वेदकी निंदा करनेवाला ये सब

वर्जितहै॥६१॥ हाथी बैल घोडा और ऊंट-इन सबोंका सिखानेवाला और ज्योति-  
षसे जीविका करनेवाला और खेलके लिये पिंजरेमें रखकर पक्षियोंका पालने  
वाला और शस्त्रविद्याका सिखानेवाला ये सब वर्जित हैं ॥६२॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणं रतः। गृहसंवेशको दूतो वृक्षा  
रोपक एव च ॥ ६३ ॥ श्वक्रीडी ज्येनजीवी च कन्यादूषक एव  
च। हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ ६४ ॥

टीका—वहते हुए प्रवाहोंके पुल आदिको तोडके दूसरे देशमें लेजानेवाला  
और उन्ही जलोकी निजगतिका रोकनेवाला और वास्तुविद्या जो घर आदि  
बनानेकी विद्या है उससे जीविका करनेवाला और हलकारा और नौकरी लेकर  
वृक्षोंका लगानेवाला धर्मके लिये नहीं क्योंकि लिखा है कि 'पञ्चाभरोपी नर  
केनयाति' अर्थात् धर्मकेनिमित्त पांच आमके पेडोका लगानेवाला नरकको नहीं  
जाता है इति ये सब ऊपर कहे हुए वर्जित हैं ॥ ६३ ॥ खेलकेलिये कुत्तोंका पा-  
लनेवाला और वाजोंके बेचने खरीदनेसे जीविका करनेवाला और कन्यासे ग-  
मन करनेवाला और हिंसा करनेवाला और शूद्रोंकी वृत्ति करनेवाला और वि-  
नायकादि गणोंका यज्ञ करनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६४ ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा। कृषिजीवी श्लीपदी  
च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ ६५ ॥ औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वा  
पतिस्तथा। प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥

टीका—गुरु और अतिथिके अभ्युत्थान आदि आचारसे रहित और क्लीब  
काहिये जो धर्मकार्यमें उत्साहरहित होय वह नपुंसक पहले कहचुके हैं और नि-  
त्य मागनेसे दूसरेको दिक्ककरनेवाला और जो आप खेती करिके खाताहै वह  
श्लीप्रदरोगसे मोटे पैरवाला और किसीकारण साधुओंने जिसकी निंदा की है  
वह ये सब वर्जित हैं ॥ ६५ ॥ मेढा भैंसी आदिसे जीविका करनेवाला पर  
और पूर्वा पुनर्भूका पति और धर्मार्थ नहीं किंतु धन लेकर प्रेतका लेजाने-  
वाला और ये सब यत्नसे वर्जनीयहैं ॥ ६६ ॥

एतान्विर्गहिताचारानर्पाङ्केयान्द्विर्जाधमान्। द्विजातिप्रवरो विद्वा  
नुभयत्र विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शा  
म्यति। तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि द्रव्ये ॥ ६८ ॥

टीका—इस जन्ममें निंदितहैं आचार जिनके ऐसे स्तेन अर्थात् चोर आदि-काको और पूर्वजन्ममें इकठ्ठे कियेहुए निंदित कर्मोंसे हुआ है काणापन जिनको ऐसे मनुष्योंको औ अपांक्त्य कहिये जो सज्जनोंके साथ एक स्थानमें बैठ-कर भोजनके योग्य न होय ऐसे नीच ब्राह्मणोंको शास्त्रका जाननेवाला ब्राह्मण दैवपितृकर्ममें त्याग करै ॥ १६७ ॥ जैसे तृणकी अग्नि हविजलानेको नही सम-र्थ होती हंकिडालनेसे आप बुझिजाती है तौउसमै होम निष्फलहै ऐसेही वेदाध्ययन शून्यब्राह्मण तृणकी अग्निके समानहै उसको देवताके नरमसे छोडाहवि न देना चाहिये क्योंकि भस्ममें होम नही किया जाताहै ॥ १६८ ॥

अपाङ्गदाने यो दातुर्भवंतूर्ध्वं फलोदयः । दैवे हविषि पित्र्ये वा  
तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६९ ॥ अत्रतै र्यद्विजैर्भुक्तं परिवेत्तादिभि  
स्तथा । अपाङ्गैर्यदन्वैश्च तद्वै रक्षींति भुञ्जते ॥ १७० ॥

टीका—पंक्तिमें भोजनके योग्य नही ऐसे ब्राह्मणको दैव तथा पितृकर्म हवि दे-नेसे दाताको देनेके पीछे जो फल होताहै उसको संपूर्णतासे कहोंगा ॥ ६९ ॥ वेदके ग्रहणके अर्थ जो अत्रहै उससे रहित तैसेही परिवेत्ता आदिकों करकै तथा अन्य-अपांक्त्य स्तेनआदिकों करकै जो हव्यकव्य स्वायागया उसको राक्षस खाते हैं अर्थात् वह श्राद्ध निष्फल होताहै ॥ १७० ॥

दारोग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्तां स विज्ञेयः प  
रि वित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ७१ ॥ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिवि  
द्यते ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ७२ ॥

टीका—परिवेत्ता आदिका लक्षण कहतेहैं ॥ जो सहोदर बडे भाईका नव्यां-ह होनेपर और अग्निहोत्र रहित होनेपर विवाह और स्मार्त अग्निका ग्रहण कर-ताहै वह परिवेत्ता और उसका जेठा भाई परिवित्ति होवा है ॥ १७१ ॥ प्रसंगसे परिवेदन संबंधी पांचोका अनिष्टफल कहते हैं ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता जिस कन्यासे विवाह करता है उसकन्याका देनेवाला और विवाह करानेवाला याजक अर्थात् उसविवाहका होम करनेवाले पांचमें समेत सब वे नरकको जाते हैं ॥ ७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥ धर्मणापि नियुक्ता  
यां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥ ७३ ॥ परदारेषु जायते द्वौ सुतौ कु  
ण्डगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तारि गोलकः ७४ ॥

टीका—मरे हुए भाईकी आगे कहे हुए नियोग धर्मसे भी नियोगकी गई स्त्रीमें एक एक वार ऋतुमें गमन करै इत्यादि विधिको छोडकर कामसे आलिगन चुंबन आदिजो करता है अथवा वारंवार प्रवृत्त होता है उसको दिविषूपति कहते है ॥ ७३ ॥ पराई स्त्रियोंमें कुंड और गोलक नाम दोनो पुत्र उत्पन्न होते हैं पतिके जीवते हुए जारसे उत्पन्न कुंड होता है और पतिके मरने पीछे उसीभांति गोलक होता है ॥ ७४ ॥

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ॥ दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ७५ अपाङ्क्तयो यावतः पाङ्क्त्यान् भुञ्जानानुपश्यति ॥ तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिशः ७६ ॥

टीका—पराई स्त्रीमें उत्पन्न हुए वे कुंड और गोलक दोनौ प्राणी इस लोक में कीर्ति आदिको और परलोकमें देनेवालेके हव्यका नाश करते हैं अर्थात् देनेवालों करिदिये हुए हव्यकव्योंको निष्फल करते हैं ॥ ७५ ॥ सज्जनोंके साथ एक पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे स्तेन आदि जितने पंक्तिमें भोजन योग्यों को देखता है उतनोंके भोजनका फल उस श्राद्धमें मूर्ख दाता नहीं पाता है इससे जैसे स्तेन आदि न देखे ऐसे करना चाहिये ॥ ७६ ॥

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणं पष्टेः श्वित्री शतस्य तु ॥ पापरोगी सं हस्रस्य दातुं नाशयते फलम् ॥ ७७ ॥ यावतः संस्पृशेद्द्वैर्ब्राह्मणा अशूद्रयाजकः तावतां न भवेदातुं फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ ७८ ॥

टीका—अंधा देख नहीं सकता परंतु देखनेयोग्य स्थानमें जानेसे पंक्तियों नव्हे ब्राह्मणोंके भोजन फलको नाश करता है ऐसेही काणा साठिका और श्वेतकुष्ठी सौका और पापरोगी हजारका फल नाश करता है ॥ ७७ ॥ शूद्रके यज्ञ अदिमें ऋत्विक् जितने ब्राह्मणको अंगोंसे छूता है अर्थात् जितने श्राद्धमें भोजन करनेवालोंकी पंक्तिमें बैठता है उन सबोंकी पूतिका फल देनेवालेको नहीं मिलता है ॥ ७८ ॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाग्भसि ॥ ७९ ॥ सोमविक्रयिणे विष्टा भिषजे पूयशोणितम् ॥ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धषे ॥ ८० ॥

टीका—वेदका जाननेवालाभी जो ब्राह्मण लोभसे शूद्रयाजकका दान ले-

ता है वह पानीमें कच्चे मट्टीपात्रके सुम्नन शीघ्रही शरीर आदिसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ सोमलता बेचनेवालेके लिये जो दिया जाता है वह देनेवालेके भोजनके लिये विष्टा हो जाती है अर्थात् देनेवाला दूसरे जन्ममें विष्टा खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है ऐसेही वैद्यके देनेसे पीव और रक्त होता है अर्थात् दाता दूसरे जन्ममें पीवरक्त खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है और देवलकको दिया हुआ नष्ट होजाता है अर्थात् निष्फल होता है और व्याज खानेवालेको दिया हुआ अप्रतिष्ठ कहिये आश्रय रहित होनेसे निष्फलही है ॥ १८० ॥

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नार्मुत्र तद्भेदवत् ॥ भस्मनीव हुतं ह्यव्यं  
तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ ८१ ॥ इतरेषु त्वपाइत्तयेषु यथोद्दिष्टेष्वसौ  
धुषु ॥ मेदासृद्धांसमज्जास्थि वर्दन्त्यन्नं मनीर्विणः ॥ ८२ ॥

टीका—श्राद्धमें जो वाणिज करने वालेके लिये दियाजाता है वह इस लोक तथा परलोकमें फलका देनेवाला नहीं होता है और जो पुनर्भू पुत्रके लिये दिया हुआ है वह भस्ममें होमी हुई इविके समान निष्फल होता है ॥ ८१ ॥ विशेष करि जिनका फल नहीं कहा है ऐसे पंक्तिमें भोजनके योग्य पहले कहे हुए स्तेन आदिकोंके लिये दिया हुआ जो अन्न वह देनेवालेके भोजनके मेदा रुधिर मांस मज्जा और हाड होजाता है यह पण्डित कहते हैं यहाँभी दूसरे जन्ममें मेदा रुधिर आदि खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८२ ॥

अपांत्तयोपहता पंङ्क्तिः पांव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तान्निर्बोधत  
कांत्स्न्येन द्विजाद्यान्पङ्क्तिपावनान् ॥ ८३ ॥ अग्न्याः सर्वेषु वेदेषु स  
र्वप्रवचनेषु च ॥ श्रोत्रियान्वयजाश्चैवं विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ८४ ॥

टीका—एक पंक्तिमें बैठे हुए स्तेन आदिकों करि दूषित किई हुई पंक्तिजिन ब्राह्मणों करि पवित्र की जाती है उन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणोंको संपूर्णतासे आप सुनियो ॥ ८३ ॥ चारों वेदोंमें अन्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् जिन्होंने अच्छी तरहसे चारों वेद पढे हैं वे ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और प्रकर्ष करिके जो वेदके अर्थको कहें वे प्रवचन कहाते हैं अर्थात् अंग उनमें अग्न्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् छहो अंगोंके जाननेवाले चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और श्रोत्रियान्वयजा कहिये दशपीढीसे वेद पढनेवालोंके प्रथम उत्पन्न ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं ॥ ८४ ॥



त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ब्रह्मदेयात्मसंतानो  
ज्येष्ठसामग एव च ॥ ८५ ॥ वेदार्थवित्प्रवृत्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ॥  
श्रुतायुश्चैवं विज्ञेयां ब्राह्मणाः पङ्क्तिर्पावनाः ॥ ८६ ॥

टीका—त्रिणाचिकेत यजुर्वेदका एक भाग है उसका व्रत करनेवाला ब्राह्मण त्रिणाचिकेत होता है १ वह और पंचाग्निहोत्री २ और त्रिसुपर्ण ऋग्वेदका एक भाग है उसका पढनेवाला ब्राह्मण त्रिसुपर्ण कहा जाता है वह ३ और जो शिक्षा आदि छः अंगोंको पढा होये वह षडंगवित् ४ ब्राह्मणविवाहमें विवाही हुईसे उत्पन्न पुत्र ५ ज्येष्ठ साम आरण्यमे गाये जाते हैं उनका गानेवाला ६ ये छः पंक्तिपावन जानने योग्य हैं ॥ ८५ ॥ वेदके अर्थका जाननेवाला १ और वेदके अर्थका कहनेवाला २ ब्रह्मचारी ३ हजार गौओंका वा अधिकका देनेवाला ४ और सौवर्षकी अवस्थाका श्रोत्रिय ५ ब्राह्मण पंक्तिके पवित्र करनेवाले जानिये ८६

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥ निमन्त्रयेत् त्र्यव्रान्सम्य  
ग्विप्रान्यथोद्वितान् ॥ ८७ ॥ निमन्त्रितो द्विजः पितृभ्ये नियतात्मा  
भवेत्सदा ॥ न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥ ८८ ॥

टीका—श्राद्धकर्मके प्राप्तहोनेपर श्राद्धके दिनसे एक दिन पहले जो न हो सके तो उसी दिन जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसे तीनि अथवा, एक ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक निमंत्रण करै ॥ ८७ ॥ श्राद्धमें न्योता दिया गया ब्राह्मण न्योतेके दिनसे श्राद्धके दिनरातितक संयम नियमसे रहै अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करै और अवश्य करनेयोग्य जप आदिको छोडकर वेदके अध्ययनको भी न करै और श्राद्ध करनेवालाभी इसी नियमसे रहै ॥ ८८ ॥

। नुगच्छ

यथान्यायं व्यकव्ये

द्विजोत्तमः ॥ कथंचिदप्यतिश्रामन्पार्षः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

टीका—न्योतेगये ब्राह्मणोंमे पितर अदृश्यरूपसे स्थित होते हैं और प्राणबनके समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठनेपर समीप बैठते हैं तिस्से उनको नियमसे रहना चाहिये ॥ ८९ ॥ हव्यकव्यमें शास्त्रके अनुसार निमंत्रण किया गया ब्राह्मण न्योतेको अंगीकार करके किसीप्रकारसे भोजन न करता हुआ उस पापसे दूसरे जन्ममें शूकर होता है ॥ १९० ॥

आमन्त्रितस्तु यैः श्राद्धे वृषल्यां सह मोदते ॥ दातुर्यदुष्कृतं किं  
चिन्तत्सर्वप्रतिपद्यते ॥ ९१ ॥ अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचा  
रिणः ॥ न्यस्तशस्त्रा मर्हाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ९२ ॥

टीका—श्राद्धमें निमंत्रण किया हुआ जो ब्राह्मण वृषलीके साथ भोग करता है वह देनेवालोंके पापको प्राप्त होता है वृषलीका अर्थ यह है कि वृषस्यन्ती कहिये कामकी इच्छासे जो पतिको चंचल करती है वह वृषली कहाती है इस व्युत्पत्तिसे श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी व्याही हुई ब्राह्मणभी वृषली हो सकती है ॥ ९१ ॥ क्रोधरहित और शौचपराः कहिये बाहरी शौचमट्टी पानी आदिसे भीतरी रागद्वेष आदिका त्याग तिसकरके युक्त और सदा ब्रह्मचारी अर्थात् सर्वदा स्त्रीसंयोग आदिसे रहित और युद्धके छोड़नेवाले और महाभाग कहिये दया आदि आठ गुणों करिके युक्त अनादि देवतारूप पितर हैं तिससे भोजन करनेवालेको तथा श्राद्धकरनेवालेको क्रोधआदिसे रहित होना चाहिये ॥ ९२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥ ये च यैरुपचर्याः स्यु  
नियमैस्तांनिबोधत ॥ ९३ ॥ मनोहरण्यगर्भस्य ये मसीच्यादयः  
सुताः ॥ तेषामृषीणंसर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ ९४ ॥

टीका—इस सब पितरोंकी जिस्से उत्पात्ति हुई है और जे पितर जिन ब्राह्मण आदिकों करि जिन नियमोंसे शास्त्रोक्त कर्मों करि उपचार करनेयोग्य होते हैं उन सबोंको सुनिये ॥ ९३ ॥ हिरण्यगर्भके पुत्र मनुके जे मरीचि आदि पुत्र पहले कहे गये हैं उन सब ऋषियोंके पुत्र सोमपा आदि पितृगण मनु आदिकोंने कहे हैं ॥ ९४ ॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥ अग्निष्वात्ताश्च  
देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ॥ ९५ ॥ दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वा  
रगरक्षसाम् ॥ सुपर्णाकिनराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ ९६ ॥

टीका—विराटके पुत्र सोमसदनाम साध्योंके पितर हैं और मरीचिके पुत्र अग्निष्वात्ता लोकमें विख्यात देवताओंको पितर कहे गये हैं ॥ ९५ ॥ दैत्य दानव यक्ष गंधर्व उरग राक्षस सुपर्ण और किन्नरोंके बर्हिषद नाम पितर कहे गये हैं ९६

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानां माज्जपा ना

म शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ ९७ ॥ सोमपास्तु कवेः पुत्रो हविष्मन्तो  
ऽङ्गिरःसुताः ॥ पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रावसिंघस्य सुकालिनः ॥ ९८ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंके सोमपा आदि चारों पितर कहे गये है ॥ अर्थात् ब्राह्मणोंके सोमपा क्षत्रियोंके हविर्भुज वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंको सुकालिन ॥ ९७ ॥ कविजे भृगु हैं तिनके सोमपा नाम पुत्र हैं और अंगिराके हविर्भुज पुत्र हैं पुलस्त्यके आजपा नाम हैं और वसिष्ठके सुकालिन है ॥ ९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ॥ अग्निष्वात्तांश्च सौ  
म्याश्च विप्राणामेवं निदिशेत् ॥ ९९ ॥ य एते तु गणा मुख्याः पि  
तृणां परिकीर्तिताः ॥ तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् २००

टीका—अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य बर्हिषद अग्निष्वात्त और सौम्य इनको ब्राह्मणोंहीको पितर जानिये ॥ ९९ ॥ जो ये प्रधानभूत पितरोंके गण कहे गये हैं तिनकेभी इस जगतमें पुत्र पौत्र आदि अनन्त पितर जानने योग्य हैं इस श्लोकमें सूक्ष्मही वरवरेण्य इत्यादि और भी मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें सुने जाते हैं ॥ २०० ॥

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः ॥ देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं  
चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ १ ॥ रजतैर्भार्जनैरेषामथो वा रजतन्वितैः  
वार्यैर्षि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २ ॥

टीका—मरीचि आदि ऋषियोंसे कहे हुए क्रमके अनुसार पितर हुए और पितरोंसे देवता तथा दानव उत्पन्न हुए और देवताओंसे जंगमस्थावर जगत् क्रमसे उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ चांदीके पात्रोंसे अथवा चांदीयुक्त पात्रोंसे अथवा तामे आदिके पात्रोंसे श्रद्धापूर्वक पितरोंको दिया हुआ जलभी अक्षय सुखका कारण होता है फिर अच्छी खीर आदिका तौ क्या कहना है ॥ २ ॥

देवकार्याद्धिजातिनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥ देवं हि पितृकार्यं  
स्य पूर्वमाप्ययनं श्रुतम् ॥ ३ ॥ तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं देवं नियोजेत् ॥ रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्रद्धामारक्षवर्जितम् ॥ ४ ॥

टीका—देवताओंके लिये जो कार्य किया जाता है वह देवकार्य कहाता है उससे पितरोंका कार्य द्विजातियोंको अवश्य कर्तव्य कहा है इससे पितृश्राद्धकी सु-

ख्यता और दैव अंग है जिसे दैवकर्म पितृकृत्यका परिपूर्ण करनेवाला कहोगया है ॥ ३ ॥ उन पितरोंका रक्षारूप अर्थात् रक्षा करनेवाले विरवेदेव ब्राह्मणोंका निमंत्रण करै क्योंकि रक्षारहित श्राद्धको राक्षस छीन लेते हैं ॥ ४ ॥

दैवाद्यन्तं तदीहेतं पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ॥ पित्राद्यन्तं त्वीहर्मानः  
क्षिप्रं चरयति सान्वयः ॥ ५ ॥ शुचि देशं विंक्तिं च गोमयेनोप  
लेपयेत् ॥ दक्षिणांप्रवणं चैवं प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—इसीसे वह पित्र्यश्राद्ध दैवकर्म है आदि, और अंतमें जिसके दैव है ऐसा करै पित्र्य जिसके आदि अंतमें होय ऐसा न करै और पित्र्य जिसकी आदि अंतमें होता है ऐसे श्राद्धको करता हुआ पुरुष कुटुंब सहित शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥ शुद्ध तथा एकान्त देशको गोवरसे लिपावै और यत्नसे दक्षिणकी और झुका हुआ रक्खै ॥ ६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैवं हि ॥ विविक्तेषु च तुष्यन्ति  
दत्तेन पितरः सदा ॥ ७ ॥ आसनेषूपर्कुप्तेषु ब्राह्मिन्सु पृथक्पृथक्  
उपस्पृष्टोदकान् सम्यग्विप्रास्तानुपवेशयेत् ॥ ८ ॥

टीका—अवकाशोंमें और चोक्ष कहिये स्वभावसे शुवन आदि स्थानोंमें और नदी आदिके किनारोंमें और शून्यस्थानोंमें किये हुए श्राद्धआदिसे पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ उस स्थानमें कुशोंसमेत जुदे २ विछाये हुए आसनोंपर पहले निमंत्रित स्नान आचमन किये हुए ब्राह्मणोंको अच्छीतरह बैठायै इहां देव ब्राह्मणके आसनपर दो कुश रक्खै और पितृब्राह्मणके आसनोंमें प्रत्येक पर दक्षिणको जिसका अग्रहै ऐसा एक एक कुश रखना चाहिये ॥ ८ ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वज्जुगुप्सितान् ॥ गन्धमाल्यैः सुरभि  
भिरर्चयेद्देवंपूर्वकम् ॥ ९ ॥ तेषामुदकर्मानिय समवित्रास्तिलान  
पि ॥ अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ १० ॥

टीका—उन अनिदित ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठायकै केसरि आदि सुगंध और माला धूप आदिसे पहले देवपूजन करिकै पूजै ॥ ९ ॥ उन ब्राह्मणोंके अर्धजलसे पवित्र तिलोंको मिलाकर उन ब्राह्मणोंके साथ आज्ञा लेकर अग्निमें आगे कहा हुआ होम करै ॥ १० ॥

अग्नेः सम्यमभ्यां च कृत्वाप्ययनमादितः ॥ हविर्दानेन विधिर्व

त्पश्चात्संतर्पयेत्पितृन् ॥११॥ अथ्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोप  
पार्दयेत् ॥ यो अग्निः सं द्विजो वि प्रैर्मन्त्रं दाशिभिर्हृच्यते ॥ १२ ॥

टीका—पहले विधिपूर्वक पर्युक्षण आदिको करके हविके देनेसे अग्नि सोम-  
और यमको प्रसन्न करिके पीछे अन्न आदीसे पितरोंको तृप्त करे ॥ ११ ॥ अ-  
ग्निके न होनेमें फिर ब्राह्मण हाथहीमें पहले कही हुई तीनि आहुति दें जि-  
स्से जो अग्नि है वही ब्राह्मण है यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा है ॥ १२ ॥

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ॥ लोके स्याप्ययने युक्ता  
श्रद्धाद्देवान्द्विजोत्तमान् ॥ १३ ॥ अप्सव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य  
विक्रमम् ॥ अप्सव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ १४ ॥

टीका—क्रोधरहित प्रसन्न मुख और प्रवाहकी अनादितासे पुराने और लोक-  
की वृद्धके लिये उपाय करनेवाले ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंको मनु आदि आचार्य श्रा-  
द्धका पात्र कहते हैं ॥ १३ ॥ अग्नौकरण और होम करनेके क्रमको अप-  
सव्य कहिये दाहिनी और धरिके तिस पीछे अपसव्य हो दाहिने हाथसे पिंड  
धरकेकी भूमिमें जल छिड़के ॥ १४ ॥

त्रिस्तु तस्माद्द्विशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ॥ औदकेनैवं  
विधिना निर्वपेदक्षिणामुखः ॥ १५ ॥ न्युप्य पिण्डान्स्ततस्तांस्तु प्रयं  
तो विधिपूर्वकम् ॥ तेषु दग्धेषु तं हस्तं निर्मृज्याल्लेपभागिनाम् १६

टीका—उस अग्नि आदिके होमसे बचे हुए अर्थात् निकालनेसे शेष रहे अन्न  
से तीनि पिंड बनाके जलदानहीकी विधिसे दाहिने हाथसे सावधान एकाग्रचित्त  
हो दाक्षिणको मुख करि कुशोंके ऊपर रखे ॥ १५ ॥ अपने गृहमें कही हुई वि-  
धिसे उन पिंडोंको कुशोंके ऊपर स्थापित करि उन कुशोंके मूलमें लेपभुजस्तु-  
प्यन्तु ऐसे कहिके लेपके भोज करनेवाले प्रपितामहके पिता आदि तीनि पुरुषों  
की दक्षिके लिये एक कुशसे हाथको पेंछिड़े ॥ १६ ॥

आचम्योदकपरावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ॥ षड्ऋतून्श्च नर्मस्कु  
र्यात्पितृनेव च मन्त्रवित् ॥ १७ ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पि  
ण्डान्तिके पुनः ॥ अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युत्तान्समाहितः १८

टीका—इस पीछे आचमन करि उत्तराभिमुख हो शक्तिके अनुसार तीनि प्रा-  
णायाम करिके वसंताय नमस्तुभ्यम् ऐसे कहि छह ऋतुओंको नमस्कार करे फिरि

नमो वः पितर इत्यादि मंत्रको पढ़ि दक्षिणाभिमुख हो नमस्कार करै ॥ १७ ॥  
पिंड देनेसे पहले पिंड धरनेके स्थानमें धरे हुए जलके पात्रमें शेष रहे जलको  
प्रत्येक पिंडकी समीप भूमिमें क्रमसे फिर छोड़दे फिर उन पिंडोको जिस क्र-  
मसे रक्खाथा उसी क्रमसे उठाकै सावधान हो सूंधै ॥ १८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मांत्रां समादायानुपूर्वशः ॥ तानेव विप्रानां  
सीनान्द्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥१९॥ प्रियमाणे तु पितरि पूर्वषामे  
व निर्वपेत् ॥ विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वंकं पितरमाशयेत् ॥२०॥

टीका—पिंडोमेसे लिये हुए छोटेरभागोंको पिताके पिंडके क्रमहीसे लेकर उन्ही  
पिता आदि ब्राह्मणोंको भोजनकालमें भोजनसे पहले जिमावै और विधिपूर्वक पिंड  
करनेके अनुसार पिताका नाम लेकर जो पिंड दिया गया है उसके अवयवरू-  
प पितृब्राह्मणको भोजनकरावै ऐसेही पितृमह प्रपितामहके पिंडोकाभी करै ॥  
॥ १९ ॥ पिताके जीवते हुए मरे हुए पितामह आदि तीनोंका श्राद्ध करै अथ-  
वा पिताके स्थानमें उसी निजपिताको भोजन करावै और पितामह प्रपितामह-  
के ब्राह्मणभोजन करावै और दो पिंड दे ॥ २२० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चार्पि पितामहः ॥ पितुः संनाम  
संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥२१॥ पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुं  
ञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥ कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् २२

टीका—जिसका पिता तौ मरगया होय और पितामह जीवता होय वह पि-  
ता और पितामहका श्राद्ध करै और गोविंदराजका यह मतहै कि जिसके पिता  
औ प्रपितामह मरिगये होंय वह पिताके लिये पिंडदेकर पितामह से परे दोके  
लिये पिंड दे इस विष्णुके वचनसे प्रपितामह और उसके पिताको पिंड दे ऐसा  
व्याख्यान कियाहै ॥ २१ ॥ जैसे जीवता हुआ पिता भोजन कराने योग्य है  
ऐसेही पितामहभी पितामह ब्राह्मणके स्थानमें भोजन कराने योग्य है पिता और  
पितामहके ब्राह्मण, भोजन करावै और पिंडदान करै अथवा जीवते हुए पिताम  
हसे तुझी अपनी रुचिके अनुसार करौ ऐसी आज्ञा पाकै अपने पितामहको भो-  
जन करावै अथवा पिता और प्रपितामहके दो श्राद्ध करै और विष्णुके वचनसे  
पिता प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामहके तीनि श्राद्ध करै ॥ २२ ॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सप्तवित्रं तिलोदकम् ॥ तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत्

धैषामस्त्विंति ॥ २३ ॥ पाणिभ्यां तूर्पसंगृह्य स्वयमन्न  
स्य वर्धितम् ॥ विप्रान्तिके पितृन्ध्यायच्छनकैरुपनिक्षिपत् ॥ २४ ॥

टीका—उन ब्राह्मणोंके हाथोंमें कुशोंसमेत तिलोदक देके वह पदले कहा हुआ पिंडका अल्पभाग पित्रे स्वधाअस्तु इत्यादि मंत्रको पढता हुआ पिता आदि तीनि ब्राह्मणोंके लिये क्रमसे दे ॥ २३ ॥ अन्नका वर्धित कहिये भराहुआ वह लोही आदि पात्र अपने हाथोंमें लेकर पितरोंका चितवन करता हुआ पापके स्थानसे लाकर ब्राह्मणोंके समीप परोसनेके लिये हौलेसे धर दे ॥ २४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥ तद्विप्रं लुम्पन्त्यसुराः सहसा  
दुष्टचेतसः ॥ २५ ॥ गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि घृतं मधुं ॥  
विन्येत्प्रयतः पूर्वं भूमावेवं समाहितः ॥ २६ ॥

टीका—दोनों हाथोंमें नही स्थित अर्थात् एक हाथसे लाया गया अन्न जो ब्राह्मणोंके समीप पढचाया जाताहै वह दुष्ट बुद्धिअसुर छीन लेते हैं तिससे एक हाथसे लाके न परोसना चाहिये ॥ २५ ॥ व्यंजन कहिये चटनी आदिको अथवा दालि शाक आदि और दूध दही मीठा आदि शुद्धशुद्धसावधान और एकाग्रचित्त हो अच्छी भांति जैसे फैलै नही ऐसे अपने पात्रमें स्थित सब पदार्थोंको भूमिहीमें रक्खै पट्टे आदिपर न रक्खै ॥ २६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥ हृद्यानि चैवं मां  
सानि पानानि सुरभीणि च ॥ २७ ॥ उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः  
सुसमाहितः ॥ परिवर्षयेत् प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २८ ॥

टीका—भक्ष्य सुंदर अच्छे लड्डू आदिको और भोज्य खीर आदिको तथा नाना प्रकारके फल-मूलोंको और हृदयके प्यारे मांसों तथा सुगंधित जलको भूमिहीमें रक्खै ॥ २७ ॥ इस सब अन्न आदिको ब्राह्मणके समीपलाय सावधान शुद्ध और एकाग्रचित्त हो क्रमसे परोसै यह मीठा है यह खट्टा है ऐसे मधुर आवि गुणोंको कहता जाय ॥ २८ ॥

नास्त्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥ न पादेन स्पृशेदन्नं  
न चेतद्वधूनयेत् ॥ २९ ॥ अस्त्रं गमयति प्रेतान्क्रोपोऽरीनं  
नृतं शुक्रं । पादुस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ ३० ॥

टीका—परोसनेके समय कभी आंसू न डालै न क्रोध करै न झूठ बोलै और अन्नको पैरसे न छुवै और न इसको पात्रमें उछालै ॥ २९ ॥ निकाला हुआ आसूँ श्राद्धके अन्नको भूंतोंको पहुंचाता है पितरोंको नहीं पहुंचता है और क्रोध शत्रुओंको और झूठ, धोखेना कुत्तोंको और पैरसे छूना राक्षसोंको और उछाला हुआ पाप करनेवालोंको तिस्से रोना आदि न करै ॥ २३० ॥

यद्यद्गो चेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः ॥ ब्रह्मोद्यांश्च कथाः कुर्या  
त्पितृणामेतदीप्सितम् ३१ स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि  
चैवं हि ॥ आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥ ३२ ॥

टीका—जो जो अन्न व्यंजन आदि ब्राह्मणोंको रुचै उसको मत्सररहित हो-  
कै दे और परमात्माके निरूपणकी वार्त्ता करै इसलियेकि पितरोंको यह अपे-  
क्षित है ॥ ३१ ॥ वेद मानव आदि धर्मशास्त्र सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्या-  
न महाभारत आदि इतिहास ब्रह्मपुराण आदिपुराण और श्रीसूक्त शिवसूक्त आ-  
दि खिल श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनावै ॥ ३२ ॥

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैःशनैः ॥ अन्नाद्येनासकृच्चैतान्यु-  
णैश्च परिचादयेत् ॥ ३३ ॥ व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोज-  
येत् ॥ कुंतपं चासनं दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ ३४ ॥

टीका—आप प्रसन्न होकै प्कारि वचनोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करै और  
अन्नकों मीठे तथा खीर आदिसे हौले २ भोजन करावै यह खीर बडी स्वादिष्ट है  
यह लड्डू बहुत अच्छा है लीजिये ऐसे गुणोंको कहकर वारंवार लेनेके लिये ब्राह्म-  
णोंकी प्रेरणा करै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थितभी दौहित्रको श्राद्धमें यत्नेसे भोजन  
करावै और आसनमें नेपालका कंबलदे और श्राद्धकी भूमिमें तिलोंको विखेर दे ३४

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुंतपस्तिलाः ॥ त्रीणि चात्र प्र-  
शंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ ३५ ॥ अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्दुर्जी-  
रस्ते च वाग्यसाः ॥ न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रां पृष्टां हविर्गुणान् ३६

टीका—श्राद्धमें दौहित्र कुंतप और तिल ये तीन पवित्र हैं और यहां श्राद्ध-  
में शौच क्रोध न करना और जलदी न करना इन तीनोंकी प्रशंसा करते हैं ३५  
जिस अन्नका भोजन उष्ण उचित है वह उष्णपरोसे फल आदि उष्णदे और  
ब्राह्मण मौन होकै भोजन करै वह अन्न स्वादु है अथवा नहीं स्वादु है ऐसे अन्न



आदिके गुण दाता करिकै पूछे गये ब्राह्मण मुख आदिकी चेष्टासेभी न कहै ॥३६॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्रन्ति वाग्यताः ॥ पितरस्त्रावदश्रन्ति  
यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥३७॥ यद्वेष्टितशिरां भुङ्क्ते यदुङ्क्ते दक्षिणामु-  
खः ॥ सोऽपानत्कश्च यदुङ्क्ते तद्वै रक्षासिं भुञ्जते ॥ ३८ ॥

टीका—जबतक अन्नमें उष्णता रहती है और जबतक ब्राह्मण मौन भोजन-  
करते हैं और जबतक हविके गुण नहीं कहे जाते हैं तबतक पितर भोजन करते  
हैं ॥ ३७ ॥ वस्त्र आदि शिरमें लपेटके तथा दक्षिणको मुख करिकै और जूता  
पहिरे हुए जो भोजन करता है उसको राक्षस खाते हैं पितर नहीं खाते हैं तिस्से  
देसा न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

चाण्डालः

।रजस्वला

क्षेत्रन्नश्नतो द्विजान् ॥ ३९ ॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिर्वी-  
क्ष्यते ॥ देवैर्कर्मणि पित्र्ये वा तद्रच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥

टीका—चाण्डाल गांवका सुअर मुरगा कुत्ता रजस्वला स्त्री और नपुंसक ये-  
जैसे ब्राह्मण भोजनके समय न देखें ऐसा करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्र आ-  
दिमें गौ सुवर्ण आदिके दानमें अपने अभ्युदयके लिये ब्राह्मण भोजनमें द-  
र्शपौर्णमास आदि देव कर्ममें और श्राद्ध आदि पितृ कर्ममें जो इन करिकै  
देसा जायं तो जिसके लिये वह किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है अ-  
र्थात् निष्फल होजाता है ॥ १४०

घ्राणेन सूं करो हन्ति पक्ष्वातेन कुक्कुटः ॥ श्वा तु दृष्टिनिपातेन रूपं  
शैनावरवर्णजः ॥४१॥ खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि  
वा भवेत् ॥ हीनतिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥ ४२ ॥

टीका—शूकर उस अन्न आदिकी गंधको सूंघ करि कर्मको निष्फल कर दे-  
ताहै तिस्से सूंघनेके योग्य स्थानमें उस कोन आने दे ओर मुरगा परोंकी पवन-  
से इस लिये वह भी परोंकी पवन लगनेके स्थानसे दूरि करनेयोग्य है और कुत्ता  
देखनेसे और शूद्र छूनेसे द्विजातिके श्राद्धको निष्फल कर देताहै ॥ ४१ ॥  
खंजा कहिये पंगुला होय अथवा काणा होय दाताका दास होय अथवा  
अन्य शूद्र होय और हीन वा अधिक अंगका मनुष्य होय उसकोभी उस  
श्राद्धके स्थानसे निकाल दे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः  
शक्तिंतः प्रतिपूजयेत् ॥ ४३ ॥ सर्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाप्लाव्य वा  
रिणा ॥ संमुत्सृजेद्भुक्तं वतामग्रतो वि किरन्भुवि ॥ ४४ ॥

टीका—अतिथिरूप ब्राह्मण होय अथवा और कोई भोजनके लिये भिक्षुक उस काल आया होय तौ उसका भी श्राद्धके पात्रभूत ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर यथा शक्ति अन्नके भोजनसे वा भिक्षा देनेसे संस्कार करै ॥ ४३ ॥ सब प्रकारके अन्न आदिको व्यंजन आदिकोंमें मिला एक करि जलमें भिगो कै भोजन किये हुए ब्राह्मणोंके आगे भूमिमें कुशोंके ऊपर फैलाके डाल दे ॥ ४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्याग्निनां कुलयोषिताम् ॥ उच्छिष्टं भागधे  
यं स्याद्भेषु वि किरन्भुवः ॥ ४५ ॥ उच्छिष्टं भूमिगतमजिह्वस्या  
शैठस्य च ॥ दासवर्गस्य तर्पिष्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

टीका—संस्कारके अयोग्य बालकोंका तथा विना दोषके कुलकी स्त्रियोंके त्याग करनेवालोंका पात्रमें स्थित उच्छिष्ट अन्न जो कुशोंपर विखेरा जात है वह भाग होता है अर्थात् उनको वही मिलता है ॥ ४५ ॥ जो उच्छिष्ट भूमिमें गिरता है वह आलस्य और कुटिलता रहित दासोंके समूहका भाग पित्र्यकर्ममें मनु आदि कहते हैं ॥ ४६ ॥

असिपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥ अद्वै वं भोजयेच्छ्रौ  
द्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ ४७ ॥ सर्हिपिण्डक्रियायां तु कृतायाम  
स्य धर्मतः ॥ अनयैवावृता कार्ये पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ ४८ ॥

टीका—सर्पिणी करणश्राद्ध पर्यंत शीघ्र मरे हुए द्विजातिका वैश्वदेव ब्राह्मण भोजन रहित श्राद्ध निमित्तका अन्नसे ब्राह्मणकों भोजन करावै और एक पिंड दे ॥ ४७ ॥ जिसका यह एकोद्दिष्ट श्राद्ध किन्ना है उसका धर्मसे निजगृह्यमें कही हुई विधिसे सर्पिणीकरण श्राद्ध करनेपर इसी परिपाटीसे कहे हुए अमावास्या श्राद्धकी पद्धतिसे पिण्डोंका निर्वपण कहिये श्राद्ध पुत्रों करि सर्वत्र मृताह कहिये मरनेके दिन आदिमें करना चाहिये ॥ ४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा यं उच्छिष्टं वर्षलाय प्रयच्छति ॥ संमूढो नरैकं यो  
ति कालसूत्रमवाक्यशिराः ॥ ४९ ॥ श्राद्धभुग्वर्षलीतल्पं तद्दहयोऽ  
धिगच्छति ॥ तस्याः पुंरीषे तन्मांसं पितरस्तस्य शरते ॥ ५० ॥

टीका—श्राद्ध भोजनका उच्छिष्ट अन्न जो शूद्रको देता है व मूर्ख अधोमुख-  
होकै कालसूत्रनाम नरकमें जाता ॥ ४९ ॥ श्राद्धका भोजन करनेवाला जो ब्राह्म-  
ण उसीदिन रातिमें स्त्रीसंग करता है उसके पितर उस स्त्रीकी विष्टामें एक-  
महीनेतक पडे रहते है ॥ २५० ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्ये वै तृप्तानाचामयेत्ततः ॥ आचान्तांश्चांशुर्जानी  
यादभितोरम्यतामि ति ॥ ५१ ॥ स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणा  
स्तदनन्तरम् ॥ स्वधाकारः परां ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको तृप्त जानि भोजन करलिया ऐसे पूछकर आचमन करा-  
वै आचमन किये उनको भो ऐसा संबोधन दें जाइये ऐसे कहै ॥ ५१ ॥ आज्ञा  
देंनेके पीछे ब्राह्मण श्राद्ध करनेवालेसे स्वधाऽस्तु ऐसे कहै जिस्से सब श्राद्ध  
तर्पण आदि पितृकर्ममें स्वधा शब्दका बोलना सबसे बडा आशीर्वाद है ॥ ५३ ॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥ यथा ब्रूयुस्तथा कुर्या  
दनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ ५३ ॥ पितृभ्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठे तु  
सुश्रु तम् ॥ संपन्नमित्यभ्युदये देवे रुचितमित्यपि ॥ ५४ ॥

टीका—स्वधाशब्द कहनेके पीछे ब्राह्मणोंके भोजकरनेसे बचे हुए अन्नको  
अन्नशेषर्भी है ऐसे कहिके उन ब्राह्मणोंके आगे धरदे इस अन्नसे यह करो  
ऐसी आज्ञा लेकर जैसा वे कहें वैसे शेष अन्नका स्वरच करै ॥ ५३ ॥ पितृ  
श्राद्धमें स्वदित अर्थात् अच्छा भोजन हुआ ऐसे बोले । श्राद्धमें सुश्रुत अर्थात्  
अच्छाश्रवणकिया ऐसेकहे। और अभ्युदयश्राद्धमें संपन्न अच्छाहुवा ऐसे कहे और  
दैवकर्ममें रुचित ऐसे कहना ॥ ५४ ॥

अपराह्नस्तथा दर्भावास्तुसंपादनं तिलाः सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजंश्चाश्र्याः  
श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ ५५ ॥ दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च  
सर्वशः ॥ पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥ ५६ ॥

टीका—अमावास्या श्राद्धका कहना यहां मुख्य है तिस्से अमावास्याके मध्ये  
यह अपराह्नकाल अर्थात् मध्याह्न कहाहै प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् इस वचनसे वृ-  
द्धिश्राद्ध आदिमें प्रातःकाल आदि काल दूसरी स्मृतियोंमें कहनेसे ॥ आसन  
आदिके लिये कुशा और गोवर आदिसे श्राद्धके स्थानका शुद्ध करना और वि

किरण आदिके लिये तिल और मृष्टि कहिये उदारतासे अन्न आदिका देना और मृष्टि कहिये अन्न आदिकोंका शुद्ध करना और पंक्ति पावन ब्राह्मण ये श्राद्धमें संपत्ति है इस्से और अंगोसे इनकी उत्कृष्टता सूचित हुई कि इनका श्राद्धमे होना आवश्यकहै यह सूचितकिया ॥५५॥ कुश और पवित्र कहिये मंत्र और पूर्वाह्नकाल कहिये पहला पहर और सब हविष्य कहिये मुनि अन्न आदि सब और पहले कंहा हुआ पवित्र कहिये वास्तुसंपादन आदि ये सब हव्य कहिये दैव कर्मकी समृद्धि हैं ॥ ५६ ॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥ अक्षारलवणं चैवं प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ ५७ ॥ विमृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वा ग्यतः शुचिः ॥ दक्षिणां दिशमाकां दक्षिन्यां चेतैर्मान्वरान्पितॄन् ॥ ५८ ॥

टीका—मुनि कहिये वानप्रस्थके अन्न नमवार आदि और दूध और सोमलताका रस अनुपस्कृत कहिये विगडा न होय ऐसा दुर्गंध आदिसे रहित मांस और अक्षार लवण कहिये विना बनाय हुआ सधैव आदि ये स्वाभाविक हवि मनुआदिकोंके कहे हैं ॥ ५७ ॥ उन ब्राह्मणोंका विसर्जन करिके एकाग्रचित्त मौनी और शुद्ध हो दक्षिण दिशाकी देखता हुआ आगे कहे हुए इन चाहै हुए वरोंको पितरोंसे मागै ॥ ५८ ॥

दातारो नो ऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संतिरिवै च ॥ श्रद्धा च नो भौ व्यं गमद्बहु दे यं च नो ऽस्त्विर्ति ॥ ५९ ॥ एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तर्दनन्तरम् ॥ गां विप्रमज्जमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ६०

टीका—हमारे कुलमें दाता पुरुष बढै और पढवनेपदाने तथा अर्थके ज्ञानसे वेद वृद्धको प्राप्त होय और पुत्रपौत्र आदि बढै और हमारे कुलमें वेदके अर्थोंसे श्रद्धा न जाय और देनेयोग्य धन आदि बहुतसा होय ॥ ५९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे पिंडदान करिके वांछित वर मागने पीछे गौ ब्राह्मण अथवा बकरोंको वे पिंड खुला दे अथवा अग्निमे वा जलमें डालदे ॥ ६० ॥

पिण्डनिर्वपणं केचित्परस्तादेवै कुर्वते ॥ वयोभिः स्वाद्यन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनले ऽप्सु वा ॥ ६१ ॥ पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ॥ मर्ध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥ ६२ ॥

टीका—कोई आचार्य ब्राह्मणभोजन के पीछे पिंडदान करतेहैं और कोई प्रक्षियों

को पिंड खुलाते हैं अथवा आगिमें जलमें टाल देते हैं ॥६१॥ धर्म अर्थ काममें मन वाणी काय कर्मसे पतिही मुझे सेवा करने योग्य हैं यह व्रत जिसके होय वह पतिव्रताधर्मसे व्याही सवर्णा और प्रथम विवाही स्त्री श्राद्धकी क्रियामें श्रद्धायुक्त पुत्रकी चाहनेवाली उन पिंडोंमेंसे बीचके पितागृहके पिंडका भोजन करै ॥ ६२ ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥ धनवन्तं प्रजावन्तं  
सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ ६३ ॥ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रा  
यं प्रकल्पयेत् ॥ ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानापि भोजयेत् ६४

टीका—उस पिंडके खानेसे वह स्त्री बड़ी उमरवाले कीर्त्ति और धारणा करनेवाले बुद्धियुक्त और धनपुत्र आदि युक्त गुणी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥६३॥ तिस पीछे हाथोंको धोके अपनी ज्ञाति जिमावै उनके लिये पूजापूर्वक अन्न दे माताके पक्षवालोंकोभी सत्कार पूर्वक जिमावै ॥ ६४ ॥

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यार्वाद्धिप्रा विसर्जिताः ॥ ततो गृहबलिं कुर्या  
दिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ६५ ॥ हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्या  
य कल्प्यते ॥ पितृभ्यो विधिवदत्तं तत्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६६ ॥

टीका—वह ब्राह्मणोका उच्छिष्ट उस समयतक रहै जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन होय और ब्राह्मणोंके निकलजानेपर स्थान शुद्ध करना चाहिये तिस पीछे श्राद्धकर्म संपन्न होनेपर वैश्वदेव बलि होमकर्म नित्यश्राद्ध और अतिथिभोजन करने चाहिये ॥ ६५ ॥ जो हवि पितरोंके लिये विधिसे दिया जाता है वह बहुत कालकी तृप्तिके लिये होता है सो मैं संपूर्णतासे कहोंगा ॥ ६६ ॥

तिलैत्री हियवैर्माषैर्द्धिर्मूलफलैर्वाद्दत्तेन मांसं तृप्यन्ति विधि  
वत्पितरो नृणाम् ॥ ६७ ॥ द्वौ मांसौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारि  
णेन तु ॥ औरंभ्रेणार्थं चतुरः शार्कुनेनार्थं पञ्चैव ॥ ६८ ॥

टीका—तिल धान जव काले उडद जल मूल और फल इनमेंसे कोई एक शास्त्रके अनुसार श्राद्धसे दिया जाय उसमें मनुष्योंको पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥ पट्टीन आदि मछलियोंके मांससे दो महीने तक पितर तृप्त रहते हैं और हरिणके मांससे तीनी महीनेतक और मेढके मांससे चार महीने तक द्विजातिके भक्ष्य पक्षियोंके मांससे पांच महीने तृप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

षण्मासांश्छोगमांसेन पार्षतेन चै सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मांसेन रौ  
रं वेण न वै वै तु ॥ ६९ ॥ दश मांसांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ॥  
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मांसानेकादशैव तु ॥ २७० ॥

टीका—बकरेके मांससे छः माहिने तप्त रहते हैं और पृषतनाम चित्रमृगके मां-  
ससे सात महिनेतक और हरिणके मांससे आठ महिनेतक और रुरुनाम मृग-  
के मांससे नौ महिनेतक तप्त रहते हैं ॥ ६९ ॥ जंगली सुअर और भैंसेके मां-  
ससे १० महिनेतक तप्त रहते हैं और खरगोश तथा कछुएके मांससे ग्यारह  
महिनेतक तप्त रहती है ॥ २७० ॥

सर्वत्सरं तु गव्येन पर्यसा पयसेन च ॥ वाँर्द्धीणसस्य मांसेन तृतिर्द्वा  
दशवार्षिकी ॥ ७ ॥ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ॥  
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि चै सर्वशः ॥ ७२ ॥

टीका—एक वर्षतक गौके दूधसे अथवा उसमेंकी हुई स्त्रीसे संतुष्ट रहते हैं  
और नदी आदिमें पानी पीनेसे जिसके दोनोकान और जीभ जलको छूवै ए-  
से सपेद बूढ़े बकरेको त्रिपिव और वाँर्द्धीणस कहते हैं उस बकरेके मांससे बार-  
ह वर्षकी तप्ति होती है ॥ ७१ ॥ कालशाकनाम एक प्रकार शाक और महाश-  
ल्क कहिये एक प्रकारकी मछली खड्ग कहिये गैडा और लोहामिष कहिये ला-  
ल बकरा इनके मांस और शहत और सब मुनियोंके अन्न अर्थात् नौवार आदि  
बनके अन्न ये सब अनन्त तप्तिके लिये होते हैं ॥ ७२ ॥

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥ तदप्यक्षयमेव स्यात्  
र्द्धपासु च मघासु च ॥ ७३ ॥ अपि नः स कुले जायाद्वा नो दद्यात्  
योदशीम् ॥ पयसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ ७४ ॥

टीका—वर्षाऋतुकी मघा नक्षत्रयुक्त भाद्रपदकृष्ण त्रयोदशीके दिन जो कुछ  
मधुके साथ दिया जाता है वहभी अक्षय तप्तिके लिये होता है ॥ ७३ ॥ पितर  
निश्चय करिके ऐसा चाहते हैं कि हमारे कुलमे कोई ऐसा उत्पन्न होय जो हमारे  
रे लिये वर्षाऋतुकी मघायुक्त भाद्रकृष्ण त्रयोदशीमें अथवा और किसी तिथिमें  
भी हस्तीकी छायाके पूर्वदिशामें जानेपर मधु घृतयुक्त स्त्री दे ॥ ७४ ॥

यद्यद्दाति विधिर्वत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥ तर्त्तर्पितृणां भवति

परंत्रान्तमक्षयम् ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतु  
दशीम् ॥ श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथैतराः ॥ ७६ ॥

टीका—अच्छे प्रकारसे श्राद्धायुक्त जो जो पितरोंके लिये देता है वह सब अ-  
त्र परलोकमें पितरोंकी तृप्तिके लिये अनंत और अक्षय होता है ॥ ७५ ॥  
कृष्णपक्षमे दशमी १ एकादशी २ द्वादशी ३ त्रयोदशी ४ अमावास्या ५ ये पांचति-  
थि श्राद्धकरनेके लिये प्रशस्त है ऐसी अन्य तिथि नहीं ॥ ७६ ॥

युक्षु कुर्वन् दिनक्षेषु सर्वाङ्कामान्सर्मश्रुते ॥ अयुक्षु तु पितृन्सर्वा  
न्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षा  
द्विशिष्यते ॥ तथा श्राद्धस्य पूर्वाण्हादपराणो विशिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका—द्वितीया चतुर्थी आदि युग्म तिथियोंमें और भरणी रोहिणी आदि यु-  
ग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब कांछित कामोंको प्राप्त होता है और प्र-  
तिपदा तृतीया आदि अयुग्म तिथियोंमें और अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म  
नक्षत्रोंमें श्राद्धसे पितरोंको पूजता हुआ पुष्कल धनविद्यासे पुष्ट पुत्र आदि  
संततिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ ज्योतिषकी रीतिसे महीनोंका आरंभ शुक्लपक्षसे  
होता है जैसे अपरपक्ष कहिये कृष्णपक्ष अपरपक्ष कहिये शुक्लपक्षसे श्राद्धका  
अधिक फल देनेवाला होता है ऐसे पहले आधे दिनसे दूसरा आधादिन  
श्राद्धमें अधिक फल देनेवाला है ॥ ७८ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसंव्यमतेन्द्रिणा ॥ पितृयमानिधनात्कार्यं  
विधिर्वद्वर्भपाणिना ॥ ७९ ॥ रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कर्ति  
ता हि सा ॥ संध्यो रूभयो श्वै व सूये चैवा चिरो दिते ॥ ८० ॥

टीका—दाहिने क्रंधेपर यज्ञोपवीत रख आलस्य रहित कुश हाथमे ले अप-  
सव्यही शास्त्रके अनुसार सब पितृकर्म अंततक करै ॥ ७९ ॥ रात्रिमें श्राद्ध न करै  
कारण यह है कि श्राद्धनाश करनेका गुण होनेसे मनु आदिकोंने इसको राक्षसी  
कहा है और दोनो संध्या ओंमे न करै और सूर्यके शीघ्र उदय होनेपर न करै ८०

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिंबदस्येह निर्वपत् ॥ हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पा  
श्रयज्ञिकर्मन्वहम् ॥ ८१ ॥ नै पतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ वि  
धीयते ॥ नै दर्शनं विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विर्जन्मनः ॥ ८२ ॥

टीका—इस कही हुई विधिसे संवत्सरके मध्यमें तीनिवार अर्थात् हेमंत ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें श्राद्ध करना चाहिये सो तौ समयाचारसे कुंभ वृष और कन्याके सूर्य होनेपर करै और पंचयज्ञोंमें जो एकमप्याशयेद्विप्रं अर्थात् एक ब्राह्मणकोभी भोजन करावै इस वचन से कहे हुए श्राद्धकी तौ प्रतिदिन करै ॥८१॥ अग्नेःसोमयमाभ्यां च इस मंत्रसे विधान किया हुआ पितृयज्ञका अंगभूत होम श्रौत स्मार्त्त अग्निसे भिन्न लौकिक अग्निमें शास्त्रने नहीं कहा है तिरुसे लौकिक अग्निमें अग्नौकरण होम न करना चाहिये किंतु ब्राह्मणके हाथमें करना चाहिये और अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावास्याके विना कृष्णपक्षकी दशमी आदिमें श्राद्ध कहाहै और मृताहश्राद्ध-तौ नियत होनेसे कृष्णपक्षमेंभी और तिथिमें नहीं निषेध किया जाता है ॥ ८२ ॥

यदेवं तर्पयत्यग्निः पितृन्स्रात्वा द्विजोत्तमः ॥ ते नैव कृत्स्नमाप्नोति  
पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ वसून्वदन्ति तु पितृन् रुद्रांश्चैव पितामहा  
न् ॥ प्रपितामहांस्तथादित्याभ्युतिरेषा सनातनी ॥ ८४ ॥

टीका—पांच याज्ञिक श्राद्ध न होनेमें यह विधि है ॥ जो उत्तम द्विज स्नान करके जलसे पितरोंका तर्पण करता है उसीसे संपूर्ण पितृयज्ञकी क्रियाके फलको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ जिस्से पिता आदि वसु आदि हैं यह अनादि श्रुति है इसीसे पिताओंको वसु नामदेव और पितामहोंको रुद्र और प्रपितामहोंको आदित्य मनु आदि कहते हैं तिस्से श्राद्धमें पिता आदिरूपसे ध्यान करनेयोग्य हैं ८४

विघसांशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः ॥ विघसो भुक्तशेषं तु य  
ज्ञशेषं तथामृतम् ॥ ८५ ॥ एतद्रोऽभिहितं सर्वं विधानं पार्श्वयज्ञिक  
म् ॥ द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ ८६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

टीका—सदा विघसका भोजन करनेवाला होय और सदा अमृतका भोजन करनेवाला होय विघस और अमृत शब्दोंका अर्थ करते हैं ब्राह्मण आदिकोंके भोजनसे बचे हुएको विघस कहते हैं और दर्शपौर्णमास आदि यज्ञोंसे बचा हुआ पुरोडाश आदि अमृत कहा जाता है ॥ ८५ ॥ यह पंचयज्ञोंके करनेकी विधि तुमसे सब कही अब द्विजोंमें मुख्य जो ब्राह्मण हैं उसकी वृत्तियों जो मृत आदि हैं उनका अनुष्ठान सुनिये यह भृगुजी सब महर्षियोंसे कहते हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनय पण्डित केशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां  
कुङ्कुमभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



## अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृ  
तदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ॥ या  
वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

टीका—पहला चौथाई जो आयुष्यका भाग है तिसमें यथाशक्ति गुरुकुलमें  
वास करि दूसरे आयुष्यके चौथाई भागमें विवाह करिके घरमें वास करै ॥ १ ॥  
जीवोंसे द्रोहको न करके जो इसका असंभव होय तौ थोड़ेसे द्रोहको करके जो  
वृत्ति कहिये जीवनका उपाय है उसके आश्रयसे भार्या भृत्य और पंचयज्ञोके क-  
रनेसे युक्त हो ब्राह्मण आपत्तिरहित कालमें जीवें क्षत्रिय आदि नहीं ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्धयर्थं स्वैः कर्मभिरंगहितैः ॥ अंक्लेशेन शरीरस्य  
कुर्वीत धनसंचयम् ॥ ३ ॥ ऋतानृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा ॥  
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥

टीका—प्राणोंकी रक्षा और शास्त्रीय कुटुंबको बढाता हुआ तथा नित्यकर्मों-  
को करता हुआ केवल शरीर निर्वाहके भोगके लिये नहीं शास्त्रमें कहे हुए ऋत-  
आदि अर्ज्वनरूप कर्मोंसे शरीरके क्लेश विना धनका संग्रह करै ॥ ३ ॥ आप-  
त्ति रहित समयमें ब्राह्मण ऋत और अमृतते जीविका करै और विना आपत्ति  
के सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ४ ॥

ऋतमुच्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयोचितम् ॥ मृतं तु यचितं भैक्षं  
प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेनै चैवापि जी  
व्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिरारण्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—खेत आदिमें पडे हुए एक एक अन्नके दानके चुटकीसे बीननेको उ-  
छ कहतेहैं और अनेक धान्योंकी वालिभुटिया फली आदिके बीननेको शिल क-  
हते हैं उन दोनोका सत्य समान फल है इस्से उनको ऋत कहते हैं विना मागे  
प्राप्त हुआ अमृतके समान सुखका कारण होनेसे अमृत है ओर मागा हुआ भि-  
क्षा समूह मरनेके समान पीडा उत्पन्न करनेसे मृत कहाताहै अग्निहोत्री गृहस्थको  
भिक्षामें कच्चे चावल आदि लेने चाहिये पके हुए नहीं क्योंकि पराई अग्निमें पकायें  
हुएका अग्निमें होम नहीं हो सकता हैं और कर्षण जो भूमिका जोतनाहै वह भू

मिमें स्थित अनेक जीवोंके मरनेका कारण होनेसे बहुत दुःखरूप फलका देनेवाला होनेसे जो प्रकृष कहिये अधिकतासे मृतके समान होय सो अमृत कहा जाता है ॥ ९ ॥ बहुधा सच्चे बूटे व्यवहारसे होता है इस्से वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं परंतु वाणिज्यमें शास्त्रसे बूठ सञ्चक्री आज्ञा नहीं है तिसपरभी इसका सत्याऽनृतही नाम है उस वाणिज्यसेभी जीविका करै और इस श्लोकमें जो च शब्दहै इस्से व्याजभी जाना गया अर्थात् आपत्तिमें व्याजसेभी जीविका करै और सेवा-तौ दीन दृष्टिसे देखना और स्वामीके धमकाना नीच कामोंका करना आदि सेवा कुत्ता कीसी वृत्ति कही गई है इस्से ब्राह्मण उसका त्याग करै अर्थात् सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ६ ॥

कुशूलधान्यको वां स्यात्कुम्भीधान्यैक एव वां ॥ त्र्यहैहिको वा  
पि भवेदश्वस्तनिक एव वां ७ चतुर्णामपि चैतेषां द्विर्जानां गृहमे  
धिनाम् ॥ ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकाजित्तमः ॥ ८ ॥

टीका—ईट आदिसे बने हुए अन्न रखनेके घरके कुशूल कहते हैं उसमें भरे हुं-ए धान्यका संचय करनेवाला होय अथवा एकवर्षके निर्वाह योग्य धान्यका संग्रह करनेवाला कुम्भी धान्य कहा जाता है वह होय अथवा त्र्यहैहिक उसको कह-ते हैं जिसके त्रीनिदिनको निर्वाहके योग्य अन्न होय ऐसा होय अथवा जो क-लह होय उसको श्वस्तन कहते हैं ऐसा अन्न जिसके होय वह श्वस्तनिक कहाता है सो न होय उसको अश्वस्तनि कहते हैं ऐसा होय अर्थात् रोज उत्पन्न करके निर्वाह करनेवाला होय ॥ ७ ॥ इन चारि कुशूल धान्य आदि गृहस्थ ब्राह्मणोंमें जो शेषमें बड़ा है अर्थात् पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा इस क्रमसे श्रेष्ठजानिये जिससे वह जीविकाके संकोचसे स्वर्ग आदि लोकोका जीतनेवाला होता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यैः प्रवर्तते ॥ द्वाभ्यामेकैश्चतुर्थस्तु  
ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ९ ॥ वर्तयंश्च शिलोच्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ॥  
ईष्टीः पार्वयनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

टीका—इन चारि कुशूल धान आदि गृहस्थोंमें जिसके बहुतसे पोष्यवर्ग कहिये पालकरने योग्य बहुतसा कुंडुब है वह ऋत अयाचित भिक्षा खेती वाणिज्य इन पांचसे और छठे कुसीद कर्थात् व्याज इन छ कर्मोंसे जीविका करे औ र अन्य जिसके थोडा कुंडुब है वह याजन प्रतिग्रह और अध्यापन इन तीनों से जीविका करै और उस्से अन्य याजन तथा अध्यापनसे जीविका करै और

कहे हुए तीनोंकी अपेक्षा चौथा फिर ब्रह्मसत्र जों पढाना है तिस्से जीविका करै ॥ ९ ॥ शिल और उंछसे जीनेवाला ब्राह्मण धनसे करनेयोग्य दूसरे कर्ममें असमर्थ होनेसे अग्निहोत्रहीमें लगा रहै पर्व और अनर्थके अंतकी इष्टि अर्थात् दर्श-पौर्णमास और आग्रयणात्मिक सदा करै ॥ १६ ॥

**भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥**

टीका—जीविकाकेलिये लोकवृत्त कहिये झूठी प्यारी बातके कहनेको और विचित्र हंसीकी कथा आदिको न करै और अजिह्वा कहिये झूठे अपने गुणोंके कहने आदि पापसे रहित और अशठा कहिये दंभ आदि कपटसे रहित और शुद्धा कहिये वैश्य आदिकी वृत्तियोंसे नही मिली हुई ब्राह्मणकी जीविका करै ॥ ११ ॥ संभवके अनुसार भृत्योंके तथा अपने प्राणोंके निर्वाहके लिये आवश्यक और पंचयज्ञोंके करनेहीके योग्य धनसे अधिक चाहना न करनेको संतोष कहते हैं उस संतोषका भली भांति आश्रय ले बहुतसे धनके जोड़ने में संयम करै जिस्से इस संसारमें संतोषही सुखका कारण है और परलोकमें स्वर्ग आदिके सुखका कारण है इस्से विपर्यय कहिये उलटा असंतोषहै सो दुःखका कारण है क्योंकि बहुत धन जोड़नेके श्रमसे बहुत दुःख उत्पन्न होनेके कारण संपत्ति तथा विपत्तिमें क्लेश होता है ॥ १२ ॥

**अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवस्तु स्नातको द्विजः ॥ स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धि कुर्यान्न्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् १४**

टीका—इन कही हुई वृत्तियोंमेंसे किसी एक वृत्तिसे जीवता हुआ स्नातक ब्राह्मण स्वर्ग आयु और यशके हितकारी आगे कहे हुए व्रतोंको यथा संभव करै यह मुझको करना चाहिये यह न करना चाहिये इस प्रकारका जो संकल्प है उसको व्रत कहते हैं ॥ १३ ॥ वेदमें तथा स्मृतिमें कहा हुआ अपने आश्रमका कहा हुआ कर्म जीवने पर्यंत आलस्यरहित होकै करै जिस कारणसे सामर्थ्यके अनुसार करता हुआ परमागति कहिये मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

**नैहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ॥ न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्थी**

मपि यत्तस्ततः ॥ १५ ॥ इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ॥  
अतिप्रसक्ति- चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥ १६ ॥

टीका—प्रसंग जो गाना, वजात्रो है तिस्से द्रव्यको न जोडै और शास्त्रविरुद्ध कर्म जो अयाज्य याजनादि कहि तिस्से भी न जोडै और धन होनेपरभी न जोडै और धनके न होनेपरभी जो और प्रकार होय तौ इंधर उधर पतित आदिकोंसेभी न ले ॥ १५ ॥ इंद्रियोंके अर्थ कहिये विषय जे रूप रस गंध स्पर्श आदि निषिद्ध नहीं है उनमें अर्थात् अपनी स्त्री आदिके भोगमें कामसे अत्यंत सक्त न होय क्योंकि विषय अस्थिर है और स्वर्ग तथा मोक्ष रूप कल्याण-विरोधी हैं यह जानके इनसे मनसे निवृत्त होय ॥ १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ यथातथास्यार्थापयं  
स्तुं सां ह्यस्य कृत्तकृत्यता ॥ १७ ॥ वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्या  
भिर्जनस्य च ॥ वेपवागबुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

टीका—वेदाभ्यासके विरोधी जो धनवानके समीप बहुत जाना खेतीलोक यात्रा आदि हैं उन सबको त्याग करै तौ कहिये कि भृत्योंका और अपना पालन कैसे होय यह शंका करिकै कहते हैं जैसे तैसे स्वाध्यायके अविरोधी किसी उपायसे भृत्योंका और अपना पोषण करै जिस्से नित्यवेदाभ्यासमें लगा रहना यही स्नातककी कृतार्थता है ॥ १७ ॥ अवस्था क्रिया धन वेद और कुल इनके अनुरूप वेष बोल चाल और बुद्धि करता हुआ इस लोकमें विचरै जैसे तरुण अवस्थामें माला गंध लेपन आदिका धारण करना और त्रिवर्गकी अनुसरण करनेवाली वाणी और बुद्धि ऐसेही कर्म आदिकोंमेंभी जानिये ॥ १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकरण्यांशु धन्यानि च हितानि च ॥ नित्यं शास्त्राण्यवे  
क्षेतं निर्गमांश्चैवं वैदिकान् ॥ १९ ॥ यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं  
संमधिगच्छति ॥ तथातथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते २०

टीका—वेदके विरोधि नहीं और शीघ्रही बुद्धिके बढ़ानेवाले व्याकरण मी-मांसा स्मृति पुराण न्याय आदिशास्त्रोंको तथा धन्य कहिये धनके लिये हित वा-हस्पत्य औरानस आदि अर्थशास्त्रोंको और हितकहिये जिनका उपकार देखा गयाहै ऐसे वैद्यक ज्योतिष आदिकोंको तैसेही वेदार्थके बोध करानेवाले

निगमनाम ग्रंथोंको विचारकरै ॥ १९ ॥ जैसे जैसे पुरुष शास्त्रको अच्छीतरहसे पढता है वैसे वैसे विशेष कर जानताहै और अन्य शास्त्रोंके विषयकोभी विशेष ज्ञान इसको रुचता है अर्थात् उज्ज्वल होता है ॥-२०॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा । नृत्यज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न ह्यपयेत् ॥ २१ ॥ एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ॥  
अनीहमानाः संततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥

टीका—ऋषियज्ञ १ देवयज्ञ २ भूतयज्ञ ४ नृत्यज्ञ ५ इन पांचयज्ञोंको यथाशक्ति कभी न छोडै ॥ २१ ॥ गृहस्थके बाहरी तथा भीतरी यज्ञ करनेके शास्त्र जाननेवाले कोई गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ आदि नाम इन पांच महायज्ञोंको ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे बाहरी चेष्टाओं करि रहित हो पांच बुद्धीन्द्रियोंहीमें पांच जे रूपज्ञान आदि हैं तिनका संयम करते हुए संपादन करते हैं यहा हुआ धातुका संपादन अर्थ है ॥ २२ ॥

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ॥ वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिर्मक्षयाम् ॥ २३ ॥ ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येते मखैः सदा ॥ ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥

टीका—कोई ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ वाचिक कहिये प्राणवायुमें यज्ञ करनेके अक्षय फलको जानते हुए सदा वाणीमें प्राणको होमतेहै और वाणीको प्राणमें अर्थात् बोलता हुआ वाणीको प्राणमें होमताहै और नही बोलनेसे श्वास लेता हुआ प्राणमें वाणीको होमताहै इस्से ध्यान करना चाहिये यह विधान किया जाताहै इस्से अनंत अमृतरूप आहुतियोंको जागते सोते सदा होम करता है निश्चय बाहरी दीहुई और आहुतियां कर्ममयी होती हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ और ब्राह्मण सब भांति ब्रह्मज्ञानहीसे इन यज्ञों करि यजन करते हैं अर्थात् इन यज्ञोंको करते हैं कैसे करतेहै इसपर कहते हैं ज्ञान है मूल जिसका ऐसी इन यज्ञोंकी क्रियाकी उत्पत्तिको जानते हुए ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥ दर्शने चार्धमांसान्ते पौर्णमासेन चैवं हि ॥ २५ ॥ संस्यान्ते नवसस्येषु च तथर्त्विन्ते द्विजोऽध्वरैः ॥ प्रशुना त्वयनस्यादौ संमान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

टीका—उदित होमपक्षमें दिन आदिमें और रातिकीआदिमें और अनुदिन

तथा होमपक्षमें दिनके अंतमें और रातिके अंतमें अथवा उदित होमपक्षमें दिन की आदिमें और दिनके अंतमें और अनुदित होम पक्षमें रातिकी आदिमें और रातिके अंतमें अग्निहोत्र करै और कृष्णपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें दर्शनाम कर्मसे और शुक्लपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें पौर्णमास नामकर्मसे यजन करै ॥ २५ ॥ पहले जोरे हुए धान्य आदि सस्यके समाम्न होनेपर अथवा न समाप्त होनेपरभी नवीन धान्यकी उत्पत्तिमें आग्रयण जो नवीन सस्यकी इष्टि है तिस्से यजन करै तथा ऋतुके अंतमें चातुर्मास्य यज्ञसे यजन करै और अयनोंकी आदिमें अर्थात् उत्तर तथा दक्षिण अयनके आरंभमें पशुसे यजन करै अर्थात् पशुबंधनाम यज्ञकरै और शिशिर ऋतु करि वर्षके समाप्त होनेपर वसंत ऋतुमें सोमरससे करनेयोग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करै ॥ २६ ॥

नानिष्ट्वा नवसंस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्रिजः ॥ नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥ नवेनानर्चितो ह्यस्य पशुहव्ये न चाग्रयः ॥ प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ २८ ॥

टीका—बड़ी आयुकी चाहनेवाला अग्निहोत्री द्विज नवीन सस्यकी इष्टि किये विना नवीन अन्नको न खाय और पशुयाग किये विना मांस न खाय ॥ २७ ॥ जिस्से नवीन अन्नसे और पशु हव्यसे नहीं पूजे हुए नवीन अन्न और मांसके चाहनेवाले अग्नि अग्निहोत्रीर्हके प्राणोंके खानेकी इच्छा करते हैं ॥ २८ ॥

आसनाशनशय्याभिरिन्द्रिर्मूलफलेन वा ॥ नास्यं कश्चिद्द्रुसद्रेहे शक्तितोऽर्चतोऽतिथिः ॥ २९ ॥ पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाच्छठान् ॥ हेतुकान्वकवृत्तिश्च वाङ्मात्रेणार्पि नार्चयेत् ॥ ३० ॥

टीका—शक्तिके अनुसार आसन भोजन शय्या जल कंद फल आदिसे नहीं पूजा गया अतिथि इस गृहस्थके घरमें न बसै ॥ २९ ॥ पाषण्डी कहिये वेदसे बाहरी व्रत तथा चिन्होंके धारण करनेवाले शाक्य भिक्षु क्षपणक आदि और विकर्मस्थ कहिये निषेध की हुई वृत्तिसे जीवनेवाले और वैडालव्रतिक कहिये बकवृत्ती जिनके लक्षण आगे कहेंगे और शठ कहिये जो वेदमें श्रद्धा न रखते होय और हेतुक कहिये वेदके विरोधी तर्कोंसे व्यवहार करनेवाले इनमेंसे जो कोई अतिथिके समयमेंभी आवै तौ उसका वाणीमात्रसेभी सत्कार न करै ॥ ३० ॥

वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः ॥ पूजयेद्व्यकव्येन वि

परीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमे  
धिना ॥ संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

टीका—जो वेदोंको समाप्त करि और व्रतोंको नहीं समाप्त करि घरको लौटता है वह विद्यास्नातक होताहै और जो व्रतोंको समाप्त करि वेदोंको नहीं समाप्त करि जो घरको लौटताहै वह व्रतस्नातक कहा जाताहै और जो दोनोंको समाप्त करि लौटताहै वह विद्याव्रतस्नातक कहा जाताहै इन श्रोत्रिय तीनों स्नातकोंको गृहस्थ हव्यसे पूजै ॥ ३१ ॥ गृहस्थ अपचमान कहिये जो अपने हाथसे पाक नहीं करते ऐसे ब्रह्मचारी संन्यासी और पाण्डीको शक्तिके अनुसार अन्नका भोजन दे और अपने कुटुंबके अनुरोधसे वृक्ष आदि पर्यंत प्राणियोंको जल आदिसेभी संविभाग कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥

राजतो धर्म्मनिच्छेत्संसीदन्स्रातकः क्षुधा ॥ यार्ज्यान्तेवासिनो  
वापि न त्वन्यतं इति स्थितिः ॥ ३६ ॥ न सीदेत्स्रातको वि-  
प्रःक्षुर्धा शक्तः कथंचन ॥ न जीर्णमलवद्रासा भवेच्च विभवे संति ३४ ॥

टीका—क्षुधासे पीडित स्नातक द्विजातिसे प्रतिग्रहका संभव होनेपरभी शास्त्रके अनुसार चलनेवाले क्षत्रिय अर्थात् राजासे अथवा यजमानसे और शिष्योंसे पहले धनकी इच्छा करै वे न होय तौ अन्यभी द्विजातिसे धन ग्रहण करै उसके अभावमें तौ सबसे ले यह आपत्तिका धर्म कहैगे और से न ले यह मर्यादा है सो आपत्ति छोडकै है ॥ ३३ ॥ विद्या आदिके योगसे दान लेनेमें समर्थभी स्नातक ब्राह्मण कहे हुए राजा आदिके प्रतिग्रहके मिलनेपर क्षुधासे दुखी नहोय और धन होनेपर पुराने और मैले वस्त्र धारण न करै ॥ ३४ ॥

कूपकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः स्वार्ध्याये चैवं युक्तः  
स्यान्नित्यंमात्महितेषु च ॥ ३५ ॥ वैणवी धारयेद्यष्टिं सोदकं च  
कमण्डलुम् ॥ यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

टीका—कटे हैं केश नख और दाढी मूछ जिसके ऐसा होय और दांत कहि ये तपके क्लेशका सहनेवाला होय सपेदवस्त्र रक्खै और बाहरी भीतरी शुद्धतासे युक्त रहै और वेदके आभ्यासमें लगा रहै और औषध आदिके सेवनसे अपने हितमें सदा तत्पर रहै ॥ ३५ ॥ वांसकी लाठी लिये रहै और जलसे भरा हुआ कमण्डलु रक्खै और यज्ञोपवीत कुशकी मुठी तथा सुंदर सोनेके दोनो कुंडल ब्रह्मचारि धारण करै ॥ ३६ ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ नोपमृष्टं नवारिस्थं  
न मध्यं नभसो गतम् ॥ ३७ ॥ न लङ्घयेद्दत्तसंतत्रिं न प्रधावेच्च  
वर्षति ॥ न चोदके निरीक्षेत्रं स्वं रूपमिति धारणा ॥ ३८ ॥

टीका—उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्यके मंडलको संपूर्ण न देखे तथा राहुग्रहसे ग्रसे हुए और जलसे प्रतिबिंब पडे हुए तथा आकाशके मध्यमें स्थित अर्थात् मध्यान्हके सूर्यको न देखे ॥ ३७ ॥ बछडा बांधनेकी रस्सीको न उलंघे और मेहवर्षनके समय नहीं दौरे और अपनी देहकी परछाईको जलमें न देखे ॥ ३८ ॥

मृदं गां देवंतं विप्रं घृतं मधुं चतुष्पथम् ॥ प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्र  
ज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥ नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त  
वदर्शने ॥ समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

टीका—मट्टीका देर, गौ, पाषाण आदिके बने हुए देवता, ब्राह्मण, घी, सहत चौराहा ओर बडे प्रमाणसे जाते हुए वट पीपल आदि वृक्ष इन सबको मार्गमें दाहिने देकर चले ॥ ३९ ॥ कामसे पीडितभी पुरुष राजोदर्शनमें निषिद्ध होनेके तीनि दिन स्त्रीसे भोग न करे और गमन न करते हुएभी उसके साथ एक पलंगपर न सोवे ॥ ४० ॥

रजसाभिपुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षु  
रायुश्चैव प्रहीयते ॥ ४१ ॥ तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभि  
पुताम् ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

टीका—रजस्वला स्त्रीसे भोग करनेवाले पुरुषके प्रज्ञा, तेज, बल, आंखि ये सब नष्ट होजाते हैं तिससे उसका त्याग करे ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्रीमें न गमन करनेवाले मनुष्यके प्रज्ञा, तेज, नेत्र, आयु ये सब बढ़ते हैं तिससे उसको बचावे ॥ ४२ ॥

नाश्रीयाद्धार्या सांश्रि नैर्नामीक्षेत्रं चाश्रतीम् ॥ क्षुवतीं जृम्भमा  
णां वां न चांसीनां यथासुखम् ॥ ४३ ॥ नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चां  
भ्यक्तामनावृताम् ॥ न पश्येत्प्रस्रवन्तीं च तेजस्कां मोद्विजोत्तमः ४४

टीका—स्त्रीके साथ एकपात्रमें न स्नाय और खाती हुई छिकती हुई जम्हावी हुई और बेपर्दे बैठी हुईको न देखे ॥ ४३ ॥ तेजकी बृच्छा रखनेवाला मनुष्य



अपनी आंखांको आजती हुई और तेल लगाती हुई तथा स्तन ढकनेके वस्त्रसे रहित और बालकको जन्मती हुई स्त्रीको न देखै ॥ ४४ ॥

नौत्रमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमार्चयेत् ॥ न मूत्रं पथि कुर्वीत  
न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न  
च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥

टीका—एकवस्त्र पहिरे हुए भोजन न करै अर्थात् कंधेपर अंगोछा डारले और नंगा होके स्नान न करै और मार्गमें लघुबाधा न करै और भस्ममें तथा शौआंके स्थानमें मूत्र तथा मलका त्याग न करै ॥ ४५ ॥ हलसे जुते हुए खेतमें जलमें ईंट आदिसे बनाये हुए अग्निके स्थानमें पर्वतपर पुराने देवताके स्थानमें और बांभीमें कभी मूत्रका त्याग न करै ॥ ४६ ॥

न ससत्त्वेषु गतेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमांसाद्य  
न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥ वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यं  
स्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विष्णुमूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

टीका—जीवों समेत गडिहोमें चलता हुआ खडा हुआ नदीके किनारे और पर्वतके शिखरपर कभी मलमूत्रका त्याग न करै ॥ ४७ ॥ पवन अग्नि ब्राह्मण सूर्य जल और गौको देखता हुआ कभी मलमूत्रका त्याग न करै ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ॥ नियम्य प्रयतो वाचं  
संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥ मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादु  
दईमुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्योश्च यथादिवा ॥ ५० ॥

टीका—काठ डेला फूस और सूखे पतों आदिसे भूमिको ढकिके मौन हो शरीरको वस्त्र आदिसे लपेटे हुए शिरमें वस्त्र बांधिके मलका त्याग करै अर्थात् दिशा जाय ॥ ४९ ॥ दिनमें तथा दोनो संध्याओंमें उत्तरको मुख करके और रात्रिमें दक्षिणको मुख करके मलमूत्रका त्याग करै ॥ ५० ॥

छायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कु  
र्यात्प्राणवार्धाभयेषु च ॥ ५१ ॥ प्रत्यग्नि प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोद  
कद्विजान् ॥ प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहृतः ॥ ५२ ॥

टीका—रात्रिके समय छायामें अथवा अंधकारमें और दिनमें छाया तथा

कुहिर आदिके, अंधकारमें दिशा-विशेषका ज्ञान न होनेपर और चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राणोंके नाश होनेके भयमें इच्छापूर्वक मुखको करिके मलमूत्रका त्याग करै ॥ ५१ ॥ अग्नि सूर्य चंद्रमा जल ब्राह्मण गौ पवन इनके समुत्सुख मलमूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नैक्षेत च स्त्रियम् ॥ नैमेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ  
न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥ अधस्तान्नोपदर्थ्याच्च न चैनमभि  
लङ्घयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

टीका—अग्निको मुखसे न फूँके पंखा आदिसे जगाले और नंगी स्त्रीको मैथुनके बिना कभी न देखै और अपवित्र मूत्र विष्टा आदि अग्निमें न डालै और अग्निमें पैरोंको न तपावै ॥ ५३ ॥ खटिया आदिके नीचे अग्निकी अगीठी न रक्खै और अग्निको न उलांचै और सोया हुआ पैरोंकी और अग्निको न रक्खै और प्राणोंको पीडा देनेवाला काम न करै ॥ ५४ ॥

नाश्रीयत्संधिवेलायां न गच्छेन्नपि संविशेत् ॥ न चैव प्रलि  
खेद्भूमिं नात्मनोपरहेत्स्वजर्म ॥ ५५ ॥ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा घृतिर्वनं वा  
समुत्सृजेत् ॥ अमेध्यलित्तर्मन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

टीका—संध्याके समय भोजन दूसरे ग्राममें जाना और सोना इनको न करै और रेखा आदिसे भूमिको न लिखै और धारणकी हुई मालाको आप न उतारै किंतु दूसरेसे उतरवा दे ५५ जलमें मूत्र विष्टा और कफ आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरे हुए वस्त्र अथवा और कुछ खानेसे वचा हुआ अपवित्र रुधिर और कृत्रिम अकृत्रिम भेदसे दो प्रकारके विष जलमें न डालै ॥ ५६ ॥

नैकं स्वपेचलून्यगहे शयानं न प्रबोधयेत् ॥ नोदक्ययाभिभाषे  
त यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ५७ ॥ अश्र्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च  
सन्निधौ ॥ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

टीका—सूने घरमें अकेला न सौवै और सोते हुए धनविद्या आदि करि अपनेसे अधिकको न जगावै और रजस्वला स्त्रीसे वातचीत न करै और बिना वरण किया हुआ अर्थात् ऋत्विक् न होकर यज्ञमें न जाय देखनेको तो जाय ॥ ५७ ॥ अग्निके घरमें गौओंके निवासमें बहुतसे ब्राह्मणोंके समीप और वेद पाठ तथा भोजनके समयमें बांह समेत दाहिने हाथको वस्त्रसे बाहर निकालै ५८

न वारयेद्वां धर्यन्तीं न चार्चक्षीत कस्यचित् ॥ न दिवीन्द्रायुधं  
दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥ ५९ ॥ नार्धार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधि  
बहुले भृशम् ॥ नैकैः प्रपद्येताध्यानं न चिं रं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥

टीका—दूध वा जल पीती हुई गौको मने न करै और दूसरेके दूध आदि पीति हुईको उससे न कहै और निषिद्ध दर्शनके दोषका जाननेवाला आकाशमें इंद्र धनुषको देखिके और किसीको न दिखावै ॥ ५९ ॥ जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते हों और जिसमें बहुतसे मनुष्य कठिन रोगोंसे पीडित होय उस ग्राममें अत्यंत वसना योग्य नहीं है और मार्गमें अकेला कभी न चलै और बहुतकालतक पर्वतपर न बसै ॥ ६० ॥

न शूद्रराजे निवसेन्नाधार्मिकं जनावृते ॥ न पाषण्डिगणाक्रान्ते नो  
पसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥ न भुञ्जीतोद्धतस्त्रेहं नातिसौहित्वाचरे  
त् ॥ नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥

टीका—जिस देशमें शूद्रराजा हों वहां न बसै और अधर्मी मनुष्यों करि वाहरसे घेरे हुए ग्रामआदिमें न बसै और वेदसे बाहरी चिन्होंके धारण करनेवालों करि वश किये हुए तथा चांडाल आदि अत्यंजों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें न बसै ॥ ६१ ॥ चिकनाई निकाले हुए पीना आदिको न खाय और दोवारमें भी अति तृप्ति न करै अर्थात् बहुत पेट भरकै न खाय और सूर्यके उदयकाल तथा अस्तकालमें भोजन न करै और जो प्रातःकाल बहुत पेट भरकै खाले तौ संध्याको भोजन न करै ॥ ६२ ॥

न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिं नापिबेत् ॥ नोत्सङ्गे भक्षेयद्भक्ष्यां  
न्न जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥ न नृत्येदथवा गीयेन्न वादित्राणि  
वादन्येत् ॥ नास्फोटयेन्न च क्ष्वे डेन्न च रक्तो विरार्येत् ॥ ६४ ॥

टीका—वृथा चेष्टा न करै और अंजलीसे जल न पीवै और गोदीमें रखकै लड्डू आदि न खाय और विना प्रयोजनके यह क्या है ऐसे जाननेकी इच्छा की कुतूहल न करै ॥ ६३ ॥ शास्त्रसे भिन्न नाचना गाना बजाना न करै ताल न ठोकै तौतली बोली न बोले और प्रसन्नतामें भरकै गधा आदिका शब्द न करै ॥ ६४ ॥

न पादौ धारयेत्क्रांस्ये कदाचिदपि भाजने ॥ न भिन्नभार्ण्डे भु

अतीतं नं भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥ उपांनहौ चं वासश्च धृतमन्यै  
नं धारयेत् ॥ उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेवं चं ॥ ६६ ॥

टीका—कासिके पात्रमें पैर न धोवै और तांबा चांदी सोना इनको छोडकर और घातुओंके फूटे पात्रमें भोजन न करै और जिस्से मनको घिना होय ऐसे भाव दूषित पात्रमें न खाय ॥ ६५ ॥ लूता कपडा यज्ञोपवीत अलंकार फूलोंकी माला और कमंडलु दूसरेके जूठे किये हुए इनको न धारण करै ॥ ६६ ॥

नविनीतैः व्रजेद्भुयैर्न च क्षुद्र्याधिपोडितैः ॥ नं भिन्नशृङ्गाक्षिखुरै  
नं वालंधिविरूपितैः ॥ ६७ ॥ विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यं मांशुगैर्लक्ष  
णान्वितैः ॥ वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनार्तुदन्भृशम् ॥ ६८ ॥

टीका—विना सिखाये हुऐ हाथी घोडा आदि वाहनोमें और मूख तथा रोगसे दुखी और जिनके सींग आंखि और खुर टूटि फूटि गये हैं और बंडि पूंछके वाहनोमें चढकर न चलै ॥ ६७ ॥ सिखाये हुए जलदी चलनेवाले शुभ सूचक लक्षणों करिकै युंक्त सुंदर रंग और मनोहर स्वरतिके वाहनोमें कतकुआदिसे बहुत पीडा न देता हुआ गमन करै ॥ ६८ ॥

बालातपः प्रेतधूमो वृज्यं भिन्नं तथासनम् ॥ नं च्छिन्द्यान्नखलो  
मानिदं तैर्नो त्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥ नं मृच्छोष्टं चं मृद्रीयात्रं च्छि  
न्द्यात्करजैस्तृणम् ॥ नं कर्म निष्फलं कुर्यान्न्यायत्यामसुखोदयम् ७०

टीका—बालातप कहिये पहले उदय हुए सूर्यका घाम अथवा कन्याकी संक्रांतिका घाम और जलते हुए मुरदेका धुआं तथा टूटा फूटा आसन ये वर्जित हैं और नही बढे हुए नख तथा रोमोंको न काटै और दांतासे नखोंको न चावै ॥ ६९ ॥ विनाकारण मृद्री तथा डेलोंको मर्दन न करै और नखोंसे तिनके न तोडै और दृष्ट अदृष्ट है फलरहित कर्म न करै और आगे दुखदेनेवाला कर्म न करै जैसे अजीर्णमें भोजन ॥ ७० ॥

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी चं यो नरः ॥ स विनाशं व्रजत्याः  
मूचकोऽशुचिरेवं चं ॥ ७१ ॥ नं विगर्हकथां कुर्याद्बहिर्मांलयं  
धारयेत् ॥ गर्वां चं यानं पृष्टेनं सर्वथैवं विगार्हितम् ॥ ७२ ॥

टीका—डेलोंका मर्दन करनेवाला और तिनकोंका छेदन करनेवाला तथा नखोंका

चवानेवाला मनुष्य और सूचक कहिये खलु जो पराये दोषोंके न होनेपर उनको कहे और अशुचि कहिये जो वाहरी शौचसे रहित होय ये शीघ्रही देह धन आदिसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ शास्त्रके तथा लोकके व्यवहारमें हठसे वातचीत न करै और केशोंके समूहसे बाह्य मालाको न धारण करै और पीठ पर चढकै बैलोंकी सवारी सब प्रकारसे निषिद्ध है पीठिके कहनेसे उन करि स्त्रीचे हुए रथ आदिमें चढनेका निषेध नहीं है ॥ ७२ ॥

अद्रारेण च नातोयाद्रामं वा वेरुम वावृतम् ॥ रात्रौ च वृक्षमूला  
नि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥ नाक्षः क्री डेत्कदाचित्तु स्वयं नो  
पानहो हरेत् ॥ शयनस्थोनं भुञ्जीत न पाणिस्थं न चां सने ॥ ७४ ॥

टीका—परकोटा आदिसे घिरे हुए ग्राममें अथवा घरमें द्वारको छोडकै दूसरे मार्गसे अर्थात् परकोटेको फलांग कर न जाय और रात्रिमें वृक्षके मूलके पास न बैठे उनको दूरहीसे त्याग करै ॥ ७३ ॥ दांव लगाये विना कभीभी अर्थात् हंसीमेभी पांसे न खेले और पैरोमें पहिरनेके सिवाय आप अपने जूते हाथसे दूसरे देशको कभी न ले जाय और शय्यापर बैठकै न स्नाय और बहुतसा भन्न हाथमें रखकै क्रमसे न स्नाय और आसनपर भोजनके पात्रको रखकै भोजन न करै ७४ ॥

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥ न च नम्रः शयीतेहं न  
चोच्छिष्टः कंचिद्रजेत् ॥ ७५ ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपाद  
स्तु संविशेत् ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीनो दीर्घमायुरवाभुयात् ॥ ७६ ॥

टीका—जो कुछ तिलोंसे मिला हुआ पदार्थ लड्डु आदि हैं उनको रात्रिमें न स्नाय और इस लोकमें नंगा होकै न सोवै और जूटा होकै कहीं न जाय ॥ ७५ ॥ जलसे गीले पेर होनेपर भोजन करै और गीले पैरोंसे सोवै नहीं और गीले पैरोंसे भोजन कर्ता हुआ पुरुष बडी आयुको प्राप्त होता है अर्थात् शतायु होता है ॥ ७६ ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रमाद्येत क्वहिचित् ॥ न विष्मूत्रमुदीक्षेत् न  
बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥ अधितिष्ठेन्न केशास्तु न भस्मास्थि  
कर्पालिकाः ॥ न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ७८ ॥

टीका—जहां नेत्रोंसे नहीं देख सकते ऐसे वृक्षवेलि गुल्म आदिसे घने वन आदि दुर्ग कहिये कठिन स्थानमें कभी न जाय क्योंकि वहां साय चोर आदि-

के छुप रहनेका संभव है और विष्ठा तथा मूत्रको न देखे और बाहोंसे नदीको न उतरै अर्थात् पुर कर नदीके पार न जाय ॥ ७७ ॥ जो बहुत दिनोंतक जीवना चाहै तौ बाल भस्म हाड खपरा विनौला भूसी इन पर न बैठे ॥ ७८ ॥

नं संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुलकसैः ॥ नं मूर्खैर्नोर्वलितैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥ नं शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥ नं चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्यं व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

टीका—पतित चाण्डाल पुष्कस मूर्ख धनं आदिके मदसे गांविंत और अंत्य कहिये अंत्यज घोवी आदि और अंत्य कहिये अंत्यावसायी जो निषादकी स्त्रीमें चाण्डालसे उत्पन्न है ये दूसरे ग्रामकेभी रहनेवाले होंय तौभी इनके साथ एक वृक्षकी छायामें समीप न बसे ॥ ७९ ॥ शूद्रको मति न दे अर्थात् दृष्ट अर्थका उपदेश न करै और दाससे भिन्न शूद्रको ज्ञान न दे और हविष्कृत कहिये हविकाशेष न दे और धर्मका उपदेश न करै और प्रायश्चित्तरूप व्रतभी इसको साक्षात् उपदेश न करै किन्तु ब्राह्मणको बीचमें करके उसको उपदेश करै ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चेवादिशति व्रतम् ॥ सोऽसंवृतं नाम तमः—संह ते नैव मज्जति ॥ ८१ ॥ नं संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥ नं स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्दिनां ततः ॥ ८२ ॥

टीका—जिसे जो शूद्रको धर्म कूहता है और जो प्रायश्चित्तका उपदेश करता है वह उस शूद्रसमेत जिसमे अधकार बहुत है ऐसे असंवृतनाम नरकमें डूबता है ॥ ८१ ॥ मिले हुए दोनो हाथोंसे अपने शिरको न खुजावै और जूठे हाथोंसे अपने शिरको न छुवै और शिरकेविना नित्य नैमित्तिक स्नान न करै ८२

केशग्रहान्प्रहारान्श्च शिरस्येतान्विर्वर्जयेत् ॥ शिरःस्नातश्च तैलेन नङ्गिकं चिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥ नं राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्वप्रसूतितः ॥ सूनाचक्रध्वजवृतां वेशे नैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

टीका—क्रोधसे बाल पंकडना और चोंट मारना ये दोनो वाते शिरमें न करै और अपने शिरसे न्हाये हुएके किसी अंगको तैलसे न छुवै ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रियसे उत्पन्न नहीं है ऐसे राजासे धनको न ग्रहण करै और सूनावाले चक्रवाले तथा ध्वजवालोंसे सूना कहते हैं प्राणीके बधके स्थानको सो जिसके होय उसको सूनावाला कहते हैं अर्थात् पशुको मारके मांस बेचनेवाला कसाई आदि बीजोका

वध करि वेचकै जीवनेवाला चक्रवाला कहाता है जैसे तेली और मद्यको वेचकर जीवनेवालेको ध्वजवान् कहतेहै जैसे कलाल और वेशसे जीविका करनेवाले जैसे वेश्या बहुरूपिग्रा आदि इनके धनको न ग्रहण करै ॥ ८४ ॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमो वेशो दश  
वेशसमो नृपः ॥ ८५ ॥ दशसूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ॥  
तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

टीका—दशसूनावालोंमें जितना दोष होता है उतनाएक तेलीमें होता है और दशतेलियोंमें जितना दोष होताहै उतना एक कलालमें होता है और दशकलालमें जितना दोष होता है उतना एक वेश्या वा बहुरूपियामें होताहै और जितना दशवेश्या वा बहुरूपियामें होता है उतना एक राजामें मनु आदिकोने कहाहै । ८५ ॥ जो सूनावाला दशहजार जीवोंका वध करता है उसकी बराबर राजा मनु आदिकोने कहाहै तिससे राजाका धन लेना नरकका कारण होनेसे भयानक है ॥ ८६ ॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ स पर्यायेण यां  
तीर्मात्ररकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

टीका—जो राजाका और शास्त्रका उल्लंघन करनेवाले रूपणका धन लेता वह क्रमसे आगे कहे हुए इक्कीस नरकोंमें जाताहै ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ नरकं कार्लसूत्रं च महान  
रकमेव च ॥ ८८ ॥ संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥ सहा  
तं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥ लोहशंकुमृजीषं च  
पन्थानं शाल्मलीनदीम् ॥ असिपत्रवनं च लोहदारकमेव च ९०

टीका—नरक गिनानें हैं जैसे तामिस्र १ अंधतामिस्र २ महारौरव ३ रौरव ४ कार्लसूत्र ५ महानरक ६ इन नरकोंका स्वरूप मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें विस्तारसे कहा है वहांसे जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ संजीवन ७ महावीचि ८ तपन ९ संप्रतापन १० सहात ११ सकाकोल १२ कुड्मल १३ पूतिमृत्तिक १४ ॥ ८९ ॥ लोहशंकु १५ ऋजीष १६ पन्थान १७ शाल्मली १८ नदी १९ असिपत्रवन २० लोहदारक २१ ॥ ९० ॥

एतद्भिदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मर्वादिनः ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति

प्रेत्य श्रेयोऽभिकाक्षिणः ॥९१॥ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौ चानु  
चिन्तयेत् ॥ कार्यक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥९२॥

टीका—प्रतिग्रह नानाप्रकारके नरकोंका कारण है इस बातके जाननेवाले धर्मशास्त्र और पुराण आदिके जाननेवाले दूसरे लोकमें कल्याणके चाहने वाले ब्राह्मण राजाका दान नहीं लेते हैं ॥ ९१ ॥ ब्राह्ममुहूर्त्त जो रातिका पिछला पहर है उसमें जागै फिर धर्म तथा अर्थका आपसमें विना विरोधके करनेके लिये चिन्तन करै और धर्म अर्थके इकठ्ठे करनेमें जो शरीरके क्लेशहैं उनकोभी विचारै अर्थात् जिसमें शरीरको अधिक क्लेश होय और धर्म तथा अर्थ थोडा होय तौ उसको छोड दे और ब्रह्मकर्मरूप वेदके तत्त्वका निश्चय करै क्योंकि उस समयमें बुद्धिका प्रकाश होता है ॥ ९२ ॥

उत्थायावश्यं कृत्वा कूर्तशौचः समाहितः ॥ पूर्वा संध्यां जपस्तिं  
ष्टेस्वकाले चारंपरां चिरम् ॥ ९३ ॥ ऋषयो दीर्घसंध्यात्वादीर्घमा  
युरवानुयुः ॥ प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ ९४ ॥

टीका—तिसपीछे प्रातःकाल शय्यासे उठकर वेग होनेपर दिश्र बाधा होके आगे कहे हुए शौचको करि एकाग्रचित्त हो प्रातःकालकी संध्या बहुत देरतक गायत्री जपता हुआ करै जबतक सूर्यका उदय होय तबतक यह संध्याकी विधि कही है आयु आदि कामनावाला पुरुष उदयके उपरांतभी जप करै सायंकालकी संध्याको भी अपने समयमें प्रारंभ करि ताराओंके उदयके उपरांतभी जपता हुआ स्थित रहै ॥ ९३ ॥ जिस्से ऋषि बडी देरतक संध्या करनेसे बडी आयु प्रज्ञा बडी कीर्ति और वेदाध्ययन आदिसे संपन्न यशको प्राप्त हुए तिस्से आयु आदिका चाहनेवाला पुरुष बडी देरतक संध्योपासन करै ॥ ९४ ॥

श्रावण्यां प्रोष्टपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ॥ युक्तं च्छंदांस्यधी  
यीतं मासान्विप्रोऽर्षश्चमान् ॥ ९५ ॥ पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्  
हिरुत्सर्जनं द्विजः ॥ माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहं नि ९६

टीका—श्रावणीमें अथवा भाद्रपदकी पूर्णमासीमें अपने गृहके अनुसार उपाकर्म नाम कर्मको करिके साढेचार महीनेतक उनमें तत्पर हो वेदोंको पढ़ै ॥ ९५ ॥ तिस पीछे साढेचार महीनोंमें जब पुष्यनक्षत्र आवै तब ग्रामसे बाहर जाके अपने गृहके अनुसार उत्सर्गनाम कर्म करै अथवा माघशुक्लके पहले दिन पूवान्ह समयमें करै ॥ ९६ ॥



## कृत्वैवमुत्सर्गं

शुद्धेषु

पठेत् ॥ वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ १८ ॥

टीका—एसे कहे हुए शास्त्रके अनुसार ग्रामसे बाहर वेदोंका उत्सर्गनाम कर्म करिकै पक्षिणी रातिमें ठहर जाय पढ़ै नही पहला और पिछला दो दिन जिसके पक्षोंके समान होंय उनके बीचकी रात्रिको पक्षिणी कहते हैं इस पक्षमें तो उत्सर्गके रातिदिन और दूसरे दिनभी दिनमें न पढ़ना चाहिये दूसरी रात्रिमें तो पढ़ना चाहिये अथवा उसी उत्सर्गके दिन रातिमें अमध्याय करै ॥ १७ ॥ उत्सर्गके पढ़नेके उपरांत मंत्र ब्राह्मणरूप वेदको शुद्धपक्षमें पढ़ै और शिक्षान्याकरण आदि वेदके अंगोंको कृष्णपक्षमें पढ़ै ॥ १८ ॥

नाविस्पष्टमधीयीत नैशूद्रजर्नसन्निधौ ॥ न निशान्ते परिश्रान्तो  
ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥ १९ ॥ यथोदितेन विधिना नित्यं छन्द  
स्कृतं पठेत् ॥ ब्रह्मं छन्दस्कृतं चैवं द्विजो युक्तो ह्येनापदि ॥ १०० ॥

टीका—स्वरवर्मा आदिके स्पष्ट उच्चारणके विना और शूद्रके समीप न पढ़ै और रातिके पिछले पहर सोनेसे उठकर वेदको पढ़ि थका हुआ फिर न सोवे ॥ १९ ॥ यथोक्त विधिसे नित्य छन्दस्कृत कहिये गायत्री आदि छंदों करि युक्त मंत्रसमूहको पढ़ै आपत्तिरहित समयमें सामर्थ्य होनेपर वेद ब्राह्मण और मंत्र समूहको कही हुई विधिसे युक्त हो द्विज पढ़ै ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीर्यानो विवर्जयेत् ॥ अध्यापनं च कुर्वाणः  
शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥ कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसु  
समृहने ॥ एतौ वर्षास्वर्नध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ २ ॥

टीका—इन आगे कहे हुए सभ अनध्यायोंको उक्त विधिसे पढ़ता हुआ शिष्य और पढ़ता हुआ गुरु वर्जित करै ॥ १ ॥ रातिमें कानोंसे सुननेयोग्य शब्द करनेवाले पवनके चलनेपर और दिनमें धूलि उडानेवाले पवनके चलनेपर न पढ़ै वर्षाकालमें इन अनध्यायोंको तत्कालके अनध्यायोंके जाननेवाले मनु आदि कहते हैं ॥ २ ॥

विद्युत्स्तनितवृषेषु महोल्कानां च संल्लवे ॥ आर्कालिकमर्नध्या  
यमेतेषु मनुर्ब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतांस्त्वभ्युदितांन्विद्यायदां प्रादुष्कृता

ग्निषु ॥ तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ ४ ॥

टीका—विजलीका चमकना गर्जना और इन सर्वोंके एकसाथ होनेपर और इधर उधर बहुतसे उल्कापात अर्थात् तारोंके टूटने पर उस समयसे लगाके दूसरे दिन उसी समयतक मनुमें अकालिक अनध्याय कहा है ॥ ३ ॥ जो अग्निहोत्रके समय विजली आदि इन सब उत्पातोंको एकसाथ प्रकट हुए जानै तौ वर्षाऋतुमें अनध्याय करै सदा नहीं और ऋतुमें अग्निहोत्रके समय मेघके देखनेहीसे अनध्याय होताहै वर्षाऋतुमें नहीं होताहै ॥ ४ ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥ एतानकार्कालिकान्वि  
द्यादनध्यायानृतावपि ॥ ५ ॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनि  
तनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषैरात्रौ यथा दिवा ॥ ६ ॥

टीका—आकाशमें उत्पन्न हुए उत्पात शब्दके होनेपर और भूमिकंप होनेपर और ज्योतिजे हैं सूर्य चंद्र तारागण तिनके उपद्रव होनेपर इन अनध्यायोंको अकालके जानै और ऋतुमेंभी वर्षाके विषे भूकंप आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस अभिप्रायसे ऋतौअपि यह कहा ॥ ५ ॥ होमके अग्निके प्रकाशित करनेपर संध्यासमय जो विजली और गर्जना होय वर्षा न होय तौ सज्योति अनध्याय होताहै अकालका नहीं है उनमें जो प्रातःकालकी संध्यामें विजली और गर्जना होय तौ जब सूर्यज्योति है तबतक एकदिनका अनध्याय होताहै और जो सायंकालकी संध्यामें होवे तौ जब ब्रह्मत्र ज्योति है तबतक रात्रिभरका अनध्याय होता है और विजली गर्जना तथा वर्षा तीनोंमेंसे जो वर्षानाम तीसराही होय तो जैसे दिनमें अनध्याय होताहै ऐसेही रात्रिमेंभी अर्थात् दिनरातिका अनध्याय होता है ॥ ६ ॥

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ॥ धर्मनैपुण्यकामानां पूं  
तिगन्धे च सर्वदा ॥ ७ ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ ॥  
अनध्यायो रूढमाने सर्ववाये जनस्य च ॥ ८ ॥

टीका—धर्मकी अधिकता चाहनेवालोंको ग्राम तथा नगरमें सदा अनध्याय होताहै और दुर्गंधके आनेमें सदा अनध्याय होता है ॥ ७ ॥ जिस ग्रामके भीतर स्थित मुर्दा जाना जाय उसमें और वृषल जहां अशर्मा होय उसके समीप और रोनेका शब्द होनेपर और किसी कामके लिये बहुत मनुष्योंका मेल होनेपर अनध्याय होताहै ॥ ८ ॥

उदके मध्यरात्रे च विष्णुर्त्रस्य विसर्जने॥ उच्छिष्टः श्राद्धमुक् चैव  
मनसापि न चिन्तयेत्॥१॥ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य के  
तनं॥ अहं न की तयेद्ब्रह्मं राज्ञो राहोश्च सूतके ॥ ११०॥

टीका—जलमें और आधी. रातिमें चार मुहूर्ततक और मूत्र तथा पुरीषके  
गनेके समय और अन्नके भोजन आदिमें उक्त दोषोंके चिन्तन न करै

११०११० नाश्रु माषणक ।दनरा।ततक मनसभा वदका चितवन न करै ॥ १ ॥  
जो एकहीके लिये किया जाय वह एकोद्दिष्ट कहिये नवश्राद्ध उसमें न्योता  
मानिके निमंत्रण समयसे और क्षत्रिय जो देशका स्वामी है उसके पुत्रजन्म आ-  
दिके सूतकमें तथा राहुके सूतक अर्थात् सूर्य चंद्रके ग्रहणमें तीनि रात्रित-  
क विद्वान् वेद न पढै ॥ ११० ॥

यावदेकानुद्दिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ॥ विप्रस्य विदुषो देहे  
तावद्ब्रह्म न की तयेत्॥११॥ शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसं  
स्थिकाम् ॥ नाधी यीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥१२॥

टीका—एकोद्दिष्ट श्राद्धका उच्छिष्ट कुंकुम चंदन आदिका लेप विद्वान् ब्रा-  
ह्मणके देहमें रहै तवतक तीनि दिनसे उपरांतभी वेद न पढै ॥ ११ ॥ शय्या-  
पर पडाहुआ आसनपर पैर रक्खे हुए और दोनो घोटुओंको मोड़के और मां-  
सखायके और जनन तथा मरणके सूतकका अन्न खायके वेदको न पढै ॥ १२॥

नीहारे वाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः॥ अमावास्याचतुर्दश्याः  
पौर्णमास्यष्टकासु च॥१३॥ अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति  
चतुर्दशी ॥ ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्तांः परिवर्जयेत् ॥१४॥

टीका—कुहिरमें और वाणके शब्दमें और दोनो संध्याओंमें और अमावा-  
स्या तथा चतुर्दशीको पूर्णमासी और अष्टमीको वेद न पढै ॥ १३ ॥ अमावा-  
स्या गुरुको मारती है और चतुर्दशी शिष्यको और अष्टमी तथा पूर्णमासी वेद  
को भुलाती है तिसे ये सब वेदके पढनेमें वर्जितहैं ॥ १४ ॥

पांशुवेषे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा ॥ श्वखरोष्ठे च रुवति पं  
च न पठेद्विजः ॥ १५ ॥ नाधी यीत इमशानान्ते आमन्ते  
त्रजेऽपि वा॥ वसित्वा मैथुनं वांसः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च॥१६॥

टीका—धूलिके वरसनेमें दिशाओंके दाहमें और स्यार कुत्ता गधा ऊंट इनके शब्द करनेपर और पंक्तिमें बैठकर ब्राह्मण वेदको न पढे ॥ १५ ॥ श्मशानके तथा ग्रामके समीप और गौओंके स्थानमें और मैथुन समयके वस्त्र पहिरिके और श्राद्धका अन्न लेकर वेदको न पढे ॥ १६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यार्त्किचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ तं दालभ्यां  
प्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ॥१७॥ चौरैरुपप्लुते ग्रामे  
संभ्रमे चाग्निंकारिते ॥ आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च १८-

टीका—प्राणी गौ अश्व आदि अथवा अप्राणी वस्त्र माला आदि इनको दानके समय हाथसे पकडकर अनध्याय होताहै क्योंकि पाण्यास्यः अर्थात् हाथही हैं मुख जिसके ऐसा ब्राह्मण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ चोरों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें और अग्निसे घर जलाने आदिके समयमें और दिव्य अंतरिक्ष तथाभूमिके अद्भुत उत्पातोंमें अकालका अनाध्याय जानिये ॥ १८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥ अष्टकांसु त्वहोरात्रम्  
त्वन्तासु च रात्रिषु ॥१९॥ नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च ह-  
स्तिनम् ॥ न नावं न खरं नोष्ट्रं न रिणस्थो न यानर्गः ॥१२०॥

टीका—उपाकर्म और उत्सर्गमें तीनि रात्रिका अनध्याय कहाहै और तैसै-  
ही अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत कृष्णपक्षकी तीनि अष्टमियोंमें रात्रिदिनका अ-  
नध्याय होताहै और ऋतुओंके अंतके रातिदिनका अनाध्याय होताहै ॥ १९ ॥  
घोडा वृक्ष हाथी नाव गधा और ऊंट इनपर चढा हुआ और ऊपरदेशमें तथा  
गाडि आदि सवारिमें चलता हुआ वेदको न पढे ॥ १२० ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे ॥ न भुक्तमात्रे ना जीणे न  
वर्मित्वा सूक्तके ॥२१॥ अतिथिश्चाननुज्ञाप्य मारुते वात्रि वा  
भृशम् ॥ रूधिरं च क्षुते गात्राच्छ्रेण च परिक्षते ॥ २२ ॥

टीका—विवाद कहिये बातोंकी लडाईमें और कलह कहिये लाठी डंडा आ-  
दिके चलनेमें और जिसमें युद्ध नही होने लगाहै ऐसी सेनामें और युद्धमें और-  
भोजनके पीछे जबतक हाथपर गीले रहैं तबतक और अन्नके न पचनेमें और व  
मन करिके और खट्टीडकार आनेपर वेदको न पढे ॥ २१ ॥ अध्ययन करताहौं  
यह आज्ञा जबतक अतिथिको नही दीजाती है तबतक और आंधी चलनेपर

और शरीरसे रुधिर निकलनेपर और रुधिर न निकलनेपरभी शस्त्रसे घाव होनेपर वेदको न पढ़े ॥ २२ ॥

सामध्वनावृग्यजुषी नधीयति केदाचन ॥ वेदस्याधीत्य वाप्यन्त  
मारण्यकर्मधीत्य च ॥ २३ ॥ ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानु  
षः ॥ सामवेदः स्मृतः पितृयस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ २४ ॥

टीका—सामकी ध्वनि मुनी जानेपर ऋक् और यजुको कभी न पढ़े और वे  
दको समाप्त करि आरण्यकनाम वेदके एक देशको पढ़के उस रातिदिन दूसरा वेद  
न पढ़े ॥ २३ ॥ ऋग्वेद देवदैवत्यहै अर्थात् देवताही इसके देवताहैं और यजुर्वेद म-  
नुष्यदेवता होनेसे अथवा बहुधा मनुष्योंके कर्म उपदेश करनेसे मानुष है और  
सामवेद पितृदेवता होनेसे पितृयहै पितृकर्म करिके आचमन करना कहाहै  
तिस्से उसकी ध्वनि अशुचिसीही है अशुचिही नहींहै इस्से उसके मुननेपर  
ऋक् और यजु न पढ़े ॥ २४ ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥ क्रमज्ञः पूर्वमभ्यस्य  
धर्माद्वेदमधीयते ॥ २५ ॥ पशुमण्डूकमार्जारिवसर्पनकुलाखुभिः ॥  
अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहानिज्ञम् ॥ २६ ॥

टीका—तीनो वेदोंके देव मनुष्य पितृदेवताहै इस बातको जानते हुए विद्वान्-  
त्रयी निष्कर्ष कहिये तीनो वेदोंकानिकाला हुआ सार प्रणव व्याहृति सावित्री-  
रूप अर्थात् पहले क्रमसे प्रणव व्याहृति और सावित्रीको पढ़कर पीछे वेदका अ-  
ध्ययन करते हैं ॥ २५ ॥ गौ आदिपशु मेढक विलाव कुत्ता साप न्योला और मूसा ये  
जो गुरुशिष्यके वीचमें होंके निकल जाँय तौ दिनरातिका अनाध्याय जानिये २६

द्वैवेव वर्जयेन्नित्यमनंध्यायौ प्रयत्नतः ॥ स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धा  
मात्मानं चाशुचिद्विजः ॥ २७ ॥ अमावास्यामष्टमीं च पूर्णमासी  
चतुर्दशीम् ॥ ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नान्तको द्विजः ॥ २८ ॥

टीका—जूठानि आदिसे विगडी हुई वेदपाठकी भूमिको और कहे हुए शौच-  
से रहित आपको इन दोनो अनाध्यायोंको द्विज यत्नसे वर्जित करै ॥ २७ ॥ अ  
मावास्या अष्टमी पूर्णमासी और चतुर्दशीको स्नाताद्विज ऋतुकालमेंभी स्त्रीसे भो-  
ग न करै सदा ब्रह्मचारी रहै ॥ २८ ॥

न स्नानञ्चरे द्रुक्त्वा नातुरो न महानिज्ञि ॥ न वासोभिः

संनोविज्ञाते जलाशये ॥२९॥ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययो  
स्तथा ॥ नोक्रामेत् कामतच्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥१३०॥

टीका—भोजन करिके अपनी इच्छासे स्नान न करै और रोगी होके स्नान  
न करै और महानिशा जो बीचके रातिके दो पहरहैं उनमें और वस्त्रोंसमेत और  
विना जाने हुए जलाशय अर्थात् नदी तलाव आदिमें स्नाने न करै ॥ २९ ॥ प-  
त्थर आदिके बने हुए देवताओंकी गुरुकी राजाकी स्नातककी आचार्यकी कपि-  
लकी और दीक्षितकी छायाको न उलांघै ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ॥ सन्ध्ययोरुभ-  
योश्चैवं न सेवेत् चतुष्पथम् ॥ ३१ ॥ उद्धर्तनमपस्नानं विष्णूत्रे  
रक्तमेव च ॥ श्लेष्मनिष्ठयूतवान्तानि नार्थि तिष्ठेत्तु कामतः ॥३२॥

टीका—दिनके मध्यमें आधी रातिमें और मांससमेत श्राद्धको खायके और  
दोनो संध्याओंमें चौराहमें न जाय ॥ ३१ ॥ उवटनेका उतरा हुआ चून आदि  
स्नानका जल विष्ठा मूत्र थूका हुआ कफ और वमन किया हुआ इनसबोंमें जनि-  
नके किसीके ऊपर न बैठे ॥ ३२ ॥

वैरिणं नोषसेवेत् सहाय्यञ्चैवं वैरिणः ॥ अर्धार्थिकं तस्करञ्च परं-  
स्यैव च योषितम् ॥ ३३ ॥ न हीदृशं न आयुष्यं लोके किञ्चन  
विद्यते ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ३४ ॥

टीका—वैरीका और उसके मित्रका और अधर्मी चौरका तथा पराई स्त्रीका-  
कभी सेवन न करै ॥ ३३ ॥ उस लोकमें पुरुषकी आयु घटानेवाला ऐसा कुछ  
नहीं है जैसा पराई स्त्रीका सेवन ॥ ३४ ॥

क्षत्रियञ्चैवं सर्पञ्च ब्राह्मणञ्च बहुश्रुतम् ॥ नावमन्येत वै भूष्णुः  
कृशानपि कदाचन ॥ ३५ ॥ एतन्नयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानित-  
म् ॥ तस्मादेतन्नयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ३६ ॥

टीका—धन आयु आदिकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य क्षत्रिय सर्प बहुश्रुत ब्रा-  
ह्मण और दुर्बलका कभी अपमान न करै ॥ ३५ ॥ तिरस्कार किये हुए ये  
क्षत्रिय आदि नीनो पुरुषको जलाव देते हैं तिस्से बुद्धिमान इन तीनोंका  
कभी अपमान न करै ॥ ३६ ॥

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसंमृद्धिभिः ॥ आसृत्योः श्रियमन्वि-  
च्छेन्नै<sup>१२</sup> नां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रू-  
यात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्चनानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ३८ ॥

टीका—धनके लिये उद्यम करनेपर जो धन न मिलै तो मैं मंद धाम्य हैं ऐ-  
से कहकर अपनी निंदा न करै किंतु मरनेतक लक्ष्मीकी सिद्धिके लिये यत्न करै  
इसको दुर्लभ न मानै ॥ ३७ ॥ देखा और सुना हुआ सत्य कहै और जैसे तुझा-  
रे पुत्र हुआ है ऐसी प्यारी बात कहै और देखा सुनाभी अप्रिय जैसे तुझारा पु-  
त्र मरगया ऐसा अप्रिय न कहै और प्यारीभी बात झूठ न कहै यह वेदमूलक  
सनातन धर्म है ॥ ३८ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येवं वा वदेत् ॥ शुष्कवैरं विवादं च न  
कुर्यात् केनचित् सह ॥ ३९ ॥ नातिकल्पं नातिसायं नातिमध्य-  
न्दिने स्थिते ॥ नाज्ञातेन समं गच्छेत् नै<sup>१२</sup> को<sup>१३</sup> न वृषलैः सह ॥ १४० ॥

टीका—भद्रं भद्रं अर्थात् बहुत अच्छा २ ऐसे कहै अथवा भद्र ऐसाही अर्थात्  
अच्छा ऐसे कहै और सूखा वैर तथा विवाद किसीसे न करै ॥ ३९ ॥  
न बहुत सवरे न बहुत संध्याको न ठीक दुपरमें और विन पहचानके साथ न  
अकेला न और वृषलोंके साथ गमन करै ॥ २४० ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ॥ रूपद्र-  
व्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ४१ ॥ न स्पृशेत् पा-  
णिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥ न चापि पश्येदशुचिः सु-  
स्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥ ४२ ॥

टीका—हीनअंगवालोंका अधिकअंगवालोंका मूर्खोंका बूढ़ोंका और रूप तथा  
द्रव्यसे हीन अर्थात् कुदूप और कंगालोंकी और हीन जातिका कभी काना आदि  
शब्द करकर पुकारनेसे निंदा न करै ॥ ४१ ॥ भोजन करिके वा भलमूत्रका त्याग करि-  
के ब्राह्मण विना शौच और आचमनके और ब्राह्मण तथा अग्निको न छुवै ॥ ४२ ॥

स्पृष्टैतान् शुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् ॥ गान्त्राणि चैवं सर्वा-  
णि नैभिर्पाणितलेन तु ॥ १४३ ॥ अनातुरः स्वानि खानि न स्पृ-

शेदनिमित्ततैः । रोमाणि चं रहस्यानि सर्वाण्येवं विवर्जयेत् ॥४४॥

टीका—अशुद्धतामें इन गौ आदिको छूकर आचमन करि हाथमें लिये हुए जलसे प्राणोंको और नेत्र आदि इंद्रियोंको और शिरकंधा जान पैर और नाभिको हथेलीसे छुवै ॥४३॥ अच्छे भलेमें अपनी इंद्रियोंके नाक कान आदि छेदोंको विनाकारण न छुवै और छुपानेके योग्य लिंगके समीपके तथा कांस आदिके वालोंकोभी विनाकारण न छुवै ॥ ४४ ॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयत्नात्मा जितेन्द्रियः । जपेच्च जुहुयाच्चै-  
वं नित्यं मर्षितन्द्रितः ॥ ४५ ॥ मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रय-  
त्नात्मनाम् । जपतां जुह्वताच्चैवं विनिर्पातो न विद्यते ॥ ४६ ॥

टीका—चाहे हुए अर्थकी सिद्धिको मंगल कहते हैं उसका कारणके होनेसे गोरोजना आदिका लगाना मंगलहै और गुरुसेवा आदि आचार हैं उसमें लगा रहै अर्थात् सदा आचार करता रहै और बाहरी तथा भीतरी शौचसे युक्त जितेन्द्रिय रहै और गायत्री आदिका जप और विहित होमकों आलस्यरहित हो नित्यकरै ॥ ४५ ॥ मंगल तथा आचारसे नित्य शुद्ध और जप तथा होममें लगै हुए पुरुषोंको दैवी तथा मानुषी उपद्रव नही होतेहै ॥ ४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमर्तन्द्रितः । तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुप  
धर्मोऽन्य उच्यते ॥४७॥ वेदाभ्यासेन संततं शौचं तपसैर्व च ॥ अ-  
द्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥ ४८ ॥

टीका—नित्यकर्मके समयमें कल्याणका करण होनेसे प्रणवसाहित गायत्री आदिवेद-  
कों आलस्य छोडके जपै जिस्से उस श्रेष्ठ ब्राह्मणका धर्म मनु आदि कहते हैं और  
धर्म तौ मुनियों करि उससे नीचा कहा गया है ॥४७॥ सदा वेदके अभ्यासमें और  
शौच तप तथा अहिंसा आदिसे पूर्व जन्मकी जातिका स्मरण करनेवाला होताहै ४८ ॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ॥ ब्रह्माभ्यासेन चां  
जन्मनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४९ ॥ सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्या  
त् पर्वसु नित्यशः ॥ पितृश्वैवाष्टकास्वैचेन्नित्यमन्वष्टकासु च १५०

टीका—पूर्वजन्मकी जातिको स्मरण करताहुआ अर्थात् बहुतसे जन्मोंका  
स्मरण करता हुआ उनमें गर्भ जन्म जरा मरणके दुःखोंभी स्मरण करता हुआ  
संसारसे विरक्त हो सदा ब्रह्मकी अभ्यास करताहै अर्थात् श्रवण मनन और-



ध्यानसे साक्षात् करताहै उससे अनंत अविनाशी परमआनंदका प्रकट होनाही है लक्षण जिसका ऐसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ सूर्यहै देवता जिनके ऐसे होमोंको और अनिष्ट दूरि होनेके लिये शांति होमोंको पूर्णमासी और अमावास्याको सदा करै तैसे अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत तीनि कृष्णपक्षकी अष्टमियोंमें अष्टका नाम कर्मसे और श्राद्धसे और उसके भीतर कृष्णपक्षकी नवमी तिथियोंमें अन्वष्टका कर्मसे परलोकमें गये हुए पितरोंका प्रजन करै ॥ १९० ॥

दूरादावसंस्थान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् ॥ उच्छिष्टान्नं निषेकञ्च  
दूरादेवं समाचरेत् ॥ ५१ ॥ मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनं मज्जनम् ॥  
पूर्वाह्नएवं कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ५२ ॥

टीका—अग्नि गृहसे एक बाण चलानेकी भूसिसे कुछ आगे बढ़कर दूर मूत्र पुरीषका त्याग पैरोंका धोना और जलसमेत जूठे अन्नका तथा वीर्यका त्याग करै ॥ ५१ ॥ मैत्र कहिये दिशावाधा जाना और देहका प्रसाधन कहिये प्रातःकालका स्नान दतून करना अंजन लगाना इन सब बातोंको पूर्वाह्न कहिये दिनके पहलेही भागमें करै ॥ ५२ ॥

देवतान्यभिर्गच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ईश्वरं चैवं रक्षार्थं  
गुरुनेवं च पर्वसु ॥ ५३ ॥ अभिवादयेद्दृष्ट्वांश्च दद्याच्चैर्वासनं स्वर्क  
म् ॥ कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ ५४ ॥

टीका—पाषाण आदिके वनेहुए देवताओंके मंदिरमें और धर्मात्मा ब्राह्मणोंके समीप और राजा तथा गुरुकहिये पिता आदिके समीप अपनी रक्षाके लिये अमावास्या आदि पर्वोंमें उनके दर्शनको जाया करै ॥ ५३ ॥ घरमें आये हुए गुरुओंको नमस्कार करै और उनके बैठनेको अपना आसन दे और हाथ जोरिंके उनके समीप बैठे और जब वेचलै तौ उनके पीछे पहुंचानेको चलै ॥ ५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ॥ धर्ममूलं निषेवेत सदा  
चारमर्तन्द्रितः ॥ ५५ ॥ आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीर्प्सिताः ॥ प्र  
जाः ॥ आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ५६ ॥

टीका—वेद और स्मृतियों करके अच्छी भांति कहा गया और अध्ययन आदि अपने कर्मोंसे संबंध रखनेवाले और धर्मका कारण ऐसे साधुओंके आचारको आलस्यरहित हो सदा सेवन करै ॥ ५५ ॥ आचारसे वेदमें कही हुई आ-

युको प्राप्त होता है और चाही हुई पुत्र पौत्र और पुत्रीरूप सन्तानको तथा ब्रह्मतेसे धनको प्राप्त होता है आचारही अशुभ फलके सूचित करनेवाले देहमें स्थित कुलक्षणको निष्फल कर देता है ॥ ५६ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं  
व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ५७ ॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचार  
वान्नरैः ॥ श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ५८ ॥

टीका—दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है और सदा दुःखका भोग-  
नेवाला रोगी और अल्पायु होता है तिससे सदा आचारयुक्त रहै ॥ ५७ ॥ जो  
सदा आचारवान् है और श्रद्धायुक्त है और पराये दोषोंको नही कहता है वह अ-  
पने शुभसूचक लक्षणोंसे शून्यभी सौवर्षकी आयुको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥ यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्त  
त्सेवेत यत्नतः ॥ ५९ ॥ सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥  
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥

टीका—जो जो कर्म पराये आधीन है अर्थात् दूसरे कहनेपर होसकता है  
उसको यत्नसे त्याग करै और जो स्वाधीन है, अर्थात् अपनी देहसे होसकता है  
उसको यत्नसे करै ॥ ५९ ॥ सब पराये आधीन क्राम अर्थात् दूसरे के कहने से  
जो होसकै वह दुःखका कारण है और सब अपने आधीन सुखका कारण है  
यही सुखदुःखका कारण जानै ॥ १६० ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ॥ तत्प्रयत्नेन कुं  
र्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मा  
तरं गुरुम् ॥ न हि स्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वाश्चैव तपस्विनः ॥ ६२ ॥

टीका—जिसकामके करते हुए करने वालिका आत्मा संतुष्ट होय उसको जत-  
नसे करै और जिससे संतुष्ट न होय उसको न करै ॥ ६१ ॥ आचार्य जो  
यज्ञोपवीत कराकै वेद पढानेवाला होय उसको और प्रवक्ता कहिये वेदके अर्थके  
व्याख्यान करनेवालेको और पिता माता तथा गुरुको और ब्राह्मण गौ तथा  
सब तपस्वियोंको. न मारे अर्थात् उनसे प्रतिकूल न वचै यहाँ हिंसा शब्दका  
प्रतिकूल वर्त्तना अर्थ है ॥ १६२ ॥

नास्ति क्वयं वेदनिन्दां च देवतानां च कुर्त्सनम् ॥ द्वेषं दर्भं च मानं

चं क्रो<sup>१३</sup> धं तै<sup>१३</sup> क्षण्यं च<sup>१३</sup> वर्जयेत् ६३ परस्य दण्डं नो<sup>१३</sup> द्यच्छेत्कु<sup>१३</sup> द्रो नै<sup>१३</sup> वं  
निर्पातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्रा<sup>१३</sup> च्छिष्या<sup>१३</sup> द्वां शि<sup>१३</sup> ष्यर्थं ता<sup>१३</sup> डयेत्तु<sup>१३</sup> तौ<sup>१३</sup> ६४ ॥

टीका—नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा देवताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड़दे ॥ ६३ ॥ क्रोधितहो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावै और न दूसरेके शरीरमें मारै पुत्र शिष्य स्त्री और दास इनको छोड़के अर्थात् अपराध करने पर इनको शिक्षाके लिये आगे कहे हुए प्रकारसे ताडना करै ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणार्यवगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्रे नर  
के परिवर्तते ॥ ६५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि संभ्रान्मतिपूर्वकम् ॥  
एकविंशतिमाजातिः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

टीका—द्विजाति भी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेही पर मार-  
कै नहीं सौ वर्षतक तामिश्रनाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर  
द्विनकेसेभी ब्राह्मणको मारिकै इक्कीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनि  
योंमें उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यामृगङ्गतः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति  
प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति मं  
हीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥ ६८ ॥

टीका—युद्ध न करते हुए ब्राह्मणके अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करके पर-  
लोकमें बड़े दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड्ग आदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला  
हुआ रुधिर भूमिमें गिरके जितने धूलिके द्यणुकोंको समेटता है उतनी वर्षोंतक  
परलोकमें मारनेवाला स्मर आदिकों करि स्वाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥ न ताडयेत्तृणेनापि न  
गात्रात्स्त्रावयेदमृक् ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यं  
नृतं धनम् ॥ हिंसारतश्च यो नित्यं न हसौ सुखमेधते ॥ ७० ॥

टीका—तिस्से विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावै भी नहीं औ-  
र तिनके सेभी ताडन न करै और न शरीरसे रुधिर निकालै ॥ ६९ ॥ जो नर  
अधर्मी अर्थात् शास्त्रमें मनेकिये हुए अगम्यागमन आदि का करनेवाला और जि-

सके गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूठ बोलनाही धनका उपाय है अर्थात् झूठीगवाही देकर धन लेता है और जो पराई हिंसाको करता है वह इस लोकमें सुखी नहीं रहता है ॥ १७० ॥

नं सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापाना  
मांशु पश्यन्विपर्ययम् ॥७१॥ नाधर्मश्चरितो लोकं सद्यः फलति  
गौरिवं ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुमूलानि कृन्तति ॥७२॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुए धर्मको करता हुआ मनुष्य धन आदिके न होनेसे दुःखपानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करै यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले धन आदि संपत्तियों करि युक्तभी दिखाई देते हैं तिस परभी उन अधर्म चोरी आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आदिका नाशभी दीखता है इससे अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावै ॥ ७१ ॥ किया हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देने वाला नहीं होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरवालि मुट्टे आदि नहीं उत्पन्न होते हैं किन्तु जब ऋतु आती है तभी होते हैं ऐसेही जब अधर्म फलके सम्मुख होता है तब करनेवालेको जडसे उखाड देता है अर्थात् देह धन आदि समेत नष्ट होजाताहै ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्युत्रेषु नमृषु ॥ न त्वेवं तु कृतोऽधर्मः क  
र्तुर्भवति निष्फलः ॥७३॥ अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्य  
ति ॥ ततः सर्पत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥७४॥

टीका—जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदिफलको नहीं करताहै तौ उसके पुत्रोंमें नहीं तौ पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ अधर्मसे उसके फल होने तक ग्राम धन आदिसे बढता है तिस पीछे बहुतसे सेवकों और गौ घोडे आदि हतवस्तुओंको पाताहै तिस पीछे आपसे निर्बल शत्रुओंको जीतता है पीछे कुछकालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण  
वाग्वाहूदरसंशयतः ॥७५॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्म  
वर्जितौ ॥ धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकं विक्रुष्टमेव च ॥७६॥

चं क्रो<sup>१</sup>धं तै<sup>२</sup>क्ष्ण्यं च<sup>३</sup> वर्जयेत् ६३ परस्य दण्डं नो<sup>४</sup>द्यच्छेत्कु<sup>५</sup>द्वो नै<sup>६</sup>वं  
निर्पातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्रा<sup>७</sup>च्छि<sup>८</sup>ष्याद्वा शिष्ट<sup>९</sup>चर्थं ताडयेत् तु<sup>१०</sup> ॥ ६४ ॥

टीका—नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा देवताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड़दे ॥ ६३ ॥ क्रोधितहो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावै और न दूसरेके शरीरमें मारे पुत्र शिष्य स्त्री और दास इनको छोड़के अर्थात् अपराध करने पर इनको शिक्षाके लिये आगे कहे हुए प्रकारसे ताडना करै ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणार्यावगुर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिस्रे नर  
के परिवर्तते ॥ ६५ ॥ ताडयित्वा नृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् ॥  
एकविंशतिमाजातिः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

टीका—द्विजाति भी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेही पर मार-  
के नहीं सौ वर्षतक तामिश्रनाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर  
द्विनकेसेभी ब्राह्मणको मारिके इक्कीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनि  
योंमें उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यामृगङ्गतैः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति  
प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति म  
हीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽर्धते ॥ ६८ ॥

टीका—युद्ध न करते हुए ब्राह्मणके अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करके पर-  
लोकमें बड़े दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड़ आदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला  
हुआ रुधिर भूमिमें गिरके जितने धूलिके झणुकोंको समेटता है उतनी वर्षोंतक  
परलोकमें मारनेवाला स्मर आदिकों करि खाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि ॥ न ताडयेत् नृणेनापि न  
गात्रात्त्राविदेदमृक् ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्य  
नृतं धनम् ॥ हिसारतश्च यो नित्यं ने हासौ सुखमेधते ॥ ७० ॥

टीका—तिस्से विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावै भी नहीं औ-  
र तिनके सेभी ताडन न करै और न शरीरसे रुधिर निकालै ॥ ६९ ॥ जो नर  
अधर्मी अर्थात् शास्त्रमें मनोकिये हुए अगम्यागमन आदि का करनेवाला और जि-

सके गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूठ बोलनाही धनका उपाय है अर्थात् झूठीगवाही देकर धन लेता है और जो पराई हिंसाको करता है वह इस लोकमें सुखी नहीं रहता है ॥ १७० ॥

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मं निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापाना  
मांशु पश्यन्विपर्ययम् ॥७१॥ नाधर्मश्चरितो लोकं सद्यः फलति  
गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुमूलानि कृन्तति ॥७२॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुए धर्मको करता हुआ मनुष्य धन आदिके न होनेसे दुःखपानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करै यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले धन आदि संपत्तियों करि युक्तभी दिखाई देते हैं तिस परभी उन अधर्म चोरी आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आदिका नाशभी दीखता है इससे अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावै ॥ ७१ ॥ किया हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देने वाला नहीं होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरबालि मुद्दे आदि नहीं उत्पन्न होते हैं किन्तु जब ऋतु आती है तभी होते है ऐसेही जब अधर्म फलके सन्मुख होता है तब करनेवालेको जंडसे उखाड देता है अर्थात् देह धन आदि समेत नष्ट होजाताहै ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नृपुषु ॥ न त्वेवं तु कृतोऽधर्मः क  
र्तुर्भवंति निष्फलः ॥७३॥ अधर्मेण धते तावत्ततो भद्राणि पश्य  
ति ॥ ततः सर्पत्नाञ्जयाति समूलस्तु विनश्यति ॥७४॥

टीका—जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदिफलको नहीं करताहै तौ उसके पुत्रोंमें नहीं तौ पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ अधर्मसे उसके फल होने तक ग्राम धन आदिसे बढता है तिस पीछे बहुतसे सेवकों और गौ घोडे आदि हतवस्तुओंको पाताहै तिस पीछे आपसे निर्बल शत्रुओंको जीतता है पीछे कुछकालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमे त्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण  
वाग्वाहूदरसंशयतः ॥ ७५ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्म  
र्जितौ ॥ धर्मं चाप्यसुखोदकं लोकं विक्रुष्टमेव च ॥ ७६ ॥

टीका—सत्यधर्म और सज्जनोंके आचार तथा शौचमें सदा प्रीति करै और धर्मसे शिष्योंको शिक्षादे और वाणी बाहु तथा उदर इनका संयम करै वाणीका संयम सत्यबोलना बाहुका संयम बाहु बलसे किसीको पीडा न देना उदरका संयम जैसा मिलै वैसा थोडा भोजन करना ॥ ७५ ॥ जो अर्थ और काम धर्मको विरोधी होंय तौ उनको त्याग करै जैसे चोरी आदिसे द्रव्यका इकठ्ठे करना और दीक्षाके दिन यजमानकी स्त्रीसे भोग करना और जिस धर्ममें आगे दुःख उत्पन्न होय उसकाभी त्याग करै जैसे पुत्र आदि बहुतसे पालने योग्य होने पर सर्वस्वका दान करना ओर झोकमें निंदित जैसे कलियुगमें मध्यमाष्टकादि श्राद्धोंमें गो वध आदिका करना ॥ ७६ ॥

नं पाणिपादचपलो नं नेत्रचपलोऽनृजुः ॥ नं स्याद्द्राक्चपलश्चैवं  
नं परद्रोहकर्मधीः ॥ ७७ ॥ येनास्यं पितरो याता येन याताः पिता  
महाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्त्रिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका—हाथपैर आदिकी चपलताको न करै हाथकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके वस्तुओंका उठाना धरना और पैरोंकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके भ्रमण आदि करना और नेत्र चापल्य जैसे पराई स्त्रीका देखने आदिका स्वाद और वाणीकी चपलता जैसे बहुत निंदाकी बातें बकना इन सर्वोंका त्याग करै और अनृजु कहिये कुटिल न होय और परद्रोह जो पराई हिंसा है तिसकी बुद्धि न करै ॥ ७७ ॥ बहुत प्रकारका शास्त्रका अर्थ होनेपर जिस धर्म मार्गसे इसके पिताचले और जिस्से इसके पितामह चले उसी मार्गसे चले वही सज्जनोंका मार्ग है उसमें चलताहुआ अधर्म करि नही मारा जाता है ॥ ७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥ बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्  
ज्ञातिसंबन्धिवान्धवैः ॥ ७९ ॥ मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रे  
ण भार्यया ॥ दुहित्वा दासवर्गेण विवादि नं समाचरेत् ॥ १८० ॥

टीका—ऋत्विक् पुरोहित कहिये शांति आदिका करनेवाला, और आचार्य मामा अतिथि तथा संश्रित कहिये अनुजीवि और ज्ञाति कहिये पिताके पक्षके और संबंधी कहिये जमाई शाला आदि और बांधव कहिये माताके पक्षके और यामि कहिये वहिनि पुत्र वधू आदि इनसबोंसे वाणिका कलह अर्थात् बातोंका झगडा नकरै ॥ ७९ ॥ माता पिता और यामी कहिये वहिनि पुत्र वधू आदि भाई पुत्र स्त्री बेटेटी और नौकरोंके समूहके साथ विवाद न करै ॥ १८० ॥

एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ एभिर्जितैश्च जयति स-  
र्वाल्लोकानिमान्गृही ॥८१॥ आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पि-  
ता प्रभुः ॥ अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चीर्त्वजः ॥८२॥

टीका—इन ऋत्विक् आदिकोंके साथ विवादोंको छोड़कर अज्ञानसे किये हु-  
ए सब पापोंसे छूटि जाता है और इनके साथ विवादकी उपेक्षा करनेसे गृहस्थ  
आगे कहे हुए इन सब लोकोंको जीति लेता है ॥ ८१ ॥ आचार्य ब्रह्मलोकका  
स्वामि हैं और प्राजापत्य लोकका पिता स्वामी है और इंद्रलोकका अतिथि त-  
था देवलोकके ऋत्विज स्वामी है विवाद छोड़नेसे इन सबोंके संतुष्ट होनेसे ब्रह्म-  
लोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥

यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः ॥ सर्वन्धिनो ह्यीपां लो-  
के पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥८३॥ आकाशेशस्तु विज्ञेया बालवृद्ध-  
कृशातुराः ॥ भ्राता ज्येष्ठः सप्तमः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ८४

टीका—वह्नि तथा पुत्र वधू अप्सराओंके लोकके अधिष्ठात्री है और बांधव  
वैश्वदेव लोकके और संबंधी वरुण लोकके और माता तथा मामा पृथिवीके स्वा-  
मि है इनकी प्रसन्नतासे अप्सराओंके लोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ बा-  
लक वृद्ध लश कहिये धनहीन और आश्रित आतुर-ज्येष्ठ भई पिताके समान है  
तिस्से वही प्रजापति लोकका स्वामी है और भार्या तथा पुत्र अपनाही शरी-  
र है इस्से अपने साथ कैसे विवाद हो सकता है ॥ ८४ ॥

छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कूपणं परम् ॥ तस्मादेतैरधिक्षिप्तः  
सहेता संज्वरः सदा ॥ ८५ ॥ प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जये-  
त् ॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्यार्शुं ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ८६ ॥

टीका—अपने दासोंका समूह सदा अनुगामी होनेसे अपनी छायाहीके समान  
है विवादके योग्य नहीं है और पुत्री तो बहुतही कृपाका पात्र है तिस्से इच करिके  
तिरस्कार किया हुआ भी संताप न करके सहले विवाद न करे ॥ ८५ ॥ विद्या तप और  
आचारयुक्त होनेसे दान लेनेका अधिकारी होनेपर भी उसमें वारंवार प्रवृत्तिको  
छोड़दे अर्थात् दान न ले कारण यह है कि दान लेनेसे वेदपठन आदिसे उत्पन्न  
इसका ब्राह्मणतेज अर्थात् प्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८६ ॥

नैर्द्रव्याणामविज्ञाय विधि धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥ प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुं



यां क्वंसीदन्नपि क्षुधा ॥ ८७ ॥ हिरण्यं भूमिमश्च गोमंत्रं वासास्ति  
लान्वृतम् ॥ प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥ ८८ ॥

टीका—वस्तुओंकी दान लेनेमें धर्मके लियेहितकारी विधानके विनाजाने बुद्धिमान् क्षुधासे पीडित होने परभी दान न ले आपत्तिकेविना तौ फिर क्या कहना है ॥ ८७ ॥ सोना भूमि घोडा गौ अन्न वस्त्र तिल और घी इनका दान लेना हुआ मूर्ख दान रूपि अग्निसे काष्ठके समान उसी समय भस्म हो जाता है फिर उत्पत्तिको नही प्राप्त होताहै ॥ ८८ ॥

हिरण्यमायुरन्नं च भूगोश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वंचं वा  
सो धृतं तेजस्तिर्लाः प्रजाः ॥ ८९ ॥ अंतपास्त्वनधीयानः प्रति  
ग्रहरुचिर्द्विजः ॥ अम्भस्यश्मं पुवेनेव सहते नैव मज्जति ॥ १९० ॥

टीका—सुवर्ण और अन्नका दान लेने वाले मूर्खकी आयुको जलाते हैं और भूमि तथा गौ शरीरको जलाते हैं घोडा नेत्रोंको वस्त्र त्वचाको घी तेजको और तिल संतानको जलाते हैं ॥ ८९ ॥ तप और विद्यासे शून्य और दानकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण दानका अधिकारी न होनेसे मनमें विचारेही हुए उस दानसे अयोग्य दानरूप पापयुक्त दातासमेत नरकमें ऐसे डूबताहै जैसे पत्थरकी नावसे जलका उतरता हुआ उस नावसमेत जलमें डूब जाता है ॥ १९० ॥

तस्मादविद्वांन्विभिर्याद्यस्मात्तस्मै प्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्य  
विद्वान्हि पंडु गौरिव सीदति ॥ ९१ ॥ न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडा  
लव्रतिके द्विजे ॥ न बर्कव्रतिके त्रिं प्रे न वेदविदि धर्मवित् ॥ ९२ ॥

टीका—तिस्से मूर्ख पुरुष जिसकीसी छोटि वस्तुके भी दानसे डरै क्योंकि सुवर्णका तौ क्या कहना थोडे दामके सीसा आदिके लेनेसे कीचमें फसके गौके समान नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥ लेनेवालेका धर्म कहिकै अव देनेवालेका धर्म कहते है कौआ कुत्ता आदिको जो दिया जाता है वहभी धर्मज्ञ बिडालव्रती ब्राह्मणको न दे इस अधिकतारके कहनेसे दूसरी चीजोंका दानमना किया जाता है केवल जलहीका दान नही पाषंडिनो विकर्मस्थान् इस्से बैडालव्रतीके लिये अतिथिपनसे सत्कार करिके द्रव्यदान आदिका निषेधकिया यहांतौ धनका दानमना किया जाताहै इसीसे विधिनाप्यर्जितं धनं यह आगे कहेंगे और अवेदविद् कहनेसे यह ज्ञानागया कि जबतकपढा लिखामिलै तब तक मूर्खको न दे ॥ ९२ ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुं भवत्यनर्था  
य परत्रादातुरेव च ॥ ९३ ॥ यथा पुत्रेनोपलेन निर्मज्जत्युदके तर  
न् ॥ तथा निर्मज्जतोऽर्धस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ ९४ ॥

टीका—इनतीनि विडालवृत्ति आदिकोमें न्यायसे जोडा हुआ भी धन देनेसे देनेवाले और लेनेवालेको परलोकमें नरकका कारण होनेसे अनर्थके लिये होता है ९३ ॥ जैसे पत्थरकी बनीहुई नाव आदिसे जलमें तिरता हुआ उसके साथही नीचे जाता है ऐसेही दान और प्रतिग्रहके शास्त्रके न जाननेवाले दाता और लेनेवाला दोनो नरकको जाते हैं ॥ ९४ ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छात्रिको लोकदम्भकः ॥ बैडालव्रतिको  
ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टिनैष्कृतिकः स्वार्थ  
साधनतत्परः ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ ९६ ॥

टीका—जो बहुतसे मनुष्योंके सामने धर्म करता है और लोकमें आप कहता है तथा औरोंसे कहाता है, उसका धर्मही चिन्हहीसाहै इस कारण वह धर्म ध्वजी कहा जाता है और लोभी कहिये परायेधनकी इच्छा रखनेवाला और छात्रिक कहिये छल करने वाला और लोकदम्भक कहिये धरोहृद् आदिके पचाजानेसे लोगोंका ठगानेवाला और हिंस्र कहिये दूसरेकी हिंसाका स्वभाववाला और सर्वाभिसंधक कहिये पराये गुणोंको न सहकर सबकी निंदा करनेवाला और विडालव्रती कहिये जैसे विलाव बहुधा मूसा आदिके मारनेकी रुचिसे ध्यानमें लगासा नम्रहोकै बैठता है ऐसेही उसको जानिये ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टि कहिये जो अपनी नम्रता दिखानेके लिये सदा नीचेहीको देखता है और नैकृतिक कहिये जो निष्ठुरतायुक्त हो पराये अर्थको बिगाडकर अपने स्वार्थमें लगारहै और शठ कहिये कुटिल और मिथ्याविनीत कहिये कपटसे नम्रतायुक्त और बकव्रतचरः बगलेकासाव्रत करनेवाली जैसे बगुला मछलियोंके मारनेके लिये झुठमूठको नम्रतासे बैठता है ॥ ९६ ॥

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥ ते पतन्त्यन्धता  
मिस्रे तेन पापेन कर्मणां ॥ ९७ ॥ न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा  
व्रतं चरेत् ॥ व्रतेन पापं प्रच्छेद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ ९८ ॥

टीका—जें ब्राह्मण बकवृत्तिवाले हैं और जे विडालव्रती हैं वे उस पापक-

मेंसे अंधतामिस्त्रनाम नरकमें गिरते हैं ॥ ९७ ॥ पापकारिके प्रायश्चित्तरूप प्राजापत्य आदि व्रतकरता हुआ ऐसा न कहैकि मैं धर्मके अर्थ, करता हों स्त्री शूद्र मूर्ख आदि जनोंको मोहित करता हुआ ऐसा न करै ॥ ९८ ॥

प्रेत्येह चेद्दशां विप्रां गृह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ छंदानां चरितं यच्च ब्रं  
तं रक्षांसि गच्छन्ति ॥ ९९ ॥ अलिङ्गी लिङ्गिवेषण यो वृत्तिमुपजी  
वति ॥ स लिङ्गिनां हस्त्येन स्तिर्यग्योनौ च जायते ॥ २०० ॥

टीका—परलोकमें तथा इस लोकमें ऐसे ब्राह्मण ब्रह्मवादियों करि निंदाकि-  
ये जाते हैं और जो व्रत छलसे किया जाताहै वह रक्षकोंको प्राप्त होताहै ॥ ९९ ॥  
जो ब्रह्मचारी आदि नहीं है और ब्रह्मचारी आदिकोंके चिन्ह भेखला मृगचर्म  
दंड आदि वेषजाना जाता उनकी वृत्तिसे भिक्षाभ्रमण आदिकारि जीविका  
करता है वह ब्रह्मचारी आदिकोंका जो पाप है उसको अपनेमें खीचि लेता  
है और कूकुर आदिकी योनिमें उत्पन्न होता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥ निपांनकर्तुः स्नास्त्वा तु  
दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ १ ॥ यानशय्यांसनान्यस्य कूपोद्यानगृहा  
णि च ॥ अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ २ ॥

टीका—पराये बनाये हुए ताल आदिमें कभी स्नान न करै उनमें न हायके उ-  
नके बनवालेके पापसे चौथाई भागका पम्नेवाला होताहै विनावनाई हुई नदी  
आदि न होय तौ पराये बनाये हुए तालआदिमें प्रदानसे पहले पांच पिंडोंका उ-  
द्धार करि नहाना चाहिये ॥ १ ॥ पराया यान आसन कुआ बाग और घर जो विना-  
दिये इनका भोग करै तौ बनवानेवालेके पापके चतुर्थ अंशका भागी होता है ॥ २ ॥

नदीषु देववातेषु तडागेषु सरैःसु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्र  
स्रवणेषु च ॥ ३ ॥ यमान्सेवेतं सततं न चित्यं नियमान्बुधः ॥ यं  
मान्पत्न्यकुर्वाणो नियमान्केवलांभजनं ॥ ४ ॥

टीका—नदीमें देक्ताओंके नामसे प्रसिद्ध तडागोंमें और प्रसिद्ध सरोंगर्तोंमें  
अर्थात् जिनकी गति आठ हजार धनुषसे कम नहीं है उनमें चारिहाथका एक  
धनुष होता है और झरणोंमें स्नान करै ॥ ३ ॥ पंडित जमोंका सदा सेवन करै और  
नित्यनियमोंका सेवन न करै यम जैसे ब्रह्मचर्य १ दया २ क्षमा ३ ध्यान ४ सत्य  
५ कष्ट भ करना ६ अहिंसा ७ चोरी न करना ८ मधुर बोलना ९ इंद्रियोंका

वश करना और नियम जैसे स्नान १ मौन २ उपवास ३ यज्ञ करना ४ वेद पढ़ना ५ शिश्न इंद्रियका रोकना ६ नियम ७ गुरुकी सेवा ८ शौच ९ क्रोध न करना १० प्रमाद न करना ११ यमोंको न करता हुआ केवल नियमों करता हुआ पुरुष पतित होता है ॥ ४ ॥

नांश्रोत्रियतते येज्ञे ग्राम्याजिहुते तथा ॥ स्त्रियां कृविने च हुते  
भुञ्जीत ब्राह्मणः कंचित् ॥ ५ ॥ अश्लीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्य  
मी हविः ॥ प्रंतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो वेद पाठी नहीं है ऐसे मनुष्यकरि आरंभ किये हुए और बहुतोंके यजन करानेवाले करि होमे हुए और स्त्री तथा नपुंसक करि होम किये हुए यज्ञमें ब्राह्मण कभी न भोजन करै ॥ ५ ॥ पहलेकहे हुए वह याजक आदि जिसमें होम करते हैं वह कभी शिष्टोंको अश्लीक कहिये अलक्ष्मी देनेवाला है अर्थात् देवताओंको प्रतिकूल है तिससे इसको न करावै ॥ ६ ॥

मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ केशकीदावपन्नञ्च पर्दा  
स्पृष्टञ्च कामतः ॥ ७ ॥ भ्रूणघ्रावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया ॥  
पतत्रिणार्वलीढञ्च शुनां संस्पृष्टमेव च ॥ ८ ॥

टीका—सिढी क्रोधी तथा रोगीका अन्न और वालों तथा कीड़ोंके योगसे विगडा हुआ और जानकर पैरसे छुआ हुआ अन्नकभी न खाय ॥ ७ ॥ गर्भहत्या गोहत्या आदिसे पतितोंकरि देखा हुआ अन्न और रजस्वला स्त्री करि छुआ हुआ तथा पक्षियों करि खाया हुआ और कुत्तकरि छुआ हुआ अन्न न खाय ॥ ८ ॥

गर्वा चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः ॥ गणान्नं गणिकान्नञ्च विदु  
षां च जुगुप्सितम् ॥ ९ ॥ स्तेनगायनयोश्चात्र तक्ष्णो वांर्द्धुषिकस्य  
च ॥ दीक्षितस्य कर्द्वस्य बद्धस्य निर्गडस्य च ॥ १० ॥

टीका—गौका संघा हुआ और घुष्टान्न कहिये कौन खानेवाला है ऐसे कहिके जो अन्न यज्ञ आदिमें दिया जाय और गणान्न कहिये मठ तथा ब्राह्मणोंके समूहका अन्न और वेश्याका अन्न और विद्वान् करि दुष्ट है ऐसे कहि कहि करि निंदाकिया गया अन्न विशेष करि कहिये बहुत दोषयुक्त होनेसे उस अन्नको कभी न खाय ॥ ९ ॥ चोरी तथा गानेकी जीविकावालेका और बढई तथा व्याज लेनेवालेका और दीक्षित तथा ऋषणका और वेरियोंसे बधे हुएका अन्न कभी न खाय ॥ १० ॥

अभिज्ञस्तस्य षण्ठस्य पुंश्वर्त्या दाम्भिकस्य च ॥ शुक्तं पर्युषि  
तत्रैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ११ चि कित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्यो  
च्छिष्टभोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकांन्नञ्च पर्याचान्तमनिर्दर्शम् ॥ १२ ॥

टीका—अभिज्ञस्त कहिये जिसको लोकमें महापातक लगिरहा है उसका न-  
पुंसकका व्यभिचारिणी स्त्रीका और दाम्भिक कहिये छलसे धर्म करनेवाले विडा-  
लव्रती आदिका अन्न न खाय और शुक्त जो स्वभावंसे मीठा दही आदि जल  
आदिके मिलनेसे खट्टा हुआ और पर्युषित कहिये रातिका बसा हुआ और  
शूद्रका अन्न कभी न खाय और उच्छिष्ट कहिये भोजनसे बचा हुआ अन्न-  
किसीका न खाय और गुह्यका जूठा तो विहित है इससे खाय ॥ ११ ॥ चिकि-  
त्सासे जीविका करनेवालेका अर्थात् वैद्यका और मांस बेचनेके लिये पशुओंके  
मारनेवालेका और क्रूर कहिये कुटिल प्रकृतिका और जूठा खानेवालेका अन्न न  
खाय और उग्रान्न कहिये शूद्रामें क्षत्रियसे उत्पन्नका और सूतिका स्त्रीके लिये जो अ-  
न्न किया जाय उसको उसके कुलकेभी न खाय एक पंक्तिमें स्थित औरोका अप-  
मान करि जहां अन्न खाते हुए किसीकरि आचमन किया जाय वह पर्याचान्त  
कहा जाता है उस अन्नको ओर दशादिनके भीतर सूतिकाका अन्न न खाय ॥ १२ ॥

अनर्चितं वृथामांसमवीर्यायाश्च योषितैः ॥ द्विषदन्नं नगैर्यन्नं पतितं  
न्नमवक्षुतम् ॥ १३ ॥ पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा ॥  
शौलषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ १४ ॥

टीका—पूजाके योग्यको जो अनादरसे दिया जाय और वृथा मांस जो दे-  
वतके लिये न किया जाय उसको और पति पुत्र रहित स्त्रीका और शत्रूका अ-  
न्न और नगरका तथा पतितोंका अन्न और जिसके ऊपर छीक हुई ऐसा अन्न न  
खाय ॥ १३ ॥ पिशुन कहिये जो पीठिपीछे दूसरेकी बुराई करता है उसका औ-  
र बहुत झूठ बोलनेवाला जैसे झूठा गवाही आदि उसका और क्रतुविक्रयी कहि-  
ये मेरे यज्ञका फल तुझारा हो ऐसे कहकर जो धन लेता है उसका और न-  
टका तथा दरजीका और कृतघ्न जो उपकार करनेवालेकीभी बुराई करै उ-  
सका अन्न न खाय ॥ १४ ॥

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥ सुवर्णकर्तुर्वैणस्य श  
स्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ १५ ॥ श्वपतांशौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य  
च ॥ रजकस्य चूसांसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १६ ॥

टीका—लोहारका तथा निषादका और नट तथा गवैयासे भिन्न जो तमासा आदि करिकै जीविका करते है उनका और स्वनारका और बांसकी चीजें बनाकर बेचनेवालेका और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न न खाय ॥ १५ ॥ आखेटके लिये कुत्ते पालनेवालेका और मद्यबेचनेवालाका तथा धोबीका रंगरेजका निर्दयीका और जिसके घरमे अज्ञानसे जार रहता है उसका अन्न न खाय ॥ १६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपत्तिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥ अनिर्दशं च प्रे  
तान्नमर्तुष्टिकरमेव च ॥ १७ ॥ राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्म  
चसम् ॥ आयुः सुवर्णकारान्नं यज्ञश्चर्मावकर्त्तिनः ॥ १८ ॥

टीका—जो घरमें जाने हुए स्त्रीके जारको सहते हैं उनके अन्नको न खाय और जो सब कामोंमें स्त्रीके आधीन रहते हैं उनका ओर दशदिनके भीतर प्रेतका अन्न और जिस्में संतोष नहोय ऐसा अन्न न खाय ॥ १७ ॥ राजाका अन्न तेजका नाश करता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाश करता है और स्वनारका अन्न आयुका नाश करता है और चमारका अन्न यज्ञका नाश करता है ॥ १८ ॥

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥ गणान्नं गणिकान्नं च  
लोकभ्यः परिक्रान्तति ॥ १९ ॥ पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्या स्त्व  
न्नमिन्द्रियम् ॥ विष्टां वार्धुषिकस्यान्नं शूद्रविक्रयिणो मलम् २२० ॥

टीका—कारुक जो सूपकार आदि हैं उनका अन्न संततिका नाश करता है और धोबीका बलको तथा गण और गणिका का अन्न और शुभकर्मोंसे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोकोंको दूर करता है ॥ १९ ॥ चिकित्सकके अन्नमे पीवकों खानेके समान दोष है और व्यभिचारिणीका अन्न वीर्यके समान है और व्याजखानेवालेका अन्न विष्टाके समान है और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न विक्रयसे भिन्न कफ आदिमलके समान है ॥ २२० ॥

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्त्तिताः ॥ तेषां त्वंगस्थि  
रोमाणि वैदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ २१ ॥ भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नम  
त्या क्षपणं त्र्यहम् ॥ मर्त्या भुक्त्वा चरेत्कुच्छं रेतोविण्मूत्रमेव च २२

टीका—यहां कहे हुआसे अन्य जो अभोज्यान्न इस प्रकरणमें पढे हैं उनका अन्न त्वचा ह्रड और रोमाओंके समान है अर्थात् त्वचा ह्रड और रोमोंके खानेमें जो दोष होता है वही उनके अन्नके खानेमें जानना चाहिये ॥ २१ ॥ इनमें-

से किसीका अन्न विनाजाने खाय तौ तीनिदिन उपवास करै और जानकर खा-  
य तौ कृच्छ्र करै और वीर्य मूत्र विष्टाके खानेमेंभी यही कृच्छ्रव्रत जानिये ॥२२॥

नाद्याँच्छ्रद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥ आददीतांममे  
वास्मादेवृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २३ ॥ श्रोत्रियस्य कर्दर्यस्य वदान्य  
स्य च वार्धुषेः ॥ मीमांसित्वाभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥२४॥

टीका—विद्वान द्विज श्राद्ध आदि पंचयज्ञों करि शून्य श्रद्धका पक्वान्न खा-  
य परन्तु जो और कहीसे न मिलसकै तौ एक रात्रिके निर्वाह योग्य कच्चाही  
अन्न इस्से ले पक्वान्न नही ॥ २३ ॥ एक वेदपढा हुआ कृपण और दूसरा दाता  
श्रद्धिजीवी इन दोनोका अन्न देवताओंने गुणदोषोंको विचारि समान कहा है  
क्योंकि दोनोंके गुण तथा दोष समानहैं ॥ २४ ॥

तान्प्रजापतिरौहृत्य मां कूर्ध्वं विषमं समम् ॥ श्रद्धापूतं वदान्यस्य  
हंतमश्रद्धयेतरत् ॥ २५ ॥ श्रद्धयेष्टं च पूतं च नित्यं कुर्यादतन्द्रि  
तः ॥ श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥ २६ ॥

टीका—देवताओंसे आकर ब्रह्मा बोलेकि विषम अन्नको सम मत करो विष-  
मका सम करना अनुचित है फिर उन दोनोमें क्या विशेष है यह अपेक्षा हो-  
नेपर वेही बोले कि दान देनेवाले वार्धुषिकका अन्न श्रद्धासे पवित्र होता है औ-  
र कृपणका अन्न श्रद्धा न होनेके कारण हत कहिये दूषित तथा अधम होता  
है ॥ २५ ॥ वेदीके मध्यमें जो यज्ञ आदि कर्मकिया जाता है उसको इस कहतेहैं  
उस्से अन्य तलाव कुआ प्याऊ वाग आदिको पूत कहते हैं इन दोनो कर्मोंको स-  
दा आलस्य रहित हो फलकी इच्छा छोड़ श्रद्धासे करै जिस्से न्यायसे इकठ्ठे  
किये हुए धनसे श्रद्धापूर्वक क्रियेगये वे दोनोकर्म अक्षय मोक्षरूप फलके  
द देनेवाले होते हैं ॥ २६ ॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ॥ परितुष्टेन भावेन पात्रं  
मासाद्यं शक्तितः ॥ २७ ॥ यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूय  
या ॥ उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥२८॥

टीका—विद्या तथा तपोयुक्त ब्राह्मणको प्राप्त होकै ऐष्टिक पौर्तिक कहिये  
अंतर्वेदि बहिर्वेदि दान धर्मको परितोषनाम अंतःकरणके धर्मसे शक्तिके अनुसार  
करै ॥२७॥ याचना कियेगये ईषारहित पुरुष करिकै थोडाभी शक्तिके अनुसार

ना चाहिये जिसे सदा देनेवालेको कभी न कभी ऐसाभी पात्र मिलजायगा जो नरकमें डारतेवाले सब पापसे छुडादेगा ॥ २८ ॥

वारिदस्त्वृत्तिर्माप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ तिलप्रदः प्रजामिष्टां दी  
पदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २९ ॥ भूमिदो भूमिर्माप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ॥  
गृहदोऽङ्ग्याणि वैश्यानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥

टीका—जलका देनेवाला क्षुधापिपासा दूरि होनेसे तृप्तिको प्राप्त होता है और अन्नका देनेवाला अक्षय सुखको और तिलका देनेवाला चाही हुई संततिको और दीपका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ भूमिका देनेवाला भूमिको और सुवर्णका देनेवाला बडी आयुको और धरका देनेवाला बहुत अच्छे घरोंको और रूपेका देनेवाला संपूर्ण जनोके नेत्रोंका मनोहर रूपको प्राप्त होता है ॥ २३० ॥

वासोदश्वन्द्रसालोक्यमर्शिसालोक्यमश्वदः ॥ अनडुहः श्रियं पुष्टां  
गोदो ब्रध्नस्य विष्टंपम् ॥ ३१ ॥ यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभं  
यप्रदः ॥ धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसाष्टिताम् ॥ ३२ ॥

टीका—वसोका देनेवाला चंद्रके समान लोकोंको प्राप्त होता है चंद्रलोकमें चंद्रके समान विभूति बसती है और घोडेका देनेवाला अश्विनीकुमारके लोकको और बलवान् बैलका देनेवाला बहुतसी लक्ष्मीको और गौका देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ रथआदि वाहनोंका तथा शय्याका देनेवाला स्त्रीको और अभयका देनेवाला अर्थात् प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला प्रभुताको और धान्य कहिये धान जव उडद मूग आदिका देनेवाला बहुत कालतक रहनेवाले सुखको और ब्रह्म जो वेद है उसका देनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला तथा व्याख्यान करनेवाला ब्रह्मकी साष्टिता कहिये समान गतिभावको अर्थात् उसकी तुल्यताको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥ वार्यन्नगोमहीवासस्ति  
लकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ ३३ ॥ येनयेन तु भावेन यैर्द्वंद्वानं प्रयच्छ  
ति ॥ तं तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ ३४ ॥

टीका—जल अन्न धेनु भूमि वस्त्र तिल सुवर्ण और घृत आदि सबोंके दानसे वेदका दान अधिक फलका देनेवाला है ॥ ३३ ॥ जिस जिस भाव कहिये



अभिप्रायसे अर्थात् मुझे स्वर्ग मिले और मुमुक्षुको मोक्षके अभिप्रायसे निष्काम जिस जिस दानको देता है उसी भावसे उपलक्षित उस उस दानके फल द्वारा दूसरे जन्ममें पूजित हो प्राप्त होता है अर्थात् जिस फलके अभिप्रायसे दान देता है वही फल उसको मिलता है ॥ ३४ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददत्यर्चितमेव चात्तावुभौ गच्छंतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ ३५ ॥ न विस्मयेत तपसा वेदिदृष्टा च नानृतम् ॥

नात्ताऽप्यपवेदद्विप्राप्त्र दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—जो दाता सत्कारपूर्वक देता है और जो लेनेवाला उस दानको सत्कारपूर्वक लेता है वे दोनो स्वर्गको जाते हैं और विपर्यय कहिये उलटे होनेमें नरक होता है अर्थात् विनासत्कारके देने लेने वाले दोनो नरक गामी होते हैं ३५ किये हुए चांद्रायण आदि तपमें कैसे मैने यह कठिनकाम करलिया ऐसे आश्चर्य न करै और यज्ञ करिके झूठ न बोलै और ब्राह्मणोंकरि पीडित होनेपर भी उनकी निंदा न करै और गौ आदि देकर मैने यह दिया ऐसे दूसरेसे न कहै ॥ ३६ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥ आर्युर्विप्रापवादेन दा न च परिकीर्तनात् ॥ ३७ ॥ धर्मज्ञैः संचिनुयाद्ब्रह्मीकमिष्व पुत्तिकाः ॥ परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ३८ ॥

टीका—झूठसे यज्ञ निष्फल हो जाता है और आश्चर्यसे तप और ब्राह्मणके अपमानसे आयु और कहनेसे दान निष्फल होजाताहै ॥ ३७ सब जीवोंकी पीडाका त्याग करता हुआ परलोकमें सहायके लिये शक्तिके अनुसार हौलेहौले धर्मको ऐसे बढावै जैसे दींवक बांवीको बढाती है ॥ ३८ ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥ न पुत्रदारा न ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ ३९ ॥ एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोऽनुमुङ्के सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ४० ॥

टीका—जिस्से परलोकमें सहायरूपी कार्यकी सिद्धिके लिये पिता माता पुत्र स्त्री और जातिके नही स्थित होते हैं किंतु एक धर्मही दूसराहो उपकारके लिये स्थित होता है तिस्से पुत्र आदिकेसेभी बडे उपकार करनेवाले धर्मको करै ॥ ३९ ॥ प्राणी एकही उत्पन्नको होता है और एकही मरजाता है और एकही पुण्य तथा पापको भोगता है माता आदिके साथ नही तिस्से मातादिकोंकी अपेक्षासेभी धर्मको न छोडै ॥ ४० ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ॥ विमुखौ बान्धवा  
यान्ति धर्मस्तंमनुंगच्छति ॥४१॥ तस्माद्धर्म सहायार्थं नित्यं संचि  
नुर्याच्छनेः ॥ धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ४२ ॥

टीका—मृत कहिये मन प्राण आदि करि छोडे हुए शरीरको काष्ठ तथा लो-  
हके समान भूमिमे छोडकै भाई बंधु मुह फेरकै चले जाते है मरे हुए जीवके  
साथ नही जाते हैं और धर्म तौ उसके साथ जाता है ॥ ४१ ॥ जिस कारण  
सहाय करनेवाले धर्मसे दुस्तरतम कहिये कठिनाईसे उतरने योग्य नरक आदि-  
के दुःखको उतर जाता है तिस्से धर्मको सहाय भावसे सदा हौले हौले करै ॥४२॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ॥ परलोकं नयत्याशु भास्व  
न्तं खशरीरिणम् ॥ ४३ ॥ उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सह ॥  
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधर्मधर्मास्त्यजेत् ॥४४॥

टीका—धर्ममें लगे हुए पुरुषको दैवयोगसे पाप हो जानेपर प्राजापत्य आ-  
दि तपरूप प्रायश्चित्तसे पापके नश होनेपर प्रकाशमान उस पुरुषको धर्मही शी-  
घ्र स्वर्ग आदि परलोकको पहुँचाता है खशरीरण कहिये ब्रह्मस्वरूप यद्यपि लिं-  
ग शरीरमें बैल हुआ जीवही जाता है तिसपरभी ब्रह्मका अंश होनेसे ब्रह्मस्व-  
रूपत्व हो सकता है जो धर्मही परलोकको ले जाता है तौ धर्मको क्रूर न अ-  
च्छी रीतिसे पढे हुए वेद और न नात्राप्रकारके पढे हुए शास्त्र वहां जाते है ज-  
हां एकधर्म इसके साथ जाता है ॥४३॥ कुलकी उन्नति चाहनेवाला पुरुष विद्या  
आचार जन्म आदिसे उत्कृष्ट पुरुषोंके साथ सदा कन्यादान आदि संबंधों करै  
और हीन संबंधोंके छोडदे और जो उत्तम न मिलै तौ अपनी बराबरीमें करै ॥४४॥

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनांहीनांश्च वर्जयन् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामे  
ति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥४५॥ दृढकारी मृदुदान्तः क्रूराचारैरसं  
वसन् ॥ अहिंसो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथार्द्रतः ॥ ४६ ॥

टीका—उत्तमोंके साथ संबंध करता हुआ और हीनोंको छोडता हुआ ब्रा-  
ह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है और उलटे आचारसे शूद्रताको प्राप्त होता है ॥४५॥  
दृढकारी कहिये आरम्भ कियेका पूराकरनेवाला और मृदु कहिये कठोर नही  
और दांत कहिये शीतघाम आदिके दृढका सहनेवाला पुरुष क्रूर आचारवाले  
पुरुषोंके साथ मेलको छोडता हुआ पराई हिंसासे निवृत्त और वैसाही व्रत क-

रनेवाला दम कहिये इंद्रियोंके संयमसे तथा दानसे स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ४६॥

एंधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं चर्यत् ॥ सर्वतः प्रतिगृण्हीयान्मध्व  
थाभयदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥ आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचो  
दिताम् ॥ मेने प्रजापतिर्याह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४८ ॥

टीका—काष्ठ जल फल मूल मधु और विनामागा हुआ अन्न कुलटा पाष-  
ण्डी और पतित आदिकोंको छोड़. सर्वतः कहिये शूद्र आदिकोंसेभी कच्चाही  
ग्रहण करै और अपनी रक्षारूप अभयको चांडालादिकोंसेभी अंगीकार करै ॥  
॥ ४७ ॥ देनेके स्थानमें लाईगई और आगे रखीगई और लेनेवाले करि आप  
तथा दूसरेके मुहसे पहलेनही मागीगई और देनेवालेने भी पहले नही कहा कि  
मैं तुमको देता हों ऐसी सुवर्ण आदिरूप भिक्षाको सिद्ध अन्नको नही पतित आ-  
दिकोंको छोड़ पाप करनेवालेसेभी लेनेयोग्य ब्रह्माने कही है ॥ ४८ ॥

नां श्रान्ति पितरस्तस्यै दश वर्षाणि पञ्च च ॥ न च हव्यं वहत्यग्निं  
यस्तामभ्यवमन्यते ॥ ४९ ॥ शय्यां गृहोन्कुशाङ्गन्धानर्पः पुष्पं  
मणीन्दधि ॥ धाना मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत् ५०

टीका—उस पुरुष करि श्राद्धमें दिये हुए कव्यको पितर पंद्रह वर्षोंतक नही  
खाते हैं और यज्ञोंमें उस करिके दिये हुए पुरोडाश आदि हव्यको अग्निदेवता-  
ओंके लिये नही पहुंचाता है जो उस भिक्षाको अंगीकार नही करता है ॥ ४९ ॥  
शय्या घर कुश और गंध कहिये गंधयुक्त कपूर आदि और जल फूल मणि दही  
लधा धान कहिये भूँजे हुए जव और चामल मछली दूध मांस और शाक  
इन वस्तुओंके लेनेमें निषेध न करै ॥ ५० ॥

गुरुभृत्यांश्चोजिहीर्षन्नचिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृण्ही  
यान्न तु तृप्येत्स्वयं तंतः ॥ ५१ ॥ गुरुषु त्वभ्यतीतिषु विना वा तै  
र्गृहे वसन् ॥ आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृण्हीयात्साधुतः संदा ॥ ५२ ॥

टीका—क्षुधासे पीडित माता पिता आदि गुरुओंको और स्त्री आदि सेवकों-  
को उस्से वचानेके लिये पतित आदिकोंको छोड़ि सर्वतः कहिये शूद्र आदि असा  
धुओंसेभी ग्रहण करै परंतु उसको आप न खाय ॥ ५१ ॥ माता पिता आदिके म  
रनेपर अथवा उनके जीवते हुए उनसे पृथक् घरमें वसता हुआ अपनी जीविका-  
की इच्छासे सदा सज्जनोसे भिक्षाको ग्रहण करै ॥ ५२ ॥

आधिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ॥ एते शूद्रेषु भोज्या  
 न्नार्थश्चात्मनं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं  
 च चिकीर्षितम् ॥ यथा चोपचरेदे न तथात्मनं निवेदयेत् ॥ ५४ ॥

टीका—आदिक कहिये खेती करनेवाला और जो जिसकी खेती करता है वह उसका भोज्यान्न है ऐसेही अपने कुलका मित्र और जो जिसका गोपाल है और जो जिसका दास है और जो जिसका नाई है काम करता है और जो मैं दुर्गतिमें हौं तुम्हारी सेवाकरता हुआ तुम्हारेही समीप बसताहों ऐसे कहकह कर अपना निवेदन करै ऐसा शूद्र उसका भोज्यान्न है ॥ ५३ ॥ शूद्रको जैसे अपना निवेदन करना चाहिये सो कहते हैं इस शूद्रका कुलशील आदिसे जैसा इसका आत्मा कहिये स्वरूपहै और इसको जो काम करना वांछित है और जैसे इसको सेवा करनी है उस प्रकार आपको कहै ॥ ५४ ॥

योऽन्यथासन्तमात्मनमन्यथा सत्सु भाषते ॥ सर्पापकृतमो लोके  
 स्तेनआत्मापहारकः ॥ ५५ ॥ वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वा  
 ग्विनिःमृताः ॥ तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं सं सर्वस्तेयकुर्वरः ॥ ५६ ॥

टीका—जो कोई कुल आदिमें और है और आपको औरही सज्जनोंमें कहताहै वह लोकमें बडाही पापी है और आपका चुरानेवाला चोर है और चोर दूसरी वस्तुओंको चुराताहै यह तौ सबमें प्रधान आपहीको चुराता है ॥ ५५ ॥ सब अर्थशब्दोहीमें वाच्यभावसे नियतहै और शब्दोका मूल वाणी है क्योंकि सबवातैं शब्दोहीसे जान कर कीजातीहैं इस्से वाणीसे निकले कहे जाते है इस्से जो उस वाणीको चुराताहै अर्थात् अन्यथा कहताहै वह मनुष्य सब भांति चोरी करनेवाला होताहै ॥ ५६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गर्त्वानृण्यं यथाविधि ॥ पुत्रे सर्वसमासज्य वंसे  
 न्मार्ध्यस्थमाश्रितः ॥ ५७ ॥ एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमा  
 त्मनः ॥ एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥ ५८ ॥

टीका—गृहस्थहीका यह संन्यास प्रकार कहते हैं वेद पढनेसे महर्षियोंका और पुत्रके उत्पन्न करनेसे पितरोंका और यज्ञसे देवताओंका ऋण शास्त्रके अनुसार दूर करि सब कुटुंबके भारको योग्य पुत्रमें स्थापित करि मध्यस्थताका आश्रय ले पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोडि ब्रह्मबुद्धिसे

सर्वत्र समदृष्टिहो घरहीमें रहै ॥५७॥ कामके कर्मोंका और धनके जोडनेका त्याग करि पुत्र करि कियी हुई जीविकासे शरीर निर्वाह करता हुआ अकेला एकान्त स्थानमें अपने हितकारी वेदान्तमें कहे हुए जीवके ब्रह्मभावका सदा ध्यान करै जिस्से उसका ध्यान करता हुआ ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप उत्कृष्ट श्रेयको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

एषोदितां गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ॥ स्नातकं व्रतकल्प  
श्च संत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ ५९ ॥ अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदंशा  
स्त्रवित् ॥ व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीर्यते ॥ २६० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

टीका—यह ऋत आदि वृत्ति गृहस्थ ब्राह्मणकी शाश्वती कहिये नित्य कही गई आपत्तिमें तौ अनित्य कहेंगे और सतोगुणका बढानेवाला अच्छा स्नातकके व्रतका कल्प कहिये विधि कहा गया ॥ ५९ ॥ इस शास्त्रमें कहे हुए आचारसे वेदका वेत्ता ब्राह्मण नित्यकर्मसे क्षीण पापहो ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे ब्रह्मही लोक हुआ उसमें लीन हो सबसे अधिक महिमाको प्राप्त होताहै ॥ २६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मन्तनुजपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविष्टतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् । इदंमूर्चुर्महात्मान  
मर्नलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥ एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठता  
म् । कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

टीका—ऋषियोंने स्नातकके कहे हुए धर्मोंको सुनकर महात्मा और परमार्थमें तत्पर और अग्निसे उत्पन्न ऐसे भृगुजीसे वचन बोले यद्यपि पहले अध्यायमें दश प्रजापतियोंमें भृगुनारदमें वच इस वचनसे भृगुकीभी सृष्टि मनुहीसे कही तिसपरभी कल्पके भेदसे अग्निसे उत्पन्न कहे जाते हैं इसमें श्रुति प्रमाणहै जैसे तस्ययद्रेतसः प्रथममुददीप्यततदसावादित्योऽभवद्यद्वितीयमांसीचभृगुरितिइतीसे यह व्युत्पत्ति कीगई कि भ्रष्टात्रेतसः उत्पन्नत्वाद्भृगुः अर्थात् गिरे हुए वीर्यसे उ

त्पन्न होनेसे भृगु कहिये ॥ १ ॥ ऐसे यथोक्त अपने धर्मके करनेवाले और श्रुति तथा शास्त्रके ज्ञाननेवाले ब्राह्मणोंकी वेदमें कही हुई आयुसे पहले कैसे मृत्यु होती है क्योंकि आयुके कम होनेका कारण जो अधर्म है उसका अभाव है संपूर्ण संदेहोंके दूर करनेमें समर्थ होनेसे प्रभो यह संबोधन दिया ॥ २ ॥

संतांनुवाचं धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ॥ श्रूयतां येन दोषेर्ण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ३ ॥ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥ आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

टीका—वे मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगु जिस दोषसे थोड़े कालमें मृत्यु ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा करता है उस दोषको सुनिये इस भांति उन महर्षियोंसे बोलें ॥ ३ ॥ वेदोंका अभ्यास न करनेसे और अपने आचारके छोड़नेसे और सामर्थ्य होनेपर अवश्य करनेयोग्य कामोंमें नहीं उत्साहरूप आलस्यसे और स्वाने योग्य वस्तुओंके दोषसे मृत्यु ब्राह्मणोंको मारता है ॥ ४ ॥

लशुनं गृजनं चैव पलाण्डुं कर्ककानि च ॥ अभक्ष्याणि द्विजातीनामर्ध्वप्रभवानि च ॥ ५ ॥ लोहितान्वृक्षनिर्यासान्श्च न प्रभवांस्तथा ॥ श्लेष्मं गव्यं च पर्यूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—वेदका अनभ्यास आदि तौ कह चुके अब अन्नके दोष कहते हैं लशुन गृजन प्याज धरतीके फूल और अशुद्धविष्ठा आदिमें उत्पन्न चौलाई आदि ये द्विजातियोंको अभक्ष्य हैं शूद्रोंको नहीं ॥ ५ ॥ लालरंगके वृक्षोंके गोंद और काटनेसे उत्पन्न रस और श्लेष्म कहिये बहुवारकफल और नवीन व्याई हुई गौके दूधकी पेउसी इन सबोंको यत्न सब वर्जित करै ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावं पार्यसापूपमेव च ॥ अनुपाकृतमांसानि देवांत्रानि हवींषि च ॥ ७ ॥ अनिर्दशायाम् गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ॥ आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पर्यः ॥ ८ ॥

टीका—वृथा कर कहिये देवताके निमित्त नहीं केवल अपने लिये कृसर कहिये तिल चावल मिलाकै किया हुआ भात और संयाव कहिये घी दूध गुड और गहूके चूनसे षनी लपसी और दूध तथा चावलोंकी खीर और पुआ वृथा पक इन सबोंको वर्जित करै और यज्ञ आदिमें जो अभिमंत्रित नहीं है ऐसे पशुका मांस और देवताओंके लिये किये अन्नोंको नैवेद्य लगानेके पहले और हवींषि कहि-

ये पुरोडास आदि होमसे पहले वर्जित करै ॥ ७ ॥ दशदिनके भीतर व्याई हुई गौका दूध गौके कहनेसे जिनका दूध पिया जाताहै वे सब पशु ज्ञानने चाहिये तिससे बकरी और भैंसकाभी दूधव्यानेसे दसदिनतक वर्जितहै तथा ऊंडका और एक खुरवाले घोडा आदिका और भेडका और संधिनी कहिये उठीहुई गौका दूध न पीवै और विवत्सा कहिये जिसका बछरा मरिगयाहै ऐसी गौका और जिसका बछरा पौस नहीं है उसकाभी न पीवै और वच्चाके मरनेपर बकरी तथा भैंसका मना नहीं है ॥ ८ ॥

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ॥ स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्या  
नि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥ ९ ॥ दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च द  
धिसंभवम् ॥ यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

टीका—भैंसको छोडकै हाथी आदि सब जंगली पशुओंका दूध और स्त्रीका दूध और सशुक्त वर्जितहै शुक्त उसको कहते हैं जो स्वभावसे मीठा आदिरसका लवलेशसे जल आदिके योग्यसे खट्टे हो जाते हैं ॥९॥ शुक्तोमे दहीभक्ष्य कहिये खानेयोग्यहै और दहीसे उत्पन्न सब मठाआदि भक्ष्यहैं शुभ कहिये अच्छे पुष्प मूल फल तथा जलसे जो संधाने किये जाते हैं वेभी भक्ष्य हैं शुभ इस विशेषणसे यह जाना गया कि जिन वस्तुओंके संधानेमें नशा होता है वे मनेकी गई हैं १०

ऋव्यादाच्छकुनान्सर्वान्स्थानां ग्रामनिवासिनः ॥ अनिर्दिष्टांश्चैकं श  
फांष्टिद्विभं च विवर्जयेत् ॥ ११ ॥ कलविकं प्लवं हं सं चक्राङ्गं ग्रा  
मकुट्टम् ॥ सारस रज्जुवालं च दात्यूहं शुक्रसारिके ॥ १२ ॥

टीका—ऋव्याद कहिये कच्चे मांसके खानेवाले गीध आदि सब पक्षियोंका तथा कबूतर आदि ग्रामके पक्षियोंका और नही कहे हुए एक खुरवाले पशुओंका तथा टटहरी पक्षीका मांस वर्जित करै अर्थात् न खाये ॥ ११ ॥ ग्रामके तथा जंगली चिरोटा तथा प्लवनाम पक्षी हंस चकवा गांवका मुरगा सारस रज्जुवाल पपैया तोता और मैना ये सब पक्षी अभक्ष्यहैं अर्थात् इनका मांस न खाया ॥ १२ ॥

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान् ॥ निमज्जतश्च मत्स्या  
दान् शौ नं वट्टूरमेव च ॥ १३ ॥ बकं चैव बलाकां च कार्कोलं ख  
ज्जरीटकम् ॥ मत्स्यादान्विडराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

टीका—प्रतुद कहि जो चोंचसे फोडकर खाते हैं जैसे कठफोरा आदि और-

जालपाद कहिये जिनके पंजोमें महीनखालका जाल होता है जैसे वत्तक आदि औरको यष्टिकनाम पक्षी और नखविष्कर कहिये जो पंजोसे कुरेदि २ खाते हैं और आज्ञा दिये हुए जंगली कुकुट आदिकोंसे जुदेनाज आदि और जो जलमें डूबक मारके मछलियोंको पकड़ते हैं जैसे महु आदि और सूना जो मारनेका स्थान है उसमें स्थित मांस और बल्लूर कहिये सूखा मांस ये सब वर्जित हैं ॥१३॥ बगला तथा ब्लाका द्रोण काक खंजन और मछलियोंके खानेवाले और भी पक्षियोंसे भिन्न मगर आदि तथा विडूराह कहिये विष्ठा खानेवाले सुअर और सब प्रकारकी मछलियोंको वर्जित करै अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १४ ॥

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसं उच्यते ॥ मर्त्यादः सर्वमांसं  
स्तस्मान्मर्त्यान्विवर्जयेत् ॥ १५ ॥ पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ  
हव्यकव्ययोः ॥ राजीर्वान्सिहतुण्डंश्च शल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

टीका—जो जिसके मांसको खाता है वह उसके मांसका खानेवाला कहा जाता है जैसे विलाव भूषिकका खानेवाला कहाता है ऐसेही मर्त्याद कहनेसे वह सब प्रकारके मांसका खानेवाला कहनेयोग्य है तिससे मछलियोंको न खाय ॥ ॥ १५ ॥ पठीन मछली और रोहू मछली आद्य कहिये खानेयोग्य कही हैं और हव्यकव्यमे नियुक्त हैं और आगे कहे हुए लक्षणोंकरि युक्त राजीव सिंह-तुंड और शल्कसमेत सब आद्य कहिये भक्षण करने योग्य हैं अर्थात् ये सब हव्यकव्यके विनाभी खाने योग्य हैं ॥ १६ ॥

न भक्ष्येदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥ भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टां  
न सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥ श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्म  
शशांस्तथा ॥ भक्ष्यान्पञ्चखेष्वहुरनुष्टांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

टीका—जो बहुधा अकेले विचरते हैं जैसे सर्प आदि उनको न खाय और नाम तथा जातिके भेदसे जिनको नहीं जानते हैं ऐसे मृगों और पक्षियोंको न खाय और भक्ष्यत्व करिके कहे हुए सब पंचनखों अर्थात् वानर आदिको न खाय ॥ १७ ॥ श्वाविध कहि सेधानाम जीवभेद और शल्यक कहिये ऐसेही और गोह तथा गैडा कछुआ और शशा इनको पंच नखोंमें मनु आदि भक्ष्य कहते हैं और एक और दांतोकी पंक्तिवालोंमें ऊटको वर्जित करते है ॥ १८ ॥

छत्राकं विडूरोहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् । पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मर्त्या



जग्ध्वा पतते द्विजैः ॥ १९ ॥ अमृत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं  
चरेत् ॥ यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहं ॥ २० ॥

टीका—धरतीका फूल विद्याखानेवाला सुअर लहसन गांवका मुरगा प्या-  
ज गाजर इनमें किसीको जानकै खाय गौ द्विजाति पतित होय तिस पीछे प-  
तितका प्रायश्चित्त करै ॥ १९ ॥ इन छत्राक आदि छः चीजोंको जानि वृद्धि खाय-  
कै ग्यारहें अध्यायमें कहे हुए सात दिनोमें होने योग्य कृच्छ्रसांतपन नाम  
अथवा यति चांद्रायण करै और इनसे भिन्न छाल वृक्षोंके गोद आदिके  
खानेमें दिनरात्रिका उपवास करै ॥ २० ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ अज्ञातभुक्तशुद्धिर्चथ  
ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वर्ध्याः प्रशस्ता मृगप  
क्षिणः ॥ भृत्यानां चैवं वृत्त्यर्थमर्गस्त्यो ह्यचरत्पुरा ॥ २२ ॥

टीका—द्विजाति बिनाजाने खाये हुएको शुद्धिके लिये एकवर्षमें एकभी कृ-  
च्छ्रप्राजापत्यनाम करै और फिर जानें हुए अभक्ष्यभक्षण दोषकी शुद्धिके लिये  
जो कहाहै उसी प्रायश्चित्तको करै ॥ २१ ॥ ब्राह्मण आदिको करिकै यज्ञके लिये  
प्रशस्त कहिये शास्त्रमें कहे हुए मृग तथा पक्षी मारनेयोग्य हैं और अवश्य पाल-  
नेयोग्य भृत्यो तथा वृद्धमातापिता आदि पोषणके लिये करै ॥ २२ ॥

वंभूर्बुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ॥ पुराणेष्वपि यज्ञेषु  
ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥ यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमर्गर्हि  
तम् ॥ तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्रवेत् ॥ २४ ॥

टीका—जिस्से पुराने यज्ञोंमें और ऋषियोंके यज्ञोंमें भक्ष्य कहिये खानेयोग्य  
मृगों और पक्षियोंके मांसका पुरोडाश कहिये यज्ञ भाग कहाहै ॥ २३ ॥ जो कु-  
छ भोज्यवस्तु घी तेल आदि स्नेहसे प्रकी हुई लड्डू आदि तथा खीर आदि भो-  
ज्य वस्तु किसी वस्तुके पडनेसे बिगडी न होय और बासीभी होय तौ उस-  
को घी तेल आदि मिलाकै खाय तथा पुरोडाश आदि बासीभी भोजनकालमें  
स्नेहसंयोगशून्यभी भोजन करै ॥ २४ ॥

चिरस्थितमपि त्वीद्यमस्नेहात्तं द्विजातिभिः ॥ यवगोधूमजं सर्वं प  
यसश्चैवं विक्रिया ॥ २५ ॥ एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशे  
षतः ॥ मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥

टीका—अनेक रात्रिके बसेभी जब गेहूं और दूधके पदार्थोंको चिकनाई मिलानेके बिनाभी द्विजाति भक्षण करै ॥ २५ ॥ द्विजातियोंका यह संपूर्ण भक्ष्य अभक्ष्य कहा इस पीछे मांसके खाने औ छोडनेकी विधि कहोगा ॥ २६ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ॥ यथाविधि नियुक्तं  
स्तुं प्राणानामेवं चान्त्यये ॥ २७ ॥ प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिर  
कल्पयत् ॥ स्थावरं जङ्गमं चैवं सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

टीका—प्रोक्षणनाम संस्कारसे शुद्ध किये हुये औ यज्ञसे बचे हुए मांसको ब्राह्मण भक्षण करै और जौ ब्राह्मणोंकी मांस खानेकी इच्छा होय तौभी नियमही से एकवार खाय तथा श्राद्धमें और मधुपर्कमें गृह्यवचनके अनुसार नियमसे मांस खाना चाहिये और दूसरा आहार न मिलनेसे प्राणोंका नाश होता होय और रोगका कारण होय तौ नियमसे मांस खाय ॥ २७ ॥ प्रजापतिने यह सब प्राणका अन्न बनाया तौ कौनहै सो कहतें हैं जैसे जंगम पशु आदि और स्थावर धान जव आदि यह सब उसको भोजन है तिसे प्राणोंकी रक्षाके लिये जीव मांसको खाय ॥ २८ ॥

चरणामन्नमचरां दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ॥ अहस्ताश्च सहस्तानां शू  
राणां चैवं भीरवः ॥ २९ ॥ नात्ता दुर्ष्यत्यर्द्धन्नार्थान्प्राणिनोऽहन्यह  
न्यपि ॥ धात्रैव सृष्ट्या ह्याद्यैश्च प्राणिनोऽत्तारं एव च ॥ ३० ॥

टीका—चर कहिये चलनेवाले जो हरिण आदि हैं उनके अचर कहिये तृण घास आदि भक्ष्यहैं और ढाढवाले ब्राह्म आदिकोंके बिना ढाढवाले हरिण आदि भक्ष्यहैं और हाथोंवाले जो मनुष्य आदि हैं उनके बिना हाथोंकी मछली आदि भक्ष्यहैं और शूर जौ सिंह आदि हैं उनको भीरु कहिये डरपोकने हाथी आदि भक्ष्य कहिये खानेयोग्य है ॥ २९ ॥ खानेयोग्य प्राणियोंको प्रतिदिन खाता हुआभी खानेवाला दोषयुक्त नहीं होताहै जिसे विघाताहीने खानेयोग्य और खानेवाले बनाये इन कहे हुए लीनि श्लोकोंमें प्राणोंके नाशका संभव होनेपर मांस खानेकी प्रशंसाकी है ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष देवो विधिः स्मृतः ॥ अतोऽन्यथां प्रवृ  
त्तिस्तुं राक्षसोविधिरुच्यते ॥ ३१ ॥ क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परो  
पकृतमेवं वा ॥ देवान्पितृन्तृचर्यित्वा खादन्मांसं न दुर्ष्यति ॥ ३२ ॥

टीका—यज्ञके लिये उसके अंगभूत मांसका खाना यह दैवविधि कही है और इस्से अन्यथा अर्थात् विना यज्ञके मांस खाना राक्षसविधि कही जाती है ॥ ३१ ॥ मोल लेकर अथवा आप उत्पन्न करिके अथवा और किसी करि लायके दिये हुए मांसको देवता तथा पितरोंको देकर शेषको खाता हुआ पुरुष पापको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदिद्विजः ॥ जग्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्यै तैरद्यतेऽवशः ॥ ३३ ॥ न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ॥ यादृशं भवति प्रेत्यै वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

टीका—मांस खानेकी विधिका जाननेवाला द्विज विना आपत्तिकालके देवादिकी पूजन विधिके विना मांस न खाय जिस्से विनाविधिके मांसको खायके जिनका मांस वह खाताहै उन करिके परलोकमें वह परवश होके उन पशुओं करके खाया जाताहै ॥ ३३ ॥ धनके लिये मृगोंको मार कर जीविका करनेवाले वहेलिया आदिकोंको वैसा प्राप नहीं होताहै जैसा देवता तथा पितरोंके विना दिये हुए मांसके खानेवालेको परलोकमें होताहै ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नास्ति मानवः ॥ सं प्रेत्यं पशुतां याति संभवंनेकविज्ञातिम् ॥ ३५ ॥ असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन ॥ मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

टीका—श्राद्धमें तथा मधुपर्कमें शास्त्रके अनुसार नियुक्त हो जो पुरुष मांसको नहीं खाताहै वह मरके इक्कीस जन्मोंतक पशु होताहै ॥ ३५ ॥ वेदमें कहे हुए मंत्रोंसे प्रोक्षण आदि संस्कार न किये हुए पशुओंको ब्राह्मण आदि कभी न खाय और शाश्वत कहिये प्रवाहकी अनादितासे नित्य जो पशुयाग आदि विधि है तिसमें स्थित संस्कार किये हुए मांसोंको खाय ॥ ३६ ॥

कुर्याद्घृतपशुं संगे कुर्यात्पिष्टपशुं तथो ॥ न त्वेवं तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥ ३७ ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो हं मारणम् ॥ वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्यै जन्मनिजन्मनि ॥ ३८ ॥

टीका—जो बहुतही खानेकी इच्छा होय तौ घीका अथवा चूनका पशु बनाके खाय और देवताओंके निमित्त विना कभी पशुओंके मारनेकी इच्छा न करे ३७

देवताके उद्देशविना अपने लिये जो पशुओंको मारताहै वह वृथा पशु मारने-  
वाला मरकै जितने पशुके रोमा है उतनेही जन्मोंमें मारा जाता है तिस्से पशु-  
को वृथा न मारै ॥ ३८ ॥

**यज्ञाथ पशवः**

**स्माद्यज्ञे वधो**

**णस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राशुर्वस्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥**

टीका—यज्ञके लिये पशुके मारनेमें दोष नहीं है यह कहते हैं यज्ञकी सिद्धि  
के लिये प्रजापतिने आपही पशु उत्पन्न किये और यज्ञ कहिये अग्निमें डाली हुई  
आहुति इस सब जगतकी वृद्धिके लिये होती है तिस्से यज्ञमें जो वध हैं वह अवध  
है अर्थात् वध नहीं है ॥ ३९ ॥ औषधी-कहिये धान जव आदि और पशु कहिये-  
छाग आदि और वृक्ष यज्ञस्तंभ आदिके लिये और तिर्यच कहिये कछुआ आदि  
और पक्षि चिरोटा आदि यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुए फिरि दूसरा जन्म होने  
पर ऊची जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

**मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥ अत्रैव पशुवो हिंस्र्या नान्यं**  
**त्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥ एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थवि**  
**द्विजः ॥ आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥**

टीका—समांसो मधुपर्कः अर्थात् मांस समेत मधुपर्क होताहै इस वचनसे म-  
धुपर्कमें और यज्ञकर्ममें और ज्योतिष्टोम आदि पित्र्य तथा दैवकर्ममें पशु मार-  
नेयोग्य हैं अन्यत्र नहीं मनुजीने यह कहा ॥ ४१ ॥ इन मधुपर्क आदि पदार्थों  
में पशुओंको मारता हुआ वेदके तत्त्व अर्थका जाननेवाला द्विज आपको त-  
था पशुको उत्तमागति जो स्वर्ग आदिके भोग योग्य अद्भुत देह तथा देश-  
में पहुचाय देता है ॥ ४२ ॥

**गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ॥ नान्वेदविहितां हिंसा**  
**मापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥ यां वेदविहितां हिंसां नियताऽस्मि**  
**श्वराचरे ॥ अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्वभौ ॥ ४४ ॥**

टीका—गृहस्थाश्रममें तथा ब्रह्मचर्य आश्रममें और वानप्रस्थ आश्रममें वस-  
ता हुआ प्रशस्त आत्मावाला द्विज अशास्त्रीय कहिये शास्त्रमें नहीं कही हुई हिं-  
साको न करै ॥ ४३ ॥ वेदमें कही हुई कर्मविशेषमें तथा देशकाल आदिमें निय-

त हिंसाको इस स्थावर जंगमरूप जगतमें अहिंसा जनै जिस्से और प्रमाणों-  
काभी धर्म वेदहीसे सब निकलहै ॥ ४४ ॥

ये हिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ॥ स जीवंश्च मृ-  
तंश्च वै न किंचित्सुखमेधते ॥४५॥ यो बन्धनबंधकेशान्प्राणिनां न  
चिकीर्षति ॥ स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

टीका—जो अपने सुखकी इच्छासे हिंसा न करनेवाले जीवोंको मारताहै  
वह इस लोकमें तथा परलोकमें सुख नहीं पाताहै ॥४५॥ जो प्राणियोंके बांध-  
ने तथा मारनेके क्लेशको नहीं किया चाहता है और सबके सुखका चाहनेवाला  
है वह अनंत सुखको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यद्ध्ययति यत्कुंरुते धृतिं वर्धाति यत्र च ॥ तद्वाप्रो<sup>११</sup>त्ययत्नेन  
यो हिनस्ति न किंचन<sup>१२</sup>७नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांससुत्पद्यते  
क्वचित् ॥ न च प्राणिर्वधः स्वर्ग्यस्तस्मां न्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

टीका—धर्म आदि मेरे होय यह जो चितवन करताहै और जो कल्याण क-  
रनेवाले कर्मको करताहै और जिस परमार्थके ध्यान आदिमें धीरजको बांधताहै  
उस सबको सहजहीमें प्राप्त होताहै जो दुःख देनेवाले डांस मच्छड आदिकोंको  
भी नहीं मारताहै ॥ ४७ ॥ प्राणियोंके मारनेविना कही मांस नहीं उत्पन्न हो-  
ताहै और प्राणियोंका मारना स्वर्गका कारण नहीं है किन्तु नरकहीका का-  
रण है तिस्से मांसको छोडदे ॥ ४८ ॥

समुत्पतिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्ते-  
त सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥४९॥ न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा  
पिशाचवत् ॥ स लोके प्रियतमं याति व्याधिभिश्च न पीडयते ॥५०॥

टीका—शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिररूप घिन उपजानेवाली मांस  
की उत्पत्तिको जानि और प्राणियोंके मारने तथा बांधनेको क्रूरकर्म जानि सर्व-  
प्रकारके मांसको अर्थात् कहे हुएभी मांसको न खाय तौ विना कहेका क्या क-  
हनाहै ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कही हुई विधिको छोड पिशाचके समान मांसको  
नहीं खाताहै वह लोकका प्यारा होताहै और रोगोंसेभी नहीं पीडित होताहै ५०

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता ऋयविक्रयी ॥ संस्कर्ता चोपहर्ता च

खादकश्चेति घातकाः ५१ स्वमांसं परमासेन यो वर्धयितुमिच्छति ॥ अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥

टीका—अनुमंता कहिये जिसकी आज्ञा विना मार न सकै और विशसिता जो अंगोंको काटकर जुदा २ करै और ऋयविक्रयी जो मोल ले और बैचै और संस्कर्त्ता जो पाक करै और उपहर्त्ता कहिये परोसनेवाला और खादक कहिये खानेवाला ये सब श्रातक कहिये मारनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ अपने शरीरके मांसको दूसरेके शरीरके मांससे देवता पितरोंकी पूजाके विना जो बढ़ाना चाहताहै उससे और पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥ मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥ फलमूलाशनेमैधुर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ॥ न तत्फलमर्वाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

टीका—जो सौवर्षतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेधसे यजन करताहै और जो जन्मभर मांसको नहीं खाता उन दोनोंके पुण्यका फल स्वर्ग आदिके समान है ॥ ५३ ॥ पवित्र फलमूलोंके खानेसे और वानप्रस्थों करि करि खानेयोग्य तृण धान्य समा आदिके खानेसेही बह फल नहीं मिलताहै जो शास्त्रमें नियम किये हुए मांसके न खानेवालेको मिलताहै ॥ ५४ ॥

मांसभक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहाद्वयहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवृद्दन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥ न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषां भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

टीका—इस लोकमें जिसके जिसके मांसको मैं खाताहूँ परलोकमें वह मुझको खायगा पंडितोंने मांसशब्दका यही अर्थ किया है ॥ ५५ ॥ मांस और मदिरा इनके भक्षणमें दोष नहीं है जिसे खाने पीने और मैथुन आदिमें प्रवृत्ति यह प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म है और छोड़नेका तौ बड़ा फलहै अब इसका अभिप्राय यह है कि मांसभक्षण मदिरापान मैथुन इन तीनोंके विधान करनेवाले जो वाक्य हैं वे प्रवृत्ति करानेवाले नहीं हैं क्योंकि अप्रवृत्ति तौ इच्छाहीसे होती है तब ये सब वाक्य व्यर्थ होकै यज्ञमें मांस भक्षण विवाहमें मैथुन और श्रोत्रामणी यज्ञमें मद्य पीना इन सबोंके करनेसे दोषका न होना सूचित करते हैं और उन सब वचनोंका अभिप्राय इन तीनोंके न करनेमेंही है ॥ ५६ ॥

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ॥ चतुर्णामपि वर्णानां  
यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥ दन्तजातेऽनुजाते च कूर्तचूडे च सं  
स्थिते ॥ अशुद्धा वाग्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ ५८ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंकी प्रेतशुद्धि कहिये पिता आदिके मरनेपर  
पुत्र आदिकी शुद्धिको ब्राह्मण आदिके क्रमसे जो जिसवर्णका है उसकी  
और द्रव्य जो तैजस अर्थात् धातु आदिकी शुद्धिको आगे कहेंगे ॥ ५७ ॥ दां-  
तोके उत्पन्न होनेपर और दांत होनेके पीछे और मुंडन तथा यज्ञोपवीतके होने  
पर जो लडका मरजाय तौ सर्पिड और समानोदक वाग्धव अशुद्ध होते हैं तैसे  
लडका लडकीके उत्पन्न होनेमें अशुद्ध होते हैं यह कहते हैं ॥ ५८ ॥

दशाहं शार्वमाशौचं सपिण्डेषु विधीर्यते ॥ अर्वाक् संचर्यनाद-  
स्थानां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥ सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे वि-  
निवर्तते ॥ समानोदकं भावस्तु जन्मनामोरवेदने ॥ ६० ॥

टीका—सात पुरुषोंतक सपिण्डता कहेंगे सपिण्डोंमें मरनेका आशौच कहिये  
सूतक ब्राह्मणोंमें दशराति दिनका कहाहै और अस्थिसंस्वयनके पीछे तीन दिन-  
रातिका अथवा एक दिनरातिका होताहै इसकी व्यवस्था यहहै कि वेदके मं-  
त्र ब्राह्मण दोनो भागोंके जाननेवाला होय और अग्निहोत्र करता होय उसको  
एक दिनरातिका तथा जो केवल वेदहीको पढा होय और अग्निहोत्र न करता  
होय उसको तीन रातिदिनतक और जो वेद पढना तथा अग्निहोत्र दोनोसें  
रहितहै परंतु स्मृतिमें कही हुई अग्निसे युक्तहै तौ उसको चारि दिनरातितक  
और सब गुणोंसेही न होय तौ उसको दश दिनरातितक आशौच होताहै ॥ ५९ ॥  
सातमें पुरुषमें सपिण्डता दूर होजाती है और समानोदक भाव तौ फिर  
हमारे कुलमें अमुक नामका हुआ इस प्रकार ज्ञान और नाम दोनोके ज्ञान  
न होनेमें दूर होताहै ॥ ६० ॥

यथेदं शार्वमाशौचं सपिण्डेषु विधीर्यते ॥ जन्नेऽप्येवमेव स्यात्  
त्रिपुंशु शुद्धिं मिच्छताम् ॥ ६१ ॥ सर्वेषां शार्वमाशौचं मातापि  
त्रोस्तु सूतकम् ॥ सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पितां शुचिः ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे यह दशदिन आदिका आशौच मरनेमें कहाहै ऐसेही अच्छी भांति

शुद्धि चाहनेवाले सपिंडोके जन्ममेंभी दशही दिनका सूतक होता है ॥ ६१ ॥ मरनेके कारण नहीं छूनेरूप आशौच सब सपिंडोको समान होता है और जन्मके कारणसे तौ मातापिताहीको दश दिनतक न छूनेरूप सूतक होता है उसमेंभी यह विशेष है कि जनननिमित्त सूतक माताको दशदिन तक होता है पिता तौ स्नानसे छूनेयोग्य होता है ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्धयति ॥ वैजिकादभिसंबन्धादनुस्नानव्यादघं त्र्यहम् ॥ ६३ ॥ अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ॥ श्वस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहानुदकदारिर्नः ६४ .

टीका—पैथूनके विनाभी कामसे वीर्यस्खलन होने अर्थात् निकलनेमें स्नान करनेसे पुरुष शुद्ध होता है और विना कामके स्वप्न आदिमें मूत्रके समान वीर्यके स्खलित होनेपर स्नानके विनाभी गृहस्थकी शुद्धि होती है और ब्रह्मचारीकी तौ कामकेविनाभी स्वप्नमें स्खलित होनेसे स्नानसे शुद्धि कही है और पहले पतिको छोडकर जिस स्त्रीने दूसरा पति किया है उस स्त्रीमें दूसरे पतिसे संतति उत्पन्न होनेपर पतिको तीनि दिनरातिका आशौच होता है ॥ ६३ ॥ सपिंड तीनि दिनरातिमें शुद्ध होते हैं और जो सपिंड पहले कहे हुए गुणों करि युक्त होय तौ वह एक दिनरातिमें शुद्ध होय वे जो स्नेह आदिसे सूतक छुवै तौ दशही दिनमें शुद्ध होते हैं और समानोदक तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ॥ प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ ६५ ॥ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ॥ रजस्युपरंते सार्ध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

टीका—गुरु कहिये आचार्य आदि असपिंडका दाह करके शिष्यभी प्रेतके लेजानेवाले गुरुके सपिंडोके समान दश दिनरातिमें शुद्ध होता है ६५ तीसरे महीनेसे लग्गाके जितने महीनोंके गर्भका पात होता है उतनेही दिनरातिमें चारोवर्णकी स्त्री शुद्ध होती हैं यह छ महीनेतक जानिये इसके उपरांत अपनी जातिका कहा हुआ शौच उनमें जानिये और रजस्वला स्त्री रजके बंद होनेपर पाचमेंदिन स्नानसे कर्म योग्य होती है और छूनेयोग्य तौ चौथेदिन स्नानकरनेसेही शुद्ध होती है ॥ ६६ ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥ निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥ ऊनद्विर्वाषिकं प्रेतं निदध्युर्वा-



न्धकां बहिः ॥ अलंकृत्यं शुचौ भूर्मावस्थिसंचयनादृते ॥ ६८ ॥

टीका—बिना मुंडन किये हुए बालकोंके मरनेपर सपिंडोकी रातदिनमें शुद्धि होती है औ मुंडन होजानेके पीछे यज्ञोपवीतसे पहले मरनेमें तीनि रात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ६७ ॥ दो वर्षसे कम बिना मुंडन किया हुआ बालक मरे तौ उसको माला आदिसे शोभित करि ग्रामके बाहर लेजाके शुद्ध भूमिमें गाडदे अस्थि संचय न करै ॥ ६८ ॥

नास्यं कायौऽग्निस्कारो न च कायौदकक्रिया ॥ अरण्ये काष्ठ-  
वत्यर्त्ता क्षपेयुर्हमेव च ॥ ६९ ॥ नात्रिर्वर्षस्य कर्तव्या बान्धवै-  
रुदकक्रिया ॥ जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाग्निं वापि कृते सति ॥ ७० ॥

टीका—इस दो वर्षके मरे हुए बालकका न अग्निस्कार करै और न जलदान करै किंतु वनमें काठके समान ढोडके तीनि रातिदिनका आशौच मानै ॥ ६९ ॥ तीनि वर्षसे कम अवस्थाके बालकको उसके सपिंड जलदान न करै और दांत उत्पन्न होनेपर तथा नामकरण होजानेपर जलदान तथा अग्निस्कार करना चाहिये और प्रेतका पिंडश्राद्ध आदि वनिसकै तौ करे क्योंकी करनेसे प्रेतको आनंद होताहै और जो न करै तौ कुछ दोष नहीं है ॥ ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु  
त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥ स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहा-  
च्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ७२

टीका—साथ पढनेवालेके मरनेमें एकदिनका आशौच होताहै और समानोदकोंके पुत्रका जन्म होनेपर तीनिरात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ बिना व्याही हुई वाग्दत्ता कहिये जिनका वातोंसे संबध हुआ है उन लडकियोंके मरनेमें बांधव कहिये पति आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं और विवाह होनेके पीछे मरनेमें पिता माई आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणात्राः स्युर्निर्मज्जेषुश्च ते त्र्यहम् ॥ मांसाशनं च नां  
श्रीयुः श्रीयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥ ७३ ॥ संनिधावेष वै कल्पः श्वां  
शौचस्य कीर्तितः । असन्निधावेषं ज्ञेयो विधिः संबधिबान्धवैः ॥ ७४ ॥

टीका—क्षारलवण कहिये बना हुआ नोनका न खाना तथा नदी आदिमें तीन दिनतक स्नान करना और मांस न खाना तथा जुदे २ भूमिमें सोना चाहिये

॥ ७३ ॥ मृतकके समीप रहनेमें यह शावाशौच कहिये मरणनिमित्तक आशौच कहाहै और समीप न होनेमें संबंधी तथा बांधवोंको जो आगे कहेंगे वह आशौच जानना चाहिये सर्पिडोंको संबंधी कहते है औ समानोदकोंको बांधव कहते है ७४

विगतं तु विदेशस्थशृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य  
तावदेवांशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचि-  
र्भवेत् । संवत्सरे व्यतीति तु स्पृष्ट्वै वापो विशुध्यति ॥ ७६ ॥

टीका—विदेशमें मरे हुएके समाचार दशदिनके भीतर सुननेमें आवै तौ द-  
शदिनमें जितने दिन बाकी रहे होंय उतने दिनतक आशौच मानना चाहिये ॥ ७५ ॥  
दशदिनके उपरांत सुननेमें आवै तौ तीनि दिनराति आशौच जानना और एकवर्ष  
के उपरान्त सुने तौ जलका स्पर्श करिके अर्थात् स्नान करिके शुद्ध होय ॥ ७६ ॥

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ॥ सर्वासा जर्लमाप्त्य  
र्भवंति मानवः ॥ ७७ ॥ बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे  
संस्थिते ॥ सर्वासा जर्लमाप्त्य संद्य एव विशुध्यति ॥ ७८ ॥

टीका—दशदिनके उपरांत जातिका मरना और पुत्रका जन्म सुननेमें आवै  
तौ वस्त्रोंसमेत स्नान करिके शुद्ध होय ॥ ७७ ॥ परदेशमें समानोदक बलकका  
मरना सुनिके वस्त्रोंसमेत स्नान करनेसे उसीसमय शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ॥ तावत्स्यादशुचिर्वि-  
प्रो यावत्तत्स्यादिर्दशम् ॥ ७९ ॥ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये सं-  
स्थिते सति ॥ तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

टीका—एकका जन्म होनेपर दशदिनके भीतर दूसरेका जन्म होय और ए-  
कके मरनेसे दशदिनके भीतर दूसरा मरे तौ पहले आशौचके दूर होनेमें दूसरा  
भी दूर होजाताहै ॥ ७९ ॥ आचार्यके मरनेमें शिष्यको तीनि रातिका आशौ-  
च होताहै और आचार्यके पुत्र तथा स्त्रीके मरनेमें एक दिनरातिका आशौच हो-  
ता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ मातुले पक्षिणी रात्रिं  
शिष्यत्विग्वान्धवेषु च ॥ ८१ ॥ प्रेतै राज्ञि सज्या तिर्यस्य स्याद्वि-  
षये स्थितैः तथा गुरौ ॥ ८२ ॥

टीका—वेदशास्त्रका पढ़नेवाला मरै तौ प्रीतिसे उसके समीप रहनेवालेको अथवा उसके घरमें रहनेवालेको तीनि रात्रिका आशौच होताहै और मामा शिष्य ऋत्विक् तथा बांधवके मरनेमें पक्षिणी अर्थात् पहले और पिछले दिनसमेत रात्रिका आशौच होताहै ॥ ८१ ॥ जिस देशमें ब्राह्मण आदि वसते होय उस देशके राजा अर्थात् अभिषेकयुक्त क्षत्रिय आदिके मरनेमें सज्योति कहिये दिन होय तौ जबतक सूर्य रहैं तबतक और राति होय तौ जबतक तारा रहैं तबतक का आशौच होताहै और श्रोत्रिय मरै तौ तीनिरात्रिका कहाहै रातिमेंभी नही और जो रातिमें मरै तौ रातिहीभरिका यह जानना चाहिये और अंगोंसमेत वेदके पढ़नेवाले तथा गुरुके मरनेपर एकही दिनका आशौच मानना चाहिये ॥ ८२ ॥

शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिर्षः ॥ वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥ न वधयेदघाहानि प्रत्यूहेत्राग्निषु क्रियाः ॥ न च तत्कर्म कुर्वाणः सर्वाभ्योऽप्यंशुचिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

टीका—यज्ञोपवीत किये हुए सापिंडके मरनेमें तथा पूरे दिनमें जन्म होनेपर वेदपाठरहित ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होताहै और क्षत्रिय बारहदिनमें तथा वैश्य पंद्रहदिनमें और शूद्र एक महीनेमें शूद्रके यज्ञोपवीतके स्थानमें विवाह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ आशौचके दिनोंकी न बढ़ावै और उन दिनोंमेंभी श्रौत अग्निहोत्रके होममें बाधा न करै जो असमर्थ होय तौ पुत्रादिकोंसे करावै इसमें कारण कहते हैं कि जिस्से उस अग्निहोत्ररूप कर्मको करता हुआ पुत्र आदि सापिंड अशुद्ध नही होताहै ॥ ८४ ॥

दिवाकीर्तिसुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ॥ शवं तंत्स्पृष्टिनं चैवं स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ८५ ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिर्दर्शने ॥ सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तिं ॥ ८६ ॥

टीका—चांडालको रजस्वलाको ब्रह्महत्यारे आदिको और दशदिनके भीतर प्रसूता स्त्रीको मुर्देको तथा मुर्देझूनेवालेको झूकर स्नानसे शुद्ध होताहै ॥ ८५ ॥ चांडाल आदि अशुद्धके दर्शन होनेपर आद्र तथा देवपूजा आदिको किया चाहता पुरुष स्नान तथा आचमन करि सूर्य जिनका देवता ऐसे उदुत्यं जातवेदसे इत्यादिमंत्रोंको और पावमानी ऋचाओंको शक्तिके अनुसार जपै ॥ ८६ ॥

नारं स्पृष्ट्वास्थिं संस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥ आचम्यैवं तु निः

स्नेहं गोमालम्भ्यां कर्मिर्क्षयं वा ॥ ८७ ॥ आदिष्टी नोदकं कुर्यादात्र  
तस्य समापनात् ॥ समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रैर्वै शुष्यंति ॥ ८८ ॥

टीका—चिकनाई युक्त ममुष्यकी हड्डीको छूके ब्राह्मण आदि स्नानसे शुद्ध होते हैं और स्नेह रहित हड्डीके छू आचमन करिके अथवा गौको छूके अथवा सूर्यका दर्शन करिके शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिपर्यन्त प्रेतोदक अर्थात् पूरक पिंडश्राद्ध आदि प्रेतके कृत्य न करे फिर ब्रह्मचर्यके समाप्त होनेपर प्रेतोदक करिके तीनि रातितक आशौच मानिके शुद्ध होता है ८८

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ आत्मनस्त्यागिनां  
चैवं निवर्तेतोदकक्रियां ॥ ८९ ॥ पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां  
चैव कामतः ॥ गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरांपीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

टीका—अपने धर्मका छोडनेवाला और हीन जातिके पुरुषसे ऊँची जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न तथा बूटे संन्यासका धारण करनेवाला और व्यर्थ कहिये शास्त्रसे मने किये हुए विष आदिसे जानकर मरनेवाला इन सबोंके मरनेमें जलदान न करे ॥ ८९ ॥ वेदसे बाहर गेरुआ कपडे और मूड मुडाना आदि व्रतोंसे पाषण्ड करनेवाली और अपनी इच्छासे जहां तहां फिरनेवाली और गर्भपात तथा पतिका वध करनेवाली और मद्य पीनेवाली द्विजातिकी स्त्रीको इन सबोंके मरनेमें जलदान न करना चाहिये ॥ ९० ॥

आचार्य स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥ निर्हृत्य तु व्रती प्रेतां  
न्न व्रतेन विरुज्यते ॥ ९१ ॥ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ॥  
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

टीका—आचार्य कहिये जो यज्ञोपवीत करिके संपूर्ण शास्त्राओंको पढावै और उपाध्याय जो वेदका एक देश अथवा अंगशिक्षा आदि पढावै पिता माता और गुरु जो एक वेदका अथवा सबवेदोंके एकदेशका व्याख्यान करे इन सबोंकी दाह आदि प्रेतक्रिया करनेसे ब्रह्मचर्यके व्रतका लोप नहीं होता है ९१ मरेहुए शूद्रको पुरके दक्षिणाद्वारमें होकर निकाले और द्विजातियोंको यथायोग्य कहिये युक्तिसे हीनवैश्य क्षत्रियके क्रमसे पश्चिम उत्तर पूर्वके द्वारोंमें होकर निकाले ९२

न राज्ञामर्षदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ॥ ऐन्द्रं स्थानं मुपा  
सीनां ब्रह्मभूता हि ते संदा ॥ ९३ ॥ राज्ञो माहत्मिके स्थाने सर्वः

शौचं विधीयते ॥ प्रजांनां परिरक्षार्थमांसनञ्चात्र कारणम् ॥ ९४ ॥

टीका—राजा व्रती कहिये ब्रह्मचारी चांद्रायण आदि व्रतोंका करनेवाला तथा सत्री कहिये यज्ञ करनेवाला इन तीनोंको सर्पिण्डके मरने आदिमें आशौच दोष नहीं लगताहै क्योंकि राजा तौ इंद्रके स्थानमें स्थित है और ब्रह्मचारी व्रती तथा यज्ञकरनेवाला ये सदा ब्रह्मका स्वरूपहैं ॥ ८३ ॥ राज्यपदमें बैठे हुए राजाकीशी शुद्धि कही है प्रजाओंकी रक्षाके लिये राज्यपदमें बैठनाही आशौच न लगनेका कारणहै ॥ ९४ ॥

डिवाहर्वहतानां च विद्युतां पार्थिवेन च ॥ गोब्राह्मणस्य चैवार्थं यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥ सोमाभ्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्येत्योर्यमस्य च ॥ अर्ष्टानां लोकपालानां वंपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

टीका—जिसमें राजा नहीं है उस युद्धमें जो मारे गये हैं और बिजली अर्थात् वज्रसे जो मारे गये हैं मारनेके योग्य अपराध करनेमें राजा करि जो मारे गये और गौ तथा ब्राह्मणके लिये ये युद्धके विनाभी जलअग्नि तथा व्याघ्र आदि करि मारे गये और जिस पुरोहित आदिकी राजा अपने कामके लिये शुद्धि चाहै उन सबोंकी शीघ्रही शुद्धि होती है ॥ ९५ ॥ चंद्रमा अग्नि सूर्य वायु इंद्र यम कुबेर वरुण इन आठो लोकपालोंके शरीरको राजा धारणकरताहै ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ॥ शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महर्त्स्य च ॥ सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

टीका—राजा ऊपरके श्लोकमें कहे हुए इंद्र आदि लोकपालोंके अंशोंसे युक्त होताहै इसलिये राजाको आशौच नहीं लगताहै कारण यहहै कि मनुष्योंका जो शौच और आशौच है सो लोकपालोंसे उत्पन्न होताहै तथा दूरि होताहै ॥ ९७ ॥ संग्राममें उठे हुए खड्ग आदि शस्त्रोंसे लाठी पत्थर आदिसे नहीं किंतु क्षत्रियधर्मसे सन्मुख मारे गये पुरुषका उसीसमय ज्योतिष्टोमआदियज्ञ समाप्त होताहै अर्थात् यज्ञफलसे वह युक्त होताहै और आशौचभी उसी समय समाप्त होजाताहै यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ९८ ॥

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनार्थुधम् ॥ वैश्यं प्रतोदं रथार्थं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥ एतद्वोऽभिहितं शौचं स-

पिण्डेषु द्विजोत्तमाः ॥ असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधतं ३०० ॥

टीका—आशौचके अंतमें श्राद्ध आदि कृत्य करिके ब्राह्मण दाहिने हाथसे जलको छूकर शुद्ध होताहै और क्षत्रिय हाथी आदि वाहनोंको तथा स्वङ्ग आदि शस्त्रोंको और वैश्य अग्रभागमें लोह लगे हुए बैलोंके हांकनेकी लकड़ीको अथवा जोतेको और शूद्र वांसकी दंडिकाको छूकर शुद्ध होताहै ॥ १९ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो मैंने तुमसे यह आशौच सपिण्डोके मरनेमें कहा, अब असपिण्डोके मरनेमें प्रेत शुद्धिको सुनो ॥ १०० ॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निहृत्यं बन्धुवत् ॥ विशुद्ध्यति त्रिंशत्रे-  
ष मांतुरासांश्च बान्धवान् ॥ १ ॥ यद्यन्नमति तेषां तु दशाहेनैव  
शुद्ध्यति ॥ अनंदन्नमहैव न चेतस्मिन्गृहे वसेत् ॥ २ ॥

टीका—असपिण्ड मरे हुए ब्राह्मणको मित्रतासे श्मशानमें लेजाय करि तथा मा-  
ताके सगे भाई वहिनि आदि बांधवोंको पहुंचायके ब्राह्मण तीनि रात्रिमें शुद्ध  
होताहै ॥ १ ॥ जो लेजातेवाला आशौचयुक्त मरे हुएके सपिण्डोका अन्न खायतौ  
दशही दिनमें शुद्ध होय और जो उनका अन्न न खाय और उनके घरमें न वसै  
तौ तीनि दिनरातिहीमें शुद्ध होजाय औ उसके घरमें तौ वसै परंतु उसके सपिण्डो-  
का अन्न न खाय तौ पहले कही हुई तीनि रात्रिमें शुद्ध होय ॥ २ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ॥ स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वा-  
ग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शू-  
द्रेण नाययेत् ॥ अस्वर्ग्या ह्याहुतिं सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥ ४ ॥

टीका—अपनी जातिके तथा और जातिके मृतकके साथ अपनी इ-  
च्छासे जायके वस्त्रोंसमेत स्नान करि और अग्निको छू घी खायके शुद्ध होताहै ॥  
॥ ३ ॥ समान जातिके स्थित होनेपर पुत्र आदि मृतकको शूद्रसे न उठवावे क्योंकि  
उसकी आहुति शूद्रके स्पर्शसे दूषित हो स्वर्गके लिये हित नहीं होती है अर्थात्  
स्वर्गमें नहीं पहुंचाती है अपनोंके होनेपर इसके कहनेसे यह जान गया कि ब्रा-  
ह्मणके न होनेमें क्षत्रिय और क्षत्रियके न होनेमें वैश्य वैश्यके भी न होनेमें  
शूद्रसेभी उठवाके मृतकको लिवाय

ज्ञानं तपोग्निरारो मूर्ध्नो वार्युपांजर्नम् ॥ वार्युः कर्मार्ककालौ  
च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं

स्मृतम् ॥ योऽथे शुचिर्हि स शुचिर्न मृदारिशुचिः शुचिः ॥ ६ ॥

टीका—ज्ञान तप आग्नि आहार मृत्तिका मन जल लेप पवन कर्म सूर्य और काल ये देहियोंकी शुद्धि करनेवाले है ॥ १ ॥ सब शौचोंमें अर्थात् मट्टी पानी आदिसे देहकी शुद्धि और मनकी शुद्धि इन सबोंमें अर्थशुद्धि कहिये अन्यायसे पराये धनके लेनेकी इच्छाको छोडकर धनका इकट्ठा करना सबसे अधिक शौच मनु आदिकोंने कहाहै क्योंकि जो धनमें शुद्धहै वह शुद्धहै और जो मृत्तिका तथा जलसे शुद्धहै और धनमें अशुद्धहै वह अशुद्धही है ॥ ६ ॥

क्षान्त्या शुद्ध्यन्तिविद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ॥ प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तर्माः ॥ ७ ॥ मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥८॥

टीका—दूसरेके अपकार करनेपर उसके बदलेके अपकार करनेमें बुद्धि न करनेरूप क्षमासे पंडित शुद्ध होते हैं औ नही करनेयोग्य कामके करनेवाले दानसे और जिनके पाप छुपे हुए हैं वे जपसे और वेदका अर्थ तथा चांद्रायण आदि तपके जाननेवाले एकादश अध्यायमें कहेंगे उस तपसे शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ मल आदिसे दूषि शोधने योग्य मृत्तिका तथा जलसे शोधे जाते हैं और श्लेष्मा आदि अशुद्धसे दूषित नदीका प्रवाह वेगसे शुद्ध होताहै और परपुरुषसे मैथुनके संकल्पसे दूषितहै मनजिसका ऐसी स्त्री प्रतिमासमें रजोधर्मसे उसपापसे शुद्ध होती हैं और ब्राह्मण छठेअध्यायमें जो कहेंगे उस संन्याससे शुद्ध होताहै॥८॥

अद्विर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति १ एष शौचस्य वैः प्रोक्तः शारीरस्य वि निर्णयः ॥ नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥ ११० ॥

टीका—पसीना आदिसे दूषित अंगजलके धोनेसे शुद्ध होते हैं और निषिद्ध-चिंता आदिसे दूषित मन सत्यसे शुद्ध होताहै और सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें अवच्छिन्नजीव आत्मा ब्रह्मविद्या तथा पापके नाशकरनेवाले तपसे शुद्ध होताहै और अन्यथा ज्ञानसे दूषित बुद्धि यथार्थविषयके ज्ञानसे शुद्धहोतीहै ॥९॥ मैनेशरीरके शौचका यह निश्चय तुमसे कहा अब नानाप्रकारके द्रव्योंमें जो जिस्से शुद्ध होताहै उसके निर्णयको सुनौ ॥ ११० ॥

तैजसानां मैणिनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ भस्पर्नाद्रिमृदा चै

वं शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ ११ ॥ निर्लेपं काञ्चन भाण्डमद्भिरे  
वं विशुध्यति ॥ अञ्जमश्ममयं चैवं राजतं चानुपस्कृतम् ॥ १२ ॥

टीका—तैजस कहिये सुवर्ण आदिकोंकी और मरकत आदि मणिओंकी और सब पत्थरकी वस्तुओंकी भस्म जल तथा मट्टीसे मनु आदिकोंने शुद्धि कही है ॥ ११ ॥ उच्छिष्ट आदिके लेपसे रहित घुवर्णका पात्र और जलसे उत्पन्न शंख सीप आदि और पत्थरका पात्र तथा रेखारहित चांदीका पात्र भस्म आदिसे रहित केवल जलसे शुद्ध होता है ॥ १२ ॥

अपामग्रेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्वभौ ॥ तस्मात्तयोः स्वयोन्यै  
वं निर्णेको गुणवत्तरः ॥ १३ ॥ ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीस  
कस्य च ॥ शौचं यथाहै कर्त्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ १४ ॥

टीका—जल और अग्निसे संयोगसे सेना और रूपा उत्पन्न हुआ हैं तिस्से उनके कारण अर्थात् उत्पन्न करनेवाले जल और अग्निहीसे शुद्धि सबसे उत्तम है ॥ १३ ॥ तांवा लोहा कांसा पीतलि रांग और सीसा इनका भस्म तथा खटाईके पानीसे यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्य होय उससे उसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

द्रवाणां चैवं सर्वेषां शुद्धिराप्तुवनं स्मृतम् ॥ प्रोक्षणं संहृतानां च  
दारवाणां च तर्क्षणम् ॥ १५ ॥ मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञक  
र्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ १६ ॥

टीका—काँआ कीडा आदि करि दूषित किये गये एक पसेभर धाँ तेल आदिकी प्रादेशप्रमाण दो कुशके पत्रोंको उसमें डालकरि उछालनेसे और शय्या आदि जो उच्छिष्ट आदिसे दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे और काष्ठका कठोता आदि जो उच्छिष्ट आदिसे अत्यंत दूषित होय तौ उनकी छीलनेसे शुद्धि होती है ॥ १५ ॥ यज्ञमें चमस ग्रह तथा अन्य यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि पहले हाथसे मलकै जलके धोनेसे होती है ॥ १६ ॥

चरूणां सुक्खुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणां स्फथशूर्पशकटानां च  
सुसलालूरवलस्य च बहूनां धान्य  
वाससाम् ॥ प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका—चिकनाई करि युक्त चरु सुक् आदिकी शुद्धि उष्णजलके धोनेसे



होती है और जिनमें चिकनाई नहीं है उनकी यज्ञके लिये केवल जलसे शुद्धि होती है और स्फ्य सूप गाढी मूसल और ओखलीकी शुद्धि उष्णजलसे होती है ॥१७॥ बहुतसे धान्य और वस्त्र जो चांडाल आदि करि दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे उनकी शुद्धि होती है बहुत उसकों कहते हैं जो एक पुरुषके लेचलनेसे अधिक होय उससे थोड़ेकी शुद्धि मनु आदिने धोनेसे कही है ॥ १८ ॥

चैलवस्त्रमणां शुद्धिवदलानां तथैव च ॥ शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरप्यते ॥ १९ ॥ कौशेयाविक्रयोरूपैः कुतपानामरिष्टकैः ॥

श्रीफलैरशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ २० ॥

टीका—छूनेयोग्य पशुके चर्मके पात्र और वांसेके पात्रकी शुद्धि वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये और शाक मूल फल इनकी शुद्धि धान्यकी शुद्धिके समान जानिये ॥ १९ ॥ रेशमी और ऊनी वस्त्रकी शुद्धि खारी मट्टीसे होती है और नेपालके कंबलोंकी रीठके चूर्णसे और पट्टवस्त्रकी वेलके फलसे और अलसीकी छालिका वस्त्र सपेद सरसोंसे शुद्ध होताहै ॥ २० ॥

क्षौमर्वच्छुद्धशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥ शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ २१ ॥ प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलांलं चैव शुद्धयति ॥ मार्जनोपाञ्जनैर्वैश्वं पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २२ ॥

टीका—शंखका पात्र तथा छूनेयोग्य पशु हाथी आदि तिनके दांत सींग तथा हाडके पात्रकी शुद्धि अलसीके वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये अर्थात् सपेद सरसोंके कल्कसे अथवा गोमूत्रसे शुद्धि होती है ॥ २१ ॥ चांडाल आदिके छूनेसे दूषित तृण काट और पयार जलके छिडकनेसे शुद्ध होते हैं और रजस्वला आदिके वसनेसे दूषित घर झाडने और लीपनेसे शुद्ध होता है और उच्छिष्ट आदिसे दूषित मट्टीका वासन फिरि पकानेसे शुद्ध होताहै ॥ २२ ॥

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा घृष्वनैः पूर्यशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्धयति पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २३ ॥ समार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोद्धेखनेन च ॥ गर्वां च परिव्रासेन भूमिः शुद्धयति पञ्चाभिः ॥ २४ ॥

टीका—मद्य मूत्र विषा धूक पीव तथा रुधिरसे विगडा हुआ मट्टीका पात्र फिरि पकानेसे शुद्ध नहीं होताहै ॥ २३ ॥ झाडने लीपने छिडकने सोदने अर्थात् कुछ मट्टीके छीलनेसे तथा गौओंके रहनेसे इन पांच बातोंसे भूमि शुद्ध होती है ॥ २४ ॥

पक्षिजगंधं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् ॥ दूषितं केशकीटैश्च मृत्पक्षे  
पेर्णं शुद्धयति ॥ २५ ॥ यावन्नार्पित्यमेध्याक्ताद्रन्धो लेपश्च तत्कृ  
तः ॥ तावन्मृद्धारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ २६ ॥

टीका—कौआ गीघ आदिकों छोड़के अन्य पक्षियों करि कुछ खाया हुआ और गौ करि सूंघा हुआ तथा पैरसे छुआ हुआ और जिसके ऊपर छींक हुई और बाल तथा कीड़ोंसे दूषित थोड़ी मट्टीके ढालनेसे शुद्ध होता है ॥ २५ ॥ अपवित्र विष्टा आदिसे लिपी वस्तुसे जबतक उसका गंध तथा लेप शेष रहै तबतक सब वस्तुओंको शुद्धके लिये मट्टी और जलसे मांजै ॥ २६ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्नि  
र्णितं यच्च वार्चा प्रशस्यते ॥ २७ ॥ आर्पः शुद्धा भूमिर्गता वैतृष्ण्यं  
यासु गोर्भवेत् ॥ अर्घ्यात्ताश्चर्दमेध्यां गन्धवर्णरसान्विताः ॥ २८ ॥

टीका—देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन वस्तु पवित्र की हैं एक तौ अदृष्ट अर्थात् जिसका दूषित होना आँखिसे नहीं देखा गया है और दूसरा दूषित होने की शंका होनेपर जलसे धोना और तीसरा दूषित होनेकी शंका होते ही पवित्र होय इस ब्राह्मणकी वाष्पीसे जो प्रशस्त है ॥ २७ ॥ जितने जलमें एक गौकी प्यास दूर होय गंध वर्ण और स्वाद जिसका न बिगड होय और अपवित्र वस्तुसे युक्त न होय शुद्ध भूमिमें स्थित होय ऐसा जल शुद्ध कहा है ॥ २८ ॥

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पर्ण्ये यच्च प्रसारितम् ॥ ब्रह्मचारिगतं भ  
क्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ २९ ॥ नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां  
शकुनिः फलपातने ॥ प्रस्रवे च शुचिर्वर्त्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः १३०

टीका—देवता तथा ब्राह्मण आदिके लियेभी माला आदिके बनानेमें माली आदि कारीगरोंके हाथ शुद्धि विशेषके न करनेपरभी स्वभावहीसे सदा शुद्ध हैं तैसेही जन्म मरणमें अपने काममें शुद्ध है और ब्रह्मचारीकी भिक्षा विना न्हाई स्त्रीके देने और मल्लो आदिमें चलनेपरभी सदा शुद्ध है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंका मुख सदा पवित्र है और कौआ आदि पक्षियोंकी चोचके लगनेसे गिरा हुआ फल शुद्ध है और गौके दुहनेके समय दूधके पन्हुआनेमें वछडेका मुख शुद्ध है और कुत्ता जब मृग आदिकोंको मारनेको पकड़े तब उसकाममें वहभी शुद्ध होता है ॥ १३० ॥

श्वभिर्हतस्यैयन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥ क्वव्याद्धिश्च हतस्या  
 न्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥३१॥ ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि  
 मेध्यानि सर्वशः।यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चै व मलाश्च्युताः ३२

टीका—कुत्तों करि मारे हुए मृग आदिका मांस मनुजीने शुद्ध कहाहै तथा  
 और कच्चे मांसके खानेवाले वाघ वाज आदिकों करि और मृगोंको मारकर  
 जीविका करनेवाले नहोलिया आदि करि मारे हुए मृग आदिका मांस पवित्र है  
 ॥ ३१ ॥ नाभिके ऊपर जे इंद्रिमा हैं वे सब पवित्र हैं इस्से उनके छूनेमें अपवित्र-  
 ता नहीं होतीहै और जो नाभिके नीचे हैं वे अशुद्ध हैं और देहसे निकले हुए  
 देहके मलसे अशुद्ध होतेहैं ॥ ३२ ॥

मक्षिका विपुषश्छाया गौरश्वःसूर्यरश्मयः ॥ रजो भूवायुरग्निश्च  
 स्पर्श मेध्यानि निर्दिशेत् ॥३३॥ विण्मूत्रोत्सर्गशुद्धिचर्थ मृद्रायादे  
 यमर्थवत् ॥ देहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वर्षि ॥३४॥

टीका—अपवित्र वस्तुकी छूनेवालीभी मक्खियां और मुखसे निकले हुए छो-  
 टे र जलके कण और पतित आदि न छूनेयोग्यकी छाया और गौ घोडा सूर्य-  
 के किरण रज भूमि पवन अग्नि ये सब चांडाल आदिके छूनेपरभी छूनेमें अशुद्ध  
 नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥ विष्टा तथा मूत्रका जिनसे त्याग किया जाताहै उन गुदा  
 आदिकी शुद्धिके लिये प्रयोजन मात्र कहिये जितनेसे बारहों छिद्रोंके वसा आ-  
 दि मलोंके गंध तथा लेपकी शुद्धि होजाय उतनी मट्टी तथा जल लेना चाहिये  
 अन्यस्मृतियोंसे जाना गया कि पहिली छः इंद्रियोंकी शुद्धिके लिये मट्टी और ज-  
 ल लेने चाहिये और दूसरे छःकी शुद्धिके लिये केवल जल लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

वसा शुक्रमसृद्धमर्जा मूत्रं विट् प्राणकर्णविट् ॥ श्लेष्माश्च दूषिका  
 स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ ३५ ॥ एका लिङ्गे गुदं तिस्र  
 स्तथैकत्र करे दर्श ॥ उभयोः सप्त दातव्या भृदः शुद्धिमभीप्सता ३६

टीका—वसा कहिये देहकी चिकनाई और वीर्य राधिर मज्जा कहिये शिरके  
 भीतर इकट्ठा हुआ स्नेह मूत्र विष्टा नाक तथा कानका मैल कफ आंसू आंशु-  
 कीचर तथा पसीना ये बारह मनुष्योंके शरीरके मैलहैं ॥ ३५ ॥ मूत्र तथा पुरीष-  
 के त्याग करनेके पीछे शुद्धता चाहनेवाला पुरुष लिंगमें एकवार जलसमेत मट्टी  
 लगावै और गुदमें तीनिवार और एक वांये हाथमें दशवार लगावै और सातवा-  
 र दोनो मिलायकै मट्टीलगावै ॥ ३६ ॥

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ त्रिगुणं संन्यासिनां  
 नां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्या  
 चान्तं उपस्पृशेत् ॥ वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमंशश्च सर्वदा ॥ ३८ ॥

टीका—यह शौच गृहस्थोंका कहा गया और ब्रह्मचारियोंको इस्से दूना कर-  
 रना चाहिये और वानप्रस्थोंको तिगुना और संन्यासियोंको चौगुना करना चा-  
 हिये ॥ ३७ ॥ मूत्र तथा पुरीषका त्यागकर कहे हुए शौचके पीछे तीनिवार आ-  
 चमन करिके इंद्रियोंको अर्थात् नाभिसे ऊपरके छिद्रोंको छुवै और वेदका अध्-  
 यन किया चाहै अथवा अन्न खाना चाहै तौ सदा यह विधि करै ॥ ३८ ॥

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ शारीरं शौचमिच्छ  
 हि स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत् ३९ शूद्राणां मांसिकं कार्यं वपनं न्यार्य-  
 वर्तिनाम् ॥ वैश्यं च्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥ १४० ॥

टीका—देहकी शुद्धिका चाहनेवाला पुरुष पहले तीनिवार जलका आचमन  
 करै तिस पीछे दोवार मूख धोवै और स्त्री तथा शूद्र एकवार आचमन करै ॥ ३९ ॥  
 शास्त्रके अनुसार चलनेवाले और ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले शूद्रोंको महीने म-  
 हीनेमें मुंडन करना चाहिये और मृतक सूतक आदिमें वैश्यके समान आशौच  
 मानना चाहिये और ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट भोजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः ॥ नैश्मश्रीणि गतां  
 न्यास्यार्न्नं दन्तान्तरं धिष्ठितम् ४१ स्पृशन्ति विन्दवः पादौ यं आ-  
 चामयतः परान् ॥ भौमिकैस्ते समा ज्ञेयां न तैरप्रियतो भवेत् ४२

टीका—मुखमेंसे निकले हुए थूकके छोटे छोटे बूंद शरीरपर गिरनेसे तथा मु-  
 खमें गये हुए मूत्रोंके बाल और दांतोंकी संधिमें अटक हुआ अन्न अशुद्धताकी  
 नहीं करताहै ॥ ४१ ॥ औरोंको आचमन करनेके लिये जल देते हुए मनुष्यके  
 पैरोंपर जलके बूंद गिरते हैं वे शुद्ध भूमिमें भरे हुए जलके समान हैं उनसे  
 अशुद्ध नहीं होताहै ॥ ४२ ॥

उच्छिष्टेन तु संपृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन ॥ अनिर्धायैव तद्रव्यं  
 माचान्तः शुचितामियात् ॥ ४३ ॥ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्रा-  
 शनमाचरेत् ॥ आचामेदेवं भुक्त्वांन्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥ ४४ ॥

टीका—कंधे आदिपर स्थित किसी वस्तुको लिये हुए जो उच्छिष्ट करि छु-  
आ जाय तौ उस वस्तुको लियेही हुए आचमन करनेसे शुद्ध होताहै और वह  
वस्तुभी शुद्ध होती है ॥ ४३ ॥ वमन हुआ होय अथवा विरेचन हुआ होय तौ  
स्नान करि घी खाय और जो भोजनके पीछेही वमन करै तौ केवल आचमन क-  
रे स्नान तथा घृत भक्षण न करै और मैथुन करिके स्नान करै ॥ ४४ ॥

सुत्वांशुत्वा च भुक्त्वा च निष्टीर्व्योक्तवानृत्तानि च ॥ पीत्वापोऽ<sup>११</sup>  
ध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि<sup>१२</sup> सन् ॥ ४५ ॥ एष शौचवि-  
धिः<sup>३</sup> कृत्स्ना द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ॥ उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां  
धर्मान्निबोधत ॥ ४६ ॥

टीका—सोयके छीकके थूकके झूठबोलके और जल पीके जो वेद पढा चाहै  
तौ शुद्धभी होनेपर आचमन करै ॥ ४५ ॥ यह ब्राह्मण आदिवर्णके जन्ममरण  
आदिमें दशरात्र आदिकी सब आशौच विधि तथा सब द्रव्योंकी अर्थात् धातु  
वस्त्र जल आदिकी शुद्धि तुमसे कही अब स्त्रियोंके करनेयोग्य धर्मोंको सुनिये ॥ ४६ ॥

बाल्या वा युवत्या वा वृद्ध्या वापि योषिता ॥ न स्वातन्त्र्येण क-  
र्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि<sup>११</sup> ४७ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राह-  
स्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तारि प्रेते न भजेत्स्त्री<sup>१२</sup> स्वतन्त्रताम् ४८ ॥

टीका—बालकपनमें तथा तरुण अवस्थामें अथवा वृद्ध अवस्थामें स्थित स्त्री-  
को घरमें भी कुछ काम स्वधीन होके न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ बालकपनमें  
पिताके वशमें रहै और तरुण अवस्थामें पतिके आधीन रहै और पतिके मरनेपर  
पुत्रके और जो पुत्र न होय तौ उनके सपिंडोंके और सपिंडभी न होय तौ पिता-  
के पक्षके और जो दोनो पक्ष न होय तौ जाति तथा राजा आदिके आधीन रहै  
कभी स्त्री स्वतंत्र न होय ॥ ४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि ने च्छे द्विरहमात्मनः ॥ एषां हि विरहेण  
स्त्री<sup>१३</sup> गृह्ये कुंयादुभे कुले ॥ ४९ ॥ सदा प्रहृष्ट्या भाव्यं गृहका  
येषु दक्ष्या ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ५० ॥

टीका—पिता पति तथा पुत्रोंसे स्त्री कभी पृथक् न होय क्योंकि इनसे अ-  
लग रहनेसे कुलटापनको प्राप्तहो पिता तथा पतिके दोनो कुलोंको निन्दित कर-

ती है ॥ ४९ ॥ तदा प्रसन्न मुख घरके कामोंमें चतुर और कमखरच करनेवाली स्त्रीको होना चाहिये ॥ १९० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ॥ तं शुश्रूषेत जीवन्तं  
संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥ ५१ ॥ मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां  
प्रजापतेः ॥ प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ५२ ॥

टीका—पिता अथवा पिताकी आज्ञासे उसका भाई जिसको देवै जीवते हुए उस पतिकी सेवा करै और मरे हुएका उल्लंघन न करै अर्थात् अन्य पतिकी इच्छा न करै ॥ ५१ ॥ विवाहमें स्वस्त्ययन कहिये शांतिके मंत्रोंका पढ़ना और ब्रह्मा-के लिये जो योग होताहै सो इन स्त्रियोंके मंगलके लिये होताहै अर्थात् इष्टकी प्राप्तिके निमित्त कर्म है और जो प्रथम प्रदान कहिये वाग्दानरूप कर्म है वही पतिके स्वामी होनेका कारणहै ॥ ५२ ॥

अनृतानृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ॥ सुखस्य नित्यं दातेह  
परलोके च योषितः ॥ ५३ ॥ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिव  
जितः ॥ उपचर्यः स्त्रियां सार्ध्या संततं देववत्पतिः ॥ ५४ ॥

टीका—ऋतुकालमें अथवा ऋतुभिन्नकालमें मंत्रसंस्कार करनेवाला पति इ-स लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवालाहै ॥ ५३ ॥ शील करि रहित होय अथवा दूसरी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला होय अथवा विद्या आदि गुणों करि हीन होय तिसपरभी पतिव्रता स्त्रीको पति देवताके समान सेवा करनेयोग्यहै ॥ ५४ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ॥ पतिं शुश्रूषते  
येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ ५५ ॥ पाणिग्राहस्य सार्ध्वी स्त्री जीव  
तो वा मृतस्य वा ॥ पतिलोकमभीप्सन्ती नाचं रेतिकचिदप्रियम् ५६

टीका—जैसे पतिकी किसी स्त्रीके रंजोधर्म आदिके योगसे उपस्थित न होनेपर दूसरी स्त्रीसे यज्ञकी सिद्धि होजाती है ऐसे स्त्रियोंकी भर्ताके विना यज्ञ-सिद्धि नहीं होती है और भर्ताकी आज्ञाविना व्रत तथा उपवासभी नहीं हैं कि-तु भर्ताकी सेवाहीसे स्त्री स्वर्गलोकमें पूजित होती है ॥ ५५ ॥ पतिकी सेवासे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोककी इच्छा करनेवाली पतिव्रतास्त्री जीवते हुए अथवा मरे हुए पतिका कुछभी अप्रिय न करै मरे हुएका अप्रिय व्यभिचारसे तथा क-हे हुए श्राद्धके न करनेसे होताहै ॥ ५६ ॥

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ न तु नामापि गृण्णीयात्  
त्पंत्यौ प्रेते परस्य तु ॥६७॥ आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्र  
ह्मचारिणी ॥ यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्तीति मनुत्तमम् ॥६८॥

टीका—पतिके मरनेपर व्यभिचारकी बुद्धिसे दूसरे पतिका नामभी न ले  
किन्तु पवित्र फूल मूल फलोंसे थोडा आहार करिके देहको क्षीण करै ॥ ६७ ॥  
क्षमायुक्त नियमवाली और पतिव्रताओंके उत्तम धर्मको चाहनेवाली तथा मधु  
मांस मैथुनके त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे शोभित मरण पर्यंत रहै और जो पुत्ररहितभी  
होय तो पुत्रके लिये परपुरुषकी सेवा न करै ॥ ६८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥ दिवं गर्तानि विप्राणा  
मकृत्वा कुलसंततिम् ॥ ६९ ॥ मृते भर्तारि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये  
व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥

टीका—बालकपनसे ब्रह्मचारी जिन्होंने विवाह नहीं किये ऐसे सनक वाल-  
खिल्य आदि हजारों ब्राह्मण कुलकी वृद्धिकेलिये संततिके उत्पन्न किये विना-  
भी स्वर्गको गये ॥ ६९ ॥ अच्छाहै आचार जिसका ऐसी स्त्री भर्ताके मरनेपर  
परपुरुषसे मैथुनको न करिके पुत्ररहितभी स्वर्गको जाती है जैसे वे सनक वाल-  
खिल्य पुत्र न होनेपरभी स्वर्गको गये ॥ ६० ॥

अपत्यलोभाद्यां तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ॥ सेहं निन्दामवाप्नो  
ति पतिं लोकाच्च हीयते ॥६१॥ नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्य  
न्यपरिग्रहे ॥ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भूतोपदिश्यते ॥६२॥

टीका—मेरे पुत्र उत्पन्न होय उससे मैं स्वर्गको जाउगी इस लोभसे जो स्त्री  
भर्ताका उल्लंघन करती है अर्थात् व्यभिचार करती है वह इस लोकमें निंदा-  
को प्राप्त होती है और उस पुत्रसे स्वर्गको नहीं प्राप्त होती है ॥ ६१ ॥ जिस्से  
भर्तासे भिन्न पुरुषसे उत्पन्न वह संतति शास्त्रीय नहीं होती है दूसरी स्त्रीमें उत्प-  
न्न किई हुई प्रजा उत्पन्न करनेवालेकी नहीं होती है और अच्छे आचारवाली  
स्त्रियोंका शास्त्रमें कही दूसरा पति नहीं कहाहै ॥ ६२ ॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ॥ निन्द्यैव सा भवेत्लो  
के परपूर्वति चोच्यते ॥६३॥ व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके

प्राप्नोति निन्द्यताम् ॥ शर्गालयोनिं प्राप्नोति पापरोगेश्च पीडयते ॥६४

टीका—अपलुष्ट कहिये क्षत्रिय आदि अपने पतिको छोडकर उत्कृष्ट कहिये ब्राह्मण आदिका आश्रय लेती है वह लोकमें निन्दित होती है और इसका दूसरा-भर्ता है ऐसे कही जाती है ॥ ६३ ॥ पराये पुरुषके साथ भोग करनेसे स्त्री लोकमें निंदाको प्राप्त होती है और मरकै सगाली (स्यारी) होती है और कुष्ठ आदि पापयोगों करि पीडित होती है ॥ ६४ ॥

पतिं यां नोभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः सांघ्वीति चोच्यते ॥ ६५ ॥ अनेन नारी वृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ॥ ईहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ ६६ ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी और देहसे संयतहो पतिका उल्लंघन नहीं करती है वंह भर्ताके साथ उत्पन्न किये हुए लोकोंको जाती है और सज्जनों करि पतिव्रताभी कहि जाती है ॥ ६५ ॥ इस स्त्रीधर्मके प्रकारसे कहे हुए आचारसे मन वाणी और कायसे सावधान स्त्री इस लोकमें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होती है और परलोकमें पतिके साथ प्राप्त किये हुए स्वर्ग आदिलोकोंको प्राप्त होती है ॥ ६६ ॥

एवंवृत्तां सर्वर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ॥ दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६७ ॥ भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्निर्नन्त्य कर्मणि ॥ पुनर्दार्द्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ ६८ ॥

टीका—दाहके धर्मका जाननेवाला द्विजाति कहे हुए आचार करि युक्त आपसे पहले मरी हुई सर्वर्णा स्त्रीको श्रौत तथा स्मार्त्त अग्निसे और यज्ञपात्रोंसे दाह करै ॥ ६७ ॥ पहले मरी हुई भार्याके लिये अन्त्यकर्ममें दाहके निमित्त अग्नि देके गृहस्थाश्रमकी इच्छा करता हुआ पुत्रके होते वा अन होते दूसरा विवाह करै और श्रौत तथा स्मार्त्त अग्नियोंका आधान करै अर्थात् अग्निहोत्रको ग्रहण करै ॥ ६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्नं हांपयेत् ॥ द्वितीयमायुषो भागं कूर्तदारो गृहे वसेत् ॥ ६९ ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तार्यां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

टीका—इस तीसरे अध्यायमें कही हुई विधिसे प्रतिदिन पंचयज्ञोंको न छोडै और दूसरे आयुष्यके विवाह गृहस्थके कहे हुए करता हुआ घरमें बसे ॥ ६९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूक-भट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौशौचविधिकथनोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



## अथ षष्ठोऽध्यायः

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नानं द्विजः ॥ वने वसेत्तु  
नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली  
पलितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

टीका—जिसका समावर्तन कहिये गृहस्थाश्रमका ग्रहण हुआ है ऐसा स्नातक  
द्विज कहे हुए प्रकारसे शास्त्रके अनुसार गृहस्थाश्रमको करिके निश्चयपूर्वक यथावि-  
धि आगे कहेहुए धर्मसे विशेष करि जितेन्द्रिय हो वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहण करै  
॥ १ ॥ गृहस्थ जब अपनी देहकी त्वचाको शिथिल देखै और वालोंको सपेद देखै  
और पुत्रके पुत्र उत्पन्न हुआ देखै तब विषयोंमें वैराग्य युक्तहो वानप्रस्थ आ-  
श्रमके लिये वनका आश्रय ले ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छेदम् ॥ पुत्रेषु भार्यां निक्षि-  
प्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निर्प-  
रिच्छेदम् ॥ ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

टीका—ग्राम्य जो धान जव आदि हैं तिनके आहारको और गौ घोडा श-  
य्या आसन आदि उपकरणोंको छोडि भार्याके रहते साथ जानेकी इच्छा न  
होय तौ पुत्रोंमें राखि और जो साथ जाना चाहै तौ उसके साथही वनको जा-  
य ॥ ३ ॥ श्रौत अग्निको तथा उसके उपकरण सुक् सुवा आदिको लेकर ग्रा-  
मसे वनमें निकल जितेन्द्रिय हो वनमें वसै ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्विधैर्मेघ्यैः शाकमूलफलेन वा ॥ एतान्येव महायज्ञा  
त्रिंशोपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ वसीत चर्म चिरं वा सायं स्नायात्प्रगे  
तथा ॥ जटांश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥

टीका—मुनियोंके अन्न कहिये नानाप्रकारके नीवार आदि अन्नोंसे और वनमें  
उत्पन्न हुए पवित्र शाक मूल फलोंसे गृहस्थ कहे हुए इन पंचमहायज्ञोंको शास्त्र-  
के अनुसार करै ॥ ५ ॥ मृगचर्मको अथवा वस्त्रखंडको धारण करै और हारी-  
तने तौ बल्कल आदिकीभी आज्ञा दी है और सायंकाल तथा प्रातकालः स्नान-  
करै और शिरमें जटा डाढी मूछ तथा नखोंको सदा धारण करै ॥ ६ ॥

यद्द्रव्यं स्यात्ततो दद्याद्द्वलिं भिक्षां च शर्कितः ॥ अर्ममूलफलभि

क्षाभिर्चयेदांश्रमागतान् ॥ ७ ॥ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्द्वान्तो  
मैत्रः समहितः ॥ दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

टीका—जो भोजन करै उसमेंसे शक्तिके अनुसार बलि तथा भिक्षाको देवै और जल मूल फल तथा भिक्षा देकर आश्रममें आये हुए अभ्यागतोंका पूजन करै ॥ ७ ॥ वेदके अभ्यासमें सदा लगा रहै और शीत घाम आर्द्रिके दुःखका सहनेवाला और सर्वोंका उपकार करनेवाला और सावधान मन सदा देनेवाला और सदा दान लेनीकी इच्छाका न रखनेवाला और सब जीवोंपर दया करनेवाला होय ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौ  
र्णमासं च योगंतः ॥ ९ ॥ ऋक्षेष्टचाग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चाह  
रेत् ॥ उत्तरायणं च क्रमशो दाक्षस्यार्यनमेव च ॥ १० ॥

टीका—शास्त्रके अनुसार वैतानिक अग्निहोत्र करै और अमावास्या तथा पूर्णिमा इन पर्वोंमें श्रुति स्मृतिमें कहे हुए दर्शपौर्णमाससे यज्ञोंको न छोडै ॥ ९ ॥ नक्षत्रइष्टि तथा आग्रयण कहिये नवसस्यकी इष्टि और चातुर्मास्य तथा उत्तरायण और दक्षिणायन श्रौतकर्मोंको क्रमसे करै ॥ १० ॥

वासंतशरद्वैमेध्यैमुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥ पुरोडाशांश्चरुंश्चैवं वि  
धिर्वन्निर्वेत्पृथक् ॥ ११ ॥ देवताभ्यस्तु तद्धुत्वां वन्यं मेध्यतरं  
हविः ॥ शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

टीका—वसंतऋतुमें तथा शरदऋतुमें उत्पन्न हुए और अपने हाथसे लाये हुए पवित्र मुनियोंके अन्नोंसे पुरोडाशचरुको शास्त्रके अनुसार उन २ यज्ञोंकी सिद्धिके लिये करै ॥ ११ ॥ उस वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदिसे बने हुए अत्यंततासे यज्ञके योग्य हविको देवताओंके लिये देकर बाकी आप स्वाय और अपने बनाये हुए स्वारिनीन आदि स्वाय ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ॥ मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्या  
त्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥ १३ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कव  
कानि च ॥ भूस्तृणं शिथुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

टीका—स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए शाकोंको और जंगली यज्ञियवृक्षोंके पुष्प, मूल फलोंको तथा हिंगोट आदिके फलोंसे निकले हुए स्नेहोंको स्वाय ॥ १३ ॥ शहत मांस तथा भूमिमें उत्पन्न हुए धरतीके फूलोंको और मालवदेशमें

भूस्तृणनाम शाकको तथा शिमुक कहिये संजनेको और श्लेष्मातक कहिये ल-  
भेरेके फलोंको वर्जित करै ॥ १४ ॥

त्यजेदाश्वयुजे मांसि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ॥ जीर्णानि चैवं वासांसि  
शाकमूलफलानि च ॥ १५ ॥ नै फालकृष्टमश्रियादुत्तमैष्टमपि के  
नचित् ॥ नै ग्रामजातान्यातोऽपि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

टीका—पहले इकठ्ठे किये हुए नीवार आदि धान्योंको और जीर्ण वस्त्रोंको  
और शाक मूल फलोंको आश्विनमासमें त्यागि दे ॥ १५ ॥ वनमेंभी हलसे जुते हुए  
खेतमें उत्पन्न स्वामी करके छोड़े हुएभी धान आदिको न खाय तैसेही ग्राममें विना  
जुती भूमिमेंभी उत्पन्न लता वृक्षोंके मूल फलोंको भूखाभी वानप्रस्थ न खाय ॥ १६ ॥

अग्निपकाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेवं वा । अश्मकुट्टो भवेद्वापि  
दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥ सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससं  
चर्यिकोऽपि वा । षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥ १८ ॥

टीका—अग्निमें पका हुआ जंगली अन्न और कालमें पके हुए फल आदि अ-  
थवा ओखली मूसलको छोड़के पत्थरोंसे कूटिके कच्चाही खाय अथवा दांतही हैं  
ओखलीके स्थानमें जिसके ऐसा होय अर्थात् दांतोहीसे चाविले ॥ १७ ॥ एक  
दिनके खानेयोग्य अथवा एक मासके योग्य अथवा छः महीनेके योग्य अथवा  
एक वर्षके निर्वाह योग्य नीवार आदि इकठ्ठा करै ॥ १८ ॥

नक्तं चात्रं समश्रियाद्दिवा वाहृत्यशक्तिः । चतुर्थकालिको वा  
स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥ चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृ-  
ष्णे च वर्तयेत् ॥ पक्षान्तयोर्वाप्यश्रयोर्द्यवागूं कथितां संकृत् ॥ २० ॥

टीका—सामर्थ्यके अनुसार अन्नको लायके सायंकाल भोजन करै अथवा दिनहीमें  
अथवा चौथेकालमें भोजन करनेवाला होय सायंकाल प्रातःकालका भोजन मनुष्यों  
का देवताओंका बनाया हुआ है वहाँ एकदिन व्रत करिके दूसरे दिन संध्याको  
भोजन करै अथवा अष्टमकालिक कहिये तीनि राति व्रत करिके चौथेदिनकी  
रातिमें भोजन करै ॥ १९ ॥ कृष्णपक्षमें एक एक पिंड घटावै और शुक्लपक्षमें एक  
एक बढावै इत्यादि ग्यारहें अध्यायमें वक्ष्यमाण चान्द्रायण व्रतोसे जीवै ॥ २० ॥

युष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा । कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखा-  
नसमत्तै स्थितः ॥ २१ ॥ भूमौ विपरिवर्तत तिष्ठेद्वा प्रपदौर्दिनम् ॥  
स्थानांसनाभ्यां विहरेत्सर्वनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥

टीका—अथवा कालमें पके हुए अग्निसे नहीं पके वृक्षसे आप गिरे हुए फलोंसे जीवै और वैखानस जो वानप्रस्थहै उसके धर्मके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रके मतमें स्थित रहै ॥ २१ ॥ विना विछौने भूमिमें लोटता हुआ आवै जाय अथवा स्थान आसन आदिमें बैठा रहै और उठै अर्थात् घूमै आवश्यक भोजन आदिको छोड़कै यह नियमहै ऐसेही आगेभी जानिये अथवा पैरोंके अग्रभागसे दिनभर खड़ा रहै और कुछकाल ठहरा रहै वा कुछकाल बैठा रहै बीचमें फिरै नहीं और सवनोमें अर्थात् संध्यासमय प्रातःकाल तथा मध्यान्हमें स्नान करै ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वर्भावकाशिकः॥ आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमंशो वर्धयंस्तपः ॥ २३ ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितृन्देवांश्च तर्पयेत् ॥ तपश्चरंश्चोर्ग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

टीका—अपना तप बढ़ानेके लिये ग्रीष्म कहिये गरमीकी ऋतुमें चारो ओर रक्खी हुई चार अग्नियोंके और ऊपर सूर्यके तेजसे अपने शरीरको तपावै और वर्षाऋतुमें मेघवर्षनेके समय खुले स्थानमें छाता आदिके विना स्थित होय और हेमन्त ऋतुमें गीले वस्त्र पहिरै एकवर्षकी गर्मी जाडा चौमासा ये तीनि ऋतु करकै यह एकवर्षका नियमहै ॥ २३ ॥ प्रातःकाल मध्यान्ह तथा सायंकालके तीनों स्नानोमें देवता ऋषि और पितरोंके तर्पणको करता हुआ तथा औरभी पक्ष तथा मासके व्रत आदि तीव्रतप करता हुआ अपने शरीरको सुखावै ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि॥ अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धर्माशयः ॥ शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः २६ ॥

टीका—वैखानस शास्त्रके विधानसे भस्म आदिकों पीकर श्रौत अग्नियोंको अपने भीतर स्थापित करिकै लौकिक अग्नि और घरसे रहित हो मौनव्रतकी धारण करि फल मूल स्वायं नीवार आदि न खाय ॥ २५ ॥ सुखके प्रयोजनोंमें अर्थात् स्वादिष्ट फलोंके खाने और शीत तथा घामके बचानेमें उपाय न करै स्त्रीसे भोग न करै भूमिमें सोवै और रहनेके स्थानोंमें ममता न करै वृक्षोंके नीचे रहै ॥ २६ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्रीयादृष्टौ ग्रासान्वने

वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥

टीका—वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे प्राणोंकी रक्षाके योग्य भिक्षा लावै और उनके न होनेमें अन्य वनके वसनेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंसे लावै ॥ २७ ॥ ग्रामसे लाके ग्रामके अन्नके आठग्रास पत्तोंके दोनेमें अथवा सरवा आदिके खंडमें अथवा हाथोंहीमें लेकर वानप्रस्थ भोजन करै ॥ २८ ॥

एतांश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ॥ विविधांश्चोपनिषदी  
रार्त्तमसंसिद्धये श्रुतीः २९ ॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः ॥  
विद्यातपोविवृद्धयर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥ ३० ॥

टीका—वानप्रस्थ इन नियमोंका तथा वानप्रस्थके शास्त्रमें कहे हुए अन्य नि-  
ग्रहोंका अभ्यास करै और उपनिषदोंमें पढी हुई ब्राह्मणका प्रतिपादन करनेवा-  
ली अनेक श्रुतियोंका अपनी ब्रह्मत्वसिद्धिके लिये ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास  
करै ॥ २९ ॥ जिसे ये उपनिषद ऋषियों और सन्यासियों तथा वानप्रस्थों क-  
रिके अद्वैत ब्रह्मके ज्ञान तथा धर्मकी वृद्धिके लिये सेवन किये गये हैं तिस्से  
इनका सेवन करै ॥ ३० ॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्वगः ॥ आनिपाताच्छरीरस्य यु-  
क्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्तवान्यतमया  
तनुम् ॥ वीरतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

टीका—जिसकी चिकित्सा न हो सकती होय ऐसे रोग आदिके उत्पन्न हो-  
नेमें अपराजिता जो ईशान्यदिशा है तिसका आश्रय लेके योगमें निष्ठ हो जल तथा  
पवनका आहार करता हुआ शरीरके गिरनेतक सीधा चलाजाय महाप्रस्थान-  
नाम यह मरण शास्त्रमें कहाहै इस्से विधिके विना मरनेका निषेधहै शास्त्रमें क  
हे हुए का नहीं ॥ ३१ ॥ इन पहले कहे हुए अनुष्ठानोंमेंसे किसीएकसे शरीरको  
छोडि दुःखके भयसे रहित हो ब्रह्मलोकमें पूजाकी प्राप्त होताहै अर्थात् मो-  
क्ष पाता है ॥ ३२ ॥

वनेषु च विद्वत्सैवं तृतीयं भागमायुषः ॥ चतुर्थमायुषो भागं त्य-  
क्त्वा संगोन्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥ आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जि-  
तेन्द्रियः ॥ भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

टीका—जो मरता नहीं है उसकेलिये कहते इस भांति वनमें विहार करि-

कै अर्थात् नाना प्रकारके कठिन तपोंके करनेसे विषयोंके रागकी शांतिके लिये आयुके तीसरे भागमें कुछ कालतक वानप्रस्थोंके आश्रममें रहिकै. आयुके चौथे भागमें अर्थात् बाकी आयुके समयमें सब भांतिविषयोंके संगको छोडि संन्यासाश्रमको धारण करै ॥ ३३ ॥ पहले पहले आश्रमसे आगे आगेके आश्रममें जायकै अर्थात् ब्रह्मचर्यसे गृहस्थाश्रममें और गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थाश्रममें जायकै शक्तिके अनुसार. गये हुए आश्रमोंका किया है होम जिसने ऐसा भिक्षा तथा बलिदानके बहुत दिनोंतक करनेसे थका हुआ संन्यास्को करता हुआ परलोकमें मोक्षके लाभसे ब्रह्मभूत बडीभारी ऋद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो ब्रजत्यर्धः ॥ ३५ ॥ अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ॥ इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—आगेके श्लोकमें कहे हुए तीनि ऋणोंको दूर करिकै ब्राह्मण मोक्षके अंगरूप संन्यासमें मनको लगावै उन ऋणोंके विना दूर किये जो मोक्ष कहिये चौथे आश्रमको धारण करताहै वह नरकमें जाताहै ॥ ३५ ॥ उन्ही ऋणोंको दिखाते हैं उत्पन्न होता हुआ ब्राह्मण तीनि ऋणोंसे ऋणी होताहै अर्थात् यज्ञसे देवताओंका और संततितसे पितरोंका तथा वेदके पढ़नेसे ऋषियोंका यह श्रुतिमें लिखाहै इसीसे शास्त्रके अनुसार वेदोंको पढिकै और पवोंमें गमन न करना इत्यादिक धर्मोंसे पुत्रोंको उत्पन्न करिकै और सामर्थ्यके अनुसार ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञोंकोभी करिकै मोक्षके अंगरूप चौथे आश्रममें मनको लगावै ३६

अधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तर्था सुतान् ॥ अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्ब्रजत्यर्धः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्नींसमारोप्य ब्राह्मणः प्रब्रजेदृहात् ॥ ३८ ॥

टीका—द्विजवेदोंको न पढकै और पुत्रोंको न उत्पन्न करिकै और यज्ञोंसे यजन न करिकै मोक्षको चाहता हुआ नरकमें जाताहै ॥ ३७ ॥ यजुर्वेदके उपारुख्यान ग्रंथोंमें कहा हुआ और सर्वस्वहै दक्षिणा जिसमें और प्रजापति जिसका देवता ऐसे यज्ञको करिकै उसकी कही हुई विधिसे अपनेमें स्थापित करिकै वानप्रस्थाश्रमको करिहीकै चौथे आश्रममें वास करै ॥ ३८ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रब्रजत्यर्धं गृहात् ॥ तस्य तेजोमया लोकां भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥ यस्मादर्णवपि भूतानां द्विजात्रो

त्पद्यते भयम् ॥ तस्य देहाद्रिमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ४० ॥

टीका—जो सब स्थावरजंगम प्राणियोंको अभय देकर गृहस्थाश्रमसे संन्यासको लेताहै ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदमें नेष्टावाले उस पुरुषके तेजसे सूर्यआदिके प्रकाशरहित हिरण्यगर्भ आदिकोंके लोक प्रकाशित होते हैं उनको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ जिस द्विजसे भूतोको थोडाभी भय नहीं होताहै उसके वर्तमानदेहके नाश होनेपर किसीसेभी भय नहीं होताहै ॥ ४० ॥

आंगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥ समुपोटेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्धयर्थमसहायवान् ॥ सिद्धिमैकस्य संपश्यन्नं जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

टीका—घरसे निकला हुआ पवित्र दंड कमंडलु आदि करि युक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामोंमें अर्थात् किसीकरि पहुंचाये हुए स्वादिष्ट अन्नआदिमें इच्छारहित हो संन्यासधारण करै ॥ ४१ ॥ सब संगरहित एक पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है इसवांतको अकेलाही सदा मोक्षके लिये विचरै एकही इसके कहनेसे पहले पहिचाने हुए पुत्र आदिका त्याग कहा गया और असहायवान् कहिये सहस्यक कोई न होय जो एककी विचरताहै वह किसीको नहीं छोडताहै और न किसीके छोडनेका दुःख पाताहै न किसी करि वह छोडा जाता है और न कोई इस करके छोडनेके दुःखको अनुभवकराया जाताहै तिससे सर्वत्र ममतारहित सुखसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्भारमन्त्रार्थमाश्रयेत् ॥ उपेक्षाकोऽसंकुसुकोमुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥ कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ४४ ॥

टीका—लौकिक अग्निके छूनेसे तथा घरसै रहित और उपेक्षाकरे कहिये शरीरमें रोग आदिके उत्पन्न होनेपर उसके दूरि होनेका उपाय न करै और असंकुसुक कहिये स्थिरबुद्धि रहै और मुनि कहिये मौनी हो भाव जो ब्रह्महै तिसमें मनको एकाग्र लगाके वनमें दिनराति बसता हुआ केवलभिक्षाहीके लिये ग्राममें आवै ॥ ४३ ॥ मटीका खपरा आदि भिक्षाका पात्र और बसनेके लिये वृक्षोंके मूल और मोटा फटा वस्त्र कहिये कोपीन कंथा आदि और सबोंमें ब्रह्मबुद्धि होनेसे शत्रु मित्रकान न होना यह मुक्तिका साधन होनेसे मुक्तका चिन्हहै ४४ ॥

नाभिर्नन्देत मरणं नाभिर्नन्देत जी वितम् ॥ कालमेव प्रतीक्षत नि  
 दे शं भूतको यथा ॥४५॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबे  
 त् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥४६॥

टीका—जीवने और मरनेकी इच्छा न करै किंतु अपने कर्मके आधीन मर-  
 ण जो कालहै तिसकी प्रतीक्षा करै जैसे सेवक अपने सेवनकालके शोधनेकी प्र-  
 तीक्षा करताहै ॥ ४५ ॥ बाल तथा हाड आदि बचानेके लिये आखासे देखकर  
 भूमिमें पैर रक्खै और वस्त्रसे छानिकै जल पीवै तथा सत्यसे पवित्र वाणी बोलै  
 और निषिद्ध संकल्पोंसे रहित मनसे सदा पवित्रात्मा होय ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितीक्षेत नावमन्येत कंचनान्नं च मं देहमाश्रित्य वै  
 रं कुर्वीत केनचित् ॥४७॥ क्रुध्यन्तं न प्रतिकुद्ध्येदाकुष्टः कुश-  
 लं वदेत् ॥ सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

टीका—दूसरेकी कही कठोर बातोंको सहिले किसीका अपमान न करै औ-  
 र रोग आदिकोंके स्थानमें इस चंचल देहका आश्रय लेकर इसके लिये किसीसे  
 वैर न करै ॥ ४७ ॥ क्रोध करनेवालेके ऊपर क्रोध न करै और दूसरा निंदा क-  
 रै तौ मधुर वाणी बोलै आपभी निंदा करै और सप्तद्वारावकीर्णां अर्थात् चक्षु  
 आदि पांच बुद्धिद्रिय और मन तथा बुद्धि इन सप्तों करिकै ग्रहण किये हुए प-  
 दार्थोंके मध्ये कुछ वचन न कहै किंतु ब्राह्मही विषयक कहै अनृत कहिये नाश-  
 होनेवाले कार्योंके मध्ये वाणीको न उच्चारण करै किंतु अविनाशी ब्रह्मके मध्ये  
 प्रणव तथा उपनिषदरूप वाणीका उच्चारण करै ॥ ४८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥ आत्मनैव सहायेन सु  
 खार्थी विचरेदिह ॥४९॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्य  
 या ॥ नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

टीका—सदा ब्रह्मके ध्यानमें लगा हुआ और स्वस्तिक आदियोगके आस-  
 नमें बैठा हुआ दंड कमंडलु आदिमें भी विशेष करि अपेक्षा रहित और निरामिष  
 इच्छारहित सहायसे मोक्षके सुरु चाहनेवाला  
 संसारमें विचरै ॥ ४९ ॥ भूकंप आदि उत्पाताका और नेत्रोंके फडकने आदि  
 निमित्तोंके और अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तथा सामुद्रिकसे हाथोंकी रेखाओंके  
 फल कहनेसे और नीतिमार्गके उपदेशसे और शास्त्रका अर्थ कहनेसे कभी  
 भिक्षा पानेकी इच्छा न करै ॥ ५० ॥



नंत ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥ अंकीर्णं भिक्षुकैर्वा  
न्यैरगौरमुपसंभ्रजेत् ॥५१॥ क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुं  
मुम्भवान् ॥ विचरे त्रियंतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

टीका—वानप्रस्थों करिकै तथा अन्य खानेवाले ब्राह्मणों करिकै और पक्षि-  
यों तथा कुत्तों करि युक्त घरमें भिक्षाके लिये न जाय ॥५१॥ केश नख तथा डा-  
डी मूछोंको रखाये हुये और भिक्षापात्र दंड तथा कमंडलुको लिये हुए सब  
प्राणियोंको पीडा न देता हुआ सदा विचरै ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्यस्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामर्द्धिःस्मृतं  
शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥५३॥ अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैर्द  
लं तथा ॥ एतानि र्यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

टीका—सुवर्ण आदि धातुओंको छोडके छेदों करि रहित संन्यासीके भि-  
क्षापात्र होंय उन पात्रोंकी यज्ञमें चमसोंके समान जलसे शुद्धि होती है ॥ ५३ ॥  
तूत्री काठ मृत्तिका तथा वांस आदिके खंड सेवने हुए संन्यासियोंके भिक्षापात्र  
होते हैं यह स्वायंभू मनुने कहाहै ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद्भिक्षं न प्रसंजेत विस्तरे ॥ भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्वि  
षयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥ विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥  
वृत्ते शरीरसंपाते भिक्षां नित्यं र्यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका—एकवार प्राणधारणके लिये भिक्षा करै अधिक न करै क्योंकि ब-  
हुत भिक्षाके भोजन करनेवाले यतीकी प्रधान धातुके बढनेसे स्त्री आदि विषयों-  
की इच्छा होगी ॥५५॥ रसोईका धुँआँ दूरि होनेपर और मूसलके कूटनेका श-  
ब्द बंद होनेपर तथा रसोईकी आगि बुझि जानेपर और गृहस्थतक सबोंके भो-  
जन करलेनेपर त्याग किये हुए सरीवोंमें यती सदा भिक्षाको करै ॥ ५६ ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैवं न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः  
स्यान्मात्रासंगाद्धिर्निर्गतः ॥५७॥ अभिपूजितलाभास्तु जुगुप्सते  
व सर्वशः ॥ अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥

टीका—भिक्षा आदिके न मिलनेमें दुःखी न होय और मिलनेमें सुखी न होय प्रा-  
णोंके निर्वीह योग्य भोजन किया करै और दंड कमंडलु आदि मात्राओंमेंभी यह बु-

राहै इसको छोड़ताहौं यह अच्छाहै इसको लेताहौं ऐसी बातोंको छोड़दै ॥ १७ ॥  
आदरसमेत भिक्षाके लाभकी सदा निंदा करै अर्थात् ग्रहण न करै जिस्से सत्कार  
पूर्वक भिक्षा लेनेसे देनेवालेमें स्नेह ममता आदिसे आसन्नमुक्तिभी यति जन्मरू-  
प बंधनको प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥ ह्यैवाणानि विषयैरि  
न्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ॥  
अहिंसया च भूर्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

टीका—थोड़े आहारके खानेसे और एकांत स्थानमें रहनेसे रूप आदि वि-  
शेषों करि खींची गई इंद्रियोंको निवृत्त करै अर्थात् विषयोंसे हटावै ॥ १९ ॥  
इंद्रियोंके रोकनेसे और रागद्वेषके दूरि होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे  
मोक्षके योग्य होताहै ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥ निरये चैव पतनं यातनाश्च  
यर्मक्षये ॥ ६१ ॥ विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तर्थाप्रियैः ॥ जरया  
चाभिभवं न व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुएके न करने और निंदितके करनेरूप कर्मके दोषसे उत्पन्न हुई  
मनुष्योंकी पशु आदि योनिकी प्राप्तिका और नरकमें गिरनेका और यमलो-  
कमें स्थितका तीव्र खड़्गसे काटने आदिसे उत्पन्न श्रुति पुराण आदिमें कही  
हुई तीव्र पीडाओंका चिंतवन करै ॥ ६१ ॥ प्यारे पुत्र आदिके वियोगको और अ-  
निष्ट कहिये न चाहे हुए हिंसक आदिके मिलनेको और बुढापे कारि दवाय लेने-  
को तथा रोग आदिसे पीडित होने आदिको कर्मके दोषोंसे उत्पन्न चिंतवन करै ॥ ६२ ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भं च संभवम् ॥ योनिर्कोटिसहस्रेषु  
मृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥ अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरी-  
रिणाम् ॥ धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥

टीका—इसदेहसे जीवात्माका निकलना अर्थात् मर्मके भेदन करनेवाले बड़े  
रोगों करि धिरे हुए और कफ आदि दोषों करि धिरे हुए कंठसे बडी व्यथा-  
का तथा गर्भमें उत्पन्न होनेके बड़े दुःखयुक्त कुत्ता स्यार आदिकी नीच करोड़ों  
योनियोंमें जानेको अपने कर्मके बंधन चिंतवन करै ॥ ६३ ॥ जीवात्माओंको  
अधर्मकारण दुःख होनेका और धर्म जिस कारण ऐसा अर्थ ब्रह्मका साक्षात् हो-  
ना तिस्से उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्मसुखके मिलनेका चिंतवन करै ॥ ६४ ॥

सूक्ष्मतां चान्वेषे<sup>१</sup> क्षेत यो<sup>२</sup> गेन परमात्मनः ॥ देहेषु<sup>३</sup> च संमुत्पत्तिमु  
त्तं मेष्वधमेषु<sup>४</sup> च ॥ ६५ ॥ दूषितोऽपि<sup>५</sup> चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ॥  
समः सर्वेषु<sup>६</sup> भूतेषु<sup>७</sup> न लिङ्गं<sup>८</sup> धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

टीका—योगसे अर्थात् विषयोंसे चित्तकी वृत्तिके रोकनेसे परमात्माके स्थूल शरीर आदिकी अपेक्षासे सबके अंतर्गामी भावसे सूक्ष्मता कहिये अवयव रहित होनेका उसके त्यागसे ऊचनीच देव पशु आदि शरीरोंमें जीवोंके शुभ अशुभ फल भोगनेके लिये उत्पन्न होनेका चिंतवन करै ॥ ६५ ॥ जिस किसी आश्रममें स्थित उस आश्रमके विरुद्ध आचारसे दूषित होनेपरभी और आश्रमके चिन्होंसे रहित भी सब भूतोंमें ब्रह्मबुद्धिसे समान दृष्टि होता हुआ धर्मको करै दंड आदि चिन्होंका धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु शास्त्रमें कहे हुएका करना यह धर्मकी मुख्यता दिखानेके लिये कहा है कुछ दंड आदि चिन्होंके त्यागके लिये नहीं कहा है ॥ ६६ ॥

फलं कर्तकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ॥ न नामग्रहणादेव तस्य  
वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥ संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावर्हनि वा सदा ॥  
शरीरस्त्र्यात्यये<sup>१</sup> चैव<sup>२</sup> समीक्ष्य<sup>३</sup> वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

टीका—यद्यपि रीठके वृक्षका फल जलका निर्मल करनेवाला है तबभी उसके नाम लेनेसे जल निर्मल नहीं होता है किंतु फलके डारनेसे ऐसेही केवल चिन्हधारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु कहे हुएका करना ॥ ६७ ॥ शरीरको दुःख होनेपरभी छोटी चीटी आदिकी रक्षाके लिये रातमें अथवा दिनमें सदा भूमिको देखकै विचरै ॥ ६८ ॥

अह्ना रात्र्याचं याञ्जन्तून्निहनस्त्यज्ञानतो यतिः ॥ तेषां स्नात्वा विशु  
द्ध्यर्थं प्राणायामान्पडोचरेत् ॥ ६९ ॥ प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयो  
ऽपि विधिवत्कृताः ॥ व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विश्वे यं परमं तपः ७० ॥

टीका—यती रातिदिनमें अज्ञानसे जिन प्राणियोंको मारता है उनके मारनेसे उत्पन्न पाप दूर होनेके लिये स्नान करिकै छः प्राणायामोंको करै ॥ ६९ ॥ सात व्याहृति और प्रणव करिकै युक्त पूरक कुंभक रचक विधिसे किये गये तीनि भी प्राणायाम ब्राह्मणका श्रेष्ठ तप जाना चाहिये ॥ ७० ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ॥ तथेन्द्रियाणां द-  
ह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥ प्राणायामैर्देहेदोषान्धारणा-  
भिश्च किल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ७२

टीका—जैसे घरियामें रसकै तपानेसे सुवर्ण आदि सब धातुओंके मल जल जाते हैं ऐसेही प्राणायामके करनेसे इंद्रियोंके सब दोष भस्म हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ प्राणायामोंसे राग आदि दोषोंको जलावै और अपेक्षित द्वेषमें परब्रह्म आदिमें मनकी धारणसे पापका नाश करै और प्रत्याहार कहिये विषयोंसे इंद्रियोंके स्वी-  
चनेसे विषयोंके योगका निवारण करै और ब्रह्मके ध्यानसे जो ईश्वर विषयक नही हैं ऐसे क्रोध लोभ असूया आदि गुणोंको निवारण करै ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ॥ ध्यानयोगेन संपश्येद्वृत्ति-  
मस्यान्तरात्मनः ॥ ७३ ॥ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निर्वध्यते ॥  
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

टीका—शास्त्रसे जिनका अंतःकरण संस्कारयुक्त नही है ऐसे पुरुषों करि दुः-  
खसे जाननेयोग्य ऐसी इस जीवकी ऊच नीच देव पशु आदिमें जन्मकी प्राप्ति-  
को ध्यानके योगसे कारणसहित भलीभांति जानै तिसपीछे ब्रह्मज्ञानमें निष्ठ हो-  
य ॥ ७३ ॥ तत्वसे ब्रह्मका साक्षात्करनेवाला पुरुष कर्मोंसे नही बंधता है और कर्म  
उसके फिर जन्मके लिये नही समर्थ होते हैं कारण यह है कि पहले इकठ्ठे किये-  
हुए पाप पुण्यका ब्रह्मज्ञानसे नाश होजाताहै औ दर्शन जो ब्रह्मका साक्षात्कर-  
ना है तिससे रहित संसार कहिये जन्ममरणके प्रबंधको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

अहिंसयेन्द्रियांसंगैर्वैदि केश्वैर्कर्मभिः ॥ तपसंश्र्वरणैश्चोपैः सार्धय-  
न्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥ अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशौणितलेपन-  
म् ॥ चर्मावनेदं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

टीका—निषिद्ध हिंसाके बचानेसे और विषयोंके संगसे इंद्रियोंके रोकनेसे और  
वेदमें कहे हुए नित्य कर्मोंके करनेसे और तप जे हैं उपवास चांद्रायण आदि ति-  
नके करनेसे इस लोकमें उसके पद अर्थात् ब्रह्ममें अत्यंत लयको प्राप्त होते हैं ॥  
॥ ७५ ॥ हड्डीही जिसमें थूनीके समानहैं और स्नायुरूपी रसिसयो से बंधा हुआ  
है मांस तथा रुधिरसे लिपा हुआ है और चर्मसे मढा हुआ मूत्र तथा विष्टासे भ-  
रा हुआहै इससे दुर्गन्धयुक्त है ॥ ७६ ॥

जराशोकसर्माविष्टं रोगार्थतनमातुरम् ॥ रजस्वल्मनित्यं च भू  
तावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ नदीकुलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुं  
निर्यथा ॥ तथा त्यजेन्निमं देहं कृच्छ्राद्वाहाद्विमुच्यते ॥ ७८ ॥

टीका—बुढापा तथा शोक करि युक्त और नानाप्रकारके रोगोंका स्थान  
और आतुर कहिये क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिमें घबरानेवाला तथा रजोगु-  
ण करिके युक्त और अनित्य कहिये नाश होनेवाले और पृथिवी आदि पांच भू-  
तोंसे बने हुए इस आवास कहिये जीवके घररूप देहको छोडदे जैसे फिर देह  
न धारण करनेपरै सो करै ॥ ७७ ॥ जो कर्माधीन देहके पातको देखताहै वह न-  
दीके किनारेको जैसे वृक्ष छोडदेताहै अर्थात् अपने गिरनेको नही जानता हुआ  
नदीके वेग करि गिराया जाताहै तैसे देहको छोडता हुआ ज्ञान तथा कर्मकी अ-  
धिकतासे भीष्म आदिकोंके समान स्वाधीनमृत्यु हो वह जैसे पक्षी अपनी इच्छा  
से वृक्षको छोडि देताहै तैसे इस देहको छोडता हुआ ग्राहसे मानो ऐसे संसारके  
कष्टसे छूटि जाता है ॥ ७८ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ विमृज्य ध्यानयोगेन  
ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ७९ ॥ यदा भावेन भवति सर्वभाषेषु  
निःस्पृहः ॥ तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्यर्चे हं चं शाश्वतम् ॥ ८० ॥

टीका—ब्रह्मके जानने रूप आपने प्रियके हित करनेवालोंमें सुकृतको और  
अप्रिय कहिये अनहित करनेवालोंमें दुष्कृत जो पापहै ताहि राखिके ध्यानके  
योगसे नित्य ब्रह्ममें लीन होताहै ॥ ७९ ॥ जब परमार्थसे विषयोंमें दोषोंकी भा-  
वना करिके सब विषयोंमें अभिलाष रहित होताहै तब इस लोकमें संतोषसे उत्प-  
न्न सुख होताहै और परलोकमें अविनाशी मोक्ष सुखको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥

अनेन विधिना सर्वास्त्यर्क्त्वा संगान् शनैःशनैः ॥ सर्वद्वन्द्ववि  
निर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥ ध्यानिकं सर्वमे वैतद्यदेतदभिज्ञ  
व्दितम् ॥ न ह्यनर्थात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्रुते ॥ ८२ ॥

टीका—पुत्र स्त्री विच आदिमें ममत्तरूप सब संगोको छोडके द्वंद्व जे मानस  
अपमान आदिहै तिनसे छूटि करि इस कहे हुए ज्ञानकर्मके करनेसे ब्रह्ममें आ-  
त्यंतिक लयको प्राप्त होताहै अर्थात् तद्रूप होजाताहै ॥ ८१ ॥ जो यह पुत्र पौत्र  
आदिकी ममताका त्याग और मान अपमान आदिकी हानि कही सो सब यह

ध्यानिक है अर्थात् आत्माका परमात्मारूपसे ध्यान करने करिकै होताहै जब आत्माको परमात्मा यह जानताहै तब सब सत्वोंसे विशेष नहीं होताहै अर्थात् उसका कहीं ममत्व और मान अपमान आदि नहीं होताहै और जो जीवका परमात्मापन कहाहै उसको जो नहीं जानताहै वह ममताका त्याग तथा मान अपमान आदिकी हानिको और मोक्षरूप ध्यानके फलको नहीं प्राप्त होताहै॥८२॥

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदांश्चिदैविकमेव च ॥ आर्ध्यात्मिकं च सततं वे-  
दान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥ इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजान-  
ताम् ॥ इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

टीका—यज्ञकेमध्ये जो वेद प्रवृत्तहै तथा देवताओंके मध्ये जो प्रवृत्तहै तथा जीवके मध्ये जो वेदांतमें सत्यज्ञानमन्तंब्रह्म इत्यादिक ब्रह्मके प्रतिपादन करने-वाले वेदहै उसको सदा जपै ॥ ८३ ॥ यह वेदनाम ब्रह्म उसका अर्थ नजानने-वालोंकीभी शरणकहियै गतिहै अर्थात् पाठमात्रभी पापके क्षयका कारण है तौ स्वर्ग तथा मोक्षके चाहनेवाले जो उसके अर्थके ज्ञाताहै उनका उनके उपायका उपदेश करने और प्राप्तिका कारण होनेसे यही शरण कहीये गति है ॥ ८४ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः॥सं विधूयेह पाप्मानं प्ररं ब्र-  
ह्माधिगच्छति ॥८५॥ एष धर्मोऽनुशिष्टोऽवो यतीनां नियतात्मना  
म् ॥ वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥ ८६ ॥

टीका—इस क्रमसे कहे हुए अनुष्ठानसे जो संन्यासको धारण करताहै वह इस लोकमें पापको छोडकर परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ कुटीचक बहूदक हंस और परमहंसहै संज्ञा जिनकी ऐसे चारौ यती कहिये संन्यासियोका साधारण धर्म तुमसे कहा अब यतिविशेष जे कुटीचकनामहै जो वेदमें कहे हुए अग्निहोत्र आदि कर्मके त्यागी हैं उनके मुख्य वक्ष्यमाण कर्मसंबंधको सुनिये ॥८६॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एते गृहस्थप्रभवाश्च  
त्वारः पृथगाश्रमाः ॥८७॥ सर्वेऽपि क्रमशस्त्वे ते यथाशास्त्रं निषे-  
वित्ताः ॥ यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥८८॥

टीका—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये पृथक् आश्रम कहे ये चारौ गृहस्थसे उत्पन्नहै ॥ ८७ ॥ शास्त्रके अनुसार सेवन किये हुए ये चारौ आश्रम कहे हुएके अनुसार करनेवाले ब्राह्मणको मोक्षरूप गतिको पहुंचाते हैं॥८८॥

सर्वेषामपि<sup>३</sup> चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः॥ गृहस्थ उच्यते  
 त्री<sup>३</sup> नैतान्चिर्भति हि ॥८९॥ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति  
 संस्थितिम् ॥ तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥९०॥

टीका—इन सब ब्रह्मचारी आदिकोंमें गृहस्थ अग्निहोत्र आदिके करनेसे मनु आदिकोंने श्रेष्ठ कहाहै जिस्से यह गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यती इन तीनोंको भिक्षा देनेसे पालन करताहै इस्सेभी यह श्रेष्ठहै॥८९॥जैसे सब नदीनदगंगाशोण आदि समुद्रमें अवस्थितिको प्राप्त होते हैं ऐसे गृहस्थसे अन्य सब आश्रमी गृहस्थके आधीन जीवन होनेसे उसके समीप अवस्थितिको प्राप्तहोतेहै ९०

चतुर्भिरपि<sup>३</sup> चैतैः नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः॥ दशलक्षणको धर्मः से  
 विरत्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय  
 निग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो<sup>३</sup> दश कं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

टीका—इन ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमी द्विजो करिके दशप्रकारकाहै स्वरूप जिसका ऐसा धर्म यत्नसे सदा करने योग्यहै ॥ ९१ ॥ धृति कहिये संतोष और क्षमा कहिये दूसरे करि अपकार करनेपरभी उसका बदलेका अपकारन करना और दम कहिये विकारके कारण विषयके निकट होनेपरभी मनका नहीं विगडना और अस्तेय कहिये अन्यायसे पराये धनका न लेना और शौच कहिये मिट्टी तथा जलसे देहका शुद्ध करना और इन्द्रिय निग्रह कहिये विषयोंसे चक्षु आदिका रोकना और धी कहिये शास्त्र आदिके तत्वका ज्ञान और विद्या कहिये आत्मज्ञान और सत्य कहिये यथार्थ कहना और अक्रोध कहिये क्रोधका कारण होनेपरभी क्रोध न होना यह दशप्रकारका धर्मका स्वरूपहै ॥ ९२ ॥

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीर्यते ॥ अधीत्य चानुवर्तन्ते ते<sup>३</sup> यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥ दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः ॥ वेदान्तं विधिर्वच्छ्रुत्वा संन्यसेदनुत्तमो द्विजः ॥९४॥

टीका—जो ब्राह्मण ये दशप्रकारके धर्मस्वरूपोंको पढते हैं और पढकर आत्मज्ञानकी सहायतासे अनुष्ठान करते है वे ब्रह्मज्ञानके उत्कर्षसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥९३॥ कहे हैं लक्षण जिसके ऐसे दशप्रकारके धर्मको सावधान मनसे करता हुआ गृहस्थकी अवस्थामें उपनिषद् आदिके अर्थके अध्ययन धर्मोंको गुरुके मुखसे सुनिकै देव आदि तीनि ऋणोंका शोधन करि संन्यासको करै ॥९४॥

संन्यस्य सर्वकर्मणि कर्मदोषानपाजुर्दन् ॥ नियतो वेदमभ्यस्व पु-  
त्रैश्वर्यं सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥ एवं संन्यस्य कर्मणि स्वकार्यपरमोऽ-  
स्पृहः ॥ संन्यासेनापहत्यैनः प्रीप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

टीका—गृहस्थ करि करनेयोग्य अग्निहोत्र आदिकर्मोंको छोडकर विना जा-  
ने हुए जीवोंके वध आदिसे उत्पन्न हुए पापोंको प्राणायाम आदिसें नाश करता  
हुआ जितेंद्रिय हो उपनिषदोंका ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करि पुत्रके घरमें पु-  
त्र करि दिये हुए भोजन वस्त्रसे जीविकाकी चित्तरहित हो सुखसे बसै कुटीचर-  
का यही मुख्य धर्म कहाहै ॥ ९५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे वर्तमान अग्निहोत्र  
आदि गृहस्थके कर्मोंका त्याग करि आत्माका साक्षात्कार स्वरूप कार्य है प्रधान  
जिसके ऐसा और बंधका कारण होनेसे स्वर्ग आदिकीभी इच्छारहित संन्यास धर्म-  
से पापोंको नाश करि ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होताहै ९६

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥

पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्म निबोधता ॥ ९७ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

टीका—ऋषियोंको संबोधन देकर भृगुजी कहते हैं कि तुमसे यह ब्राह्मणका  
क्रियाकलाप धर्म कहा उसीका ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ आदिके भेदसे पर-  
लोकमें अक्षय चारिप्रकारका फल कहा अब राजसंबंधी धर्मोंको सुनिये इस  
श्लोकमें तौ ब्राह्मणको चारो आश्रमोंका उपदेश होनेसे और ब्राह्मणः प्रव्रजेत्  
यह पहले कहाहै तिससे ब्राह्मणहीका संन्यासमें अधिकार है ॥ ९७ ॥

इतिश्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुङ्कभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## अथ सप्तमोऽध्यायः ।

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ॥ संभवश्च यथा तस्य  
सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा ।  
विधि ॥ सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

टीका—राजा शब्द यहां क्षत्रिय जातिहीका कहनेवाला नहीं है किंतु जिस-  
का राज्यमें अभिषेक हुआहै और जो पुरका पालन करनेवालाहै उसका वाची



है इसीसे यथावृत्तोभवेन्नृपः अर्थात् जैसे आचारवाला राजा होय उसके करनेयोग्य धर्मोंको कहौंगा और जिसप्रकारसे राजाको प्रभुने उत्पन्न किया इत्यादिसे उसकी उत्पत्ति और जैसे दृष्ट अदृष्ट फलकी संपत्ति है उस सबको कहौंगा॥१॥ ब्रह्म जो वेद है तिसकी प्राप्तिके लिये शास्त्रके अनुसार उपनयन संस्कारको प्राप्त जो क्षत्रियहै उसको शास्त्रके अनुसार अपने सब देशकी रक्षा नियमसे करनी चाहिये इससे यह दिखाया गया कि क्षत्रियही मुख्य राज्यका अधिकारी है॥२॥

— अराजके हि लोके ऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ॥ रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानममृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ॥ चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निहृत्य शाश्वतीः ॥४॥

टीका—जिसे राजा रहित जगतको भ्रमसे सब ओरोंमे चलायमान होनेपर इस सब चर अचरकी रक्षाके लिये राजाको उत्पन्न किया तिसे राजाको रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ इंद्र पवन यम सूर्य अग्नि वरुण चंद्र और कुबेर-इन सबोंके सारभूत अंशोंको स्वीचिकरि प्रभुने राजाको बनाया ॥ ४ ॥

यस्मादिषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥ तस्मादभिर्भवत्येष सर्वभूतानि तेजसां ॥५॥ तपत्यादित्यवृषे चक्षुषि च मनांसि च ॥ न च न भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

टीका—जिसे इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओंके अंशसे राजा उत्पन्न किया गया है तिसेही राजा सब प्राणियोंसे पराक्रममें अधिक होताहै ॥ ५ ॥ यह राजा अपने तेजसे सूर्यके समान देखनेवालोंकी आंखों और मनको तपाताहै पृथिवीमें इस राजाको कोई सामनेसे नहीं देखि सकताहै ॥ ६ ॥

सो ऽग्निर्भवाति वायुश्च सो ऽर्कः सोमः संधर्मराट् ॥ स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥७॥ बालोऽपि नवमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥ महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

टीका—ऐसे अग्नि आदि पहले कहे हुए देवताओंके अंशसे उत्पन्न होने और उनका कर्म करनेसे वह राजा शक्तिकी अधिकतासे अग्नि आदिका रूप होताहै ॥ ७ ॥ मनुष्य ऐसा समझिके बालकभी राजा अपमानके योग्य नहीं है जिसे यह कोई बड़ी देवताहै मनुष्यके रूपसे स्थितहै ॥ ८ ॥

एकमेव दहत्यग्निं नरं दुरुपसर्पिणम् ॥ कुलं दहति राजाग्निः संप-

शुद्रव्यसंचर्यम् ॥ ९ ॥ कार्यं सोऽवेक्ष्यं शक्तिं च देशकालौ च त-  
त्त्वतः ॥ कुरुते धर्मसिद्धयर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

टीका—जो असावधानीसे अग्निके समीप जाताहै वह दुरुपसर्पी कहाताहै उस एकको अग्नि जलाताहै उसके पुत्र आदिको नहीं और क्रोधित हुआ राजा रूपं अग्नि पुत्र स्त्री भाई आदि सब कुलको और गौ घोडा आदिको सुवर्ण आदिधनसंचयसमेत दोषीको मारताहै ॥ ९ ॥ वह राज्ञ प्रयोजनकी अपेक्षासे देशकाल तथा अपनी शक्तिको देखि कार्यकी, सिद्धिके लिये तत्त्वसे बारंबार बहुतसे रूपोंको करताहै और शक्तिके न होनेपर क्षमा करताहै और शक्तिको पाकै उखाड देताहै ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीविजयश्च पराक्रमे ॥ मृत्युश्च वसति क्रोधे स-  
र्वतेजोर्मयो हि संः ॥ ११ ॥ तं यस्तु द्वेषि संमोहात्सं विनश्यत्य-  
संशयम् ॥ तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

टीका—जिसकी प्रसन्नतामें बहुतसी लक्ष्मी होती है इस्से लक्ष्मीकी इच्छा-  
वालेको राजा सेवन करनेयोग्यहै और जिसके पराक्रममें विजय होताहै और  
जिसके क्रोधमें मृत्यु वसताहै अर्थात् जिसपर क्रोध करताहै उसको मारताहै ति-  
स्से जो पुरुष जीवना चाहै वह राजाको क्रोधित न करै जिस्से वह राजा सूर्य  
अग्नि और चंद्रमा आदिके तेजको धारण करताहै ॥ ११ ॥ मूर्खतासे जो उस  
राजासे द्वेष करताहै अर्थात् उसको अप्रसन्न करताहै वह राजाके क्रोधसे निश्चय  
नाशको प्राप्त होताहै जिस्से राजा उसके नाशमें मन लगाताहै ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मयमिष्टेषु सर्वव्यस्येन्नराधिपः ॥ अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं  
धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥ तस्यार्थे सर्वभूतानां गौतारं धर्ममा-  
त्मजम् ॥ ब्रह्मतेजोर्मयं दण्डममृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

टीका—जिस्से राजा सर्व तेजोमयहै तिस्से अपेक्षितोमें जिसयज्ञको शास्त्रसे  
करनेयोग्य निश्चय करताहै उसको स्थापित करताहै उस धर्मका उल्लंघन न करै  
॥ १३ ॥ उस राजाकी प्रयोजन सिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवा-  
ले धर्मस्वरूप पुत्र दंडको ब्रह्मके केवल तेजसे बनाया ब्रह्माने पहले पंचभूतोंसे  
बने हुए देहको नहीं बनाया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावरानि चराणि च ॥ भयोद्गोभाय क

लपन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥१५॥ तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां  
चावेक्ष्य तत्त्वतः । यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥

टीका—उस दंडके भयसे स्थावर जंगम सब प्राणी भोग करनेको समर्थ होते हैं और जो दंड न होता तौ बलवान् दुर्बलके धनदारा आदिके लेनेमें और उससे बलवानको उसके तौ किसीकाभी भोग सिद्ध न होता और वृक्ष आदि स्थावरोंके काटनेमें भोगकी सिद्धि न होती तैसेही सज्जनोंकोभी नित्य-नैमित्तिक अपने धर्मका करना योग्य हुआ न करनेमें यमयातना कहिये दंडके भयसेही ॥ १५ ॥ उस दंड तथा देश काल शक्ति और विद्या आदिको और जिस अपराधमे जो दंड योग्य होय इत्यादिको शास्त्रके अनुसार तत्त्वसे समझके अपराधियोंको दंडदे ॥ १६ ॥

सं राजा पुरुषो दण्डः सं नेता शासिता च सं ॥ चतुर्णामाश्रमाणां  
च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१७॥ दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डे  
एवाभिरक्षति ॥ दण्डः सुप्तेषु जागति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८॥

टीका—वही दंड वास्तवमें राजाहै और वही पुरुषहै और सब स्त्रियाँ है और वही नेता कहिये सबके कार्योंका प्राप्त करनेवाला और वही शासिता कहिये आज्ञा देनेवाला और वही चारो आश्रमोंका जो धर्म है उसके प्रतिपादन करनेमे प्रतिभू जो जमानत करनेवालाहै उसके समान मुनियोंने कहाहै ॥१७॥ दंड सब प्रजाओंका शासन करताहै और दंडही सब प्रजाओंकी रक्षा करताहै और सबोंके सोनेपर दंडही जागताहै अर्थात् उसके भयसे चोर आदि नहीं आते हैं और दंडहीको धर्मका कारण होनेसे दंडहीको धर्म जानते हैं यहां कार्यमे कारणका उपचार और इस लोक तथा परलोकके धर्म दंडहीके भयसे किये जाते हैं १८

समीक्ष्य सं धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ॥ असमीक्ष्य प्रणी  
तंस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥ यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं द-  
ण्डेष्वतन्द्रितः ॥ शूलं मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलान्बलवर्तारः ॥२०॥

टीका—शास्त्रकी रीति भली भांति विचारिके अपराधके अनुसार देह धन आदिमें किया गया दंड सब प्रजाओंको प्रीतियुक्त करताहै और विना विचारके लोभ आदिसे किया हुआ सब देश धन पुत्र आदिकोंको नाश कर देताहै ॥ १९ ॥ जो राजा आलस्य रहित होके दंड न दे तौ बलवान् दुर्बलोंको ऐसे मारै जैसे शूलमें छेदिके मछलियोंको भूजते हैं ॥ २० ॥

अद्योत्कार्कः मुरोडाशं श्वां चं लिह्याद्धविस्तथा ॥ स्वाम्यं चं न स्था  
 त्कस्मिंश्चित्प्रवर्तताधरोत्तरम् ॥ २१ ॥ सर्वो दण्डजितो लोको दुर्ल  
 भो हि शुचिर्नरः ॥ दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते २२

टीका—जो राजा दंड न दे तौ यज्ञोंमें सब प्रकारसे हविके अयोग्य कौआ पु-  
 रोडाश जो यज्ञभाग है तिसे खाय जाय तैसेही कुत्ता खोर आदि हविको चाटि  
 जाय और किसीका कही अधिकार न होय क्योंकि बलवान् उसको छीनले  
 और ब्राह्मण आदिवर्णोंमें जो नीच शूद्र आदि हैं वेही मुख्य होजाय ॥ २१ ॥  
 दंड करि नियममें स्थापित किया गया सब लोक सन्मार्गमें स्थित रहताहै स्वभा-  
 वसे शुद्ध मनुष्य कठिनतासे मिलताहै तैसेही यह सब जगत् दंडहीके भयसे आ-  
 वश्यक भोजन आदिके भोगमें समर्थ होताहै ॥ २२ ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ॥ तेषु भोगाय कल्प  
 न्ते दण्डनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥ दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसे  
 तवः ॥ सर्वलोकप्रकोपश्च भवेदण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

टीका—इंद्र अग्नि सूर्य वायु आदि देवता तथा दानव गंधर्व राक्षस पक्षी औ-  
 र सर्पभी जगदीश्वरके परमार्थ भयसे पीडितही वरसने आदिके उपकारके लिये  
 प्रवृत्त होते हैं ॥ २३ ॥ दंडके न करनेसे अथवा अमुचित करनेसे ब्राह्मण आदि  
 वर्ण आपसमें स्त्रीगमन करनेसे वर्णसुंकर होजाय और धर्म अर्थ काम मोक्ष है  
 फल जिनका ऐसे सब शास्त्रोंके नियम नष्ट होजाय और चोरी तथा साहस आ-  
 दिसे दूसरेका अपकार करनेसे सब लोकमें उपद्रव उत्पन्न हो जाय ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ॥ प्रजास्तत्र न मुह्यं-  
 ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ २५ ॥ तस्याहुः संप्रणेतां राजानं सत्य-  
 वादिनम् ॥ समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

टीका—जिस देशमें शास्त्रके प्रमाणसे जाना हुआ श्यामवर्ण लाल जिसके ने-  
 त्र ऐसाहै देवता जिसका ऐसा दंड विचरता है वहां प्रजा व्याकुल नहीं होती है  
 जो दंड देनेवाला विषयके अनुरूप दंडको भलीभांति जानता होय ॥ २५ ॥ सत्यबो-  
 लनेवाले और विचारिके करनेवाले तथा तत्व अतत्वके विचारमें उचित बुद्धिसे  
 शोभायमान और धर्म अर्थ कामके जाननेवाले अभिषेक आदि गुणों करि युक्त  
 राजाको मनु आदि दंडका प्रवर्तक अर्थात् चलानेवाला कहते हैं ॥ २६ ॥

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिर्वर्धते ॥ कामात्मा विषमः क्षु-  
द्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥ दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकू-  
र्तात्मभिः ॥ धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सवान्धवम् ॥ २८ ॥

टीका—उस दंडको भलीभांति प्रवृत्त करता हुआ राजा धर्म अर्थ और काम से दृढ़िको प्राप्त होताहै और जो विषयकी इच्छा रखनेवाला तथा विषम क्रोध करनेवाला क्षुद्र तथा छलका दंडनेवाला राजा होताहै वह अपनेही किए हुए दंड करि मंत्री आदिके कोपसे अथवा अधर्मसे नष्ट किया जाताहै ॥ २७ ॥ दंड अति उत्कृष्ट तेजस्वरूपहै और अपने शास्त्र कहिये राजनीति करि जिसके आत्माका संस्कार नहीं है ऐसे पुरुष करि दुःखसे धारण किया जाताहै इस्से राज-धर्म रहित राजाहीको पुत्रबंधुसमेत नाश करताहै ॥ २८ ॥

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ॥ अंतरिक्षगतांश्चैवं मु-  
नीन् देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥ सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृत-  
बुद्धिना ॥ न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

टीका—दोष आदिकोंकी अपेक्षा विना जो दंड किया जाताहै वह बंधुसमेत राजाके नाशके पीछे धन्य आदि दुर्गको और राष्ट्र कहिये देशको तथा स्थावर-जंगम समेत पृथिवी लोकको और हविके न देनेके कारण आकाशमें स्थित ऋषियों तथा देवताओंको पीडित करताहै ॥ २९ ॥ मंत्री सेनापति और पुरोहित आदिकी सहायतासे हीन मूर्ख लोभी और जिसकी बुद्धिका शास्त्रसे सत्कार नही हुआहै अर्थात् जिसने नीतिशास्त्र नहीं पढाहै और जो विषयोंमें लगा हुआ है ऐसे राजा करि न्यायसे दंड नहीं दिया जासक्ताहै ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥ प्रणेतुं शक्यते द-  
ण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥ स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्दृशदण्ड-  
श्च शत्रुषु ॥ सुहृत्स्वाजिह्वः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमांन्वितः ॥ ३२ ॥

टीका—द्रव्य आदिकी शुद्धतासे जो युक्तहै और जिसकी प्रतिज्ञा सत्यहै और जो शास्त्रसे व्यवहारको करताहै और जिसके सहायक मंत्री आदि अच्छे हैं और जो तत्वको जानताहै ऐसा राजा दंड करि सकताहै ॥ ३१ ॥ अपने देशमें शास्त्रकी रीतिसे व्यवहार करनेवाला होय और शत्रुओंमें तेज दंड देनेवाला होय और स्वभावसे स्नेहके स्थान मित्रोंमें कुटिल न होय और थोडा अपराध करनेपरभी ब्राह्मणोंमें क्षमायुक्त होय ॥ ३२ ॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोच्छेनापि जीवतः ॥ विस्तीर्यते यंशो  
 लोके तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥ अतस्तु विपरीतस्य नृपतेर  
 जितात्मनः ॥ संक्षिप्यते यंशो लोके घृतविन्दुरिवाम्भसि ॥ ३४ ॥

टीका—शिलोच्छृत्तिसेभी जीविका करनेवाला अर्थात् जिसके द्रव्यका भं-  
 डार खाली होगयाहै ऐसेभी उक्त प्रकारसे चलनेवाले राजाकी कीर्त्ति जलमें  
 तैलकी बूंदके समान लोकमें फैलजातीहै ॥ ३३ ॥ कहे हुए आचारसे विपरीत  
 आचारवाले अजितेंद्रिय राजाकी कीर्त्ति जलमें घीकी बूंदके समान लोकमें  
 सकुडि जाती है ॥ ३४ ॥

स्वैस्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ॥ वर्णानामाश्रमाणां च रा  
 जाः सृष्टोऽभिरक्षिता ॥ ३५ ॥ तेन यद्यत्सभृत्येन कर्त्तव्यं रक्षता  
 प्रजाः ॥ तत्तद्द्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

टीका—क्रमसे अपने अपने धर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण आदि सब वर्णों त-  
 था ब्रह्मचारी आदि आश्रमोंकी रक्षा करनेवाला राजा विधाताने उत्पन्न किया-  
 है तिससे उनकी रक्षा न करता हुआ राजा प्रायश्चित्ती होताहै इससे यह सूचित  
 हुआ कि अपने धर्मके त्यागियोंकी न रक्षा करनेमेंभी राजा प्रायश्चित्ती नहीं  
 होताहै ॥ ३५ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करते हुए मंत्री समेत राजाको जो जो कर्त्त-  
 व्यहै वह सब तुमसे कहोंगा ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ॥ त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्ति  
 ष्टेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥ वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शु  
 चीन् ॥ वृद्धसेवी हि सततं रक्षो भिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

टीका—प्रतिदिन प्रातःकाल उठिकै ऋक् यजु सामनाम तीनों विद्याओंके  
 ग्रंथोंके अर्थ जाननेवाले और नीतिशास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणोंका सेवन करै अर्थात्  
 उनकी आज्ञासे काम करै ॥ ३७ ॥ अवस्था तथा तपस्या आदिसै वृद्ध और  
 अर्थ तथा ग्रंथसै वेदके जाननेवाले और बाहर भीतर द्रव्य आदिसै शुद्ध ऐसे  
 ब्राह्मणोंका सदा सेवन करै जिससे वृद्धका सेवन करनेवाला सदा हिंसा करने-  
 वाले राक्षसों करिकै भी पूजा जाताहै अर्थात् वेभी उसका हित करते हैं और  
 मनुष्य तौ बहुतही हित करते हैं ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्दिनयं विनीतात्मापि नित्यंशः ॥ विनीतात्मा हि

मृपतिं न विनश्यति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ बहवोऽविनयात्रघ्ना राज्ञा  
नः सपरिच्छदाः॥वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे४०॥

टीका—स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र आदिके ज्ञानसे नम्रभी अधिक नम्रताके लिये उनसे विनयका अभ्यास करै जिस्से नम्र राजाका कभी नाश न ही होताहै ॥ ३९ ॥ हाथी घोडा धनके भंडार आदि सामग्री करि युक्तभी राजा विनय रहित होनेसे नष्ट होगये और सामग्री हीन बनके रहनेवालेभी बहुतसे विनयकरि राज्यको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

वेनो विनष्टोऽविनयात्रहुषश्चैव पार्थिवः ॥ सुदासो यवर्नश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ४१ ॥ पृथुस्तु विनयाद्वाज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च ॥ कुबेरश्च धनैश्चर्य ब्राह्मण्यं चैव गाधिर्जः ॥ ४२ ॥

टीका—वेण तथा नहुष राजाभी और यवनका पुत्र सुदासनाम तथा सुमुख और निमि ये अविनयसे नाशको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ पृथु तथा मनुने विनयसे राज्य पाया और कुबेर विनयसे धनके स्वामी हुए और गाधिके पुत्र विश्वामित्रने क्षत्रिय होनेपरभी उसी शरीरसे ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ आन्वीक्षिकीं च त्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां जये यो गं समातिष्ठेद्विनिश्चम ॥ जितेन्द्रियो हि शक्योति वंशेस्थापयितुं प्रजाः ४४

टीका—त्रिवेदीरूपविद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे तीनों वेदोंको ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करै और शाश्वती कहिये सदासे चलि आई हुई नीतिविद्या जो अर्थशास्त्र है तिसको उसके जाननेवालोंसे सीखै तथा युक्ति और प्रत्युत्तरमें सहायता देनेवाली आन्विक्षिकी कहिये तर्कविद्याको तथा उदय और दुखमें हर्ष विषादकी शांत करनेवाली ब्रह्मविद्याको सीखै और वाणिज्य पशु पालन आदि-वार्त्ताको और उसके आरंभ धनके उपायार्थोंको उनके जाननेवाले कर्षक आदि कोंसे सीखै ॥ ४३ ॥ चक्षु आदि इंद्रियोंको विषयोंमें आसक्त होनेसे रोकनेमें सदा यत्न करै क्योंकि जितेन्द्रिय राजा सदा प्रजाओंको वंशमें रखनेके लिये समर्थ होताहै ॥ ४४ ॥

दर्शं कामसंमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजनानि च ॥ व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु मही

पतिः ॥ विर्युज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तुं ॥ ४६ ॥

टीका—आदिमें सुख और अंतमें दुःख देनेवाले दशकामके और आठ क्रोधके व्यसनोको यत्नसे त्याग करै ॥ ४६ ॥ जिस्से कामके व्यसनोमें प्रसक्त कहिये लगा हुआ राजा धर्म तथा अर्थसे हीन होजाताहै और क्रोधके व्यसनोमें प्रसक्त प्रकृति कोपसे देहके नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वभः परिव्रादः स्त्रियो मदः ॥ तौर्यत्रिकं वृथात्था च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥ पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूर्यार्थदूषणम् ॥ वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

टीका—उन व्यसनोको नामसे दिखाते हैं मृगया कहिये अहेर और अक्ष कहिये जुआ खेलना और सब कामोकी नाश करनेवाले दिनकी नींद और पराये दोषका कहना तथा स्त्रीका भोग और मद्यपानसे उत्पन्न मद और तौर्यत्रिक कहिये नाचना गाना बजाना आदि और वृथा भ्रमण करना यह दशका गण काम जो सुखकी इच्छाहै उससे उत्पन्न है ॥ ४७ ॥ पैशुन्य कहिये अज्ञात दोषका प्रकट करना और साहस कहिये बंधन आदिसे दंड देना और द्रोह कहिये छलसे मारना और ईषा कहिये दूसरेके गुणोका न सहना और असूया कहिये पराये गुणोमें दोषोका प्रकट करना और अर्थ दूषण कहिये द्रव्यका ले लेना तथा देने योग्यका न देना और वाग्दंड कहिये गाली देना और पारुष्य कहिये ताडन आदि यह आठका गण क्रोधसे उत्पन्न जानिये ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥ तं यत्नेन जियेच्छोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥ पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम् ॥ एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

टीका—जिसको कामसे तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोके गणका कारण स्मृतियोंके बनानेवाले जानते हैं उस व्यसनके कारणरूप लोभको यत्नसे त्याग करै जिस्से ये दोनो गण लोभसे उत्पन्न होते हैं कही धनके लोभसे और कही दूसरे प्रकारके लोभसे ॥ ४९ ॥ मद्यका पाना फांसोसे खेलना स्त्रीका भोग और मृगया कहिये अहेर क्रमसे पढे हुए ये चारि कामसे उत्पन्न व्यसनोमेंसे बहुत दोषयुक्त होनेसे इन चारोको अतिशय करिके दुःखका कारण जानै ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥ क्रोधजेऽपि गणे वि



• द्यात्कष्टमेतत्रिकं सदा ॥५१॥ सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुष  
ङ्गिणः ॥ पूर्वपूर्वं गुरुतरं विद्याद्वयसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

टीका—क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणमें दंड देना वाणीकी कठोरता तथा अर्थदूषण इन तीनोंको बहुत दोषयुक्त होनेसे सदा अधिक दुःख देनेवाले जानै ॥ ५१ ॥ काम तथा क्रोधसे उत्पन्न इस मद्यपान आदि सात व्यसनोंके गण जो सब राजमंडलमें बहुधा स्थितहै उसमेंसे प्रशस्त चित्तवाला राजा पहले पहलेको अगले अगलेसे अति कठिन जानै सोई कहतें हैं जैसे जुवासे मद्यका पीना अतिकष्ट देनेवालाहै क्योंकि मद्य पीनेसे संज्ञा न रहनेके कारण इच्छापूर्वक चेष्टा करनेसे देह धन आदिके विगाडनेवाले दोष होते हैं और जुआमें तौ धन आता है अथवा जाताहै और स्त्रीव्यसनसे जुआ अति कष्टका देनेवालाहै जुआमें वैरका उत्पन्न होना आदि नीतिशास्त्रके कहे हुए दोष होते हैं और मूत्रपुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है और स्त्रीव्यसनमें फिर संतानकी उत्पत्ति आदि गुणोंका योगभी है और मृगया तथा स्त्रीका व्यसन इन दोनोंमें स्त्रीव्यसन दुष्टहै उसमें कार्योंका नही देखना और कालके उल्लंघन करनेसे धर्मलोप आदि दोष होते हैं और मृगयामें तौ श्रम करनेसे आरोग्य आदि गुणोंकाभी योगहै इस प्रकार कामसे उत्पन्न चारि व्यसनोंके गणमें पहला पहला भारी दोषयुक्तहै और क्रोधसे उत्पन्न वाक् पारुष्य आदि तीनिमें वाक्पारुष्यसे दंडपारुष्य दुष्टहै क्योंकि अंगच्छेद आदिका समाधान नही होसकताहै और वाक्पारुष्य में तौ दान मान और पानीके छिडकनेसे क्रोध रूप अग्निकी शांति होसकती है और अर्थदूषणसे वाक्पारुष्य दोषयुक्त तथा मर्मस्थानकों पीडा देनेवाला है क्योंकि वाक्पारुष्यकी चिकित्सा अतिकठिनहै सोई कहाहै की नप्ररोह तित्नाकृतं अर्थात् वाणीका किया हुआ फिर नही ऊगताहै अर्थदूषणका तौ बहुत साधन देनेसे समाधान होसकताहै इस भांति क्रोधज तीनि व्यसनोंमें पहला पहला अतिदुष्टहै इस्से इस्को यत्नसे त्यागिदे ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ॥ व्यसन्यधोऽधो व्रजति

स्वर्वात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥ मौलाच्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षा

न्कुलोद्गतान् ॥ सचिंवात्सर्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥

टीका—ऊपर कहेहुये व्यसन और मृत्यु उसमेंसे व्यसन बहुत दुःखदहै कारण व्यसनी मनुष्य व्यसनसे नीचेनीचे बहुत नरकमें जाता है और निर्व्यसनी मरा हुआ ऊपर स्वर्गमें जाताहै ५३ मौल कहिये बापदादेके क्रमसे सेवक होय वेभी लोभ आदिके

क्रमसे अन्यथा करसकते हैं इसके रोकने लिये शास्त्रविदः कहिये शास्त्रके जाननेवाले हों और शूर हों तथा शस्त्रविद्याको भली भांति जानते हों और शुद्ध कुलमें उत्पन्न हों ऐसे सात अथवा आठ मंत्रियोंको मंत्र आदि करनेके लिये नियत करै ५४

अपि यत्सुंकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥ विशेषतोऽसहायै न  
किंतु राज्यं महोदयम् ॥ ५५ ॥ तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं  
संधिविग्रहम् ॥ स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

टीका—सुखसेभी करनेयोग्य कामको एक मनुष्य कठिनाईसे करसकता है विशेष करिकै राज्य जिसका बड़ा फल है उसको एक कैसे कर सकता है ॥ ५५ ॥ उन मंत्रियोंके साथ सामान्य कहिये मंत्रोंमें नही छुपानेयोग्य ऐसे संधिविग्रह आदिकोंको सोचै और जिससे स्थित होय ऐसे स्थान तथा दंड कोश पुर देशरूप चारि प्रकारके सोचै और जिससे दंड दिया जाय ऐसे दंड कहिये हाथी घोड़ा रथ पयादे आदिके पोषणका चिंतवन करै और कोश कहिये धनकासमूह उसकी आमदनी तथा खरचका तथा पुरकी रक्षा आदिका और देशके वसनेवाले मनुष्य पशु आदिके धारणकी योग्यताका चिंतवन करै और समुदाय कहिये धान्य हिरण्य आदिके उत्पात्तिस्थानका चिंतवन करै तथा गुप्ति कहिये अपनी और देशकी रक्षा चिंतवन करै और अपने परीक्षा किए हुए अन्नका भोजन करै और प्राप्त हुए धनके प्रशमन कहिये सत्पात्रमें देने आदिका चिंतवन करै ५६

तेषां स्वस्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्पृथक् ॥ समस्तानां च  
कार्येषु विद्व्याद्धितमात्मनः ॥ ५७ ॥ सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्म-  
णेन विपश्चिता ॥ मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

टीका—एकांतमें उन सब सचिवोंके अपने अपने अभिप्रायोंको जानि कार्योंमें जो अपना हित होय उसको करै ॥ ५७ ॥ इन्हीं सब सचिवोंमेंसे विशिष्ट कद्रिये विद्वान् ब्राह्मणके साथ संधिविग्रह आदि, वक्ष्यमाण छः गुणों करि युक्त प्रकृष्टमंत्रका निरूपण करै ॥ ५८ ॥

नित्यं तस्मिन्समाश्रितः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥ तेन सार्धं वि  
निश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥ ५९ ॥ अन्यानिपि प्रकुर्वीत शु-  
चीन्प्राज्ञानवस्थितान् ॥ सम्यगर्थसमाहृतान्मार्त्यान्सुपरीक्षितान् ॥

टीका—उस ब्राह्मणमें सदा विश्वासयुक्त हो जिनको करै उन सबोंका समर्पण करै तिसपीछे उसके साथ निश्चय करिकै सब कामोंका आरंभ करै ॥ ५९ ॥

द्रव्यदान आदिसे शुद्ध बुद्धिमान् तथा भलीभाँति धनके जोड़नेवाले और धर्म आदिसे-परीक्षा किए गये और भी कर्म सचिवोंको राजा नियत करै ॥६०॥

निर्वर्तेतास्य यावाद्भिरतिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतो ऽतन्द्रितान्  
दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥ तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्  
दक्षान् कुलोद्गतान् ॥ शुचीनाकरकर्मन्ते भीरून् नन्तनिवेशने ॥ ६२ ॥

टीका—इस राजाका काम जितने मनुष्योंसे होय उतनेही आलस्य रहित कामोंमें उत्साहवाले और उन कार्योंके जाननेवाले मनुष्योंको वहां नियतकरै ६१ इन सचिवोंमेंसे वीर चतुर और अपने कुलकी मर्यादाके रखनेवाले शुद्ध तथा निस्पृहको धन उत्पन्न होनेके स्थानमें रक्खै और अंतनिवेशने कहिये भोजन शयन तथा रनवास आदिमें भीरुकहिये डरनेवालोंको नियत करै ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ इन्द्रिताकारचेष्टज्ञं शु  
चिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् दे  
शकालवित् ॥ वर्षुष्मान् वीतंभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशंस्यते ॥ ६४ ॥

टीका—दृष्ट अदृष्ट अर्थशास्त्रका जाननेवाला और इंगित कहिये अभिप्रायका सूचित करनेवाला और आकार कहिये देहधर्म आदि मुखकी प्रसन्नता अथवा विकृत होना रूप प्रीति तथा अप्रीतिका सूचित करनेवाला और चेष्टा कहिये क्रोध आदिका सूचित करनेवाला हाथोंका फटकारना आदिके तत्वका जाननेवाला और द्रव्यके देने और स्त्री आदि व्यसनसे रहित शुद्धतायुक्त तथा चतुर और कुलीन दूत नियत करै ॥६३॥ अनुरक्त कहिये लोगोमें प्रीतियुक्त होय और धन स्त्री आदिमें शुद्धतायुक्त होय और दक्ष कहिये चतुर होय और स्मृतिमान् कहिये संदेशकी न भूलै और देश तथा कालका जाननेवाला होय और सु-रूप कहिये सुंदररूपका होय और निर्भय होय तथा अच्छा बोलनेवाला होय अर्थात् संस्कृतआदिभी बोल सकै ऐसा दूत राजाका प्रशंसायोग्य होताहै ॥ ६४ ॥

अर्मात्ये दण्डं आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया । नृपतौ कोशराष्ट्रे  
च दूते संधि विपर्ययो ॥ ६५ ॥ दूत एव हि संधत्ते भिन्नत्येव च  
संहतान् ॥ दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा नैवा ॥ ६६ ॥

टीका—सेनापतिके आधीन दंड और दंडके सुंदर शिक्षा और राजाके आधीन देश तथा कोश कहिये द्रव्य समूहहैं और मेल तथा विगाड दूतके आधी-

नहै क्योंकि उसकी इच्छासे होते हैं ॥ ६५ ॥ दूतही भिन्नको मिलाताहै और जो मिले हैं उनको फोड़ता है और दूत परदेशमें उस कर्मको करताहैं जिसे मिले हुए फूटि जातेहैं अथवा नही फूटते हैं ॥ ६६ ॥

सं विद्यादस्यै कृत्येषु निर्गुढोद्भितचेष्टितैः॥ आकारमिद्भित चेष्टां  
भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥ बुद्धौ च सर्वं तत्त्वेन परराजचि  
कीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

टीका—वह दूत इस प्रतिपक्षी राजाके कर्त्तव्य कामोंका आकार तथा हृदय का भाव और चेष्टासे जानै औरगुप्त दूत प्रतिपक्षी राजाका परिजन होके उस-समीप नियोजितकिये गये क्रोधी लोभी और अपमान किये गये सेवकोंमें उन-के आकार और हृदयका भाव तथा चेष्टासे प्रतिपक्षी राजाका काम जिसको वह किया चाहताहै जानै ॥ ६७ ॥ जिसके लक्षण कहे हैं ऐसे दूतके द्वारा प्रति-पक्षी राजाके चाहे हुये कर्त्तव्य कामोंको तत्वसे जानिकै ऐसा यत्न करै जिसमें अपनेको पीडा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रोयमनाविलम् ॥ रम्यमानतस्मान्तं स्वां  
जीव्यं देशमार्वसेत् ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ॥  
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

टीका—जिसदेशमें जल तथा लूण कम होता होय और पवन तथा घाम बहुत होता होय तथा बहुतसे धान्य आदि करि युक्त होय और जिसमें बहुतसे धर्मात्मा मनुष्य रहते हों और रोग आदि जिसमें कम होय और फल फूल वृक्ष लता आदिकोंसे मनोहर होय और जिसमें वीर आदि सब प्रजा नअत्रापू-र्वकविकार रहित रहती होय और खेती कृषिज्य आदि जीविका सुलभ होय ऐसे देशका आश्रय लेकर राजा निवास करै ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं कहिये जिसके चारो और १० कौशतक मरु कहिये जल रहित देश होय और मही दुर्गं कहिये पत्थरों अथवा ईटोंसे बना हुआ चौडाईसे दुगुणा ऊँचा अर्थात् वा-रह हाथ आदि ऊँचा और युद्धके लिये चलने फिरने योग्य और रोकयुक्त झरो खा वा रंदो करि युक्त परकोटेसे घिरा हुआ स्थान और जलदुर्गं कहिये अथा ह जलसे सब और घिरा हुआ और वार्क्षदुर्गं बाहर चारों और चारि कोश त-क बड़े वृक्षका टोंके लता गुल्मआदिसे व्याप्त होय और नृदुर्गं चारों और रह-नेवाले हाथी घोडा रथ युक्त बहुतसे पया दों करि रक्षा किया गया होय और

द्रव्यदान आदिसे शुद्ध बुद्धिमान् तथा भलीभाँति धनके जोड़नेवाले और धर्म आदिसे-परीक्षा किए गये और भी कर्म सचिवोंको राजा नियत करै ॥६०॥

निर्वर्तेतास्य यावाद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतो ऽतन्द्रितान्  
दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥ तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्  
दक्षान् कुलोद्गतान् ॥ शुचीनाकरकर्मान्ते भीरून् नर्तनिवेशने ॥ ६२ ॥

टीका—इस राजाका काम जितने मनुष्योंसे होय उतनेही आलस्य रहित कामोंमें उत्साहवाले और उन कार्योंके जाननेवाले मनुष्योंको वहाँ नियतकरै ६१ धन सचिवोंमेंसे वीर चतुर और अपने कुलकी मर्यादाके रखनेवाले शुद्ध तथा निस्पृहको धन उत्पन्न होनेके स्थानमें रखै और अंतर्निवेशने कहिये भोजन ज्ञान तथा रनवास आदिमें भीरुकाहिये डरनेवालोंको नियत करै ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ इन्द्रिताकारचेष्टज्ञं शु  
चिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः  
शकालविद् ॥ वर्षुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशंस्यते ॥ ६४ ॥

टीका—दृष्ट अदृष्ट अर्थशास्त्रका जाननेवाला और इंगित कहिये अभिप्रायका सूचित करनेवाला और आकार कहिये देहधर्म आदि मुखकी प्रसन्नता अथवा विकृत होना, रूप प्रीति तथा अप्रीतिका सूचित करनेवाला और चेष्टा कहिये क्रोध आदिका सूचित करनेवाला हाथोंका फटकारना आदिके तत्त्वका जाननेवाला और द्रव्यके देने और स्त्री आदि व्यसनसे रहित शुद्धतायुक्त तथा चतुर और कुलीन दूत नियत करै ॥६३॥ अनुरक्त कहिये लोगोंमें प्रीतियुक्त होय और धन स्त्री आदिमें शुद्धतायुक्त होय और दक्ष कहिये चतुर होय और स्मृतिमान् कहिये संदेशको न भूलै और देश तथा कालका जाननेवाला होय और सु-रूप कहिये सुंदररूपका होय और निर्भय होय तथा अच्छा बोलनेवाला होय अर्थात् संस्कृतआदिभी बोल सकै ऐसा दूत राजाका प्रशंसायोग्य होताहै ॥ ६४ ॥

अमात्ये दण्डं आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया । नृपतौ कोर्शराष्ट्रे  
च दूते संधिं विपर्ययो ॥ ६५ ॥ दूत एव हि संधत्ते भिन्नत्येव च  
संहतान् ॥ दूतस्तत्कुर्वते कर्म भिद्यन्ते येन वा नैवा ॥ ६६ ॥

टीका—सेनापतिके आधीन दंड और दंडके सुंदर शिक्षा और राजाके आधीन देश तथा कोश कहिये द्रव्य समूहहैं और मेल तथा विगाड दूतके आधी-

नहै क्योंकि उसकी इच्छासे होते हैं ॥ ६५ ॥ दूतही भिन्नोको मिलाताहै और जो मिले हैं उनको फोड़ता है और दूत परदेशमें उस कर्मको करताहैं जिस्से मिले हुए फूटि जातेहैं अथवा नही फूटते हैं ॥ ६६ ॥

सं विद्यादस्यै कृत्येषु निर्गुणैर्द्विजैश्चेष्टितैः ॥ आकारमिद्विजैश्चेष्टितं  
भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥ बुद्धौ च सर्वं तत्त्वेन परराजचि  
कीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

टीका—वह दूत इस प्रतिपक्षी राजाके कर्त्तव्य कामोंका आकार तथा हृदय का भाव और चेष्टासे जानै औरगुप्त दूत प्रतिपक्षी राजाका प्ररिजन होके उस-समीप नियोजितकिये गये क्रोधी लोभी और अपमान किये गये सेवकोंमें उन-के आकार और हृदयका भाव तथा चेष्टासे प्रतिपक्षी राजाका काम जिसको वह किया चाहताहै जानै ॥ ६७ ॥ जिसके लक्षण कहे हैं ऐसे दूतके द्वारा प्रति-पक्षी राजाके चाहे हुये कर्त्तव्य कामोंको तत्वसे जानिकै ऐसा यत्न करै जिसमें अपनेको पीडा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् ॥ रम्यमान्तस्सामन्तं स्वाँ  
जीव्यं देशमार्वसेत् ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वाँ ॥  
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वाँ समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

टीका—जिसदेशमें जल तथा लूण कम होता होय और पवन तथा घाम बहुत होता होय तथा बहुतसे धान्य आदि करि युक्त होय और जिसमें बहुतसे धर्मात्मा मनुष्य रहते हों और रोग आदि जिसमें कम होय और फल फूल वृक्ष लता आदिकोंसे मनोहर होय और जिसमें वीर आदि सब प्रजा नश्रतापूर्-वकविकार रहित रहती होय और खेती कृषिज्य आदि जीविका सुलभ होय ऐसे देशका आश्रय लेकर राजा निवास करै ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं कहिये जिसके चारों ओर १० कौशतक मरु कहिये जल रहित देश होय और मही दुर्ग कहिये पत्थरों अथवा ईटोंसे बना हुआ चौड़ाईसे दुगुणा ऊँचा अर्थात् वा-रह हाथ आदि ऊँचा और युद्धके लिये चलने फिरने योग्य और रोकयुक्त झरो खा वा रंदो करि युक्त परकोटेसे घिरा हुआ स्थान और जलदुर्ग कहिये अथा ह जलसे सब ओर घिरा हुआ और वार्क्षदुर्ग बाहर चारों ओर चारि कोश त-क बड़े वृक्षका टोंके लता गुल्मआदिसे व्याप्त होय और नृदुर्ग चारों ओर रह-नेवाले हार्थी घोडा रथ युक्त बहुतसे पया दों करि रक्षा किया गया होय और

गिरिदुर्ग कहिये बडी कठिनतासे चढनेके योग्य पहाडउपर सकडे मार्गों करि युक्त भीतर नदी झरणा आदिके जलसे युक्त और बहुत अन्न जिनमें उत्पन्न होताहै ऐसे खेतोंकरि युक्त ऐसे दुर्गोंमेंसे किसी एक दुर्गका आश्रय लेकर राजा अपना नगर बसावै ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ॥ एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥ त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषांभृगुर्गर्ताश्रयाऽप्चराः ॥ त्रीण्युत्तराणि क्रमशः पृवङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

टीका—इन सब दुर्गोंमें गिरि दुर्गके गुण अधिकहैं तिस्से संपूर्ण प्रयत्नोंसे गिरिदुर्गका आश्रय ले क्योंकि इसमें शत्रु कठिनाईसे चढि सकताहै और दूरसे थोडेही यत्नसे चलाई हुई शिला आदिसे बहुत शत्रुकी सेना मारी जा सकती है इत्यादिक बहुतसे गुणहैं ॥ ७१ ॥ इन दुर्गोंमेंसे तीनि पहले दुर्गोंमें मृग आदि रहते हैं उनमें पहले धन्वदुर्गमें मृग रहते हैं और महीदुर्गमें विलोंके रहनेवाले मूसे आदि रहते हैं अपदुर्गमें मगर आदि जल जीव रहते हैं और अन्य तीनि वृक्षदुर्ग आदिकोंमें बंदर आदि रहते हैं उनमें वृक्षदुर्गमें बंदर और नृदुर्गमें मनुष्य तथा गिरिदुर्गमें देवता रहते हैं ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतात्रोपहिंसन्ति शत्रवः ॥ तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥ शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

टीका—जैसे दुर्गमें रहनेसे मृगादिकोंको व्याध आदि शत्रु नहीं मार सकते हैं ऐसेही दुर्गमें बैठे हुए राजाको शत्रु नहीं मारसकते ॥ ७३ ॥ जिस्से प्राकार जो किला आदि है उसमें बैठे हुआ एकसौ शत्रुओंसे युद्ध कर सकताहै और प्राकारमें बैठे हुए सौ धनुष्यधारी दशहजार शत्रुओंको लडा सकते हैं तिस्से दुर्ग बनानेका उपदेश किया जाताहै ॥ ७४ ॥

तत्स्योदायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥ ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥ तस्य मध्येसुपर्याप्तं कारयेद्दृढमात्मनः ॥ गुप्तं सर्वतुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

टीका—वह दुर्ग खड्ग आदि शस्त्रों तथा धन धान्य हाथी घोडे आदि वाहनों और ब्राह्मणों तथा कारीगरों और यंत्रों तथा घास पानी आदिसे भरा हु-

आ होय ॥ ७६ ॥ उस दुर्गके मध्यमें सुंदर और पर्याप्त कहिये पृथक् २ स्त्री गृह देवालय शस्त्र अस्त्रोंका गृह तथा अग्निशाला आदिक बने होय और वह खाई परकोटे आदिसे रक्षित होय और सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फल फूलों करि युक्त होय और चूनेसे पोता हुआ सपेद होय और बावडी आदिके जलसे युक्त होय और वृक्ष जिसमें होय ऐसा अपने रहनेका घर बनवावे ॥ ७६ ॥

तद्द्व्यास्योद्ग्रहेद्रायां सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥ कुले मर्हति संभू  
तां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥ पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादे  
वं चत्विजम् ॥ तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्वुर्वतानिकानि च ॥ ७८ ॥

टीका—उस घरमें स्थित होकै समान वर्ण और शुभसूचक लक्षणों करि युक्त बड़े कुलमें उत्पन्न मनकी हरनेवाली सुंदर रूपवती गुणवाली स्त्रीसे विवाह करै ७७ अथर्वणकी विधिसे पुरोहितको करै और कर्म करनेके लिये ऋत्विजको बरै वे इस राजाके गृहमें कहे हुए तीनों अग्नियों करि होनेयोग्य कर्मोंको करै ॥ ७८ ॥

यजेत राजा ऋतुभिर्विधैराप्तदक्षिणैः ॥ धर्मार्थं च वै विप्रैर्भ्यो द-  
द्याद्भोगान्धर्मानि च ॥ ७९ ॥ सावत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रान्दाहारयेद्  
लिम् ॥ स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्धुं ॥ ८० ॥

टीका—राजाअनेक प्रकारके बहुत दक्षिणावांले अश्वमेध आदि यज्ञोंको करै और ब्राह्मणोंको स्त्री गृह शय्या आदि भोगोंको तथा सुवर्णवस्त्र आदि धनोंकोदे ॥ ७९ ॥ राजा समर्थ मंत्रियोंसे वर्षमें लेनेयोग्य धान्य आदिके भागको मगवावै और लोकमें कर आदिके लेनेमें शास्त्रके द्वारा निष्ठ होय तथा अपने देशके रहनेवाले मनुष्योंमें स्नेह आदिसे पिताके समान वर्त्ते ॥ ८० ॥

अर्ध्यक्षान् विधिधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपैश्चितः ॥ तेऽस्य सर्वाण्य-  
वेक्षेरन्तृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ ८१ ॥ आवृत्तानां गुरुकुलाद्भि-  
प्राणां पूजको भवेत् ॥ नृपाणामर्क्षयो ह्यर्षं निर्धिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ८२

टीका—हाथी घोडा रथ पयादोंके तथा घनो स्थानोंमें पंडित और कामोंके चतुर देखनेवाले मनुष्योंको जुदे २ रक्खै वे इस राजाके उन हाथी घोडे आदि के स्थानोंमें काम करनेवाले मनुष्योंके सब कामोंको अच्छेप्रकारसे करनेके लिये देखै ॥ ८१ ॥ वेद पठिकै गुरुकुलसे लौटे हुए गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंकी नियम करिकै धन धान्यसे पूजा करै ॥ ८२ ॥



नै तं स्तेनानं चामित्रा हरन्ति न च नश्यति ॥ तस्माद्ब्राह्मणानिधा  
तव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८३॥ न स्कन्दते न व्यथते न वि  
नश्यति कर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ८४

टीका—ब्राह्मणमें रक्खी हुई निधिको न तो चोर ले सकते हैं न शत्रु अन्यानिधि-  
के समान भूमिमें रक्खा हुआ काल वशसे नाशको प्राप्त होता है अथवा स्थान-  
के भ्रमसे नहीं दीखता है तिस्से अक्षय और अनंत फल जो यह निधिके समान  
निधि कहिये धनका समूह है सो राजा करि ब्राह्मणोंमें रखनेयोग्य है अर्थात् उ-  
नके देनेयोग्य है ॥ ८३ ॥ अग्निमें जो हावि होमी जाती है वह कभी नीचे गिर  
जाती है कभी व्यथा करै है अर्थात् सूखि जाती है और कभी दाह आदिसे न-  
ष्ट होजाती है और ब्राह्मणके मुखमें जो होमाजाता है उसमें कहे हुए दोष नहीं  
होते हैं तिस्से अग्निहोत्र आदिसे ब्राह्मणका देना श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवोर्प्राधीते शतसाहस्रमर्नन्तं वेद  
पारगे ॥८५॥ पात्रस्य हि विंशेषेण श्रद्धधानतयैव च ॥ अल्पं वा  
बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय आदिके लिये जो दान देना है वह समान फ-  
ल है अर्थात् जिस देने योग्य वस्तुका जो फल सुना है उससे अधिक वा न्यून न-  
ही होता है जो क्रियारहित ब्राह्मण आपको ब्राह्मण कहता उसको ब्राह्मणब्रुव  
कहते हैं उसको देनेका फल पहलेकी अपेक्षा दूना होता है ऐसे प्रकांत कहिये वे-  
दाध्ययनके आरंभ करनेवाले ब्राह्मणमें लाख गुना फल होता है और सब शास्त्र-  
के पढनेवालेमें अनंत फल होता है ॥ ८५ ॥ पात्रको पाकर श्रद्धासे दिया हुआ  
दान देनेवालेको प्रलोकमें थोडा बहुत फल देनेवाला होता है ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाहुतः पालयन् प्रजाः ॥ न निर्वर्तेत संग्रामा  
त्क्षात्रं धर्ममर्नुस्मरन् ॥८७॥ संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पाल  
नम् ॥ शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८८॥

टीका—बराबरके बलवाले अथवा अधिक बलवाले वा हीन बलवाले राजा-  
करि युद्धके लिये बुलाया हुआ राजा प्रजाओंका पालन करता हुआ युद्धसे न हटै  
और युद्धके लिये बुलाये हुए क्षत्रियको अवश्य युद्ध करना इस क्षत्रियके धर्मका  
स्मरता रहै ॥८७॥ युद्धसे न हटना और प्रजाओंका पालन करना तथा ब्राह्मणों  
की सेवा करना ये सब राजाके बहुतही स्वर्ग आदि कल्याणके उपाय हैं ॥८८॥

आह्वेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः॥ युध्यमानाः फरं श  
त्तयां स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥ न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्य  
मानो रणे रिपून् ॥ न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजैः ९०

टीका—आपसमें स्पर्द्धासे एकको एक मारनेकी इच्छा करनेवाले राजा बड़ी शक्तिसे सन्मुख हो युद्धको करते हुए स्वर्गको जाते हैं ॥ ८९ ॥ कूट आयुध कहिये ऊपरसे काठ आदिसे बने होंये और भीतर उनके तीक्ष्णशस्त्ररूपे हुए होंये ऐसे आयुधोंसे युद्ध करता हुआ राजा शत्रुको न मारै और जिनके फल काँटेके आकार टेढे मांसके खीचनेवाले होंय तथा विषके बुझे हुए और अग्नि करि तपाये हुए ऐसे बाणोंसे शत्रुको न मारै ॥ ९० ॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ॥ न मुक्तकेशं ना  
सी न न तवास्मीति वादिनम् ॥ ९१ ॥ न सुप्तं न विसत्राहं न  
नग्रं न निरायुधम् ॥ नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

टीका—आप रथमें बैठा हुआ रथको छोड़िके भूमिमें खड़े हुएको न मारै तथा नपुंसकको और हाथ जोरिके सन्मुख आये हुए को और बाल जिसके खुले होय और जो बैठा होय तथा मै तुझारा हों ऐसे कहनेवालेको न मारै ॥ ९१ ॥ सोतेहुएको विना कवचवालेको नंगेको शस्त्ररहितको नही लडनेवालेको युद्ध देखने वालेको और दूसरेसे युद्ध न करनेवालेको न मारै ॥ ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नाति नार्तिपरिक्षतम् ॥ न भीतं न परावृत्तं सतां  
धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥ यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते प्र  
रैः ॥ भर्तुर्यं हुष्वृतं किंचित्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूटि गये हैं और जो पुत्र आदिके शोकसे व्याकुल है और जो बहुत चोटोंसे व्याकुल है तथा जो युद्धसे भागा है इन सर्वोंको काठिन क्षत्रिय धर्मका स्मरण करता हुआ न मारै ॥ ९३ ॥ डरिके भागा हुआ जो युद्धमें मारा जाता है वह पालन करनेवाले अपने स्वामीके समस्त पापोंको प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपाजितम् ॥ भर्ता तत्सर्वमादत्ते  
परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥ रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्नि  
यः ॥ सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयाति तस्य तत् ॥ ९६ ॥

टीका—युद्धमें भागिकर मारे गये पुरुषका परलोकके लिये जो कुछ जोडा पुण्य वह उसके सब स्वामीको मिलताहै ॥ ९५ ॥ रथ घोडा हाथी छत्र धन धान्य पशु स्त्री ये सब और गुड नोन आदि वस्तु और कुप्य कहिये सोना चांदी छोडकै तांबा आदि जो जुदा जीतिकर घरका लावै वह उसीका है और सोना चांदी रत्न आदि धन तौ राजाहीको देना चाहिये ॥ ९६ ॥

राज्ञश्च दैद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥ राज्ञां च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥ एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः स सनातनः॥ अस्माद्धर्माच्च्यवेत क्षत्रियो धन् रणे रिपून् ॥ ९८ ॥

टीका—वे योद्धा जीते हुए धनमेंसे राजाको उद्धारदें अर्थात् जितना उसमें सुवर्ण चांदी रत्न आदि उत्तम धन होय सो और हाथी घोडे आदि वाहनभी राजाको देने चाहिये और राजाभी साथ जीते हुए धनमेंसे सब योद्धाओंको उनके अधिकारके योग्य बांधिदे ॥ ९७ ॥ यह जो निंदारहित सनातन योद्धाओंका धर्म कहा युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मको न छोडै ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः॥ रक्षितं वर्धयेच्चैवं वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ९९ ॥ एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ अस्यै नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

टीका—नहीं जीते हुए भूमि सुवर्ण आदिके जीतनेकी इच्छा करै और जीते हुएकी यत्नसे रक्षा करै और रक्षा किये हुएको वाणिज्य आदिसे बढ़ावै और बढ़े हुएको पात्रोंमें दान करै ॥ ९९ ॥ यह चारिप्रकारका पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदि हैं तिसका प्रयोजन ऐसा जानै इस्से आलस्य रहित हो सदा इसको करै १००

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेद्वेक्षया॥ रक्षितं वर्धयेद्दृष्ट्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १ ॥ नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥ नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ २ ॥

टीका—जो नहीं प्राप्तहै उसकी हाथी घोडा रथ पयादे रूपदंडसे जीतनेकी इच्छा करै और जीते हुएकी देखनेसे रक्षा करै और रक्षा किये हुएको स्थल तथा जलके मार्गसे वाणिज्य आदि बढ़नेके उपायोंसे बढ़ावै और बढ़े हुएको शास्त्रमें कहे हुए विभागसे पात्रोंको दान करै ॥ १ ॥ हाथी घोडा युद्ध आदिकी शिक्षा का अभ्यास रक्खै और सदा प्रकाश की हुई शस्त्रविद्या आदिसे अपने पुरुषार्थ-

को प्रकट करै और मंत्रआचार चेष्टा आदिको सदा गुप्त रखै और सदा शत्रुके व्यसन आदि छिद्रोंके देखनेमें लगा रहै ॥ २ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ॥ तस्मात्सर्वाणि भू-  
तानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥ अमाययैव वर्त्तेत न कथंचन माय-  
या ॥ बुद्ध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ ४ ॥

टीका—जिसका दण्ड सदा उद्यतहै उससे सब जगत् डरताहै तिस्से सब जग-  
तको दण्डहीसे अपने आधीन करै ॥ ३ ॥ मंत्री आदिकोमें कपटसे न वर्त्ते जो क  
पट करै तौ सबोंका विश्वास योग्य न रहै धर्मकी रक्षाके लिये सत्यहीसे व्यवह-  
र करै और यत्नसे अपने पक्षकी रक्षा करता हुआ शत्रुकी किई हुई प्रजाके भेद  
रूप मायाको दूतके द्वारा जानै ॥ ४ ॥

नास्य च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥ गूहेत्कूर्म इवा  
ङ्गानि रक्षेद्विपरमात्मनः ॥ ५ ॥ बर्कवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च प  
राक्रमेत् ॥ वृर्कवच्चालम्बेत् शशवच्च वि निष्पतेत् ॥ ६ ॥

टीका—ऐसा यत्न करै जिससे शत्रु प्रकृतिके भेद आदि अपने छिद्रको न  
जानै और शत्रुके प्रकृतिभेद आदि छिद्रोंको गुप्त दूतोसे जानै और कैद्युआ जैसे  
अपने मुख चरण आदि अंगोंको अपने देहमें छुपाय लेताहै ऐसे राज्यके अंगमंत्री  
आदिकोंको दान सन्मान आदिसे अपने वश करै और दैवसे जो प्रकृतिभेदरूप  
छिद्र होजाय तौ यत्नसे उसका निवारण करै ॥ ५ ॥ जैसे बगला जैसे जलमें अति-  
चंचलभी मछलीसे पकडनेके लिये एकाग्र मनसे ध्यान लगाकै चिंतवन करताहै  
ऐसेही एकान्तमें रक्षायुक्तभी शत्रुके देश लेने आदि अर्थोंका चिंतवन करै और  
जैसे सिंह प्रबल बहुत मोटेभी हाथीके मारनेको उछलताही है ऐसे बलवान करि  
दवाया हुआ थोडे बलवाला, संपूर्ण शक्तिसे शत्रुके मारनेको चढाई करै और जै-  
से भेडिया पालनेवाले करि रक्षा किये हुएभी पशुको रक्षककी असावधानीमें मा-  
रिही लेताहै ऐसे दुर्ग आदिमें स्थितभी शत्रुको असावधान पाकै मारै और जैसे  
शशा नानाप्रकारके धनुषधारी व्याधोंके बीचमें आकै टेढी गतिसे उछलकर भा-  
गि जाताहै ऐसे आप निर्बल भी बलवान शत्रुसे घेरे जानेपर कैसे हू श-  
त्रुकी असावधानी पाकै गुणवान दूसरे राजाका आश्रय लेनेके लिये भागिजाया ॥ ६ ॥

एवं विजेयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ॥ तानानयेदंशं सर्वा

न्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ७ ॥ यदि ते तु न तिष्ठयुरुपायैः प्रथमै-  
स्त्रिभिः ॥ दण्डेनैव प्रसह्यतां चैनकैर्वशमानयेत् ॥ ८ ॥

टीका—इस कहे हुए प्रकारसे विजयमें प्रवृत्त राजाके जे विरोधी होंय उन सबोंको साम दान भेद दंड नाश उपायोंसे वशमें लावै ॥७॥ वे जो विजयके वि-  
रोधी पहले तीनि उपायोंसे न मानै तौ उनको बलसे देश आदिके विगाडने करि  
युद्धसे हौले हौले लघु गुरु दंडके क्रमसे दंडहीसे वश करै ॥ ८ ॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पाण्डिताः ॥ सामदण्डौ प्रशंस-  
न्ति नित्यं राष्ट्रभिवृद्धये ॥ ९ ॥ यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं  
च रक्षति ॥ तथा रक्षन्प्रपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥

टीका—चारौ सामादिक उपायोंमें साम दंडहीकी देशकी वृद्धिके लिये पांडि-  
त सदा प्रशंसा करते हैं ॥९॥ जैसे खेतमें साथ उत्पन्न हुए धान्य तृण आदिकोंमें-  
से निराव करनेवाला धान्योंकी रक्षा करताहै और तृणोंको उखाडताहै ऐसे रा-  
जा देशमें दुष्टोंको मारै और शिष्टोंसमेत देशकी रक्षा करै ॥ ११० ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥ सोऽर्चिराद्धृश्यते रा-  
ज्यांजी वित्तञ्च सर्वान्धवः ॥ ११ ॥ शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते  
प्राणिनां यथा ॥ तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् १२ ॥

टीका—जो राजा दुष्ट शिष्टके ज्ञान विना अपने देशके सब मनुष्योंको शा-  
स्त्रमें कहे हुए धन लेने तथा मारने आदिके कष्टसे पीडा देताहै वह शीघ्रही देश-  
के वैर नाम प्रजाके कोपसे और अधर्म करि राज्यसे तथा जीनेसे पुत्रादिको स-  
मेत भ्रष्ट होजाताहै ॥ ११ ॥ जैसे आहार आदिके रोकने करि शरीरके मुखानेसे  
प्राणियोंके प्राण क्षीण होजातेहैं ऐसेही राजाओंकेभी देशको पीडा देनेसे प्रजा-  
के कोप आदि करि प्राणनाशको प्राप्त होते हैं तिससे राजाको अपने शरीरके स-  
मान देशकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमर्चयेत् ॥ सुसंगृहीतराष्ट्रो हि  
पार्थिवः सुखमेधते ॥ १३ ॥ द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधि-  
ष्ठितम् ॥ तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ १४ ॥

टीका—देशकी रक्षा करनेमें आगे कहे हुए इस उपायको करै जिस्से देशकी  
रक्षा करनेवाला राजा विना श्रमके बढ़ताहै ॥१३॥ दो ग्रामोंको मध्यमें तथा तीनि

के व पांचके अथवा सौ ग्रामोंके बीचमें गुल्म कहिये रक्षा करनेवाले पुरुषोंके समूह को सच्चे प्रधानपुरुषको उसका अधिष्ठाता करिके देशकी रक्षाका स्थान करै ॥ १४ ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ १५ ॥ ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ॥ शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ १६ ॥ विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥ शंसेद्ग्रामशतेशस्तु स हस्रपतये स्वयम् ॥ १७ ॥

टीका—एकग्रामका दशग्रामका वीसका तथा सौके स्वामी नियत करै ॥ १५ ॥ एकगांवका स्वामी जो गांवमें हुए चोर आदि दोषोंका आप प्रबंध न करसकै तो दश गांववालेसे कहे और ऐसेही दशगांववाला वीस गांववालेसे और वीस गांववाला सौ गांववालेसे कहै ऐसा होनेपर चोर आदि कंटकोंका अच्छी रीतिसे उद्धार होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवा सिभिः ॥

अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यैवाभुयात् ॥ १८ ॥

टीका—एक ग्रामके अधिकारीकी वृत्ति कहते हैं जो अन्नपान ईधन आदि ग्रामवासियोंको प्रतिदिन राजाके लिये देनेयोग्य होय उसको वर्षमें देनेयोग्य धान्यके अष्टम भाग आदिको छोडके ग्रामकास्वामी जीविकाले लिबे ग्रहण करै १८

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि चाग्रामं ग्रामशताध्यक्षः

सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ १९ ॥ तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्या

णि चैव हि राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः १२०

टीका—धर्मका एक हल आठ बैलोंका होता है और जीविकावालोंका छः बैलोंका और गृहस्थोंका चार बैलों और दो बैलोंका ब्रह्महत्यावालोंका एक हल होताहै यह हारीतस्मृतिमें लिखाहै छः बैलोंका मध्यम हल होता है ऐसे दो हलोंसे जितनी भूमि जोती जाय उसको कुल कहते हैं उसको एक ग्रामका स्वामी जीविकाके लिबे ग्रहण करै ऐसेही वीस ग्रामका स्वामी पांच कुलोंको ग्रहण करै और सौ ग्रामका स्वामी एक मध्यम ग्रामको और हजारका स्वामी एक मध्यम पुरको जीविकाके लिये ग्रहण करै ॥ १९ ॥ उन ग्रामके बसनेवालोंके ग्रामसंबंधी कामो तथा निज कामोंको राजाका हित करनेवाला मंत्री आलस्यको छोडकर देखै ॥ १२० ॥

नगरेनगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥ उच्चैःस्थानं घोररूपं न  
क्षेत्राणामिर्वं ग्रहम् ॥ २१ ॥ स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्व  
यम् ॥ तेषां वृतं परिणयेत्संभ्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ २२ ॥

टीका—प्रत्येक नगरमें उच्चैःस्थानं कहिये कुल आदिसे बड़े और प्रधानभूत  
तथा हाथी-घोड़े आदि सामग्रीसे भयानक नक्षत्रोंमें शुक्र आदि ग्रहके समान  
तेजस्वी कार्य द्रष्टाको नगरका स्वामी करै ॥ २१ ॥ वंह नगरका अधिकारी ग्रा-  
भके स्वामी आदिकोंको विना प्रयोजन सबकालमें बलसे देखै और दूतोंसे स-  
वोंकी मनकी बातोंको जानै ॥ २२ ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठः ॥ भृत्या भवन्ति  
प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥ २३ ॥ ये कार्याकेभ्योऽर्थमेव  
गृह्णीयुः पापचेतसः ॥ तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् २४

टीका—बहुधा राजाके अधिकारी पराये धनके लेनेवाले और शठ कहिये  
बंचक होते हैं इसलिये राजा उनसे प्रजाकी रक्षा करै ॥ २३ ॥ जो पापबुद्धिरक्षाके  
अधिकारी कार्याश्रियों (मुकदमेवालों) से वाणीके छल आदिको प्रकट करि लोभसे  
अशास्त्रीय धनको लेते हैं राजा उनका सर्वस्व छीनके अपने देशसे निकालदे ॥ २४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥ प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं  
स्थानकर्मानुरूपतः ॥ २५ ॥ पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य  
वेतनम् ॥ पाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥ २६ ॥

टीका—राजाओंकाम करनेवाले जो स्त्री और भृत्यजनहैं उनकी उत्कृष्ट म-  
ध्यम तथा अपकृष्ट स्थानके योग्य प्रतिदिनकी जीविका करै ॥ २५ ॥ घरके झा-  
रनेवाले और पानी लानेवालेको एक पण नित्य दे पणका लक्षण आगे कहेंगे  
और महीनेमें एक द्रोण अन्नदे छठे महीने दो वस्त्र दे और उत्तम कर्म करनेवा-  
लेको छ पण नित्य दे और छठे मासमें छ जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास छ  
द्रोण धान्य दे और इसी रीतिसे मध्यम कर्म करनेवालेको तीन पण नित्य दे  
और छठे महीने दो जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास तीन द्रोण धान्यदे ॥ आ-  
ठ खुट्टीकी एक कुंची होती है और आठ कुंचियोंका एक पुष्कल होताहै और  
चारि पुष्कलोंका एक आढक और चारि आढकोंका एक द्रोण होताहै और चा-  
रि द्रोणकों खारी कहते हैं ॥ २६ ॥

ऋयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥ योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य व  
णिजो दापयेत्करान् ॥ २७ ॥ यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च  
कर्मणाम् ॥ तथा विक्ष्यं नृपो राष्ट्रं कल्पयेत्सततं करान् ॥ २८ ॥

टीका—यह वस्त्र नोन आदि वस्तु कितनेमें मोल ली है और बेचनेमें कितना मिलेगा और कितनी दूरसे लाया है और इस वणिजके भोजनमें शाकदालि आदिके खरचमें कितना लगा है और वन आदिमें चोर आदिकोंसे रक्षा करनेमें कितना खर्च हुआ है और इसके नफेका योग कितना है इन सब बातोंको देखकर वनियोंसे करलेवै ॥ २७ ॥ जैसे राजा प्रजा पालन आदि कर्मके फलसे और जैकिसानबनिआ आदि खेतीवाणिज्य आदि कर्मके फलसे युक्त होता है ऐसा सोचकै राजा देशके करोंको लेवै ॥ २८ ॥

यथा लपालपमदन्त्याद्यं वार्योकावत्सषट्पदाः ॥ तथा लपालपो ग्रही  
तन्व्यो राष्ट्रद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ २९ ॥ पञ्चाशद्भाग आदियो राज्ञा  
पशुहिरण्ययोः ॥ धान्यानानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ ३० ॥

टीका—इसमें दृष्टांत कहते हैं जैसे जौक बछडा और भ्रमर थोडा २ रक्त दूध तथा मधुको खाते हैं ऐसे ही राजा राज्यसे वर्षके करको थोडा थोडा लेवै ॥ २९ ॥ पशु और सुवर्णके लाभमेंसे राजा पचासवां भाग लेवै ऐसेही धान्योंका छठवां आठवां अथवा बारहवां भाग लेवै भूमिकी उत्कर्षता न्यूनता तथा जुताईके न्यूनके अधिक भ्रमको देखकै यह कर लेनेकी न्यूनता अधिकताका विकल्प है ॥ ३० ॥

आददीतार्थ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् । गन्धौषधिरसानां च पु  
ष्पमूलफलस्य च ॥ ३१ ॥ पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य  
च ॥ मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्यैश्ममयस्य च ॥ ३२ ॥

टीका—वृक्ष १ मांस २ मधु ३ घी ४ गंध ५ औषधी ६ रस ७ पुष्प ८ मूल ९ फल १० पत्र ११ शाक १२ तृण १३ चर्म १४ वांसका पात्र १५ मट्टीका पात्र १६ पत्थरका पात्र १७ इन सत्रहोंका छठा भाग राजा लेवै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

त्रियमाणोऽप्याददीतं न राजा श्रोत्रियात्करम् ॥ न च क्षुधाऽस्य  
संसीदे च्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥ ३३ ॥ यस्य राष्ट्रं विषये श्रो  
त्रियः सीदति क्षुधा तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचि रेणैव सीदति ३६



टीका—धनके क्षीण होनेपरभी राजा वेदपाठी ब्राह्मणसे कर न और इसके देशमें बसता हुआ वेदपाठी भूखसे पीडित न होय ॥ ३३ ॥ जिस राजाका श्रोत्रिय भूखसे दुख पाताहै उसका देशभी उसकी भुधासे थोड़ेही कालमें नष्ट हो जाताहै ॥ ३४ ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वांस्यं वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ सं रक्षेत्सर्वतश्चैनं  
पितां पुत्रं मि वौरसम् ॥ ३५ ॥ सं रक्ष्यमाणो राज्ञाय कुरुते धर्ममन्व  
हम् ॥ तेनायुर्व धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ ३६ ॥

टीका—शास्त्रका पढना और आचरण जानिकै इसकी उनके अनुरूप धर्मसे जीविका नियत करै और जैसे पिता अपने निजपुत्रकी रक्षा करताहै ऐसे चोर आदिकोंसे इसकी रक्षा करै ३५ राजा करि अच्छी भांति रक्षा किया हुआ वह श्रोत्रिय जिस धर्मको प्रतिदिन करताहै उससे राजाकी आयु धन तथा देशबढताहै ३६ ॥

यत्किंचिदपि वर्षस्य द्वापयेत्करसंज्ञितम् ॥ व्यवहारेण जीवन्तं  
राजां राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ ३७ ॥ कारुकांश्चिल्पिन्श्चैव शूद्राश्चात्मो  
पजीविनः ॥ एकैकं कारयेत्कर्म मासिमासि महीपतिः ॥ ३८ ॥

टीका—राजा अपने देशमें थोड़े मोलकेभी शाकपत्तें आदिके खरीदने बेचनेसे जीविका करनेवाले निकृष्ट मनुष्यसे थोड़ाभी कर वर्षमें दिवावै ॥ ३७ ॥ कारुक कहिये सूफकार आदि शिल्पियोंसे जो कुछ ऊँचे हैं और शिल्पी कहिये लुहार आदि और शूद्र जो शरीरसे श्रम करिकै जीविका करते हैं जैसे बोझाढोनेवाले उनसे राजा महीने महीनेमें एक एक दिन काम करवा लेवै ॥ ३८ ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं प्रेषां चातितृष्णया ॥ उच्छिन्दन् ह्यात्म  
नो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ ३९ ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं  
वीक्ष्य महीपतिः ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमत् ॥ ४० ॥

टीका—प्रजाके स्नेहसे कर तथा महसूल आदिके न लेनेसे अपने मूलको न उखाडै तथा अतिलोभसे बहुतसा कर लेकै दूसरोंका मूल न उखाडै ये दोनों बातें न करै जिस्से अपने मूलको उखाडकै कोश कम होनेसे आपको पीडा देताहै तथा दूसरोंका मूल उखाडकै उनको पीडा देताहै ॥ ३९ ॥ कार्यविशेषको देखकै किसी काममें तेज और किसीमें मृदु होय एक रूपको न धारण करै जिस्से उक्तरूप राजा सबको प्यारा होताहै ॥ ४० ॥

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्रौञ्जं दान्तं कुलौद्धतम् ॥ स्थापयेदासने त  
स्मिन् खिन्नैः कार्येक्षणे नृणाम् ॥४१॥ एवं सर्वं विधायेदमि तिकै  
र्त्व्यमात्मनः ॥ युक्तश्चै वा प्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ ४२ ॥

टीका—आप कार्योंके देखनेमें खेदयुक्त राजा धर्मके जाननेवाले पंडित जि-  
तेन्द्रिय तथा कुलीन श्रेष्ठ मंत्रीको उस कार्यदर्शनके स्थानमें नियत करै ॥ ४१ ॥  
इस भाँति कहे हुए प्रकारसे अपने सब कार्योंको करिकै मनको लगाय प्रमाद र-  
हित हो प्रजाओंकी रक्षा करै ॥ ४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्रात् ह्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ॥ संपश्यतः स  
भृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥४३॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजा  
नामेव पालनम् ॥ निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥४४॥

टीका—मंत्री आदिकों समेत जिस राजाके देखते देशसे पुकारती हुई प्रजा  
चौर आदिकों करि लूठी जाती है वह मरा हुआ है जीवता नहीं है ॥ ४३ ॥ प्र  
जाकी रक्षा करनाही क्षत्रियका सबसे बड़ा धर्म है जिस्से कहा हुआ है ल  
क्षण और फल जिसका ऐसे कर आदिका भोगनेवाला राजा धर्मसे युक्त होता है ४४

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचैः सर्माहितः ॥ हुताग्निर्बाह्यणांश्चाच्य  
प्रविशेत्सं शुभां सभाम् ॥४५॥ तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य  
विसर्जयेत् ॥ विमृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥४६॥

टीका—वह राजा रातिके पिछिले पहर उठिकै मूत्रपुरीषत्याग आदि शौ-  
चको करिकै एकाग्र मन हो अग्निहोत्रको करि ब्राह्मणोंको पूजि सुंदर शुभसंभामें  
प्रवेश करै ॥ ४५ ॥ उस सभामें बैठा हुआ राज्य दर्शनके लिये आई हुई सब प्र-  
जामें बोलने और दर्शन देने आदिसे आनंदित करिकै विदा करै उनको प-  
ठवाकै मंत्रियोंके साथ संधिग्रहादिकोंका विचार करै ॥ ४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगर्तः ॥ अरण्ये निःशर्लाके वा म  
न्त्रयेदविभाषितः ॥ ४७ ॥ यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथ  
ग्जनाः ॥ सं कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहिनोऽपि पार्थिवः ॥४८॥

टीका—पर्वतके ऊपर बैठकै अथवा शूने महलके ऊपर और वनमें अथवा  
एकांत स्थानमें मंत्रके भेद करनेवालोसे छुपिकै कामोंके आरंभका उपाय १ पुरुषे

प्र द्रव्यसंपत्ति २ देशकाल विभाग ३ विनिपातका प्रतीकार ४ और कार्यकी सिद्धि ५ इस पंचांग मंत्रका विचार करै ॥ ४७ ॥ जिस राजाके मंत्रियोंसे भिन्न और लोग मिलिके उसके मंत्रको नही जानतें हैं वह कोश क्षीण होनेपरभी सब पृथिवीको भोगताहै ॥ ४८ ॥

जडमूकान्धबधिरास्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ॥ स्त्रीम्लेच्छव्याधि  
तव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥ ४९ ॥ भिन्दन्त्यर्वमता मन्त्रं ति  
र्यग्योनास्तथैव च ॥ स्त्रियश्चैवं विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ५०

टीका—बुद्धि वाणी नेत्र कान आदिसे बिगड़े हुए मनुष्योंको तथा तिर्यक्  
ग्रीनि तोता मैना आदिको और अति बूढ़े स्त्री म्लेच्छरोगी और अंगहीनों  
को मंत्रके समय निकाल देवै ॥ ४९ ॥ पुराने पापके कारण जडपन आदिके  
पानेवाले ये अधर्मके कारण अपमानित होनेपर मंत्रभेदको करि देते है तैसेही  
तोता आदि और अतिबुद्ध और स्त्री विशेषकरि चंचल बुद्धि होनेसे मंत्र भेद कर  
देते हैं तिससे उन सबोंको यत्नसे निकाल देवै ॥ १५० ॥

मध्यदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ॥ चिन्तयेद्धर्मकामार्था  
न्सार्धं तै रैकं एव वा ॥ ५१ ॥ परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपाज  
नम् ॥ कन्यानां संप्रदानं च कुमार्याणां च रक्षणम् ॥ ५२ ॥

टीका—दिनके मध्यमे अथवा रात्रिके मध्यमें स्वस्थ शरीर राजा मंत्रियोंके  
साथ अथवा अकेला धर्म अर्थ कामके करनेका चिंतवन करै ॥ ५१ ॥ बहुधा आ-  
पसमें विरोधवाले धर्म अर्थ कामके विरोधको बचाके उनके अर्जनका उपाय शो-  
चै और अपने कार्यकी सिद्धि लिये पुत्रियोंके देनेका निरूपण करै और विन-  
यके सिखाने तथा नीतिशास्त्रकी शिक्षाके लिये कुमारोंकी रक्षाका चिंतवन करै ५२

दूतसंप्रेषणं चैवं कार्यशेषं तथैव च ॥ अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधी  
नां च चेष्टितम् ॥ ५३ ॥ कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ॥  
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥ ५४ ॥

टीका—गुप्त चिट्ठी पत्री आदि लेखके लेजानेवाले दूतोंके पराये देशमें भेज-  
नेका चिंतवन करै तथा आरंभ किये हुए कामोंके शेष पूरे होनेका चिंतवन करै  
स्त्रियोंका चेष्टित बहुतही विषम होताहै जैसे चोटीमें छुपाये हुए शस्त्रसे रानीने वि-  
दूरथको मारा और विषसे लिये हुए विछुरेसे विरक्त रानीने काशिराजको

मारा इत्यादिक बातोंको जानकर रनवासकी स्त्रियोंका चेष्टित सखी दासी आदिकोंसे जानै और दूसरे राजाओंके यहां भेजे हुए दूतोंके चेष्टितोंको दूसरे दूतोंसे जानै ॥ ५३ ॥ प्रजाओंसे कर लेना १ भून्व्योंको धन देना २ इस लोक तथा परलोकके लिये कर्म करना ३ तथा न करना ४ इस बातकी मंत्रियोंको आज्ञा देना कार्यसंदेहमें आज्ञा देना ५ प्रजाके लेन देन आदिके व्यवहारका देखना ६ व्यवहारमें जो हारै उस्से शास्त्रोक्त धन लेना ७ पापियोंको प्रायश्चित्त करना ८ इन आठों कर्मोंका चिंतवन करना और तत्वसे अर्थात् सिद्धांतसे पंचवर्गका चिंतवन करै वह पंचवर्ग लिखते हैं दूसरेकी भीतरी बातका जाननेवाला निर्भय बोलनेवाला कपटव्यवहार करनेवाला ऐसा मनुष्य जीविकाके लिये आवै तौ उसको दान मनसे अपना करके एकांतमे कहै कि जिसका दुष्ट कर्म देखो उसी समय हमसे कहौ १ संन्याससे जो भ्रष्ट हैं उनका दोष तौ लोकमे विदित है उनको बुद्धि तथा पवित्रतासे युक्त करिकै बहुत पैदावाले मठमें स्थापित करिकै एकांतमें पहलेकी भांति बोलै और जिस भूमिमे बहुतसा धान्य उत्पन्न होय वह भूमि उसको जीविकाके लिये देवै वह भ्रष्टसंन्यासी राजाके काम करनेवाले जो दूसरे संन्यासीहैं उनको भोजन और वस्त्र देवै २ और जीविकासे रहित खेतीकरनेको बुद्धि तथा शौचसे गुप्त करिकै एकांतमें पहलेकी भांतिसे बोलै और खेती करनेकेलिये अपनी भूमि देवै ३ और जीविका रहित बनियाको पहलेकी भांति कहिकै धन तथा मानको दे अपने आधीन करिकै बनियोंके कर्म करवै ४ जीविकासे रहित मुडिया होय अथवा जटाधारी होय उसको गुप्तजीविका देकर एकांतमें पहलेकी भांति कहै और कपटी बहुतसे मुडिये तथा जटाधारी शिष्यों समेत तपस्या करै महीने दो महीने सबोंके आगे मुठीभर वेर आदिका भोजन करै और रातिमें कोई न जानै तब भोजन करै और शिष्य उसकी सिद्धाई को प्रकाशित करै कि गुरुजी भूत भविष्य वर्तमान तीनोकालके जाननेवाले हैं इस्से सब लोग अपने २ अर्थको कहेंगे ५ ये पांचो क्रमसे कापटिक उदास्थित गृहपति वैदिक तापस कहाते है इन पांचो कर्मोंका चिंतवन करै इन्होंसे दूसरे राजाका और अपने मंत्री आदिकी प्रीति तथा अप्रीतिको जानिकै उसका उपाय करै कि कौनसा राजा मेलचाहता है और कौनसा विगाड चाहताहै यह जानिकै वैसा उपाय करै ॥ ५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥ उदासीनप्रचारं च  
शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥५५॥ एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समा

सैतः॥ अष्टौ चान्या समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः ॥५६॥

टीका—अरि विजिगीषू अर्थात् जीतनेकी इच्छा करनेवाला और मध्यम अर्थात् अरि विजिगीषू इन दोनोंकी भूमिके समीपमें रहनेवाला मिले हुए दोनो राजाओं के अनुग्रहमें और विगडे हुए इन दोनोंके निग्रहमें समर्थ इन सबोंका चेष्टित अर्थात् करनेकी इच्छाका चितवन करै ॥ ५६ ॥ संक्षेपसे राजमंडलके ये चारि मूल प्रकृति हैं तथा आठ और हैं उनको कहते हैं शत्रुकी भूमिके आगे मित्र अरि मित्र मित्रमित्र अरिमित्रमित्र और पीछे पार्ष्णिग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासार ये पहले कहे हुए आठ चारोको मिलाके बारह होते हैं ॥ ५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डारण्याः पञ्च चापराः॥प्रत्येकं कथितार्थाद्ये  
र्ताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ५७॥ अनन्तरमरि विद्यादरिसेविनमेव  
च ॥ अरेरनन्तरं भिन्नमुदासीनं तयोः परम् ॥ ५८ ॥

टीका—चारि मूलप्रकृति आठ शाखाप्रकृति इन्होंने एक एकके पांच पांच द्रव्यप्रकृतिहैं उन पांचोंके ये नामहैं जैसे अमात्य कहिये मंत्री १ राष्ट्र कहिये राज्य २ दुर्ग कहिये किला ३ अर्थ कहिये धन ४ और दंड ५ ये सब मिलिके संक्षेपसे बृहत्तरि ७२ प्रकृति हैं ॥ ५७ ॥ अपने राज्यके समीपका राजा शत्रुहै और उसका सेवन करनेवालाभी शत्रुहै और उसके आगेका राजा मित्र है और अरि तथा मित्रसे जो परे है वह उदासीन है ॥ ५८ ॥

तान्सर्वानभिसंदर्व्यात्सामादिभिरुपक्रमैः॥ व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च  
पौरुषेण नयेन च ॥५९॥ संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ॥  
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥६०॥

टीका—उन सब राजाओंको साम भेद दान दंड इन उपायोंसे संभवके अनु-  
सार जुदे जुदासे अथवा सर्वोंसे वशमें लवै अथवा पौरुष कहिये केवल दंडही-  
से अथवा नीति कहिये एक सामहीसे वशमें लवै सोई कहाहै कि देशकी वृद्धि-  
के लिये साम तथा दंडकी प्रशंसा करते है ॥ ५९ ॥ संधिकहिये मिलाप विग्र-  
ह कहिये लडाई यान कहिये शत्रुके ऊपर चढाई करना आसन कहिये शत्रुको  
घेरिके पडे रहना द्वैधी भाव कहिये फोडफाड करना संश्रय कहिये बलवानका  
आश्रय लेना इन छः गुणोंका सदा चितवन करै ॥ ६० ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ॥ कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत

द्वैधं<sup>१२</sup> संश्रयमेव<sup>१३</sup> च<sup>१४</sup> ॥६१॥संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव<sup>१५</sup> च<sup>१६</sup>  
उभे<sup>१७</sup> यानांसने<sup>१८</sup> चैव<sup>१९</sup> द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६२ ॥

टीका—अपनी समृद्धि और शत्रुकी हानि आदिक कार्योंको देखकै विग्रह यान आसन द्वैधीभाव और संश्रय इनमेंसे किसीके साथ संधि और किसीके साथ विग्रह इत्यादि करै ॥६१॥राजा संधि विग्रह यान आसन तथा द्वैधीभाव और संश्रय इन छहो गुणोंको दो प्रकारके जानै ॥ ६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ॥ तदा त्वायतिसंयुक्तः<sup>१</sup> संधिज्ञो<sup>२</sup> यो द्विलक्षणः ॥ ६३ ॥ स्वयंकृतश्च<sup>३</sup> कार्यार्थमकाले काल एव वा ॥ मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ ६४ ॥

टीका—तत्कालके फल लाभके लिये अथवा आंगेको फलके लाभके लिये जहां दूसरे राजाके साथ अन्यराजाके ऊपर चढाई आदि कर्म किये जाते हैं वह समानकर्मा संधि है औ जो फिर तुम यहाँ जाओ मैं यहाँ जाऊँगा यह उसी कालके तथा आगेके फलकी चाहनासेकी जाती है उसको असमानकर्मा संधि कहते है ऐसे दो प्रकारकी संधि जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥ शत्रुके विजयरूप प्रयोजनके लिये शत्रुका कष्ट आदि जानिकै आगे कहे हुए मार्गशीर्ष आदि कालसे दूसरे कालमें अथवा कहे हुएही कालमें आप करि किया हुआ एक विग्रह है और दूसरे राजा करि मित्रका अपकार करनेपर मित्रकी रक्षाके लिये दूसरा विग्रह होताहै इस प्रकार दो प्रकारका विग्रह होताहै ॥ ६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥ संहतस्य च मित्रेण<sup>१</sup> द्विविधं यानमुच्यते ॥६५॥ क्षीणस्य चैव<sup>२</sup> क्रमशो देवात्पूर्वकृतेन वा ॥ मित्रस्य चानुरोधेन<sup>३</sup> द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ ६६ ॥

टीका—अपना आवश्यक काम तथा शत्रुके व्यसन आदि अकस्मात् होनेपर समर्थका अकेले चढाई करना यह एक प्रकारका यान हुआ और असमर्थका मित्र सहित चढाई करना यह दो प्रकारका यान कहा जाताहै ॥६५॥ पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापोंसे जिसके हाथी घोडा कोश आदि क्षीण होगया हैं तब दूसरे पर चढाई न करना अथवा संपन्नका मित्रके अनुरोधसे उसके कार्यकी रक्षाके लिये चढाई न करना यह दो प्रकारका आसन मुनियोंने कहाहै ॥ ६६ ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव<sup>१</sup> स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥ द्विविधं कीर्त्यते

द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥६७॥ अर्थसंपादनार्थं च पीडयमानस्यै  
शत्रुभिः ॥ साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधं संश्रयः स्मृतः ॥ ६८ ॥

टीका—अपनी प्रयोजन सिद्धिके लिये सेनापति समेत सेनाको शत्रुके उपद्र-  
वकी शांतिके लिये एक स्थानमें रक्खै और दूसरे स्थानमें किलेके भीतर कुछ से-  
नासमेत राजा रहै इस भांति संधि आदि छ गुणोंके उपकार जाननेवालोंने दो  
प्रकारका द्वैध कहा है ॥ ६७ ॥ शत्रुओं करि पीडा दिया शत्रुकी पीडाकी वि-  
वृत्ति रूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अथवा उस समय पीडाके न होनेपर आगे  
होनेवाली शत्रुपीडाकी शंकासे यह राजा इस महाबली राजाका आश्रितहै यह  
व्यपदेश सर्वत्र प्रकट करनेके लिये बलवानका आश्रय लेना इस भांति संश्रय  
दो प्रकारका कहा गया है ॥ ६८ ॥

यदावर्गच्छेदायत्यामार्धिक्यं ध्रुवमात्मनः ॥ तदात्वे चालिपकां पी  
डां तदा संधि समाश्रयेत् ॥६९॥ यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृ  
तीर्भृशम् ॥ अत्युच्छ्रितं तथार्त्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥७०॥

टीका—जब युद्धके उपरांत निश्चय अपनी अधिकता जानै उस कालमें थोड़े धन आ-  
दिके क्षयकोभी अंगीकार करिकै संधि करि लेवै ॥६९॥ जब मंत्री आदि सब प्र-  
कृतियोंको दानसन्मान आदिसे बहुतही संतुष्ट जानै और आपकौ हाथी घोड़े  
खजाना आदिसे पुष्ट जानै तब विग्रह कहिये युद्ध करै ॥ ७० ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं सूदकम् ॥ परस्य विपरीतं च त  
दा यायाद्रिपुं प्रति ॥७१॥ यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन  
च ॥ तदासीति प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ ७२ ॥

टीका—जब अपनी अमात्य आदि सेनाको हर्षयुक्त और धन आदिसे  
पुष्टत्वसे जानै और शत्रुके अमात्य आदि बलको अपनेसे विपरीत जानै तब  
शत्रुपर चढाई करै ॥ ७१ ॥ जब हाथी घोडा आदि वाहनोंसे और मंत्री आदि  
सेनासे क्षीण होय तब हौले हौले सामसे भेट आदि देनेसे शत्रुको शांत करता  
हुआ यत्नसे आसन करै अर्थात् चुपचाप बैठ रहै ॥ ७२ ॥

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ॥ तदा द्विधा बलं कृत्वा  
साधयेत्कार्यमात्मनः ७३ यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ॥  
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ ७४ ॥

टीका—जब राजा सब भांति शत्रुको बलवान और संधि न करता हुआ जा-  
ने तब कुछ सेना समेत आप किलेमें रहै और सेनाके एक भागसे शत्रुके साथ यु-  
द्ध करै ऐसे सेनाके दो भाग करिकै मित्र संग्रह आदि अपना काम सिद्ध करै ॥  
॥ ७३ ॥ जबतौ अमात्य आदि प्रकृतिके दोष आदिसे बहुत ही ग्रहण करनेयो-  
ग्य होय और सेनाके दो भाग करिकै किलेमें रहनेपरभी अपनी रक्षा न कर स-  
कै तब शीघ्रही धर्मात्मा तथा बलवान् राजाका आश्रय लेवै ॥ ७४ ॥

निर्ग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽर्बलस्य च ॥ उपसेवेत तं नित्यं  
सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ ७५ ॥ यदि तत्रापि संपश्येदोषं संश्रयकारित-  
म् ॥ सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ ७६ ॥

टीका—कैसा बलवान होय सो कहते है जिनके दोषसे यह अत्यंत जानेयी-  
ग्य हुआ उन प्रकृतियोंका और जिस्से शत्रुके बलसे इसको भय उत्पन्न हुआ हो-  
य उन दोनोंको जो दंड देनेको समर्थ होय उस राजाका नित्य गुरूके समान से-  
वन करै ॥ ७५ ॥ जिसकी गति नहीं है उसकीगति आश्रय लेना है जो उसमें  
भी आश्रयका किया हुआ दोषदेखै तौ उसकालमें निस्संदेह होकै सुंदर युद्ध क-  
रै दुर्बलकाभी बलवानसे विजय देखा गयाहै और जो माराजाय तौ स्वर्गमिलै ७६

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥ यथास्थाय्यभ्यधिका  
न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ७७ ॥ आयति सर्वकार्याणां तदात्वं च  
विचारयेत् ॥ आयतीनां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ ७८ ॥

टीका—सब सामआदि उपायोंसे नीतिका जाननेवाला राजा ऐसा यत्न करै  
जिसमें इसके मित्र उदासीन और शत्रु बहुत न होय अधिकतर होनेपर यह उन-  
के ग्रहण करनेयोग्य होजाताहै क्योंकि धनके लोभसे मित्रभी शत्रु होसकते हैं ॥  
॥ ७७ ॥ सब थोड़े वा बहुतकार्योंके उत्तरकाल तथा गुणदोषका विचार करै  
और वर्तमानकालका तौ शीघ्रही करनेके लिये विचार करै और बीते हुए  
सब कार्योंके गुणदोषोंको इनमें क्या किया और क्या दोष है ऐसे यथार्थ  
विचार करै ॥ ७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ॥ अतीते कार्यशेषज्ञः  
शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ७९ ॥ यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्र-  
वः ॥ तथा सर्वं संविदध्यादेर्षं सामासिको नयः ॥ १८० ॥



टीका—उत्तरकालमें कार्योंके गुणदोषको जानता है वह गुणवान् कार्यका आरंभ करताहै और दोषयुक्तका परित्याग करता है और जो वर्त्तमानकालमें शीघ्रही निश्चय करिकै कार्यको करताहै और वीते कार्य हुए में शेषको जानता-है वह उस कार्यकी समाप्तिमें फलको पाताहै जिसेसे ऐसे तीनों कालोंमें सावधान होनेसे कभी शत्रुओं करि नहीं दवाया जाताहै ॥ ७९ ॥ जैसे इस राजाको कहे हुए मित्र उदासीन तथा शत्रुबाधा न देवें ऐसा सब समान करै यह नीतिका संक्षेप है ॥ १८० ॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रप्रति प्रभुः ॥ तदानेन विधानेन याया  
दरिपुरं शनैः ॥ ८१ ॥ मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ॥  
फाल्गुनं वार्थं चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥ ८२ ॥

टीका—जब समर्थ हो शत्रुके देशपर चढाईका आरंभ करै तब इस आगे कहे हुए प्रकारसे शत्रुके देशको शीघ्रता न करिकै जाय ॥ ८१ ॥ चतुरंगसेनाकरि युक्त राजा हाथी रथ आदिकी यात्राके विलम्बसे देरमें यात्रा करता हुआ तथा हेमंत ऋतुके बहुतहैं धान्य जिसमें ऐसे शत्रुके देशपर चढाई किया चाहता-वह अपनी यात्राके लिये सुंदर मार्गशीर्षके महीनेमें यात्रा करै और जिस राजाके घोड़े बहुत हों और शीघ्रगति राजा हों वह राजा वसंतऋतुके जिसमें धान्य बहुतहै ऐसे शत्रुके देशपर चढाई करना चाहता होय वह फाल्गुनमें अथवा चैतमें अपनी सेनाके जाने योग्य कालका उल्लंघन न करिकै यात्रा करै ॥ ८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पर्युद्धं जयम् ॥ तदा यायाद्विगृ  
ह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ ८३ ॥ कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं  
च यथाविधि ॥ उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥ ८४ ॥  
संशोध्य विविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वर्कम् ॥ सांपरायिककल्पेन  
यायादरिपुरं शनैः ॥ ८५ ॥

टीका—कहे हुए कालोंसे भिन्न कालोंमेंभी जब निश्चय अर्पना जय जाने तब अपनी सेनाके योग्य ग्रीष्म आदि कालमेंभी हाथी घोड़े आदि बहुत सेनावाला विरोधही करिकै यात्रा करै और शत्रुका अमात्य आदि प्रकृतिमें दंड पारुष्य आदि व्यसन उत्पन्न होनेपर शत्रुके पक्षमें उसकी प्रजाके होनेपर कहे हुए कालसे और कालमेंभी चढाई करै ॥ ८३ ॥ मूल कहिये अपने किले तथा देशमें पार्ष्णिग्राह किये गये प्रधान पुरुषको अधिष्ठाता करिकै रक्षा करनेके

योग्य सेनाको एक स्थानमें स्थापित करि यात्राके उपयोगी वाहन आयुध और कवचका शास्त्रकी रीतिसे यात्राका विधान करिकै जैसे पराये देशमें गये हुए इस राजाका ठहरना होय ऐसेको लेकर शत्रुके पक्षवाले भृत्योंको अपने आधीन करिकै कपट करनेवाले दूतोंको शत्रुके देशकी वार्त्ता जाननेके लिये भेजिकै भलीभांति जांगल आनूप आठविक भेदसे तीन प्रकारके मार्गको वृक्षगुल्म आदिके काटने और ऊँचे नीचेके बराबर करने आदिसे शोध न करि हाथी घोडा रथ पयादोंकी सेना और कर्मकर कहिये कामकरनेवालों समेत छः प्रकारकी सेनाको आहार औषध सत्कार आदिसे शोधन करिकै संग्रामकी उचित विधिसे शीघ्रही शत्रुके देशको यात्रा करै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ॥

गतप्रत्यगाते चैव स हि कर्षितरो रिपुः ॥८६॥

टीका—जो मित्र गुप्तरूपसे शत्रुका सेवन करताहै और जो भृत्य आदि पहले विगडकर चला गया और पीछे आगया होय उन दोनोंसे सावधान रहै जिस्से वह बहुतही कठिन शत्रुहै ॥ ८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यांयात्तु शकटेन वा वराहमकराभ्यां वा सूच्या  
वा गुरुडेन वा ॥ ८७ ॥ यतश्च भयमांशङ्केततो विस्तारयेद्द्वलम् ॥  
पद्मेन चैव व्यूहेन नि विशेत् सदा स्वयम् ॥ ८८ ॥

टीका—दण्डकी आकृति व्यूहकी रचना आदि है उसको दण्डव्यूह कहते हैं ऐसेही शकट आदि व्यूह भी होते हैं दण्ड व्यूहमें सेनाके आगे सेनाका स्वामी मध्यमें राजा पीछे सेनापति बगलोंमें हाथी उनके समीप घोडे तिस पीछे पयादे ऐसे रचना करनेसे सब औरसे बराबर स्थितियुक्त दण्ड व्यूह होताहै उस्से चहु ओर भय होनेपर चलनेयोग्य मार्गको चले और मुख तथा पीछेका भाग पतलाबीचका माग भारी ऐसा वराह व्यूह होताहै इसीका जो बीचका भाग बहुत भारि होय तौ गरुड व्यूह होताहै जो दोनो बगलोंसे भय होय तौ इन दोनो व्यूहों से यात्रा करै वराह व्यूहका उलटा मकरव्यूह होताहै उस्से आगे पीछे दोनो और भय होनेपर यात्रा करै और चीटियोंकी पंक्तिके समान आगे पीछे इकट्ठा होके जहां जहां सेनावालोंकी स्थिति है और वीरपुरुष जिसके आगेके भागमें स्थितहै वह सूचीमुखव्यूह उस्से आगे भय होनेपर यात्रा करै ॥ ८७ ॥ जिस दिशासे शत्रुके भयकी शंका होय उसीमें अपनी सेनाको फैलावे जिसके चारो ओ-

र चरावरि सेना फैली होय और बीचमें जिसके राजा स्थितहै उस कमल व्यूह करि पुरसे निकलकै सदा पडाव डालै ॥ ८८ ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वादिक्षु निवेशयेत् ॥ यतश्च भयमांशङ्केत्प्रा  
चीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ ८९ ॥ गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृत  
संज्ञान्समन्ततः ॥ स्थाने युद्धे च कुशलानभीरून्विकारिणः १९० ॥

टीका—हाथी घोड़े रथ पयादे रूप दश अंगका एक पति करना चाहिये उसको पत्तिक कहतेहै दशपत्तिकका एक स्वामी सेनापति कहाताहै दश सेनापतिको नायक एक एक सेनानायक वा बलाध्यक्ष होताहै उनदोनों सेनापति और बलाध्यक्षको सब दिशाओंमें युद्धके लिये नियुक्त करै और जब जिसदिशासे भयकी शंका होय तब उस दिशाको आगे करै ॥ ८९ ॥ विश्वासवाले पुरुष जिनके अधिष्ठाताहैं ऐसे गुल्मनाम सेनाके भागोंको तथा स्थित होके अथवा हटिकै युद्ध करनेके लिये कियाहै भेरि ढोल शंख आदिका संकेत जिन्होंने और ठहरने तथा युद्धमें प्रवीण निर्भय व्यभिचार रहित सेनापति बलाध्यक्षोंको दूरि सब दिशाओंमें दूसरेका प्रवेश रोकनेके लिये और शत्रुकी चेष्टा जाननेके लिये नियत करै = ॥ १९० ॥

संहतान्योर्धयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ सूच्या वज्रेण चैवेतां  
न व्यूहेन व्यूह्य योर्धयेत् ॥ ९१ ॥ स्यन्दनाश्वैः समे युद्धयेदनुपे  
नौ द्विपैस्तथा ॥ वृक्षगुल्मावृते चामैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥ ९२ ॥

टीका—थोड़े योद्धाओंको इकट्ठे करिकै लडावै और बहुतोंको अच्छे प्रकारसे फैलायदे पहले कही हुई सूचीसे अथवा वज्रनाम व्यूहसे तीनि प्रकारसे खडी है सेना जिसकी ऐसी रचना करिकै योद्धाओंको लडावै ॥ ९१ ॥ समान भूमिके भागमें रथ तथा घोड़ोंसे युद्ध करै वहां उनकी युद्धकी सामर्थ्य है और जिस देशमें जल बहुतहै वहां नाव तथा हाथियोंसे युद्ध करै और वृक्ष तथा गुल्मोंसे घिरे हुए स्थानमें धनुषधारियोंसे और गढिल्ले कूटक पत्थर आदि रहित स्थलमें ढाल बलवारि भाला आदि शस्त्रोंसे युद्ध करै ॥ ९२ ॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् ॥ दीर्घाल्लघूश्चैव न  
रान्ग्रीनीकेषु योजयेत् ॥ ९३ ॥ प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्  
परी क्षयेत् ॥ चेष्टांश्चैव विजानीयादरीन् योर्धयतांमपि ॥ ९४ ॥

टीका—कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको तथा मत्स्य कहिये विराट् देशके निवासियोंको और पांचाल कहिये कान्यकुब्ज तथा अहिच्छत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको और शूरसेन कहिये माथुरोंको बहुधा भारी शरीर शूरता तथा अहंकारको योग होनेसे सेनाके आगे युद्ध करावै तैसेही और देशोंकेभी छोटी बड़ी देहवाले युद्धके अभिमानी मनुष्योंको सेनाके आगेही रक्खै ॥ ९३ ॥ सेनाकी व्यूह रचना करिकै विजयमें धर्मका लाभ औ सन्मुख मारे गयेको स्वर्गका लाभ और भागनेमें स्वामीके पाप तथा नरककी प्राप्ति होती है ऐसे कहिकै उनको युद्धका उत्साह करावै और वे किस अभिप्रायसे प्रसन्न होते हैं औ किससे कुपित होते हैं इस बातकी परीक्षा करै ऐसेही शत्रुओंसे युद्ध करते हुएभी योद्धाओंकी सकपट निष्कपट चेष्टाओंको जानै ॥ ९४ ॥

उपरूध्यारिमांसीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ॥ दूषयेच्चास्यं सततं  
यवसात्रोदकेन्धनम् ॥ ९५ ॥ भिन्द्याच्चैवं तडांगानि प्राकारपरि  
खास्तथा ॥ समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ विवासयेत्तथा ॥ ९६ ॥

टीका—किलेमें होवै अथवा बाहर होय ऐसे युद्ध करते हुए राजाको घेरिकै पडा रहै और इसके देशको उजाडै और इसके घास अन्न पानी ईंधनको नष्ट वस्तुओंके मिलाने आदिसे दूषित करै ॥ ९५ ॥ शत्रुके जल पीनेयोग्य तलाव आदिकोंको और किलापर कोटा आदिको तोडदे और उसकी खाइयोंको तोडने भरदेने आदिसे जल रहित करदे ऐसे शत्रुओंको शंका रहित होकै दवावै और शक्तिको ले लेवै और रात्रिमें डका काहलिक आदि शब्दोंसे डरपावै ॥ ९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्दुद्येत्तैर्वै च तत्कृतम् ॥ युक्ते च दैवे युद्धयेत्  
जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ ९७ ॥ साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृ  
थक् ॥ विजेतुं प्रयतेतारीर्त्रिं युद्धेन कदाचन ॥ ९८ ॥

टीका—भेदके योग्य राज्यके चाहनेवाले शत्रुके वंशके लोगोंको तथा क्षोभयुक्त अमात्य आदिकोंको फोडै और भेदसे अपने किये गये उनकी चेष्टाको जानै और शुभग्रहकी दशा आदिसे फलयुक्त दैवको जानिकै जयकी इच्छासे निर्भय युद्ध करै ॥ ९७ ॥ प्रीति तथा आदरसे देखने और हितके कहने आदि रूप समीसे और शत्रुकी हाथी घोडा रथ सुवर्ण आदिके देने रूपदानसे और शत्रुकी प्रजा और राज्य चाहनेवाले उसके अनुगामियोंके फोडनेरूप भेदसे इन सब उपायोंसे सामर्थ्यके अनुसार शत्रुओंके जीतनेका यत्न करै युद्धसे कभी नहीं ॥ ९८ ॥

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ॥ पराजयश्च संग्रामे  
तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ ९९ ॥ त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानाम  
सम्भवे॥ तथा युद्धचेत संपन्नो विजयेत् रिपून्वैथा ॥ २०० ॥

टीका—युद्ध करते हुए राजाओंकी थोड़े बल और बहुत बलकी अपेक्षाके विनाही निश्चयसे जीति हारि हो देखी जाती है तिससे और उपायोंके होनेपर युद्धको नहीं करै ॥ ९९ ॥ पहले कहे हुए तीन साध आदि उपायोंसे काम न होनेपर जीति हारिके संदेहमेंभी यत्नवाला ऐसे युद्ध करै जैसे शत्रुओंको जीति लेवे जिस्से जीतिमें अर्थका लाभ होता है और सन्मुख मरनेमें स्वर्ग मिलताहै और जहां निस्संदेह पराजय कहिये हारना पड़े वहां युद्धसे हठिजाना अच्छा है जैसे आगे कहेंगे कि आत्मातु रक्ष्य इति अर्थात् अपनी सदा रक्षा करै यह मेधा-तिथि और गोविंदराजने लिखाहै ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैवं धार्मिकान् ॥ प्रदद्यात्परिहारं  
श्च ख्यापयेदभयानि च ॥ १ ॥ सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चि-  
कीर्षितम् ॥ स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च सम्यक्प्रियाम् ॥ २ ॥

टीका—पराये देशको जीतिके असमें जो देवता होय उनको तथा धर्म प्रधान ब्राह्मणोंकी भूमि सुवर्ण आदिके दान तथा सन्मानसे पूजन करै जीते हुए द्रव्यके एक भागके देने आदिहीसे यह पूजनहै सो याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्राजाजितम् । विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाऽभयं सदा ॥ अर्थ इस्से परे राजाओंको धर्म नहीं है कि रणमें जोडा हुआ धन ब्राह्मणोंको दिया जाय और प्रजाको सदा अभय दिया जाय इति ॥ तथा देवता और ब्राह्मणोंके लिये मैने यह दिया ऐसे देशके वासियोंको परिहार दे तथा स्वामीकी भक्तिसे जिन्होंने हमारा अपकार कियाहै उनकी मैने क्षमा की अब निर्भय हो सुखसे व्यापार करौ ऐसे अभय करै ॥ १ ॥ शत्रु और उसके मंत्री आदि सर्वोही का संक्षेपसे अभिप्राय जानकर उस देशमें बलसे मारे हुए राजाके वंशहीके पुरुषको राज्यमें स्थापित करै और तुमको यह करना चाहिये यह न करना चाहिये यह उसके लिये तथा उसके मंत्रियोंके लिये नियम करै ॥ २ ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥ रत्नैश्च पूजये  
देवं प्रधानपुरुषैः सह ॥ ३ ॥ आदानमप्रियंकरं दानं च प्रियंकरं  
कम् ॥ अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशंस्यते ॥ ४ ॥

टीका—उन पराये मनुष्योंके लिये देशके धर्मसे शास्त्रसे प्राप्त आचारोंको प्रमाण करै और इस राज्यमें बैठाए हुए राजाको मंत्री आदिकै समेत रत्न आदिकोंके देनेसे पूजन करै ॥ ३ ॥ यद्यपि वांछित वस्तुओंका ले लेना अप्रिय करनेवाला है और देना प्रिय करनेवाला है यह स्वभाव है तिसपरभी समय समयमें लेना देना प्रशंसाके योग्य होता है इस्से उसी कालमें पूजन करै ॥ ४ ॥

सर्वे कर्मदुर्मार्यन्तं विधाने देवमानुषे ॥ तयोर्देवमचिन्त्यं तु मानुषे  
विद्यते क्रिया ॥ ५ ॥ सह वापि ब्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ॥  
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ ६ ॥

टीका—पूर्व जन्ममें इकठ्ठे किये पुण्य पाप रूप कार्य दैवके आधीन हैं और इस जन्ममें इकठ्ठे किये हुए मनुष्यके व्यापारके आधीन हैं उन दोनोमेंसे दैवका तौ चिंतवन नहीं हो सकता है मनुष्यमें तौ विचार होसकता है इस लिये मनुष्यके ही द्वारा कार्यसिद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥ चढाई करनेयोग्य शत्रुसे युद्ध करना चाहिये अथवा वही मित्र होजाय और उस करिके सुवर्ण दिया जाय अथवा भूमिका एक देश दिया जाय इन तीनोंको यात्राका फल जानिके उसके साथ संधि कहिये मिलाप करिके यत्नसे चलदे ॥ ६ ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ॥ मित्रादुत्थार्यमित्रा  
द्रो यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तं  
थैधते ॥ यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमर्ष्यायतिक्षमम् ॥ ८ ॥

टीका—जीतनेकी इच्छासे शत्रुपर गये हुए राजाके पीछे जो आके उसके देश आदिको दवाता है वह पार्ष्णिग्राह कहता है वैसा करनेवाले उसका रोकनेवाला जो अनंतर राजा है उसको आक्रन्द कहते हैं उन दोनोको देखकर यत्रा करनी चाहिये अथवा मित्रताको प्राप्त हुए शत्रुसे यात्राका फल ग्रहण करै उन दोनोके विना देखे ग्रहण करता हुआ राजा कदाचित् उनके किये हुए दोष करि ग्रहण किया जाय ॥ ७ ॥ सुवर्ण और भूमिके लाभसे राजा ऐसा नहीं वृद्धिको प्राप्त होता है जैसा इस समय दुर्बलभी आगेको वृद्धियुक्त स्थिर मित्रको पाके वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ॥ अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु  
मित्रं प्रशस्यते ॥ ९ ॥ प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दार्तारमेव च ॥  
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुरारिं बुधाः ॥ २१० ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला तथा किये हुए उपकारका जाननेवाला और जिसकी प्रकृति कहिये स्वभाव संतोषयुक्त होय ऐसा और प्रीति करनेवाला और जिनके आरंभ स्थिरहैं ऐसे कामोंका करनेवाला मित्र प्रशस्त कहिये उत्तम है ॥ ९॥ विद्वान् कुलीन शूर चतुर दाता कियेका जाननेवाला और धीरजवाला अर्थात् सुखदुःखमें एकरूप ऐसे शत्रुकों पंडित दुरुच्छेद कहिये दुःखसे उखाडने योग्य कहते हैं तिस्से ऐसे शत्रुके साथ मिलापकरना चाहिये ॥ २१० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता ॥ स्थौललक्ष्यं च  
संततमुदासीनगुणोदयः ॥ ११ ॥ क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृ  
द्धिकरीमपि ॥ परीत्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥ १२ ॥

टीका—साधुपन पुरुषविशेषका जानना श्रुता दयावान होना बहुत देनेवाला होना ये उदासीनके सब गुणहैं तिस्से इस प्रकारके उदासीनका आश्रय लेकर जिसके लक्षण कहि चुके हैं ऐसे शत्रुके साथभी युद्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ अनाम यकहिये रोग न होने आदि कल्याणकी देनेवाली और नदीमातृक होनेसे सदा सब शस्त्रोंकी देनेवाली और बहुतसे तृण अरुदिके योगसे पशुओंकी बढ़ानेवाली भूमिको अपनी रक्षाके लिये राजा शीघ्रही अपनी रक्षाका और प्रकार न होनेपर त्याग करै ॥ १२ ॥

आपत्तौ धनं रक्षेदारान् रक्षेद्धनैरपि ॥ आत्मानं संततं  
पि धनैरपि ॥ १३ ॥ सह सर्वाः संसुत्पन्ना प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ॥  
संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान् मृजेद्बुधः ॥ १४ ॥

टीका—आपत्ति निवारण करनेके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये और धनके परित्यागसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये और अपनी फिर स्त्री तथा धनके त्यागसे भी रक्षा करै ॥ २३ ॥ कोपका क्षय प्रकृतिका कोप मित्रका व्यसन इत्यादिक आपत्तियोंको एकसाथ अधिकतासे उत्पन्न जानिके मोहको न प्राप्त होय किन्तु जुदे जुदे अथवा सब सामादिक उपायोंको शास्त्रका जाननेवाला काममें लावै ॥ १४ ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ॥ एतंत्रयं समाश्रित्य प्रयते  
तार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ॥  
व्यायम्यापुत्यं मंध्यान्हे भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥ १६ ॥

टीका—उपेता कहिये उपाय करगेवाले आपको और उपेय कहिये प्राप्त होने योग्यको और उपाय सामादिक ये सब परिपूर्ण इन तीनोंका आश्रय लेके सामर्थ्यके अनुसार प्रयोजनसिद्धिके लिये यत्न करै ॥ १६ ॥ ऐसे पहले कहे हुए प्रकारसे मंत्रियोंके साथ सब राज्यके वृत्तांतका विचार करि पीछे शस्त्र आदिकोंके अभ्यासकी कसरत करिकै मध्यान्हमें स्नान आदि तथा मध्यान्हके कृत्य करि भोजनको रनवासमें जाय ॥ १६ ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैर्रहार्यैः परिचारकैः ॥ सुपरीक्षितमन्त्राद्यमर्द्यां  
 न्मन्त्रैर्विषांपहैः ॥ १७ ॥ विषघ्नैर्रगदैश्चास्यं सर्वद्रव्याणि योजयेत् ॥  
 विषघ्नानि च रत्नानि निर्यतो धारयेत्सदा ॥ १८ ॥

टीका—वहां रनवासमें अपने तुल्य भोजन करनेके समयके जाननेवाले दूसरे करि नही फोडनेयोग्य ऐसे रसोई करनेवालों करि किये हुए और अच्छी भांति चकोर आदिके देखनेसे परीक्षा किये गये अर्थात् सविष अन्नको देखकै चकोरकी आंखें लाल होजाती हैं और विषके दूरि करनेवाले मंत्रों करि जपे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ विष्की नाश करनेवाली औषधियोंसे सब भोजनके पदार्थोंको मिलावै और विषके हरनेवाले रत्नोंको यत्न करिके सदा धारण करै १८

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यंजनोदकधूपनैः ॥ वैषाभरणसंशुद्धाः स्फूर्ति  
 शोयुः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥ एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाश  
 ने ॥ स्नाने प्रसाधने चैवं सर्वालंकारकेषु च ॥ २२० ॥

टीका—गूढ चारके द्वारा परीक्षा की गई और गुप्त शस्त्रका ग्रहण तथा विषसे लिपे हुए आभरणोंके धारण करनेकी शंकासे जिनके वेष और आभरण देखि लिये गये हैं और जिनका मन अन्यत्र नहीं है ऐसी स्त्रियां चमर स्नान पान जल और धूप देना इन सब बातोंसे राजाकी सेवा करै ॥ १९ ॥ ऐसे वाहन शय्या आसन भोजन स्नान और चंदन जादि अनुलपन इन सब अलंकारकी वस्तुओंमें नावाप्रकारकी परीक्षा आदि प्रयत्न करै ॥ २२० ॥

भुक्तवान् विहरेच्चैवं स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ॥ विहृत्य तु रथकाकालं पु  
 नः कार्याणि चिन्तयेत् ॥ २१ ॥ अलंकृतश्च संपश्येदार्युधीयं पुं  
 नर्जनम् ॥ वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥ २२ ॥

टीका—भोजन करिकै वहीं रनवासमें भार्याओंके साथ विहार करिकै दिनके



सातमें भागतक क्रीडा करि आठमें भागमें राज्यसंबंधी कार्योंका विचार करै ॥  
॥ २१ ॥ अलंकृत अर्थात् सब वस्त्र आभूषण आदिकोंको धारण किये हुए शस्त्र  
धारण करनेवाले मनुष्योंको अर्थात् सिपाहियोंको देखै और सब चाहनोंको तथा  
शस्त्रों और आभरणोंको देखै ॥ २२ ॥

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेदमनि शस्त्रभृत् ॥ रहस्थाख्यायिनां  
चैव प्रणिधीनं च चेष्टितम् ॥ २३ ॥ गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समं  
नुज्ञाप्य तं जनम् ॥ प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः २४

टीका—उसके पीछे संध्योपासन करिकै अंतःपुरके एकांतस्थानमें जाकै  
शस्त्रोंको लिये हुए एकांतमें कहनेवाले दूतोंके कामोंको सुनै ॥ २३ ॥ उन म-  
नुष्योंको आज्ञा देकर दूसरी कक्षमें जाकै स्त्रियों करि युक्त भोजनके लिये  
फिरि रनवासमें जावै ॥ २४ ॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्चूर्यघोषैः प्रहर्षितः ॥ संविशेत्तु यथाका  
लमुत्तिष्ठेच्च गतकुर्मः ॥ २५ ॥ एतद्विधानमतिष्ठेद्दरोगः पृथिवीपतिः ॥  
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनि योजयेत् ॥ २६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां राजधर्मोनामसप्त ०७ ॥

टीका—इहां कुछ खायकै नगारोके शब्दसे आनंदित हो उचित समयमें श-  
यन करै फिर श्रमरहित हो पहर भरके तूडके उठै ॥ २५ ॥ रोगरहित राजा इस-  
कहे हुए विधानको आप करै ओर जो अस्वस्थ अर्थात् रोग आदिसे ग्रस्त होय  
तौ यह सब सेवकोंसे करावै ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मद्विवेदितनुजश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्वि-  
वेदिकृतायां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अथ अष्टमोऽध्यायः ।

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः । मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिं भिर्श्वैवं  
विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥ तत्रासीनः स्थितो वापि पाणि  
मुद्यम्य दक्षिणम् । विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् २

टीका—इस प्रकारके शत्रु राजाओंसे प्रजाकी रक्षासे पाई है जीविका जिस-  
ने ऐसा उन्ही प्रजाओंके आपसके विवादसे उत्पन्न पीडाकी शांतिके लिये ऋणा-

दान आदि अठारह है विषय जिसके ऐसे विरोधयुक्त अर्थी प्रत्यर्थी ( मुद्दई मुद्द-  
आलह ) के वचनोंसे उत्पन्न हुए संदेहके हरनेवाले विचारको व्यवहारः

उन व्यवहारोंके देखनेकी इच्छा करता हुआ राजा जो आगे कहे जायंगे उन ल-  
क्षणों करि लक्षित ब्राह्मणों और मंत्रियोंके और सातमें अध्यायमें कहे हुए पंचां-  
ग मंत्रोंके साथ, नम्र तथा वाणी हाथ पावकी चपलतां न होनेसे शांतस्वरूप  
क्योंकि राजाके उद्धत होनेसे वादी प्रतिवादियोंकी बुद्धि ठीक न रहनेसे अच्छी  
भांति न कह सकनेपर तत्त्वका निर्णय नही होताहै इस भांति आगे कही सभामें  
प्रवेश करै ॥ १ ॥ उस सभामें भारी कामकी अपेक्षासे बैठा हुआ और छोटे कां-  
ममें खडा हुआभी दाहिनी भुजाको उठाय अनुद्धत वेष अलंकारी हो राजा  
कार्योंका विचार करै ॥ २ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।

अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक् ॥३॥

टीका—अठार व्यवहारके मार्गोंमें पढे हुए और देश जाति कुलके व्यवहारोंसे  
जाने गये उन ऋणादान आदि कार्योंको शास्त्रसे निश्चय किये हुए दिव्य कहिये श-  
पथ आदि कारणोंसे पृथक्प्रतिदिन विचार करै उन्ही अठारहको गिनाते हैं ॥३॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिक्रयः ॥ संभूय च समुत्थानं  
दत्तस्यानपकर्म च ॥४॥ वेतनस्यैव चादानं संविदंश्च व्यतिक्रमः ॥  
क्रयविक्रयानुशयो विवाहः स्वामिपालयोः ॥५॥ सीमाविवादध  
र्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके । स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव  
च ॥ ६ ॥ स्त्रीपुंघमो विभागश्च द्यूतमाहय एव च ॥ पदान्यष्टादं  
शैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

टीका—उनमें पहला ऋणादान अर्थात् उधार लेना १ निक्षेप कहिये धरोह-  
ड २ अस्वामिक्रय कहिये स्वामीके विना वेचिदेना ३ संभूय समुत्थान कहि-  
ये इकट्ठे हो बन्ध्या आदिकोंकी क्रियाका करना ४ दत्तस्यानपकर्म कहिये दि-  
ये हुए धनका अपात्रकी बुद्धिसे अथवा क्रोध आदिसे ले लेना ५ नौकरका मा-  
सिक न देना ६ किई हुई व्यवस्थाको न मानना ७ लेने तथा वेचनेमें पछितावां  
करनेसे बदल जाना ८ स्वामीका और पशुओंके पालनेवालेका झगडा ९ ग्रा-  
म आदिकी सीमाका झगडा १० वाक्पारुष्य कहिये गाली आदिका देना ११  
दंडपारुष्य मारना आदि १२ स्तेय कहिये चुराकै धन लेना १३ साहस कहिये

बलसे, धन छीन लेना १४ स्त्रीका पराये पुरुषसे, संयोग १५ स्त्रीसहित पुरुषकी धर्मव्यवस्था १६ पिता आदिके धनका विभाग १७ फासोंसे खेलना अथवा दाव लगकै पक्षी मेंढा आदिका लडाना १८ ये अठारह व्यवहारके स्थानहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥  
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥८॥

टीका—इन ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानमें बहुधा विवाद करनेवाले मनुष्योंके अनादि तथा परंपरासे चले आये हुए नित्य धर्मका आश्रय ले कार्यका निर्णय करै भूयिष्ठ शब्दसे और भी विवादके स्थानहैं यह सूचित करताहैं वे प्रकीर्णक शब्दसे नारदादिकोंने कहे हैं सोई नारदने कहाहै जैसे नदष्टं यच्चपूर्वेषुसर्वतत्स्यात्प्रकीर्णकमिति अर्थ जो पहले कहे हुए अठारहमें नही देखे गये है वे सब प्रकीर्णक हैं ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥ तदा नियुज्याद्विद्वां  
सं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥ सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव  
त्रिभिवृतः ॥ सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥९॥

टीका—जब दूसरे कामोंकी आवश्यकतासे अथवा रोग आदिसे राजा आप कार्योंको न देखे तब उनके देखनेके लिये कार्य देखना जानने वाले ब्राह्मणको नियत करै ॥९॥ वह ब्राह्मण राजाके देखनेयोग्य कार्योंको सभाके योग्य धर्मात्मा और कार्य देखनेके जाननेवाले तीन ब्राह्मणों करि युक्त उसी सभामें जाय बैठिकै अथवा खडा होके फिरता हुआ नही उन ऋणादान आदि कार्योंको देखे ॥१०॥

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रां वेदविदस्त्रयः ॥ राज्ञश्चाधिकृतो वि  
द्वान् ब्राह्मणस्तां सभां विदुः ॥११॥ धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां  
यत्रोपतिष्ठते ॥ शल्यं चास्य न कूर्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः १२

टीका—जिस स्थानमें ऋक् यजु और सामके जाननेवाले तीनभी ब्राह्मण और राजाका अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण बैठताहै उस सभाको चतुर्मुख सभा मानते हैं ॥ ११॥भा प्रकाशको कहते हैं उस करिकै सहित होय उसको सभा कहते हैं यहाँ विद्वानोंके समूहको सभा मानते हैं देशमें विद्वानोंके समूहरूप-सभामें सत्य कथनसे उत्पन्न धर्म मिथ्या कथनसे उत्पन्न अधर्म करि पीडित होताहै अ-

थीत अर्थी प्रत्यर्थियोंके मध्यमें एकके सत्य कहनेसे और दूसरेके झूठ कहनेसे वें सभासद इस धर्मके पीडा देनेवाले होनेसे कांटेके समान अधर्मको नहीं निकालते हैं तब वेही उस अधर्मरूपी शल्यसे विधि जाते हैं ॥ १२ ॥

संभां वा नै प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समर्जसम् । अञ्जुवन्विंशुवन्वापि नै  
रो भवति किं लिषी ॥ १३ ॥ यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन  
च ॥ ह्यन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

टीका—सभाको जानकर व्यवहार देखनेके लिये उसमें न जाना चाहिये और जो पूछा जाय तौ सत्यही कहना चाहिये चुप बैठा हुआ अथवा झूठ कहता हुआ दोनो प्रकारसे शीघ्रही पापी होताहै ॥ १३ ॥ जिस सभामें सभासदोंके देखते हुए उनका अनादर करिके अर्थि प्रत्यर्थियों करि अधर्मसे धर्म नहीं दिखाई देताहै और जहां साक्षियों करि सत्य झूठसे नाश किया जाताहै और वे सभासद उसका यथार्थ निर्णय नहीं करसकते वहां वेही सभासद उस पापसे नष्ट होजातेहैं १४

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ तस्माद्धर्मो न हन्ति  
व्यो मां नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १५ ॥ वृषो हि भगवान्धर्मस्त  
स्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् १६

टीका—अतिक्रमण किया हुआ अर्थात् न माना हुआ धर्मही इष्ट अनिष्ट समेत नाश कर देताहै अर्थी प्रत्यर्थी आदि नही वही धर्म अनतिक्रान्त कहिये माना हुआ इष्ट अनिष्टोंसमेत रक्षा करताहै तिस्से धर्मका अतिक्रमण न करना चाहिये अतिक्रमण किया हुआ धर्म तुम समेत हमको न मारै सभासदोंके कुमार्गमें प्रवृत्त होनेपर यह प्राड्विवाकका संबोधनहै अथवा नो यह निषेध अर्थमें अव्यय है तौ नो हतो धर्मो माऽवधीत् अर्थात् नही अतिक्रमण किया हुआ धर्म नहीं मारताहै यह अभिप्राय है ॥ १५ ॥ कामनाओंको जो बरसै उसको वृष कहते हैं वृष शब्दसे धर्मही कहा जाताहै और अलं शब्दका अर्थ वारण कहिये मना करनाहै तिस्से जो धर्मका वारण करताहै उसको देवता वृषल जानते हैं जाति वृषल नहीं है तिस्से धर्मका लोप न करै ॥ १६ ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निर्धनेऽप्यनुयाति यः ॥ शरीरेण संमं नाशं सं  
वर्मन्याद्धि गच्छति ॥ १७ ॥ पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणम्  
च्छति ॥ पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

टीका—धर्मही एक मित्रहै जो मरनेके समयभी वाञ्छित फल देनेके लिये साथ जाताहै और सब स्त्री पुत्र आदि शरीरहीके साथ नाशको प्राप्त होते हैं तिस्से पुत्र आदिकोंके स्नेहकी अपेक्षासेभी धर्म न छोड़ना चाहिये ॥ १७ ॥ दुष्टव्यवहार देखनेसे अर्थात् सत्यनिर्णय न करनेसे अधर्मका चौथा भाग अधर्म करनेवाले अर्थी वा प्रत्यर्थीको प्राप्त होताहै और दूसरा चौथा भाग झूठ बोलनेवाले साक्षी को और तीसरा चौथा भाग सब सभासदोंको और शेष चौथा भाग राजाको पहुँचताहै इस भांति सब पापके भागी होतेहैं ॥ १८ ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ॥ एनो गच्छति कर्तारं  
निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥ जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्या  
द्ब्राह्मणं ब्रुवः । धर्मप्रवृत्ता नृपते न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥

टीका—जिस सभामें झूठ बोलनेसे निंदाके योग्य अर्थी वा प्रत्यर्थी अच्छे प्रकार न्यायके देखनेसे निंदा किये जाते हैं वहां राजा पाप रहित होताहै और सभासदोंकोभी पाप नहीं लगताहै करनेवाले अर्थी आदिकोहीको पाप प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ जिसकी केवल जाति ब्राह्मणहै कर्म नहीं हैं और वैश्य आदिके समान साक्षी आदिकोंसे न्याय अन्यायके करनेको समर्थ ऐसा ब्राह्मण जातिभी अथवा जिसका संदेहहै आपको ब्राह्मण कहता है वहभी कहे हुए योग्य ब्राह्मणके न होनेपर कही राजाके कार्य दर्शनमें नियुक्त होताहै और धर्मात्मा व्यवहारका जाननेवालाभी शूद्र कभी नहीं होताहै अर्थात् योग्य ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यभी कार्यका देखनेवाला होताहै शूद्र कभी नहीं होताहै ॥ २० ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविचेचनम् । तस्य सीदति तद्राष्ट्रं  
पङ्के गौरिव पर्यतः ॥ २१ ॥ यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिक्रां  
न्तमद्विजम् । विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्ष्यव्याधिपीडितम् २२

टीका—जिस राजाके धर्मका निर्णय शूद्र करताहै उसके देखते हुए उसका देश कीचमें गौके समान दुखी होताहै-॥ २१ ॥ जिस देशमें शूद्र बहुतहै और नास्तिक अर्थात् जो परलोकको नहीं मानते ऐसे बहुत होंय ओर जो ब्राह्मणों से शून्य होय वह सब दुर्भिक्ष तथा रोगसे पीडित हो शीघ्रही नष्ट होजाताहै ॥ २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥ प्रणम्य लोकपालेभ्यः  
कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥ अर्थानर्थाबुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च कर्षे

लौ । वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् ॥ २४ ॥

टीका—धर्म देखनेके लिये आसनपर बैठके देहको ढके हुए एकाग्रमन हो लोकपालोंको प्रणाम करि कार्योंको देखै ॥२३॥ प्रजाकी रक्षा तथा ख़्वाडनेरूप वेदसंबंधी अर्थ और अनर्थको जानकर परलोकके लिये केवल धर्म अधर्मका अनुरोध करि जिसमें विरोध न होय ऐसे कार्यार्थियोंके (मुकद्दमवालोंके) कार्योंको ( मुकद्दमोंको ) देखै जो कई वर्णोंके होंय तौ ब्राह्मण आदिके क्रमसे देखै ॥२४॥

वाह्यैर्विभाषयेत्क्षिप्रैर्भावंमन्तर्गतं नृणाम् । स्वरवर्णोद्भिताकारैश्च  
क्षुषां चेष्टितेन च ॥२५॥ आकारैरिद्भितैर्गत्यां चेष्टया भाषितेन  
च । नेत्रवक्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

टीका—वाहरी स्वर आदि चिन्होंसे अर्थी ( मुद्दे ) और प्रत्यर्थी (मुद्दालेह ) के भीतरी अभिप्रायको लक्षित करै स्वरका गद्गद होना कहिये बोलनेमें गलाभरि आना और वर्ण कहिये स्वाभाविक रंगसे मुखका रंग बदल जाना अर्थात् मुखमें कालापन आदिका होजाना और इंगित कहिये नीचेको देखना आदि और आकार कहिये देहमें पसीना आना रोमोंका खडा होना आदि और चेष्टा कहिये हाथोंका फटकारना आदि इन सब बातोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके हृदयकी सच्ची झूठी बातोंको लक्षित करै ॥ २५ ॥ पहले कहे हुए आकार आदिसे और गतिसे अर्थात् पैरोंके ठीक न रखनेसे चेष्टासे बोलनेसे और नेत्र तथा मुखके विकारसे मनकी भीतरी बात जानी जातीहै ॥२६॥

बालदार्यादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ॥ यार्वात्सं स्यात्सर्मावृ  
त्तो यार्वाच्चातीतशैश्वः ॥२७॥ वशाऽपुत्रासु चै वृ स्याद्रक्षणं नि  
ष्कुलासु च ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वार्तरासु च ॥ २८ ॥

टीका—जिसके बालकके चाचा ताऊ आदि अन्यायसे लिया चाहते होंय ऐसे अनाथ बालकके धनकी राजा तब तक रक्षा करै जबतक यह बालक छत्तीस वर्षके कहे हुए ब्रह्मचर्यको पूरा करिके गुरुके कुलसे न लौटके आवै ऐसेका बालकपन अवश्य दूर होजायगा और जो असमर्थ होनेसे बालकही लौट आके उसकाभी जबतक बालकपन न निकल जाय तबतक उसके धनकी रक्षा करै बालपन सोलह वर्षतक रहताहै क्योंकि बाल आषोडशाद्र्षात्रि सौलह वर्ष तक बालक रहताहै यह नारदका वचनहै ॥ २७ ॥ जिसके पतिने दूसरा विवाह कर

लियाहै ऐसी स्वामी करि निर्वाहके लिये दिया हुआ बांझ स्त्रीका धन और पुत्र रहितका और पतिव्रता विधवाका और रोगिणी स्त्रीका जो धनहै उसकी बालकके धनके समान रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

जीर्वन्तीनां तु तासां ये तद्दरेयुः स्वबान्धवाः । तच्छिष्याचौरैर्दण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥ प्रणष्टस्वामिकं रिक्तं राजा त्र्यब्दं निर्धापयेत् । अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ३०

टीका—हम इस तुम्हारे धनकी और अधिकारियोंसे रक्षा रक्खेगे ऐसे वहानेसे जे बांधव जीवती हुई स्त्रीके धनको लेलें उनको आगे कह हुए चोरके दंडसे धर्मात्मा राजा दंड देवै ॥ २९ ॥ जिसका स्वामी नहीं जाना भया इसको वही राजा किसका क्यो खोगया है ऐसे डौंडी पिटवाके राजद्वारा आदिमें रखवाके तीनि वर्षतक देखै जो तीनि वर्षके भीतर धनका स्वामी आय जाय तौ वही लेवै और तीनिवर्षके पीछे राजा अपने काममें लावै ॥ ३० ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि । संवाद्यं रूपसंख्या दीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥ ३१ ॥ अवेदथानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वर्तः । वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

टीका—जो कहै कि यह मेरा धनहै उससे कैसाहै कितनाहै और कहां खोया इस भांति पूछना चाहिये तिस पीछे जो वह रूप और संख्या आदिको सत्य कहै तौ वह धनका स्वामी धन पानेके योग्यहै ॥ ३१ ॥ नष्ट हुए द्रव्यके देशकालको अर्थात् इस देशमें और इस समयमें नष्ट हुआहै और वर्ण कहिये सपेद आदि रंग वाकडा मुकुट आदि और प्रमाणको न जानता हुआ पुरुष उस नष्ट हुए द्रव्यके बराबर दंडके योग्यहै ॥ ३२ ॥

आदिदीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ॥ दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥ प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ॥ यांस्तत्र चौरान् गृण्हीयात्तान् राजभेन धातयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—जो खोया हुआ धन राजाने पायाहै उसमेंसे छठा दशमा अथवा बारहवां भाग रक्षा आदिके कारणसे पहले साधुओंका यह धर्म है इस बातको जानता हुआ राजा ग्रहण करै धनके स्वामीकी निर्गुणता तथा सगुणताकी अपेक्षा यह छठे भाग आदिके लेनेका विकल्पहै बाकी धनके स्वामीको देवै ॥ ३३ ॥ जो

किसीका खोया हुआ धन राजाके नौकरोंको मिलै उसको राजा पहरमें रखवावै उसकी चोरीमें जिन चोरोंको पकडै उनको हाथीसे मरवावै ॥ ३४ ॥

ममार्थमिति यो ब्रूयाद्भिर्धिसत्येन मानवः तस्यार्थददीत पदभागं राजा  
जा द्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥ अनृतं तु वदन्दण्डः स्ववित्तस्यांशम  
ष्टमम् ॥ तस्यैव वा निर्धानस्य संख्याया लपीयसी कलाम् ॥ ३६ ॥

टीका—जो मनुष्य आप निधिको ( भूमिमें गढी द्रव्यका ) पाकै अथवा औरकी पाई हुईको मेरी यह निधि है यह सत्य प्रमाणसे अपने संबंधको प्रकट करै उस पुरुषकी सगुण निर्गुणकी अपेक्षा उस निधिसे आठवां भाग राजा लेवै और शेष उसको देवै ॥ ३५ ॥ जो अपना नहीं है उसको अपना कहता हुआ पुरुष अपने धनके आठमें भागसे दंड योग्य है अथवा उसी निधिके बहुतही छोटे भागको गनिकै जिस्से उसको दुःख न होय दंड करै ॥ ३६ ॥

विद्वान्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ॥ अशेषतोऽप्याददी  
त सर्वस्याधिपतिं हि संः ॥ ३७ ॥ यं तु पश्येद्भिर्धिं राजा पुराणं नि  
हितं क्षितौ ॥ तस्माद्भिर्जेभ्यो दत्त्वा धर्मधर्को शे प्रवेशयत् ॥ ३८ ॥

टीका—विद्वान् ब्राह्मण तौ पहले रक्खी हुई निधिको देखकर सब ले लेवै छ-  
ठा भाग राजाको न देवै जिस्से वह सब धनसमूहका स्वामी है ॥ ३७ ॥ जो  
पुरानी भूमिमें गढी हुई विना स्वामीकी निधिको राजा पावै तौ उसमेंसे आ-  
धी ब्राह्मणके देकर आधी अपने भंडारमें जमा करै ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ । अर्धभागक्षणाद्राजा  
भूमेरधिपतिं हि संः ॥ ३९ ॥ दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राजा चौरैर्दत्तं ध  
नम् । राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्रोति किल्विषमम् ॥ ४० ॥

टीका—अपनी नहीं पुरानी भूमिमें गढी हुई निधिको और सुवर्ण आदिकी  
खानिको जो ब्राह्मणको छोडके अन्य ज्ञाति पावै तौ उसके आधेका राजा स्वा-  
मी है कारण यह है कि वह रक्षा करता है और भूमिकाभी स्वामी है ॥ ३९ ॥ लो-  
गोंका जो धन चोर लेजाय राजा उसको चोरोंसे मगवाकै धनके स्वामीको दे देवै  
उस धनको आप लेनेसे राजा चोरके पापको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्माश्च धर्मवित् ॥ समीक्ष्य कुलधर्मा



ॐ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ४१ स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संन्तो  
ऽपि मानवाः॥प्रियांभवन्ति लोकस्य स्वस्वे कर्मण्यर्वास्थिताः॥४२

टीका—जाति धर्म कहिये ब्राह्मण आदि जातिमें नियत याजन आदि धर्मों-  
को तथा जानपद कहिये देशमें व्यवस्थित वेदसे विरुद्ध नहीं ऐसे धर्मोंको और  
श्रेणी धर्म कहिये बनिया आदि क्रयविक्रय करनेवालोंके कुलमें स्थित धर्मोंको  
जानिकै उनसे विरुद्ध न होय ऐसे धर्मोंको राजा व्यवहारमें स्थापित करै  
॥४१॥ जाति देश कुल धर्मादिक अपने कर्मोंको करते हुए और अपने २  
नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें स्थित दूरि रहनेपरभी निकटरहनेका स्नेह न रहनेपरभी  
लोकके प्यारे होते हैं ॥ ४२ ॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ॥ न च प्रापितमन्ये  
न प्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥ यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः  
पदम् ॥ नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

टीका—प्रसंगसे आये हुए इसको कहिकै फिरि प्रकृतको कहते हैं॥ राजा अ-  
थवा राजाका नियत किया हुआ प्राड्विवाक आदि धनके लोभ आदिसे कार्य जो  
ऋण आदिका विवाद ( झगडा ) है उसको आप न उत्पन्न करै और अर्थी अथ-  
वा प्रत्यर्थी करि पहुचाये हुए कार्यकी धन आदिके लोभसे उपेक्षा ( बेपरवाही )  
न करै ॥ ४३ ॥ जैसे वहेलिया शस्त्रसे मारे हुए मृगके स्थानमें रुधिरके  
गिरनेसे पहुंचि जाता है वैसेही अनुमानसे अथवा दृष्ट प्रमाणसे राजा धर्मके  
तत्त्वका निश्चय करै ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ॥ देशं रूपं च कालं  
च व्यवहारविधौ स्थितः ॥४५॥ सद्भिराचरितं यत्स्याद्भार्मिकैश्च  
द्विजातिभिः ॥ तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

टीका—व्यवहारके देखनेमें प्रवृत्त राजा छलको छोडकै सत्यको देखै तैसेही  
अर्थकोभी अर्थात् गौ सुवर्ण आदि धनके विषयमें स्थित व्यवहारको देखै आंखि  
मटकाकै इसने मेरी हंसी की इत्यादि छोटे अपराधोंको न सुनै और तत्त्वके नि-  
र्णयमें स्वर्ग आदिके फल पानेवाले आपको और सत्य बोलनेवाले साक्षियोंको  
और देश तथा कालको अर्थात् देश तथा कालमें उचितहै स्वरूप जिसका ऐसे  
व्यवहारके स्वरूपकी गुरुता लघुता आदि देखै ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धर्ममें प्र-

धान कहिये मुख्य ऐसे ब्राह्मणों करि देखे हुए और उस देश कुल तथा जातिसे विरुद्ध नहीं ऐसे शास्त्रके लेकर व्यवहारका निर्णय करै ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्धयर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥ दार्पयेद्धनिकस्यार्थम  
धर्मर्णाद्विभाषितम् ॥ ४७ ॥ यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तम  
र्णिकः ॥ तैस्तेरुपायैः संगृह्य दार्पयेद्धर्मर्णिकम् ॥ ४८ ॥

टीका—अधमर्ण जो ऋण लेनेवाला है उसकी अर्थ सिद्धिके लिये दिये हुए धनकी सिद्धिके लिये धनके स्वामी करि सूचित किया गया राजा जो आगे कहे जायगे ऐसे लेख्य ( तमस्सुक ) आदिके प्रमाणसे निश्चय किये हुए धनको अधमर्ण कहिये ऋणलेणेवालसे उत्तमर्ण अर्थात् धन देनेवालेको दिवावै ॥ ४७ ॥ कैसे दिवावै सो कहते हैं जो आगे कहे जायगे उन उपायोसे दिये हुए धनको उत्तमर्ण पावै उन उन उपायोसे वशमें करिकै उस धनको दिवावै ॥ ४८ ॥

धर्मण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ॥ प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन  
बलेन च ॥ ४९ ॥ यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधर्मर्णिकात् ॥ न  
सं राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

टीका—उन उपायोंको कहते हैं धर्मसे व्यवहारसे छलसे आचरितसे तथा पाचमें बलसे दिये हुए धनका साधन करै ॥ ४९ ॥ जो उत्तमर्ण दिये हुए धनको अधमर्णपर आपही बल आदिसे साबित करै वह अपने धनको भली भाँति साधन करता हुआ हमसे बिना कहे तुझे क्यों बल आदि किया ऐसे कहकर राजाको न मना करना चाहिये ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभाषितम् ॥ दार्पयेद्धनिकस्यार्थं  
दण्डलेशं च शक्तिर्तः ॥ ५१ ॥ अपह्नवेऽधर्मर्णस्य देहीत्युक्तस्य  
संसदि ॥ अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

टीका—मैं इसका देनदार नहीं हूँ ऐसे धनके विषयमें छुपानेवाले अधमर्णको करण कहिये लेख्य तथा साक्षी और दिव्य ( कसम ) आदिसे साबित किये हुए धनको राजा उत्तमर्णके लिये दिवावै और छुपानेमें पुरुषशक्तिसे आगे कहे हुए दशमें भागसे न्यूनभी दंड दिवावै ॥ ५१ ॥ उत्तमर्णका धन दे इस भाँति सभामें प्राड्विवाक करि कहे हुए अधमर्णके मैं इसका देनदार नहीं हूँ ऐसे मुकरनेपर अभियोग ( लानिश ) करनेवाला अर्थात् धन देनेके समय वर्तमान साक्षीको लावै

क्योंकि बहुधा स्त्री मूर्ख आदिके धनका निर्णय साक्षियोंहीसे होताहै इस्से प्रथम साक्षी देवै अथवा और लेख्य आदि दिखावे ॥ ५२ ॥

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापन्हुते चर्यः ॥ यश्चांधरोत्तरानर्थो  
न विगीतान्नावबुद्धयते ॥ ५३ ॥ अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्व  
पधावति ॥ सम्यक् प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनेन्दति ॥ ५४ ॥  
असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ॥ निरुच्यमानं प्रश्नं च  
नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥ ५५ ॥ ब्रूहीत्युक्तंश्च न ब्रूयादुक्तं च न  
विभावेयत् ॥ नच पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थोत्स होयते ॥ ५६ ॥

टीका—जो अदेश्य कहिये जिस देशमें ऋण लेनेके समय अधमर्णकी सदा स्थि-  
तिका संभव नहीं है उसको कहै अथवा जो देश आदिको कहिकै मैने यह नहीं  
कहाहै ऐसे मुकर जाय और जो पहले तथा पीछे अपने कहे हुए अर्थको विरु-  
द्ध नहीं जानताहै और जो मेरे हाथसे इसने सुवर्णका एक पल लियाहै ऐसे कहकै  
फिरि कहै कि मेरे पुत्रसे लियाहै और जो भलीभांति प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको तुमने  
रातिमें साक्षियोंके विना क्यों दिया ऐसे प्राड्विवाकके पूछनेपर समाधान न करै  
और जो बात करनेके अयोग्य निर्जन आदि देशमें साक्षियोंके साथ परस्पर वा-  
त करै और जो कहे हुए अर्थकी हठताके लिये प्राड्विवाकके कहे हुए प्रश्नकी इ-  
च्छा न करै और निष्पतेत् कहिये यहां ठरना योग्य नहीं जो तुम्हारे औरोंका  
ऐसा व्यवहार होनेपर ऐसे कहिकै नियत्र स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाय  
और जो कहौ ऐसे कहनेपर कुछ न कहै और जो कहे हुए साध्यको प्रमाणसे  
सिद्ध न करै और जो पहले साधनको और दूसरे साध्यको नहीं जानताहै असा-  
धनको साधन करिकै कहताहै असाध्यही जैसे इसने शशके सींगका बना मे-  
रा धनुष लियाहै इसको देना चाहिये इत्यादि बातोंको साध्यत्वसे कहै वह इस  
साध्य अर्थसे हीन होजाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न र्यः । धर्मस्थः कां  
रणैरै हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥ अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्  
ध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः न चे त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मप्रति पराजितः ५८

टीका—मेरे साक्षी हैं ऐसे कहिकै उनको लाओ ऐसा कहनेपर जो साक्षियों-  
को नहीं लाताहै उसको धर्ममें स्थित प्राड्विवाक पहले कहे हुए इन कारणोंसे हा-

रा हुआ कहै ॥ ५७ ॥ जो अर्थी राजस्थानमे निवेदन ( लानिश ) करिकै भाषा-  
में ( इजहारोंके समय ) न कहै तौ विषम तथा भारी मुकद्दमेकी अपेक्षासे व-  
धके योग्यहै और हलकेमें धर्मसे दंडके योग्यहै और जो प्रत्यर्थी तीनिपक्षमें न  
कहै तौ धर्मसे हारताहै छलसे नही ॥ ५८ ॥

यो यांवंत्रिन्हुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ॥ तौ नृपेण द्विधर्मज्ञौ  
दाप्यौ तद्विगुणं दर्मम् ॥ ५९ ॥ पृष्टोऽप्यव्ययमानस्तु कृतावस्थो  
धनेषिणा ॥ त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

टीका—जो प्रत्यर्थी जितने धनको मुकरि जाय अथवा अर्थी जितने धनमें  
मिथ्या बोलै वे दोनो अधर्मी छुपाने तथा झूठ कहे हुए धनसे दुगुना दंड दिवा-  
ने योग्यहैं अधर्मज्ञौ इस वचनसे जानिकै छुपाने तथा मिथ्या कहनेके मध्ये यह  
दंडहै प्रमाद आदिसे छुपाने तथा झूठनि योग ( दावा ) करनेमें सौका दशमा  
भाग कहै गे ॥ ५९ ॥ धनके चाहनेवाले उत्तमर्ण करि राजपुरुषोंसे हुलवाया ग-  
या और प्राड्विवाक करि पूँछा गया जब मैं नही देनदार हौं ऐसे छुपाय जाय  
तब राजाके अधिकारी ब्राह्मणके आगे तीनिसे कम न होंय ऐसे साक्षियोंसे अर्थी-  
को सावित करना चाहिये ॥ ६० ॥

यादृशा धनिभिः कार्यो व्यवहारेषु साक्षिर्णः ॥ तादृशान्संप्रवक्ष्या  
मि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥ गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रवि  
द्वैशूद्रयोऽनयः ॥ अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

टीका—उत्तमर्ण आदि धनियोंको ऋण लेने आदि व्यवहारेमें जैसे साक्षी  
करने चाहिये उनको मैं कहौंगा और जैसे उनको सत्य बोलना चाहिये उस प्रकार-  
रको भी कहौंगा ॥ ६१ ॥ गृहस्थ पुत्रयुक्त उम्मी देशके और जातिमें क्षत्रिय वैश्य  
शूद्र होंय ऐसे अर्थीके बतलाये हुए साक्षीके योग्य होते हैं वे निश्चय करि स्त्रीपुत्र  
आदिके विनाशके भयसे और उस देशके बसनेवालेसे विरोधके कारण अन्यथा  
नही कहैगे ऋण लेने आदिसे जो कोई साक्षी नही होते हैं आपत्तिमे तौ वाग्दंड  
पाठ्य स्त्रीसंग्रहण आदिमें तौ कहे हुए साक्षियोंसे भिन्न साक्षी होते हैं ॥ ६२ ॥

आप्तः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिर्णः ॥ सर्वधर्मविदोऽलुब्धा  
विपरितास्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ नार्थसंबन्धिर्नोनाप्तः न सहाया न

वैरिणः ॥ नं दृष्टदोषाः कर्त्तव्या नं व्याध्यार्त्ता नं दूषिताः ॥ ६४ ॥

टीका—सब वर्णोंमें आप्त कहिये यथार्थ कहनेवाले सब धर्मोंके जाननेवाले और लोभ रहित साक्षी करने चाहिये और इनसे विपरीत न करै ॥ ६३ ॥ ऋण आदि अर्थके संबंधी अर्थात् अधमर्ण आदि और प्राप्त कहिये मित्र और सहायता करने वाले और वैरी और दृष्ट दोष कहिये जिनका कही झूठी गवाही देना जाना गयाहै और रोगी तथा जिनको महापातक आदि दोष लगि रहाहै ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६४ ॥

न साक्षी नृपतिः कांयो नं कारुककुशीलवौ ॥ नं श्रोत्रियो नं लिङ्गस्थो नं संगेभ्यो विनिर्गतः ॥ ६५ ॥ नाध्यधीनो नं वर्त्तव्यो नं दस्युनं विकर्मकृत् ॥ नं वृद्धो नं शिशुनं को नान्त्यो नं विकलेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

टीका—प्रभुहै इस कारणसे पूछने योग्य न होनेसे राजा साक्षी नहीं करने योग्यहै और कारुक कहिये सूपकार आदि कुशीलव कहिये नट आदि क्योंकि वे अपने कामसे अवकाश नहीं पाते है और बहुधा धनके लोभसे साक्षी होते हैं और वेदक पढना तथा अग्निहोत्र आदि कर्ममें लगे रहनेसे वेदपाठीको साक्षी न करै लिङ्गस्थ कहिये ब्रह्मचारी और संगविनिर्गत कहिये संन्यासी ये दोनो भी अपने कर्ममें व्याकुल तथा ब्रह्मके ध्यानमें लगे रहते हैं इससे येभी साक्षी नहीं करनेयोग्यहैं श्रोत्रियके कहनेसे अग्निहोत्र आदिमें लगे हुए ब्राह्मणसे अन्य ब्राह्मणकद निषेध नहीं है ॥ ६५ ॥ अध्यधीन कहिये जो बहुतही परार्थीन होय ऐसा गर्भदास विहित कर्मके त्यागसे लोकमें निन्दित है इस कारण साक्षी नहीं करना चाहिये और दस्यु कहिये चूरकर्म करनेवाला और विकर्मकृत् कहिये निषिद्ध कर्म करनेवाला क्योंकि उनसे राजाके द्वेष आदिका संभवहै और वृद्ध न करना चाहिये क्योंकि बहुधा वृद्धकी बुद्धिमें अंतर पडिजाताहै और बालक न करना चाहिये क्योंकि वह व्यवहारसे बाहरहै और एक न करना चाहिये और अंत्य कहिये चांडाल आदि और विकलेन्द्रिय कहिये जिसकी कान आदि इंद्रियां विगडी होय ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६६ ॥

नात्तो नं मत्तो नो न्मत्तो नं क्षुत्तृष्णोपपीडितः ॥ नं श्रमात्तो नं कां मात्तो नं वृद्धो नापि तस्करः ६७ स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां

सदृशा द्विजाः । शूद्रार्थं संतः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ ६८ ॥

टीका—आर्त्त कहिये बंधुविनाश आदिसे दुखी और मद्य आदिसे मतवारा और भूत आदिके आवेशसे उन्मत्त और भूख प्यास आदिसे पीडित और श्रमार्त्त कहिये मार्गके चलने आदिसे थका हुआ और कामके जो बशमें होय तथा जिसको 'क्रोध' उत्पन्न हुआ होय और चोर ये सब साक्षी न करने चाहिये ॥ ६७ ॥ स्त्रियोंके आपसके ऋण लेने आदि व्यवहारमें स्त्री साक्षिणी होती हैं और द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके सदृश कहिये समान जातिके साक्षी होते हैं ऐसेही शूद्रोंके सज्जन शूद्र साक्षी होते हैं और चांडालोंके चांडाल आदि साक्षी होते हैं और सजातीय साक्षी न होनेपर और जातिकेभी होते हैं ॥ ६८ ॥

अनुभावी तुं यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् । अन्तर्वैमन्यं  
पये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥ ६९ ॥ स्त्रियाप्यसंभवे कार्ये बाले  
न स्थविरेण वा ॥ शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भूतकेन वा ७० ॥

टीका—घरके भीतर अथवा वन आदिमें चोरों करि किये हुए उपद्रवमें देहमें चोट लगनेपर अथवा आततायी आदिके किये हुए उपद्रवमें जो कोई मिलजाय वह वादियोंका साक्षी होताहै ऋणदान आदिके समान कहे हुए लक्षण करि युक्त साक्षी नहीं होते हैं ॥ ६९ ॥ घरके भीतर आदिमें कहे हुए साक्षी न होनेपर स्त्री बालक वृद्ध शिष्य मित्र सेवक और कर्म करनेवालेभी साक्षी होते हैं ७०

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषां जानीयादस्थिरां वाचमु  
त्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥ साहसेषु च सर्वेषु स्तेर्यसंग्रहणेषु च ॥  
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षित साक्षिणः ॥ ७२ ॥

टीका—बालक वृद्ध रोगी और उपद्रवयुक्त मनवाले मत्त उन्मत्त आदिकोंके गवाही देनेमें झूठ बोलनेवालोंकी वाणी स्थिर नहीं होती है इसे उनका अनुमानसे जानै ॥ ७१ ॥ घर जलादेने आदि साहसमें और चोरी स्त्रिसंग्रहण और वाग्दण्डपारुष्यमें साक्षियोंकी कही हुई परीक्षा न करनी चाहिये ॥ ७२ ॥

बहुत्वं परिगृणीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ॥ समेषु तु गुणोत्कृष्टान्  
गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥ समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव  
सिद्धयति ॥ तत्र संत्यं भुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ७४ ॥

टीका—साक्षियोंके आपसमें विरुद्ध कहनेपर जिसको बहुतसे कहैं उसको राजा निर्णय प्रमाण करै और जो बराबर होय तौ गुणवानोंका प्रमाण करै गुणवानोंमेंभी जो विरोध पडै तौ ब्राह्मणोंमें जो क्रियावान उत्तम होय उनको प्रमाण करै ॥ ७३ ॥ सामने देखनेसे और कानोंसे सुननेसेभी साक्षी होताहै सत्य बोलता हुआ साक्षी धर्म तथा अर्थ करि मुक्त नहीं होताहै ॥ ७४ ॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि। अवाङ्मकर्मभ्येति प्रेत्यं स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥ यत्रानिवद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन । पृष्टस्तत्रापि तद्द्रव्याद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

टीका—साधुओंकी सभामें देखे हुए और सुनेसे अन्यथा कहता हुआ साक्षी नीचा मुखहो नरकको जाताहै और परलोकमेंभी अन्य कर्मोंसे प्राप्त स्वर्गरूप फलसे हीन होजाताहै ॥ ७५ ॥ तुम इस विषयमें साक्षी हो ऐसे कहकै नहीं किया हुआभी जो कुछ ऋणका लेना आदि देखै अथवा वाक्पारुष्य आदिको सुनै वहां साक्षी देखे सुनेके अनुसार कहै ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्द्वयः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥ स्त्रीबुद्धे रस्थिरत्वाच्च दोषैश्चान्येऽपि ये वृत्ताः ७७ स्वभावेनैव यद्द्रुयुस्तद्वाह्यं व्यावहारिकम् ॥ अतो यदन्यद्विब्रुयुर्धर्मा र्थं तदपार्थक्यम् ७८

टीका—लौभ रहित एकभी साक्षी होता है और अपनी शुद्धताईसे युक्त बहुतभी स्त्रियां बुद्धि स्थिर न होनेके कारण ऋणादान आदिपर्यालोचित व्यवहारमें साक्षिणी नहीं होती हैं और अपर्यालोचित चोरी तथा वाग्दंडपारुष्य आदि व्यवहारमें असंभव होनेपर स्त्रीकोभी साक्षी करना स्नाहिये तथा औरभी जो चोरी आदि दोषों करि युक्तहैं वेभी पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षी नहीं होते हैं ॥ ७७ ॥ जो साक्षी भय आदिके विना स्वभावसे कहैं वह व्यवहारके निर्णयके लिये ग्रहण करना चाहिये और जिसको वे स्वाभाविकसे तथा अन्य किसी कारणसे कहैं वह धर्मके विषयमें निष्प्रयोजनहै उसको न ग्रहण करै ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥ प्राङ्निवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना ते न सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥ यद्द्वयोरनयोर्वैतथ्यं कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः ॥ तद्भूतं सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षितां ८०

टीका—सभामें आये हुए साक्षियोंसे अर्था प्रत्यर्थीके सामने राजाका अधि-

कारी ब्राह्मण मीठी बातें कहता हुआ आगे कहे हुए प्रकारसे पूँछे ॥ ७९ ॥ इन दोनो अर्थों प्रत्यर्थियोंके आपसके इस काममें जो जानते हो वह सब सत्य कहो तुम इसमें साक्षी है ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकांनाप्रोति पुष्कलान् ॥ इह चानुत्तमां  
कीर्त्तिं वांगेषां ब्रह्मपूजितां ॥ ८१ ॥ साक्ष्येऽनृतं वदन् पाशैर्बद्धयते  
वारुणैर्भृशम् । विवशः शतंमार्जातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥ ८२

टीका—साक्षी अपने काममें सत्य कहता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मलोक आदि लोकोंको प्राप्त होता है और इस लोकमें अति उत्कृष्ट ख्यातिको प्राप्त होता है जिस्से यह सत्यरूपवाणी ब्रह्माकरि पूजितहै ॥ ८१ ॥ साक्षी झूठीवाणी को कहता हुआ वरुणकी पाश अर्थात् सर्परूप रस्सियोंसे बंधा हुआ और जलोदर नाम रोगके पराधीनहों सौ जन्मतक अत्यंत पीडित रहता है तिस्से साक्षीको सत्यबोलना चाहिये ॥ ८२ ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥ तस्मात्सत्यं हि वर्तव्यं स  
वर्षणेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा त  
थात्मनः ॥ मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

टीका—साक्षी सत्य कहनेसे पूर्वजन्ममें भी इकठ्ठे किये हुए पापसे छूटि जाता है और सत्य कहनेसे इसका धर्म बढ़ताहै तिस्से सवर्णके विषयमें साक्षीको सत्य कहना चाहिये ॥ ८३ ॥ शुभ अशुभ कर्ममें स्थितआत्माही अपना रक्षकहै तिस्से मनुष्योंके मध्यमें उत्तम साक्षी आत्माको झूठ बोलनेसे मत तिरस्कार कर ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो नैकश्चित्पश्यतीति नः ॥ तांस्तु देवाः प्रभ  
इयन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥ द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्राकर्ण  
ग्रियमानिलाः ॥ रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

टीका—पाप करनेवाले ऐसा जानते हैं कि अधर्म करनेमें हम कहेई नहीं देखताहै परंतु उनको आगे कह हुए देखते हैं और अपना अंतरात्मा पुरुष देखताहै ॥ ८५ ॥ दुलोक, पृथिवी, जल, हृदयमें स्थित जीव, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, पवन, रात्रि, और दोनो संध्या और धर्म ये सब देहधारियोंके शुभ कर्मको जानते हैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ॥ उदङ्मुखान्प्राङ्मुख-



खान्वा पूर्वाह्ने वै शुचिः शुचीन् ॥८७॥ ब्रूहीति ब्राह्मणं पूच्छेत्सं  
त्यं ब्रूहीति पार्थिवम्। गोबीजकाञ्चनेवैश्यं शूद्रं सर्वस्तु पातकैः ८८

टीका—प्रतिमा आदिकोंसे जो पूर्वको अथवा उत्तरको मुख किये हों आप प्रा-  
द्विवाक शुद्ध होके पूर्वाह्न काल अर्थात् दुपहरके पहले साक्ष्य (गवाही) पूछे ॥८७॥  
ब्रूहि कहिये कहौ ऐसा शब्द कहिके ब्राह्मणसे पूछे और सत्य कहौ ऐसा कहिके  
क्षत्रियसे पूछे और गौ, बीज तथा सुवर्णके चुरानेमें जो पाप होताहै सो तुमको  
झूठ बोलनेमें होगा ऐसे कहिके वैश्यसे पूछे और जो झूठ बोलोगे तौ जिनको  
आगे कहेंगे उन सब पापों करि युक्त होंगे ऐसे कहिके शूद्रसे पूछे ॥ ८८ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृतां लोकान्ये च स्त्रीवालघातिनः। मित्रद्रुहः कृतघ्न  
स्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥८९॥ जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भ  
द्र त्वया कृतम् ॥ तं ते सर्वं शूनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥९०॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेवालेको तथा स्त्री और बालकके मारनेवालेको औ-  
र मित्रद्रोहीको तथा कृतघ्नीको जो लोक मिलते हैं वे झूठवा गवाही देनेवाले  
को प्राप्त होते है ॥८९॥ हे शुभ आचारवाले जन्मसे लगाके जो कुछ तुमने सुकृत  
कियाहै सो सब तुम्हारा झूठी गवाही देनेसे कूकुर आदिमें चला जायगा ॥९०॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणमन्यसे ॥ नित्यं स्थितस्ते  
हृदयेषु पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९१॥ यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष  
हृदि स्थितः ॥ तेन चेदविवादस्ते मां गद्गं मां कुरून् गर्मः ॥९२॥

टीका—हे भद्र मैं जीवात्मक एकही हौं यह जो तुम आपको मानते हो तौ  
ऐसा मति मानौ क्योंकि पापों और पुण्योंका देखनेवाला मुनि कहिये सर्वज्ञ प-  
रमात्मा सदा तुम्हारे हृदयमें स्थित है ॥ ९१ ॥ सबके संयमनसे यम और दंड-  
धारी हानेसे वैवस्वत और क्रीडा करनेसे देव जो यह तुम्हारे हृदयमें स्थित है  
उसके साथ यथार्थ कहनेसे जो तुम्हारा विवाद न होय जब तुम्हारे मनोगतको  
यह और प्रकारसे जानताहै और तुम और प्रकारसे कहतेहौं तौ अंतर्गामीके साथ  
तुम्हारा विरोध होगा इस्से सत्य कहनेहीसे तुम पाप रहित और कृतकृत्यहौ पाप  
दूर करनेके लिये गंगा तथा कुरुक्षेत्रको मति जाओ ॥ ९२ ॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थं क्षुत्पिपासितः ॥ अन्धः शत्रुकुलं  
गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥९३॥ अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किं

ल्विषी नरकं व्रजेत् ॥ यः प्रश्नं विरतं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये १४

टीका—जो झूठ साक्ष्य देता है वह नंगा तथा मुडिया हो खपरोंमें भीख मांगनेको शत्रु कुलमें जाता है ॥२३॥ धर्मके निश्चयके लिये पूँछा गया जो पुरुष झूठ बोलता है वह पापी अधोमुखहो बड़े अंधकारमें जो नरक है उसमें जाता है ॥२४॥

अन्धो मत्स्यानिवाश्रति सं नरः कण्टकैः सह ॥ यो भार्षतेथैव  
कैल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ १५ ॥ यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्र  
ज्ञो नाभिर्शङ्कते ॥ तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः १६

टीका—सभामें गया हुआ जो पुरुष तत्व अर्थके ठीक ठीक भावको न जानि घूसी आदि सुखके लेशसे कहता है वह अंधके समान काटेसमेत मछलीयोंको खाता है सुखकी बुद्धिसे तो प्रवृत्त होता है परन्तु बड़े दुःखको पाता है ॥ १५ ॥ जिसके कहते हुए सर्वज्ञ अंतर्यामी क्या यह झूठ बोलता है अथवा सत्य ऐसी शंका नही करता है किंतु सत्यही कहता है ऐसे शंकारहित होता है लोकमें अति उत्तम सस्से पुरुष देवता नही जानते हैं ॥ १६ ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥ तावतः सं  
ख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥ १७ ॥ पञ्च पश्वनृते हन्ति  
दश हन्ति गर्वानृते ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ १८ ॥

टीका—जिस पशु आदिके निमित्त साक्ष्य ( गवाही ) में झूठ कहता हुआ जितने पिता आदि बांधवोंको नरकमें डालता है गणनासे गिनाये हुए उनको हे साथी मुझसे सुनो अथवा जितने बांधवोंको मारता है उनके मारनेके फलको पाता है उनको सुनो दोनो पक्षोंमें झूठ बोलनेकी निंदा हुई ॥ १७ ॥ पशुके मध्ये झूठ बोलनेमें पांच बांधवोंको नरकमें डालता है अथवा पांच बांधवोंके मारनेके फलको पाता है ऐसे गौओंके विषयमें दशके और अश्वके मध्ये सौके और पुरुषके विषयमें एकहजारके यह संख्याका गौरव प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है ॥ १८ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृते हन्ति  
मां स्मं भूम्यनृतं वदीः ॥ १९ ॥ अप्सु भूमिव दित्याहुः स्त्रीणां भो  
गे च मैथुने ॥ अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥

टीका—सुवर्णके लिये झूठ बोलता हुआ पुरुष उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए पुत्रपौत्र आदिकों नरकमें डालता है अथवा इनके मारनेके फलको पाता है और

भूमिके मध्ये झूठ बोलता हुआ सब प्राणियोंके मारनेके फलको पाताहै ति-  
स्से भूमिके मध्ये झूठ मत बोले यह शिष्यकी शिक्षाका कथनहै ॥ ९९ ॥ वैदूर्य  
आदि मणियोंकी झूठमें भूमिके समान दोषहै यह कहतेहैं तलाव तथा कुआके ले-  
नेयोग्य जलके मध्ये और स्त्रियोंके मैथुन नाम उपभोगमें और अब्ज कहिये जल-  
से उत्पन्न हुए मोती आदिकोंके मध्ये और पाषाणमयी वैदूर्य अदिके मध्ये झू-  
ठमें भूमिके समान दोष कहते हैं ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ॥ यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वं  
मेवाञ्जसा वद ॥ १ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवा  
न् ॥ प्रेष्यान्वाधुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ २ ॥

टीका—झूठ बोलनेमें तुम इन सब दोषोंको देखि जैसा देखा और सुना हो-  
य वैसाही तत्त्वसे कहौ ॥ १ ॥ गौओंकी रक्षासे जीनेवाले और वाणिज्यसे जी-  
ने वाले तथा सूपकार आदि कारु कर्मसे जीनेवाले तथा नटके कामसे और नाच-  
ने गानेसे जीनेवाले और दासकर्मसे जीनेवाले और निषिद्ध जीविका करनेवा-  
ले ब्राह्मणोंसे साक्षीके प्रश्नमें शूद्रके समान पूछै ॥ २ ॥

तद्दर्दन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ॥ न स्वर्गाच्च्यवते लोका  
है वीर्याचं वदन्ति ताम् ॥ ३ ॥ शूद्रविद्वक्षत्रविप्राणां यत्रतोऽत्तौ  
भवेद्वधः ॥ तत्र वर्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ ४ ॥

टीका—साक्ष्यको अन्यथाभी जानता हुआ मनुष्य धर्मसे दया आदि करि  
व्यवहारोंमें अन्यथा कहता हुआ स्वर्गसे नहीं भ्रष्ट होताहै जिस्से यह कारण-  
विशेषसे जो झूठ कहना है उसको मनु आदि देवसंबन्धिनी वाणी कहते हैं ॥ ३ ॥  
जहां सत्य कहनेमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रका वध होता होय वहां झूठ  
बोलना चाहिये क्योंकि वह झूठ सत्यसे अधिकहै ॥ ४ ॥

वाग्देवत्यैश्चं चरुभिर्यजेरस्ते सरस्वतीम् ॥ अनुत्स्येन्नसस्तेस्य  
कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ ५ ॥ कूर्ष्माण्डैवोपि जुहुयाद्घृतमग्नौ य  
थाविधि ॥ उदित्यृचा वा वारुण्या ऽर्यृचेनाब्देवतेन वा ॥ ६ ॥

टीका—वे झूठ बोलनेवाले साक्षी झूठसे उत्पन्न हुए पापकी उकृष्ट शुद्धिको क-  
रते हुए वाणी है देवता जिसका ऐसे चरुसे सरस्वतीका यजन करें ॥ ५ ॥ यजु-  
वेदके यद्देवादेवहेलनं इत्यादि कूर्ष्माण्ड मंत्रहैं उन मंत्रोंसे देवताके निमित्त अग्नि-

में विधिपूर्वक घृतका होम करै और अपने गृह्यमें कहे हुए परिस्तरण आदि होमके धर्मसे वरुणहै देवता जिसके ऐसी उदुत्तमंवरुणपाशय इस ऋचासे और उदक जिसकी देवता है ऐसी आपोहिष्ठा इस ऋचासे घीका अग्निमें होम करै ॥६॥

त्रिपेक्षादन्वन्सोक्ष्यमृणादिषु नरोऽगर्दः । तदृष्टं प्राभुयात्सर्वं दर्शव  
न्धं च सर्वतः ॥ ७ ॥ यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।  
रोगोऽग्निज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सं ॥ ८ ॥

टीका—जो रोगरहित साक्षी ऋणदानादि व्यवहारमें तीनि पक्षों तक जो गवाही न दे तो उस विवादका सब धन उत्तमर्णको देवै और उस सब ऋणका दशमा भाग राजाको दंड देवै ॥७॥ जो गवाही दे चुकहै ऐसे साक्षीके जो सात दिनके भीतर रोग आगि लगना अथवा समीपी गुत्र आदि ज्ञातिके मरणमेसे कोई होय तो मिथ्याका दोष प्रकट होनेके कारण उत्तमर्णका ऋण और राजाका दंड उससे दिलाना चाहिये ॥ ८ ॥

असाक्षिकेषु त्वथेषु मिथो विवदमानयोः ॥ अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं  
शपथेनापि लम्भयेत् ॥९॥ महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः  
कृताः ॥ वसिष्ठश्चापि शपथं शेषैर्विवनेनृपे ॥ ११० ॥

टीका—जिनके साक्षी नहीं हैं ऐसे व्यवहारमें आपसमें विवाद करनेवालोंके तत्वको छल आदिके विना नहीं प्राप्त होता हुआ प्राङ्गिवाक जो आगे कहेंगे उस शपथसे सत्यको जानै ॥९॥ सप्तऋषियोंने और इंद्रादिक देवताओंने संदेहयुक्त कार्योंके निर्णयके लिये शपथ बनाये इसने सौ पुत्र स्वाय लिये ऐसे विश्वामित्र करि दोष लगाए गये वसिष्ठ मुनिने अपनी शुद्धिके लिये पियवननाम राजाके पुत्र सुदामा राजाके आगे शपथ किया यहां शप धातुका करना अर्थ किया है ॥११०॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ॥ वृथा हि शपथं कु  
र्वन् प्रेत्य चेहं च नश्यति ॥११॥ कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये  
तथेन्धने ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥१२॥

टीका—पंडित छोटेशी काममें वृथा शपथ कहिये सौगंद न करै क्योंकि वृथा शपथ करता हुआ मनुष्य परलोकमें तथा इस लोकमें नरकके मिलने तथा अजसके मिलनेसे नाशको प्राप्त होताहै ॥११॥ जिसको बहुत स्त्री हैं वह एक स्त्रीसे ऐसे कहै कि मैं औरको नहीं चाहता हौ तूही मेरी प्यारी है इस भांति अच्छे भोगके लाभके

लिये शपथ करै और विवाहोंमें जैसे मैं और व्याह न करोगा और गौके लिये घास आदिके ले लेनेमें और अग्निमें होमके लियेई धनके लेनेमें और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अंगीकार किये हुये धन आदिमें वृथा शपथ करनेसे पाप नहीं होताहै १२

सत्येन शार्पयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं  
सर्वैस्तु पातकैः ॥ १३ ॥ अग्निं वाह्यारयेदेनमप्सु चैनं निर्मज्जयेत् ॥  
पुत्रदारस्य वाप्ये न शिरांसि स्पृशयेत्पृथक् ॥ १४ ॥

टीका—ब्राह्मणको सत्य शब्दका उच्चारण करिकै शपथ करावै और क्षत्रिय-  
को वाहन तथा आयुधोंसे अर्थात् मेरे सब चाहन तथा आयुध निष्फल होय ऐ-  
से शपथ करावै और गौ बीज तथा सुवर्ण निष्फल होय ऐसे वैश्यसे और  
मुझको सब पापहोय ऐसे शूद्रसे शपथ करावै ॥ १३ ॥ अग्निके समान पचास  
पलका आठ अंगुलके लोहेके गोलको शूद्र आदिके दोनो हाथोंमें सात पीपलके  
पत्ते रखके धरावै और पितामह आदि करिकही हुई विधिसे सात पैडतक चलावै  
और जोक आदि करि रहित जलमें इसको गोता दिवावै और पुत्रोंके तथा  
स्त्रीका शिर जुदा जुदा इसको छुवावै ॥ १४ ॥

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ॥ न चातिमृच्छति क्षिप्रं  
संज्ञैर्यः शर्षथे शुचिः ॥ १५ ॥ वर्त्सस्य ह्यभिज्ञस्तस्य पुरा भ्रात्रा  
पवीयसा ॥ नाग्निर्ददाह रोमां पिसत्येन जगंतःस्पृशः ॥ १६ ॥

टीका—जिसको प्रकाशमान अग्नि न जलावै और जल जिसको उपरको न  
उछालै और जो बडी पीडाको न प्राप्त होय वह शपथमें शुद्ध जानना चाहिये  
॥ १५ ॥ पहलें समयमें वर्त्सनाम ऋषिको वैमात्र छोटे भाईने यह दोष लगा-  
या कि तू ब्राह्मण नहीं है शूद्रका पुत्र है इसके शपथके लिये अग्निमें घसे हुए  
उस ऋषिके रोमकोभी अग्निने सत्यके कारणसे नहीं जलाया ॥ १६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्निवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ॥ तत्तत्कार्यं निर्व-  
र्त्तत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥ १७ ॥ लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्क्रामा-  
त्क्रोधात्तथैव च ॥ अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं विरतथमुच्यते ॥ १८ ॥

टीका—जिस जिस व्यवहारमें साक्षियोंने झूठ कहाहै यह निश्चय होजाय न-  
ही पूर हुए उस उस कामको प्राद्विवाक लौटाय देवै और जो दंडकी समाप्ति त-

कभी पहुंचि गया होय उसकीभी फिरि परीक्षा करै ॥ १७ ॥ लोभसे और मोह कहिये विपरीत ज्ञानसे और भयसे, स्नेहसे, कामसे क्रोधसे, अज्ञानसे और बाल-भाव कहिये असावधानीसे झूठी गवाही दीजाती है ॥ १८ ॥

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ तस्य दण्डविशेषास्तु  
प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ १९ ॥ लोभात्सहस्रं दण्डयस्तु मोहात्पूर्वं तु  
साहसम् ॥ भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२० ॥

टीका—इन लोभ आदिकोंमेंसे किसी कारणके होनेपर जो साक्षी झूठी गवाही देता है उसके दंड विशेषोंको क्रमसे कहोंगा ॥ १९ ॥ लोभसे झूठी गवाही देनेपर जिनको आगे कहेंगे ऐसे हजार पण दंड देना चाहिये मोहसे प्रथम साहस जो आगे कहा जायगा और भयसे मध्यम साहस जो आगे कहे जायंगे और मैत्रसे चौगुना प्रथम साहस जानिये ॥ १२० ॥

कामादंशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ॥ अज्ञानाद्द्वौ शंते पूर्णं  
बालिश्याच्छतमेवं तु ॥ २१ ॥ एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डा  
न्मनीषिभिः ॥ धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ २२ ॥

टीका—स्त्रीसंभोगरूपं कामसे झूठी गवाही देते हुए को दशगुणा प्रथम साहस दंड देना चाहिये और क्रोधसे वक्ष्यमाण त्रिगुना मध्यम साहस और अज्ञानसे दोसौ पण और बालिश्य कहिये असावधानीसे एकसौही पण दंडदेना चाहिये ॥ २१ ॥ सत्यरूप धर्मके न लोप होनेके लिये और असत्यरूप अधर्मके निवारणके लिये झूठी गवाही देनेमें पहले मुनिश्वरोंके कहे हुए दंडोंको मनु आदि कहते हैं ॥ २२ ॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणान्ध्रान्धार्मिको नृपः ॥ प्रवासयेद्दण्डयि  
त्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ २३ ॥ दर्शं स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वा  
यंभुवोऽब्रवीत् ॥ त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ २४ ॥

टीका—झूठी गवाही देनेमें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको धर्मात्मा राजा पहले कहे हुये दंडको देकर अपने देशसे त्रिकाल देवै और ब्राह्मणको तौ धन-दं-देशसे निकाल देवै । हरप्यगः मनुने दंडके दण्ड-स्थान कहे है जो क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंमें होते हैं और ब्राह्मण तौ बडे अपराध ( कसूर ) के होनेपर अक्षत शरीर देशसे निकाला जाता है ॥ २४ ॥

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ॥ चक्षुर्नासा च कर्णौ च  
धनं देहस्तैर्वै च ॥ २५ ॥ अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वं  
तः ॥ सारापराधौ चालोर्क्य दण्डं दण्डयेषु पातयेत् ॥ २६ ॥

टीका—लिंग १ उदर २ जीभ ३ हाथ ४ पांशु ५ पांचमा अंगुलि ६ नाक ७ कान ८ धन ९ और देह १० ये दशदंडके स्थान कहे हैं इनमेंसे जिस जिस अंगसे अपराध होय तौ अपराधकी लघुता गुरुता देखके उस उस अंगका ताडन छेदन आदि करना चाहिये थोड़े अपराधमें धन दंड और महापातक आदिमें देह दंड कहिये मारना कहा है ॥ २५ ॥ वारंवार इच्छासे अपराध करनेको देखि ग्राम और वन आदि अपराधके स्थान हैं और दिनराति आदि अपराधके काल हैं इनको भलीभांति देखि सार कहिये अपराध करनेवालेका धन शरीर आदिकी सामर्थ्यको और थोड़े अथवा बहुत अपराधको देखि दंडके योग्य पुरुषोंको दंड देवै ॥ २६ ॥

अधर्मदण्डनं लोके यज्ञोन्नं कीर्तिनाशनम् ॥ अस्वर्ग्यं च परत्रा  
पि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ २७ ॥ अदण्ड्यान्दण्डयत्राजा दण्ड्यां  
श्चैर्वाप्यदण्डयन् ॥ अयज्ञो महदाभो ति नरकं चैव गच्छति ॥ २८ ॥

टीका—जीवते हुये ख्यातिको यश कहते हैं और मरे हुएकी ख्यातिको कीर्ति कहते हैं तिससे दोष आदिके जाने विना दंड देनेसे इस लोकमें यशका नाश होता है और परलोकमें मरे हुएकी कीर्तिका नाश होता है अर्थात् और धर्मसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग का रोकनेवाला है इससे उसका त्याग करै ॥ २७ ॥ जो दंडके योग्य नहीं हैं उनको धनलोभ आदिसे दंड देता हुआ और दंड देनेके योग्य हैं उनको अनुरोध आदिसे नहीं दंड देता हुआ राजा बड़े अयशको पाता है तथा नरकमें भी जाता है ॥ २८ ॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्विदण्डं तदनन्तरम् ॥ तृतीयं धनदण्डं तु  
वर्धदण्डमंतः परम् ॥ २९ ॥ वधेनापि यदा त्वेतान्निरग्रहीतुं न श  
क्यात् ॥ तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुज्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

टीका—तुमने अच्छा नहीं किया फिर ऐसा न करना ऐसे वाणीसे धमकाना वाग्दंड है सो प्रथम अपराधमें गुणवान्को करना चाहिये तिस परभी जो शांत् न होय तौ धिक्कार रूप दंड करै अर्थात् तेरे जन्मको धिक्कार है ऐसे कहै तिसपरभी

न मानै तौ तीसरा धनदंड ( जुमाना ) करै तिसपरभी निषिद्ध कर्म करै तौ व-  
धदंड अर्थात् त्राटना तथा अंगका काटना आदि करै मारै नही ॥ २९ ॥ जब  
अंगच्छेद आदि उलटे दंडसे जो दंडयोग्यको वशमें न करसकै तब इसमें वा-  
ग्दंड आदि चारौ करै ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥ ताम्ररूप्यसुवर्णानां  
तां प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृ-  
श्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ ३२ ॥

टीका—तांबे रूपे और सुवर्ण आदिकी जो पण आदि संज्ञा मोललेने बेचने  
ने आदि लोकके व्यवहारके लिये पृथिवीमें प्रसिद्धहै उनको दूण्ड आदिके लिये  
में संपूर्णतासे कहताहौं ॥ ३१ ॥ झरोखेमें होकर आयै हुए सूर्यके किरणोंमें जो  
सूक्ष्म रज दीखताहै उस रजके परिमाणोमे पहलेको त्रसरेणु कहते हैं ॥ ३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिङ्गैका परिमाणतः ॥ तां राजसर्षपस्ति-  
स्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ ३३ ॥ सर्षपाः षडर्चवो मध्यस्त्रियवं त्वे-  
ककृष्णलम् ॥ पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ ३४ ॥

टीका—आठ त्रसरेणुकी एक लिखा होतीहै उन तीनि लिखाओंका एक राज-  
सर्षप होताहै उन तीनि राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप जानना चाहिये ॥ ३३ ॥  
उन छः गौर सर्षपोंका मध्यम अर्थात् न बहुत मोटा न छोटा एक जब होताहै  
तीनिजवोंकी एक घोंघची अर्थात् रत्ती होती है और उन पांच रत्तियोंका एक  
मासा होताहै उन सोलह मासोंका एक सुवर्ण होताहै ॥ ३४ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ॥ द्वे कृष्णले संमधृते विज्ञे-  
यो रूप्यमाषकः ॥ ३५ ॥ ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् ॥  
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ ३६ ॥

टीका—चारि सुवर्णका पल दशपलका एक धरण होताहै  
और घोंघची बराबर : एक रूप्यमाषक-  
जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ उन सोलह रूप्यमाषकोंका एक रूप्यधरण और पु-  
राण राजत कहिये रजत संबंधी होताहै और तांबेके कर्ष भरको कार्षापण तथा



पण जानना चाहिये और कार्षिक शास्त्रके पलका चौथाई भाग जानना चाहिये इसीसे कोशवाले चारि कर्षको पल कहते हैं ॥ ३६ ॥

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥ चतुःसौवर्णिको निष्को  
विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ ३७ ॥ पर्णानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साह  
सः स्मृतः ॥ मध्यमः पञ्च विज्ञेयं सहस्रं त्वेव उत्तमः ॥ ३८ ॥

टीका—दशरौप्य धरणका एक रौप्यशतमान होताहै और चारि सुवर्णका एक निष्क परिमाणसे जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ पचास अधिक दोसौ अर्थात् दार्इसौ पणका मन्वादिकोंने प्रथम साहस कहाहै और पांचसो पणका मध्यम साहस जानना चाहिये और हजार पणका उत्तम साहसजानना चाहिये ॥ ३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति ॥ अपह्वं तद्विगुणं तन्मं  
नोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ वसिष्ठविहितां वृद्धिं मृजेद्वित्तविवर्धिनीम् ॥  
अंशीतिभागं गृण्णीयान्मासार्द्रार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥

टीका—मुझे उत्तमर्णका धन देनाहै ऐसे सभामें अधमर्णके कहनेपरसैकरा पीछे पांच दंड देने योग्यहै और जो सभामेंभी ऐसे कहै कि मैं इसका कुछ नहीं देनदार हौ ऐसे मुकर जाय तौ सैकरे पीछे दशपण दंड देने चाहिये यह मनुस्मृतिमें दंडका प्रकारहै ॥ ३९ ॥ वसिष्ठ कही हुई वृद्धि (व्याज) धनकी बढ़ानेवाली है उसको वृद्धिसे जीविका करनेवाला लावै उसीको दिखाते हैं सौ देनेपर उसका अस्सीमा भाग ले अर्थात् सौ पणपर सवापण प्रतिमहीने वृद्धि लेवै १४० ॥

द्विकं शतं वा गृण्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ द्विकं शतं हि गृण्णी  
नो न भवत्यर्थकिं लिषी ॥ ४१ ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च  
शतं समम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृण्णीयाद्रर्णानामनुपूर्वशः ॥ ४२ ॥

टीका—साधुओंका यह धर्म है ऐसा मानता हुआ दिये हुए सौपणोंपर दो पण प्रत्येक महीनेमें लेवै जिस्से सैकरेपर दो लेता हुआ वृद्धिके धन लेनेमें दोषी नहीं होताहै ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच सैकरेपर महीनेमें वृद्धि लेवै इस्से अधिक न लेवै (शंका) जो कही कि अस्सीमा भाग थोड़ाहै और सैकरेपर दो बहुतहैं तौ ब्राह्मणके यह थोडे बहुतका विकल्पकेसे होय इसपर मेधातिथि और गोविंदराजनाम दोनो टीकाकारोंने लिखाहै कि जो पहली वृद्धिसे निर्वाह न होय तौ सैकरेपर दो लेने चाहिये परंतु हम यह

कहते हैं कि बंधक ( गिरवी ) सहितमें अस्सीमां भाग और विना बंधकमे सैकरे पर दो लेने चाहिये सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ अशीतिभागो वृद्धिः स्त्रान्मासि-  
मासिसंबंधके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुःपंचकमन्यथा ॥ अर्थ ॥ बंधक सहितमें  
महीने अस्सीमा भाग वृद्धि होती है और अन्यथा कहिये बंधक रहितमें वर्णों  
के क्रमसे दो तीनि चारि पांच वृद्धि होती है इति ॥ ४२ ॥

न त्वैर्वाधौ सोपकारे कौसीदी वृद्धिर्माभुयात् ॥ न च धेः कालं  
संरोधात्रिं सगोऽस्ति न विक्रयः ॥ ४३ ॥ न भोक्तव्यो बलादां  
धिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ॥ मूल्येन तोष्येन्नमाधिस्तेनोऽ-  
न्यथा भवेत् ॥ ४४ ॥

टीका—भूमि गौ दास आदि बंधक भोगके लिये देनेपर धनके देनमें पहले कही  
हुई वृद्धिको उत्तमर्ण नहीं पाताहै बंधुत कालतक रहनेको काल संरोध कहते हैं  
भोग्य आधिके बहुत कालतक रहनेसे मूल धनके दुगुने होजानेपरभी दूसरेको देना  
अथवा वेचना नहीं हो सकताहै मेधातिथि और गोविंदराज कहते है कि आधि-  
के बहुत कालतक रहनेपरभी निसर्ग कहिये दूसरेके यहां धरना नहीं होसकता-  
है यहां तो महने धरी हुई भूमि आदिके दूसरेके यहां धरनेके समाचारसे सब  
शिष्टाचारसे विरोध होताहै ॥ ४३ ॥ कपडा-गहना आदि रक्षा करने योग्य आ-  
धि नहीं भोगनेयोग्य है जो भोग करै तो उसकी वृद्धिको छोडके पहले मूलसे  
इसको संतुष्ट करै अथवा भोगनेसे जो आधि असार होजाय अर्थात् किसी का-  
मकी न रहै तो अच्छी दशाका मूल्य देकर स्वामीको संतुष्ट करै जो ऐसा न-  
करै तो बंधकका चोर होय ॥ ४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालान्त्ययमर्हतः ॥ अवहार्यौ भवेतां तौ  
दीर्घकालमवस्थितौ ॥ ४५ ॥ संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति  
कदाचन ॥ धेनुरुष्ट्रो वर्हन्नश्चो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ ४६ ॥

टीका—आधि कहिये बंधक अर्थात् जो वस्तु गहने धरीजाय और उपनिधि  
कहिये जो भोगनेके लिये प्रीतिसे दीहुई वस्तु ये दोनो निधि उपनिधि बहुत का-  
लतक रहनेपरभी समय उलंघनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् जब उनका स्वामी प्रा-  
गै तभी देनेयोग्यहै ॥ ४५ ॥ दुही जाता हुई कहिये दूध देनेवाली गौ और स-  
वारी देता हुआ ऊंट तथा घोडा और काढनेके लिये दिया हुआ बैल आदि ये  
प्रीतिसे और करि भोग किये गये स्वामीके कभी नष्ट नहीं होतेहैं ॥ ४६ ॥

यत्किञ्चिद्दश वर्षाणि सत्रिंशौ प्रेक्षते धनी ॥ भुज्यमान परैस्तूष्णीं  
न सं तल्लब्धुर्मर्हति ॥ ४७ ॥ अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भु  
ज्यते ॥ भग्नं तद्भ्रूचवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥ ४८ ॥

टीका—जो कोई धन प्रीति आदिके विना दश वर्षतक दूसरों करि भोगा  
जाय और स्वामी देखै और कभी यह न कहै कि मतभोगो तौ स्वामी पाने योग्य-  
नहीं होताहै उसका उसमे स्वामीपन दूरि होजाताहै ॥ ४७ ॥ जिसकी बुद्धि वि-  
कल होय अर्थात् यथावस्थित न होय उसको जड कहते हैं और सोलह वर्षसे  
जिसकी अवस्था अधिक न होय उसको अपौगंड कहते हैं जो धनका स्वामी ज-  
ड तथा पौगंड न होय और उसके सामने उसका धन भोगा जाय तौ स्वामीका  
व्यवहारसे नष्ट होजाताहै भोगनेवालेहीका वह धन होजाताहै ॥ ४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं श्रोत्रियस्वं  
च न भोगेन प्रणश्यति ॥ ४९ ॥ यः स्वामिनाऽनुज्ञातमधिं भुङ्क्ते  
ऽविचक्षणः ॥ तेनाधिवृद्धिर्भोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः १५० ॥

टीका—आधि कहिये गहने धरी हुई वस्तु और सीमा कहिये ग्राम आदिकी  
मर्यादा बालकका धन निक्षेप कहिये बासनमें रक्खा हुआ विना गिनाया बंद  
किया हुआ धन अर्थात् धरोहड उपनिधि और स्त्री कहिये दासी आदि और रा-  
जा तथा वेदपाठीका धन ये कहे हुए दशवर्षके भोगसे स्वामीके नष्ट नहीं होते  
हैं और इनमें भोगनेवालेका स्वत्व नहीं होताहै ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख वृद्धि  
( व्याज ) से दिये हुई वस्तुको स्वामीकी आज्ञाविना छुपाके भोगताहै तौ उसको  
उस भोगकी शुद्धिके लिये आधी वृद्धि छोड़देनी चाहिये और बलसे भोगनेमें तौ  
संपूर्ण वृद्धिकाही त्याग कहाहै ॥-१५० ॥

कुसीदवृद्धिद्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहता ॥ धान्ये सदे लवे वाह्ये  
नातिक्रामति पञ्चताम् ॥ ५१ ॥ कृतानुसाराधिको व्यतिरिक्ता  
न सिद्धयति ॥ कुसीदपथर्माहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥ ५२ ॥

टीका—व्याजपर धनके देनेको कुसीद कहते हैं उसपर जो एकवार व्याज ले  
लिया जाय जो वह दूनेसे अधिक नहीं होताहै मूलसे दूनाही होताहै और व्याज  
दिये हुए धान्यमें और सद कहिये वृक्षके फलमें और लव कहिये ऊन आदि  
रोमोंमें और जोतनेयोग्य बैल आदिमें मूल धन धान आदि समेत पंच गुनेसे अ-

धिक नहीं होता है ॥५१॥ वर्णोंके क्रमसे शास्त्रके अनुसार की हुई दो तीनीकी वृद्धि-से भिन्न विना की हुई अधिक नहीं होती है किंतु की हुईभी वृद्धि वर्णोंके क्रमसे दो तीनी सैकरेपर मासमासमें लेनी चाहिये विना की हुई वृद्धिमेंभी दूसरा विशेष कहते हैं कि कुत्सितसे जो मार्ग चले उसको कुसीदपथ कहते हैं यह उत्तमर्णजो शूद्रके मध्ये कहे हुए सैकरेपर पांच द्विजातिसेभी लेवै तौ यही कुत्सित पंथा है अर्थात् पहले कहे हुए धर्मसंबंधी वृद्धि करनेवालेसे अपकृष्ट है यह मनुआदि कहते हैं यह विना की हुई वृद्धि उद्धारके विषयमें मागनेसे उपरांत जाननी चाहिये. क्योंकि कात्यायनका वचन है कि प्रीतिसे दिया हुआ जबतक न मागा जाय तबतक नहीं बढ़ता है और जो मागनेपर न दिया जाय तौ सैकरेपर पांच बढ़ें ॥ ५२ ॥

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चोदृष्टां पुनर्हरेत् ॥ चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः  
कारिता कायिका च यां ॥ ५३ ॥ ऋणं दातुमर्शतो यः कर्तुमिच्छे  
त्पुनः क्रियाम् ॥ स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ ५४ ॥

टीका—एकमहीना वा दो महीना अथवा तीनी महीना वीतनेपर हमारे व्याजका हिसाब करके एकवारही देना इस नियमसे जो उत्तमर्ण एक वर्षतक व्याज लेवै, और वर्षके वीतनेपर नियमकी वृद्धिको न लेवै, और शास्त्रसे नहीं देखी गई तथा कही हुई धर्मसंबंधिनी दो तथा तीनीपण सैकरेसे अधिक न लेवै, अधर्मता दिखानेके लिये यह निषेध है और शास्त्रमें नहीं कही हुई चक्रवृद्धि आदि चारिको न लेवै, उन चारोंका स्वरूप कहते है वृहस्पतिः । कायिकाकायसंयुक्ता मासग्राह्याचकालिका ॥ वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिताऋणिनाकृता ॥ अर्थ ॥ कायकरि युक्त होय उसको कायिका कहते हैं और जो महीने २ पुर लीजाय उसको कालिका कहते हैं और वृद्धिपर जो वृद्धि ( व्याजपर व्याज ) होती है उसको चक्रवृद्धि कहते हैं उनमें चक्रवृद्धि स्वरूपहीसे निर्दिष्ट है कालवृद्धि तौ दुगुनेसे अधिक लेनेसे होती है और कायिका बहुत जोतने तथा दुहनेसे होती है और कारिता वह होती है जो उत्तमर्णके दवावसे आपत्तिकालमें ऋणी करि कीजाय ये चारों वृद्धियां शास्त्रमें नहीं हैं इनको न लेवै ॥ ५३ ॥ जो ऋणी धनदेनेकी असामर्थ्यसे फिर लेख्य ( तमस्सुक ) आदि क्रिया करनेकी इच्छा करै वह निर्जित कहिये उक्त मार्ग करि सचाईसे अपने आधीन की हुई वृद्धिको देकर करण जो लेख्य ( तमस्सुक ) है उसको फिर लिखदेवै ॥ ५४ ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ॥ यावती संभवेद्वृद्धिस्ता

वर्ती दातुंमर्हति ॥५५॥ चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ॥  
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जो दैवगतिसे वृद्धि और हिरण्यकोभी न दे सकै तौ उसको मिलायकै उसीको फिर लिखे जाते हुए कामजपर वृद्धि और हिरण्य आदि मूल और व्याजको चढाय देवै उस समय जितना चक्रवृद्धिका धन होगा वह सब देना पड़ेगा ॥ ५५ ॥ चक्र शब्दसे यहां चक्रवाले छकड़ें आदिके भाडा रूप वृद्धि अभिमत है चक्रवृद्धिका आश्रय लेनेवाला उत्तमर्ण देश तथा कालकी व्यवस्थायुक्त होताहै जैसे जो काशीतक नोन आदि छकड़से ले जाउगा तौ मुझे इतना धन देनेयोग्य होगा यह मूल्यरूप देशकी व्यवस्था हुई और जो महीनेभर तक ले जाउगा तौ मुझे इतना देना होगा यह कालकी व्यवस्था हुई ऐसे अंगीकार किये हुए देश तथा कालके नियमको दैवयोगसे नहीं पूरा करता हुआ अर्थात् शकट आदिसे नहीं ले जाता हुआ लाभरूप संपूर्ण फलको नहीं प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

समुद्रयानकुंशला देशकालार्थदर्शिनः ॥ स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं  
सा तत्राधिर्गमं प्रति ॥५७॥ यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेदर्शनायेह मा  
नवः ॥ अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वर्धनादृणम् ॥ ५८ ॥

टीका—स्थलके मार्ग तथा जलके मार्गके जानेमें चतुर इतने देशतक तथा इतने कालतक लेजानेपर इतना लेना योग्यहै इस भांति देश तथा कालके लाभरूप धनके जाननेवाले बनिया आदि वैसे विषयमें जिस वृद्धिको व्यवस्थापित करै वही वहां व्यवस्था है और वही वहां वृद्धिके धनकी प्राप्तिमें प्रमाणहै ॥५७॥ जो मनुष्य जिसके दर्शनका प्रतिभू ( जामिन ) होय अर्थात् धन देनेके समयमें इस ऋणीको दिखा दूंगा ( हाजिर करदेउगा ) और वह उस कालमें उत्तमर्णको न दिखावै तौ अपने धनमेंसे उस धनके देनेका यत्न करै ॥ ५८ ॥

प्रातिभावं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दण्डशुल्कार्वशे  
षं च नुपुत्रो दातुंमर्हति ॥५९॥ दर्शनप्रातिभावे तु विधिः स्यात्  
त्पूर्वचोदितः ॥ दानप्रतिभूविप्रेते दार्यादानपिदापयेत् ॥ १६० ॥

टीका—प्रतिभूनसे अर्थात् जमानतसे जो धन देनेयोग्यहै उसको प्रातिभाव्य कहते हैं औ वृथा दान जो हंसीके निमित्त पंडा आदिके अर्थ देनेकी योग्य-

तासे पिताने अंगीकार किया और आक्षिक कहिये जुआके निमित्त तथा, सौरिक कहिये मृद्यके निमित्त और दंडके निमित्त औ शुल्क कहिये महसूल तिसका बाकी धन जो पिताको देना है उसको पिताके मरनेपर पुत्र देनेयोग्य नहीं है ॥ ५९ ॥ प्रातिभाव्य जमानतके धनको पुत्र नहीं देनेयोग्य है वह दर्शन प्रतिभू अर्थात् हाजिर जामिनी करनेवाले पिताके देनेयोग्य जानना चाहिये और देनेकी जमानत करनेवाले पिताके मरनेपर पुत्र आदिकोसे भी ऋण द्वावै ॥ ६० ॥

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतार्थवृणम् ॥ पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते प.  
रिप्सेत्केन हेतुना ॥ ६१ ॥ निरादिष्टधनश्चेत् प्रतिभूः स्यादलं  
धनः ॥ स्वर्धनादेवं तर्द्ध्यान्निरादिष्टं इति स्थितिः ॥ १६२ ॥

टीका—दान प्रतिभू अर्थात् देनेवाले जामिनसे दूसरा दर्शनप्रतिभू अथवा विश्वासप्रतिभूके मरनेपर पीछे धन देनेवाला उत्तमर्ण अपना धन कैसे पावै क्यों कि प्रतिभू मर गया है तो यह दर्शनप्रतिभू अथवा प्रत्ययप्रतिभू जो अधमर्ण करि निरादिष्ट अर्थात् निरुद्ध धन होय और प्रतिभूके पास उसके देनेयोग्य धन होय तो वह अथवा उसका पुत्र उत्तमर्णकी ऋण देवै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्वालैर्न स्थविरैर्ण वा ॥ असंबद्धकृतैश्चैवं व्य  
वहारो न सिद्ध्यति ॥ ६३ ॥ सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्या  
त्प्रतिष्ठिता ॥ बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्ब्रह्मावहारिकात् ॥ ६४ ॥

टीका—मद्य आदिसे मतवारे और रोग आदिसे उन्मत्त और बालक तथा वृद्ध करि पिता तथा भाईकी आज्ञाविना किये हुए ऋणका व्यवहार सिद्ध नहीं होता है ॥ ६३ ॥ यह मुझको करना है इत्यादिक भाषालेख्य आदिसे स्थिर की गई भी होय परन्तु जो शास्त्रके धर्मसे और परंपरासे चले आये हुए व्यवहारसे बाहर कही जाय तो वह सत्य नहीं होती है उसको न मानना चाहिये ॥ ६४ ॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥ यत्र वाप्युपरिधं पश्येत्त  
त्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ ६५ ॥ ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थं कृ-  
तो व्ययः ॥ दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥ ६६ ॥

टीका—योग कहिये छलसे किये हुए बंधक कहिये गिरवी और दान तथा प्रतिग्रह किये जाय परन्तु सत्यतासे नहीं और अन्यत्र कहिये धरोहड आदिमें जहां

छल जाना जाय अर्थात् वास्तवमें धरोहड न रक्खी होय वह सब लौटि जाता है ॥६५॥ पहलेसे वँटे हुए अथवा विना वँटे हुए भाई तथा कुटुंबके पालनेके लिये जो धन लेकर ऋणी मरजाय तौ उस ऋणको वँटे हुए और विना वँटे हुए सब अपने धनसे देवै ॥ ६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽर्घ्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥ स्वदेशे वा विदे  
शे वा तं ज्यायात्र विचालयेत् ॥ ६७ ॥ बलादृतं बलाद्धुक्तं बला  
द्यञ्चापि लेखितम् ॥ सर्वाच्चलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ ६८ ॥

टीका—स्वामी उसी देशमें होय अथवा दूसरे देशमें होय उसके कुटुंबके ख-  
रचके लिये जो सेवकभी ऋण करै तौ स्वामी उसको वैसाही अंगीकार करै ॥  
॥ ६७ ॥ बलसे दिया हुआ और बलसे भोगी गई भूमि आदि और बलसे लि-  
खाया गया चक्रवृद्धि आदिका पत्र आदि इन सब बलसे किये हुए व्यवहारोंको  
मनुने लौटाने योग्य कहाहै ॥ ६८ ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥ चत्वारस्तूप  
चीर्यन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ६९ अनादेयं नाददीतं परिक्षी  
णोऽपि पार्थिवः ॥ नचादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ७० ॥

टीका—साक्षी प्रतिभू और कुल ये तीनों धर्मार्थ व्यवहारोंमें पराये लिये क्लेश  
प्राप्ते है तिस्से इनसे साक्ष्य (गवाही) प्रातिभाव्य (जमानत) और व्यवहारका देख-  
ना नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण उत्तमर्ण बनियां और राजा ये चारि परा-  
ये लिये दानके फलका उत्पन्न करना ऋणके द्रव्यका देना विक्रय और व्यवहा-  
रका देखना इन बातोंको करते हुए धनकी वृद्धिको प्राप्त होते हैं तिस्से ब्राह्मण दे-  
नेवालेको और धनाढ्य अधमर्णको और बनिया बेचनेवालेको और राजा व्यव-  
हार करनेवालेको बलसे न प्रवृत्त करै ॥ ६९ ॥ राजा क्षीण धन होनेपरभी नहीं  
लेनेयोग्य धनको न लेवै और धनवान् होनेपरभी लेनेयोग्य थोडाभी न छोडै ७० ॥

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ॥ दौर्बल्यं ख्याप्यते  
राज्ञः संप्रेत्येह च नश्यति ॥ ७१ ॥ स्वादानाद्दर्शनसंसर्गात्त्वबलाणां  
च रक्षणात् ॥ बलं संजायते राज्ञः संप्रेत्येह च वर्धते ॥ ७२ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्यके लेनेसे और शास्त्रमें कहे हुए लेनेयोग्यके न लेनेसे  
पुरवासी राजाका असामर्थ्य स्थापित करते हैं तिस्से मरिक्के अधर्मसे नरक आ-

दिके भोगसे और इस लोकमें अपयशसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ न्याय्य कहिये उचित धनके लेनेसे और वर्णोंके सजाती शास्त्रोक्त विवाह आदिके संबंधसे अथवा वर्णोंका संसर्ग कहिये वर्णसंकर तिस्से रक्षा करनेसे और दुर्बल प्रजाओंकी बलवानसे रक्षा करनेसे राजाका सामर्थ्य उत्पन्न होता है तिस्से वह इस लोक तथा पुरलोकमें वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥

तस्माद्यमद्वं स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रियो वर्तेत याम्यया वृत्त्या  
जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्या  
न्नराधिपः । अचिरात्तं दुरात्मानं वंशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ ७४ ॥

टीका—तिस्से यमके समान राजा क्रोधको वशमें करि जितेन्द्रिय हो अपने भी प्रिय अप्रियको छोडि यमकी चेष्टासे सर्वत्र समानरूप वर्ते ॥ ७३ ॥ जो राजा लोभ आदिके व्यामोहसे अधर्मसे व्यवहारदर्शन आदि कार्योंको करता है उस दुष्टचित्तको प्रजा तथा पुरवासियोंकी अप्रीतिसे शीघ्रही शत्रु दंड देते हैं ॥ ७४ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति । प्रजास्तमनुवर्तन्ते  
समुद्रमिव सिन्धवः ॥ ७५ ॥ यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं  
नुपे । स राज्ञा तच्चतुर्भागं दारप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ७६ ॥

टीका—जो राजा रागद्वेषको छोडकर धर्मसे कार्योंको देखता है उस राजाको प्रजा ऐसे सेवन करती है जैसे समुद्रको नदियां अर्थात् नदियां जैसे समुद्रसे नहीं लौटती हैं उसीके साथ एकताको प्राप्त होती है प्रजाभी ऐसेही राजाकी अनुगामिनी होती है ॥ ७५ ॥ जो अधमर्ण मै राजाका प्याराहौ इस गर्वसे अपनी इच्छासे धन सावित करनेवाले उत्तमर्णका राजासे निवेदन (लानिश) करता है उसपर राजा ऋणका चौथाई भाग दंडकरै और उसका धन देवावै ॥ ७६ ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधर्माणिकः । समोऽवकृष्टजातिस्तु  
दद्याच्छ्रेयास्तु तच्छ्रेयैः ॥ ७७ ॥ अनेन विधिना राजा मिथो किमद  
तां नृणाम् । साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥ ७८ ॥

टीका—समान जाती अथवा हीन जाति अधमर्ण कहिये ऋणी धनके न होनेपर आपनी जातिके अनुरूप कर्म करनेसेभी बराबर करै अर्थात् उत्तमर्ण अधमर्णपरसे निवृत्त हो धनीके समान आपको करै और जो ऋणी ऊंचा जातिका होय तौ उससे कर्म न करावै किंतु वह हौले हौले प्राप्तिके अनुसार उस धनको देवै ॥ ७७ ॥



इस कहे हुए प्रकारसे आपसमें विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीके साक्षी आदिसे निर्णय किये हुए कार्योंको विरोध दूरि करिके बराबरी करै ॥ ७८ ॥

कुलजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि । महापक्षे धर्निर्न्याये निक्षेपं  
निक्षिपे बुधः ॥ ७९ ॥ यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।  
सं तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथाग्रहः ॥ १८० ॥

टीका—उत्तम कुलमें उत्पन्न होय और सदाचारवान् होय धर्मका ज्ञाता तथा सत्य बोलनेवाला होय और बहुत पुत्र आदि कुटुंबवाला होय और सरल प्रकृतिका होय ऐसे मनुष्यके समीप व्यभिचार न होनेसे धरोहड रक्खै ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारसे मूदा हुआ अथवा विना मूदा हुआ साक्षियोंके होनेपर अथवा विना साक्षियोंके जिस सुवर्ण आदि धनके जिसके हाथमें रक्खै वह धन उस रखनेवालेको वैसाही लेना चाहिये जिस्से जिस भांति देनाहै उसी भांति लेना उचितहै मुदे हुएभी सुवर्ण आदिकी मुद्राको आपही खोलि रखनेवाला जब कहै कि मेरा यह तौलकर दे तब यह दंड आदिके लिये है ॥ १८० ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेपुर्न प्रयच्छति । सं याच्यः प्राड्विवा  
केन तन्निक्षेपुरसन्निधौ ॥ ८१ ॥ साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपस  
मन्वितः । अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥ ८२ ॥

टीका—रक्खा हुआ मेरा सुवर्ण आदि द्रव्य दे ऐसे रखनेवाले करि कहा गया जो पुरुष उसको जब न देवै तब रखनेवालेके सूचित करनेपर प्राड्विवाकको उस रखनेवालेके आगे मागना चाहिये ॥ ८१ ॥ पहली धरोहडमें साक्षी न होनेपर सभाके योग्य अवस्थामें बाल नहीं और स्वरूपवान् और राजाका उपद्रव आदि कहनेवाले ऐसे अपने चार पुरुषोंसे सुवर्ण आदि द्रव्यको रखवाकै उन्ही राजपुरुषोंको उस धरोहडवालेसे चार पुरुषों करि रक्खी हुई धरोहड प्राड्विवाकको मागनी चाहिये ॥ ८२ ॥

सं यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् । न तत्र विद्यते किं  
चिद्व्यतिरिक्तं भयं ॥ ८३ ॥ तेषां न दद्याद्यदि तु तद्विरण्यं  
यथाविधि । उभौ निर्गृह्य दार्प्यः स्यादि तं धर्मस्य धारणा ॥ ८४ ॥

टीका—वह धरोहड लेनेवाला मुदी हुई अथवा खुली हुई जैसी रक्खीथी कडे मुकुट आदिके आकारसे बनी हुईको वैसाही मानले कि सच्ची है लीजिये

तौ पहले रखनेवाले जिसने प्राङ्निवाकसे आवेदन (लानिस) किया है उसका कुछ नहीं है यह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ उन चार पुरुषोंका रक्खा हुआ सुवर्ण जैसा रक्खाथा वैसा न दे तौ दोनो धरोहडै अर्थात् पहले सूचित करनेवालेकी और चार पुरुषों करि रक्खी हुई उसको दवाकै दिवानी चाहिये इस प्रकारकी धर्मकी धारणा कहिये निश्चय है ॥ ८४ ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे । नश्यतो विनिपाते  
तार्वनिपाते त्वनाशिनौ ॥ ८५ ॥ स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्र-  
त्यनन्तरो न संराज्ञानि योक्तव्यो न निक्षेप्तव्यश्च बन्धुभिः ॥ ८६ ॥

टीका—जो रक्खा जाय वह निक्षेप कहा जाता है और मुहर लगा हुआ विना गिना अथवा बासनमें रक्खा हुआ जो रक्खा जाय उसको उपनिधि कहते हैं इनका ब्राह्मण और संन्यासीकी भांति उपदेशमें भेद है, वे दोनो निक्षेप और उपनिधि रखनेवाले और जिसके समीप रक्खी है उसके जीवते हुए तदनंतर कहिये उसके पुत्र आदिको और उसके अनंतर उसके धनके अधिकारीको निक्षेप धारनेवाला कभी न देवै जिस्से उसके पुत्र आदिको पिताके दिये विना नाश होनेपर वे निक्षेप और उपनिधि नष्ट होते हैं फिर पुत्रादिकोंके अविनाशमें और देनेमें कदाचित् अविनाशी होजाय तिस्से अनर्थके संदेहसे न देने चाहियो ॥ ८५ ॥ मरे हुए रखनेवालेके धनको जिसके समीप रक्खा है वह रक्खे हुए धनको उसके धनके अधिकारी पुत्र आदिको विना मागे आपही जो देताहै वह राजा करि और उसके पुत्र आदिको करि ऐसे कहनेयोग्य नहीं है कि तेरेपास और भी रक्खा है ८६

अच्छलेनैव चांन्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् । विचार्य तस्य वा कृतं  
साम्प्रैव परिसार्धयेत् ॥ ८७ ॥ निक्षेपेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परि-  
सार्धने । समुद्रे नानुयात्किञ्चिद्यदि तस्मात्संहरत् ॥ ८८ ॥

टीका—उसके समीप और धन होनेकी शंका रूप वाणीके कहे विनाही प्रीति पूर्वक निश्चय करै और शीघ्र शपथ आदिके देनेसे न निश्चय करै उस निक्षेपधारीके शील आदिको देखि यह धर्मात्माहै ऐसा जानिके साम नाम उपायसे निश्चय करै ॥ ८७ ॥ नहीं मानी हुई सब धरोहडोंके साबित करनेमें यह पहले कही हुई विधि होती है और मुदी आदिमें निक्षेपका धारण करनेवाला जो दूसरी बार बंद करनेसे उससेसे कुछ न लेवै तौ उसमेंभी उसको कुछ दूषण नहीं लगताहै ॥ ८८ ॥

चौरैर्हतं जलेनोर्ध्वमग्निना दग्धमेव वा ॥ न दद्याद्यदि तस्मात्संन

संहरति किंचन ॥ ८९ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेपारमेव च ॥ स  
वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैवं वैदिकैः ॥ १९० ॥

टीका—चोरों करि चुराय गये जल करि बहाकै दूसरे देशमे पहुंचाया गये  
अग्नि करि जलाया गये निक्षेप आदिको निक्षेप धारण करनेवाला न देवै जो आप  
उसमेंसे कुछ न लेवै ॥ ८९ ॥ धरोहडके छुपानेवालेको और विना रक्खे मागने वाले-  
को राजा सामआदि सब उपायोंसे तथा वेदमें कहे हुए सौगंदोसे निश्चय करै १९० ॥

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥ तांबुभौ चौरवच्छां  
स्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥ ९१ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दा  
पयेदमम् ॥ तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १९२ ॥

टीका—जो रक्खी हुई धरोहडको न देवै और विना रक्खे मागै वे दोनो  
सोना मोती आदिकी बडी धरोहडमें चोरके समान दंड देनेयोग्यहैं ॥ ९१ ॥  
धरोहडके छुपानेवालेको तथा विना रक्खे मागनेवालेको रक्खे हुये धनके बराबर  
दंड करै ( शंका ) जो कहौ कि पहले श्लोकमेंभी यही कहाहै तौ पुनरुक्ति हुई  
सो नही है क्योंकि बडे अपराधके होनेपर ब्राह्मणको छोडि दूसरी जातिको चो-  
रके समान दंड दे इसप्रकार पहले श्लोकसे शरीरका दंड प्राप्त होनेपर उसकी नि-  
वृत्तिके लिये यह कहाहै और दापयेत् कहिये दिवावै इस्से धन दंडका नियम  
होनेसे इस्से पहले श्लोककी व्यर्थता नही हुई इसको प्रथम अपराध विषयक हो-  
नेसे पहले कहे हुयेके अभ्यासमें चोरके लिये कहे हुए उत्तम साहस आदि धन  
दंडका बोधक होनेसे मोहर आदि चिन्ह करकै रक्खे हुए धनको उपनिधि कह-  
ते हैं उसके हरनेवालेको राजा कहे हुए दंडको देवै ॥ ९२ ॥

उपदाभिश्चैर्यः कश्चित्परद्रव्यं हरन्नरः ॥ सहायः स हन्तव्यः प्रं  
काशं वि विधैर्वधैः ॥ ९३ ॥ निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलं  
सन्निधौ ॥ तावानेवं स वि ज्ञेयो विबुवन्दण्डमर्हति ॥ ९४ ॥

टीका—राजा तेरे ऊपर क्रोधितहै उस्से मैं तुझे बचाऊंगा तू मूझे धन दे ऐ-  
से झूठ कहिकै जो पराये धनको लेताहै वह छलसे धन लेनेवाले सहायको समे-  
त बहुतसे मनुष्योंके सामने हाथ पांव तथा शिर काटने आदि नाना प्रकारके  
बधके उपायोंसे राजा करि मारनेयोग्य है ॥ ९३ ॥ जो सुवर्ण आदि जितना जिस  
करकै निक्षेप किया गया उस परिमाण आदिमें अंतर पढनेसे साक्षियोंके बचनसे

उतनाही जानना चाहिये अंतर करता हुआभी कहेके अनुसार दंड देने योग्यहै ९४  
 मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥ मिथ एव प्रदातव्यो  
 यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ ९६ ॥ निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योर्पनि  
 हितस्य च ॥ राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वय्यासधारणम् ॥ ९६ ॥

टीका—एकांतमें जिसने धरोहड दी और एकांतहीमें लेनेवालोंनेली वह ध-  
 रोहड एकांतहीमें फिर देनेयोग्यहै लौटा कर देनेमें साक्षियोंकी अपेक्षा नहीं है  
 जिसे जिस भांति देनाहै उसी भांति लौटनाहै धरोहड लेनेवालेके लिये यह नि-  
 यमकी विधि है ॥ ९६ ॥ मुदे हुए अथवा खुले हुए उपनिधिरूप धरोहडके धन-  
 को तथा कुछ थोड़े काल भोगनेके लिये दिये हुएको इस कहे हुए प्रकारसे रक्खे  
 हुए धनके धारण करनेवाले पुरुषको पीडा विना दिये राजा निर्णय करै ॥ ९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ॥ न तं नयेत्  
 साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ ९७ ॥ अर्धहायो भवेच्चैवं सान्वयः  
 षट्शतं दमम् ॥ निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरं किलिबपम् ९८ ॥

टीका—जो वस्तुका स्वामी नहीं है और स्वामीकी आज्ञा विना पराये द्र-  
 व्यको वेंचताहै वास्तवमें वह चोरहै और आपको चोर नहीं मानताहै उसको  
 साक्षी न करै और न कहीं उसका प्रमाण माने ॥ ९७ ॥ यह पराये द्रव्यका  
 वेंचनेवाला जो स्वामीका भाई आदि संबंधी होय तौ उसी पण दंड देनेयोग्य है  
 और जो स्वामीका संबंधी न होय और स्वामीके संबंधी पुत्र आदिसे धन  
 दान विक्रय आदि होय तौ वह चोरके पापको प्राप्त होता है और चोरके  
 समान दंड करने योग्य है ॥ ९८ ॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा । अकृतः संतु वि  
 ज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ ९९ ॥ सभोगो दृश्यते यत्र न दृश्ये  
 तार्गमः क्वचित् । आगमः कारणं तत्र न सभोगं इति स्थितिः २००

टीका—स्वामीके विना जो दिया गया और जो वेंचा गया अथवा मोल  
 लिया गया उसको वि कियाही व्यवहारमें जैसी मर्यादा है वह वैसा  
 नहीं किया गया होताहै ॥ ९९ ॥ जिस वस्तुमें भोगना तौ है और मोल लेने  
 आदिका लेख नहीं है वहां पहले पुरुषके आगे लेखही प्रमाणहै भोग नहीं यह  
 शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २०० ॥

विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद्द्वितीययात्कुलसन्निधौ । क्रयेण संविशुद्धं हि  
न्यायतो लभते धनम् ॥ १ ॥ अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशो  
धित्वः । अदण्डयो मुच्यते राज्ञा नास्तिको लभते धनम् ॥ २ ॥

टीका—जो द्रव्यविक्रयकहिसे बेचनेसे व्यवहारियोंके समूहके आगे मोल दे-  
कर जिसे लेताहै वह न्यायसे शुद्धद्रव्यको पाताहै ॥ १ ॥ जो मूलस्वामी बेचने-  
से अथवा परदेशमें जाने आदिसे व्यवहार न कर सकै और प्रकाशित क्रयसे य-  
ह निश्चितहै तो दंडके योग्य नहीं है मोल लेनेवाला राजा करि छोडा जाताहै  
और नष्ट धनका स्वामी विना स्वामीके बेचे हुए द्रव्यको मोल लेनेवालेके हाथ-  
से पाताहै इस विषयमें मोल लेनेवालेको आधा मोल देकर स्वामीको अपना  
धन लेना चाहिये यहां व्यवहारसे दोनोंका आधा धन मारा जाताहै ॥ २ ॥

नान्यदन्येन समृष्टरूपं विक्रयमर्हति । न चासारं न च न्यूनं न  
दूरेण तिरोहितम् ॥ ३ ॥ अन्यां चेदशयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदी  
यते । उभे त् एकांशुलकेन वैहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ ४ ॥

टीका—केसरी आदि द्रव्योंमें कुसूम आदि मिलाकै न बेचना चाहिये और  
असारको सार कहिकै न बेचै और तराजु आदिमें कमती न तौलै और पीठि पीछे  
न बेचै और प्रीतिसे रखे हुये द्रव्यको न बेचै विना स्वामीके विक्रयके समान  
होनेसे विना स्वामीके बेचनेहीका दंड होताहै ॥ ३ ॥ मोलसे देनेयोग्य कन्याको  
मोलके समय निर्दोष सुंदर दिखाकै जो वरको दोष सहित कुरूपता दीजाय तो दो-  
नो कन्याओंको वर उस एकही मोलसे व्याहि लेवै यह मनुने कहाहै मोलका  
लेकर कन्याका दान करना बेचनीही है इसे इसको द्रव्यके बेचने मो-  
लनेके साथ कहाहै ॥ ४ ॥

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च यो स्पृष्टमैथुना । पूर्वं दोषानभि  
ख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥ ५ ॥ ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म  
परिहापयेत् । तस्य कर्मानुरूपेण दे योऽशः सह कर्तृभिः ॥ ६ ॥

टीका—उन्मत्ताके कोठिनीके और मैथुन संसर्गवालीके उन्माद आदि दोषों-  
को ब्राह्मण आदि विवाहोंसे पहले वरको सूचन करकै देने वाला दंडयोग्य नहीं  
होताहै और विना कहे दंडयोग्य होताहै ॥ ५ ॥ अब संभूय समुत्थानको कहतेहै  
यज्ञमें वरण किया हुआ ऋत्विक् जो थोडासा कर्म करिकै रोग आदिसे कर्मको

छोड़दे तौ उसको और ऋत्विजोंसे विचार करिके उसके कियेके अनुसार दक्षिणा का अंश ( हिस्सा ) देना चाहिये ॥ ६ ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् । कृत्स्नमेव लभेतांशम  
न्येनैव च कारयेत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्कर्मणि यस्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्ग  
दक्षिणाः ॥ स एव तां आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ ८ ॥

टीका—माध्यंदिनि यज्ञ आदिमें दक्षिणाके समय दक्षिणाओंके देनेपर रोग आदिसे कर्मको छोड़ता हुआ नट स्वटीसे नहीं तौ वह संपूर्ण दक्षिणाके भागको पात्रे और बाकी कर्मको औरसे करवावे ॥ ७ ॥ जिस आधान आदि कर्ममें अंग अंग प्रति जिसके संबंधसे सुनी हुई जो दक्षिणा होती हैं वही उनको ले अथवा केवल उसी उसी भागको सब बांटके ले लेवे ॥ ८ ॥

रथं हरेत् वाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ॥ १ होता वापि हरेदश्वसु  
द्राता चाप्यनः क्रये ॥ २ ॥ सर्वेषामर्थिनो मुख्यास्तदधेनार्थिनोऽपरे ॥  
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥ २ १ ० ॥

टीका—यहां सिद्धांत कहते हैं किन्ही शाखावालोंके आधानमें अध्वर्युको रथ देना चाहिये यह कहा है और ब्रह्माको वेगवान् घोडा और होताकोभी घोडा और उद्राताके लिये सोमके मोलमें सोमका ले चलनेवाला छकडा इस व्यवस्थाकी सामर्थ्यसे जो दक्षिणा जिसके संबंधसे सुनी जाती है वही उसको ग्रहण करे ॥ १ ॥ दक्षिणाका विभाग कहते हैं ॥ उसको सौसे दीक्षायुक्त करता है यह सुना जाता है वहां सब सोलह ऋत्विजोंके मध्यमें जे चारि ऋत्विज अर्थात् होता अध्वर्यु ब्रह्मा और उद्राता ये सब दक्षिणाके आधे भागके पानेवाले हैं और अस्तालीस गौके पानेवाले होते हैं इसीसे कात्यायनने बारहबारह आद्योंको कहिये पहलेके लिये इस भांति प्रत्येकको बारह गोदान कहे हैं यद्यपि सौके आधे पचास होते हैं तिसपरभी यहां न्यून आधा लेनेसे ये आधे वाले कहे जाते हैं और समीपतासे मैत्रावरुण प्रतिस्तोता ब्राह्मण अच्छसी प्रस्तोता ये मुख्य ऋत्विक्की पाई हुई दक्षिणाका आधा लेनेसे अर्द्धी अर्थात् आधे भागके पानेवाले कहे जाते हैं और तीसरे अछावाक् नेष्टा अग्नीध्र प्रतिहर्ता ये मुख्य ऋत्विक्की दक्षिणाका तीसरा भाग पाते हैं और चौथाईवाले उन्नेता पोता सुब्रह्मण्य ये मुख्य ऋत्विक्की पाई हुई दक्षिणाका चौथा भाग पाते हैं यह तौ छः छः दूसरोसें और चार चार तीसरोसें और तीनि तीनि चौथोसें ऐसे सूत्रमें लिखते हुए कात्यायनने स्फुट किया है ॥ २१० ॥

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः॥ अनेन विधियोगेन कं  
तेव्यांशप्रकल्पना ॥ ११ ॥ धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते  
धनम् ॥ पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥ १२ ॥

टीका—मिल करिं घरके बनाने आदि अपने कर्मोको लोकमें स्थपति (रा-  
ज) सूत्रकार (बडई) आदि मनुष्योंसे करवानेवालोंका इस यज्ञ दक्षिणा वि-  
धानके आश्रयसे विशेष ज्ञान (कारागरी) और व्यापार कहिये कामकी अपे-  
क्षासे भागकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अब दत्तानपकर्म कहि दियेका  
निषेधकरदेना कहते है ॥ जिसने यज्ञ आदि कर्मके लिये किसी मागनेवालोंको  
धन दिया अथवा देनेकी प्रतिज्ञा की होय पीछे वह इस धनको यज्ञके लिये  
न लगावै तब यह दिया हुआभी धन ले लेना चाहिये और प्रतिज्ञा किया  
हुआ न देना चाहिये ॥ १२ ॥

यदि संसाधयेत्तु देपाँल्लोभेन वा पुनः॥ राज्ञा दीप्यः सुवर्णं स्या  
त्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥ १३ ॥ दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदन  
पक्रिया ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ १४ ॥

टीका—जो उस दिये हुये धनको लेनेवाला लोभसे अथवा अहंकारसे न देवै औ-  
र प्रतिज्ञा किये हुएको बलसे ले तौ उस चोरीके पापकी शुद्धिके लिये राजाको  
सुवर्ण प्रमाण दंड देनेयोग्य होताहै ॥ १३ ॥ धर्मसे रहित यह दिये हुएका न देना  
तत्वसे कहा इसके उपरांत भृतिका अर्थात् नौकरीका न देना आदि कहोंगा १४ ॥

भृतोऽनातो न कुर्याद्यो देपात्कर्म यथोदितम् ॥ सं दण्डेचः कृष्ण  
लान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् १५ अर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्य  
थाभाषितमादितः ॥ स दी धस्यापि कालस्य तल्लभैतव वेतनम् १६

टीका—नौकरीपर रक्खा हुआ जो मनुष्य रोगके विना अहंकारसे कहे हुए  
कामको न करै तौ उसपर कर्मके अनुरूप आठरत्नी सोना दंडकरना चाहिये  
और नौकरीका धनभी न देना चाहिये ॥ १५ ॥ जब रोग आदिकी पीडासे कां-  
म न करै आराम होकै पहले कहेके समान काम देवै तौ वह बहुत दिनोंकाभी  
वेतन (तनखाह) पावै ॥ १६ ॥

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ॥ न तस्य वेतनं दे

यम्लपोनस्यापि कर्मणः ॥ १७ ॥ एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादान  
कर्मणः ॥ अर्त ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं सम्यग्भेदिनाम् ॥ १८ ॥

टीका—जो काम जैसा कहा गया उसको पीड़ित होनेपर दूसरेसे न करावै  
अथवा स्वस्थ रहनेपर आप न करै और न करावै. तौ उसको उस किये हुए का-  
मके शेषकाभी, वेतन ( तनक़्वाह ) न देना चाहिये ॥ १७ ॥ वेतनादान कर्म-  
की यह सब व्यवस्था कहीं इसके उपरांत संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंके दंड आ-  
दिकी व्यवस्था कहेंगा ॥ १८ ॥

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदेम् ॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं  
राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ १९ ॥ निर्गृह्य दापयेच्चैनं सम्यग्व्यभिचारिणम् ॥  
चतुःसुवर्णान् षण्णिकाञ्छतमानं च राजतम् ॥ २० ॥

टीका—ग्राम और देश शब्दोसे उनके वसनेवाले लक्षित होते हैं संघ कहिये  
वनियों आदिका समूह हम इस कर्मको करैगे और इसको न करैगे इस प्रका-  
रके संकेत ( इशारा ) को सत्य आदिकी सौगंदसे निश्चित करिकै उसको जो मनु-  
ष्य लोभ आदिसे उल्लंघन करै उसको राजा देशसे निकाल देवै ॥ १९ ॥ इस सं-  
विद्व्यतिक्रम काटि अर्थात् प्रतिज्ञा उल्लंघन करनेवालेको रोककर उसपर चारि-  
सुवर्ण छः निष्क प्रत्येक चारिसुवर्ण प्रमाण और चांदीके सौ मूद्र और तीनसौ  
बीस रत्नी परिमाण ये तीनों प्रकारके दंड है इनमेंसे विषय कहिये कार्यके भार-  
पन और हलके पनकी अपेक्षासे सब इकट्ठे अथवा एक एक दंड राजा करै २०

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्भूमिकः पृथिवीपतिः ॥ ग्रामजातिसमूहेषु-  
सम्यग्व्यभिचारिणाम् ॥ २१ ॥ क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्व्यस्येहानु-  
शयो भवेत् ॥ सोऽन्तर्दशाहं तद्द्वयं दद्याच्च वाददीतं च ॥ २२ ॥

टीका—ग्राम कहिये ब्राह्मण आदिके जाति समूहमें संविद्व्यतिक्रम करनेवा-  
लोंपर इस धर्मप्रधान विधिको दंडकी राजा करै ॥ २१ ॥ नाश न होनेवाली स्थि-  
र मोलकी भूमि वा तांबेके पट्टा आदिको मोल लेकर अथवा बेचकर लोकमें जि-  
सको पछतावा होय कि मैंने अच्छा नहीं तोल लिया वह उस मोल लियेको द-  
शदिनके भीतर लौटादे अथवा बेचे हुएको लौटा लेवै ॥ २२ ॥

परिणं तु दशाहस्य न दद्यान्नपि दापयेत् ॥ आददानो ददच्चै व



राज्ञीं दण्डयः शतानि षट् ॥२३॥यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय  
प्रयच्छति ॥ तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवति पणान् ॥२४॥

टीका—दश दिनके उपरांत मोल ली हुई भूमि आदिको न छोड़े और बे-  
ची हुईको मोल लेनेवालेसे बल करि न दिलवावे वंचे हुएको बलसे लेता हुआ  
और मोल लियेको छोड़ता हुआ राजा करि सौ पण दंड करने योग्य है ॥२३॥  
नोन्मत्ताया इत्यादि जो पहिले कहा है दंडविशेषके लिये यहां कहते हैं उन्माद  
आदि दोषोंको न कहकर दोषयुक्त कन्याको जो वरके लिये देता है उसपर राजा  
आप आदरसे ल्यातवे पण दंड करे पछतावेके प्रसंगसे यह कन्याके मध्ये कहा २४

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्वेषणं मानवः ॥ सं शतं प्राप्नुयादण्डं  
तस्या दोषमदर्शयन् ॥२५॥ पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्र  
तिष्ठिताः ॥ नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥२६॥

टीका—यह कन्या नहीं है क्षतयोनि है ऐसे जो मनुष्य द्वेषसे कहै वह उसके  
दोषको न प्रकट कर सके तो सौपण प्रमाण राजके दंडको प्राप्त होय ॥२५॥ अ-  
र्थमणदेवंकन्या अग्निमयक्षत इत्यादिमनुष्योंकी विवाहके मंत्रकन्या शब्दके श्रव-  
णसे कन्याओंमें व्यवस्थित है अकन्याके विषयमें भिन्नार्थ होनेसे शास्त्रमें कही  
सही धर्मविवाहकी सिद्धिके लिये व्यवस्थित है इसीसे कहते हैं कि विवाहके  
मंत्रोंसे सत्कारकी गई भी वे क्षतयोनिस्त्रीयां धर्मविवाह आदि की क्रिया जि-  
नकी दूर हुई है ऐसी होती हैं इसका अर्थ यह है कि यह धर्मविवाह नहीं है यह  
क्षतयोनि का विवाहके मंत्रोंसे होम आदिका निषेध करनेवाला नहीं है या गर्भि-  
णी संस्क्रियते और षोडः कन्यासमुद्भवम् यह आगे मनुजीनेही क्षतयोनि का भी  
विवाह संस्कार कहा है और देवलने तो गांधर्वविवाहोंमें कहा है कि पुनर्विवाहिको  
विधिः अर्थात् यह पुनर्विवाहकी विधि है तथा कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैस्समयेनाग्निसा  
क्षिक इति ॥ अर्थ ॥ तीनिवर्णोंको समय पाके अग्निसाक्षी देकर करना चाहिये  
गांधर्व विवाहोंमें होम मंत्र आदिकी विधि कही है और गांधर्व तो उपगमन  
पूर्वकभी होता है उसका क्षत्रियोंमें धर्म्यपन मनुने कहा है इस कारण सामान्य  
विशेषके न्यायसे यह इतर विषय कहै क्षतयोजिके विवाहको अधर्म्य कहिये  
धर्मसे बाहर कहा ॥ २६ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥ तेषां निष्ठा तु विज्ञेया

विद्विद्भिः संतमे पदे ॥२७॥ यस्मिन् यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशं  
यो भवेत्तमर्तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २८ ॥

टीका—विवाहके मंत्र निश्चय भार्यात्व कहिये स्त्रीपनके कारणहै क्योंकि शास्त्रके अनुसार प्रयोग किये गये उन मंत्रोंसे भार्यात्व सिद्ध होताहै उन मंत्रोंसे सखा सप्तपदीभवं इस मंत्रसे कन्याको सातमें पांवके रखनेपर भार्यात्वकी सिद्धिकी शास्त्रके जानेवालोंको समाप्ति जाननी चाहिये और सातमा पांव रखनेके पहले भार्यात्वकी सिद्धि नहीं है पश्चात्ताप होनेपर छोड़दैं पीछे नहीं ॥२७॥ केवल खरी-दने बेचनेहीमें नहीं किंतु अन्यत्र भी संविद्वेत्तनादि कामोंमें जिसको पश्चात्ताप होय वह इस दशदिनकी विधिसे राजा धर्मयुक्त मार्गमें चलवै ॥ २८ ॥

पशुषु स्वामिनां चैवंपालानां च व्यतिक्रमे । विवाद् संप्रवक्ष्यामि ।  
यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २९ ॥ दिवा वर्त्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि  
तद्गृहे । योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वर्त्तव्यतामिर्यात् ॥ २३० ॥

टीका—गौ आदि पशुओंमें स्वामीका और चरानेवालेके व्यतिक्रम होनेपर विवाद कहिये झगड़ेको धर्मके तत्वसे यथार्थ कहौंगा ॥ २९ ॥ दिनमें पशु पाल-नेवालेको सौपे हुए पशुओंसे जो खेती आदिमें जो कुछ उपद्रव होजाय तौ पालनेवालेकी बुराई है और रातिमें चरवाहके लौटाय देनेसे स्वामीके घरमें बंधे हुए पशुओंसे जो कोई निकल कर कुछ उपद्रव करै तौ स्वामीका दोष है और जो दिनराति चरानेवालेके पास रहते होय तौ उसीकी बुराई होगी ॥ २३० ॥

गोपैः क्षीरभृतो यस्तु संदुह्यां दर्शतो वरांम् । गोस्वाम्यनुमते भृत्यः  
सां स्यात्पालेऽभृते भृतिः ॥ ३१ ॥ नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं  
विषमे मृतम् । हीनं पुरुषकारेण प्रदेद्यात्पाल एव तु ॥ ३२ ॥

टीका—जो गोपाल कहिये अहीर केवल दूधपर नौकर होय भोजन आदिसे कुछ काम नहीं वह स्वामीकी आज्ञासे दश गौओंमेंसे श्रेष्ठ एक गौकी अपनी नौकरीके मध्ये दुहि लेवै यह भोजन आदि रहित गौ पालनेवालेकी नौकरी हुई अर्थात् एक गौका दूध देनेसे दस गौओंको पालै ॥ ३१ ॥ नष्ट कहिये दृष्टिसे बाहर हुएको और कीड़ों करि नाश किये हुएको और कुत्तों करि खाए हुएको और गदिले आदिमें गिरिकर मरे हुएको जो पालने वालेका कोई मनुष्य न होय तौ मरे और भागे हुए गौ आदि पशुको पालनेवालाही स्वामीको देवै ॥ ३२ ॥

विधुष्य तु हतं चौरैः पालो दातुर्महति । यदि देशे च काले च  
स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥ ३३ ॥ कर्णो चर्म च वालाश्च वस्ति  
स्नायुं च रोचनाम् । पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् ३४

टीका—जो थोड़ीही दूर लेजानेके पीछेही पालनेवाला अपने प्रभुके, स्वामी-  
से कहि देवैतौ ढोल आदिसे शब्द करिके चोरों कारि हरे गये पशुको पालनेवाला  
स्वामीको न देवै विधुष्य कहिये ढोल आदि वजायके इसके कहनेसे चोरोंकी बहु-  
तायत और प्रबलताजानी जाती है ॥ ३३ ॥ पशुओंके आपसे मरनेपर पालने-  
वाला कान चाम पंछ वाल नाभिके नीचेका भाग नसैं और रोचना स्वामियोंको  
देवैं और भी मुख्य चिन्ह सींग खुर आदि दिखावै ॥ ३४ ॥

अजाविके तुरुद्धे वृकैः पाले त्वनयति । यां प्रसह्य वृको हन्या  
त्पाले तर्त्किल्विषं भवेत् ॥ ३५ ॥ तासां चेद्वरुद्धानां चरतीनां  
मिथो वने । यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किं लिषी ॥ ३६ ॥

टीका—भेडबकरिओंको भेडियोंके घेरनेपर पालनेवाले न आवैं तौ जिस एक  
भेड अथवा बकरीको वनमें भेडिया मारै वह पालनेवालेका दोष होता है ॥ ३५ ॥  
पालनेवाले करि रोकी हुई और वनमें इकट्ठी होकै चरती हुई भेड बकरि-  
योमेंसे जो कोई भेडिया कही उछल कर गुप्त हो जिस किसी भेड वा बकरीको  
मारै वहां पालकको दोष नहीं होताहै ॥ ३६ ॥

धनुःशतं परीहारी ग्रामस्य स्यात्समन्ततः । शम्यापातास्त्रयो  
वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ ३७ ॥ तत्रापरीवृतं धान्यं विहिंस्युः  
प्रशवो यदि । न तत्र प्रणयेदण्डं नृपातिः पशुरक्षिणाम् ॥ ३८ ॥

टीका—चारि हाथका एक धनुष्य होताहै शम्या लाठीको कहते हैं उसका  
पात गिरना ग्रामके समीप सब दिशाओंमें चार सौ हाथ अथवा तीनि लाठीकी  
नापतक पशुओंके चरनेके लिये अन्न देने आदिसे रोककेका त्याग करनेयोग्यहै  
और फिरि नगरके समीप यह तिगुणा करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उस त्यागके स्था-  
नमें जो कोई आवृत्ति अर्थात् खाई आदिसे घेरिके धान्यको बोवै और उसको  
जो पशु खाजाय तौ वहां राजा पशुपालोको दंड न देवै ॥ ३८ ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ॥ छिद्रं च वारयेत्सर्वं

श्वसूकरमुखात्तुगम् ॥३९॥ पृथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा  
पुनः ॥ संपालः शतदण्डाहो विपालांश्चारयेत्पशून् ॥ २४० ॥

टीका—उस परिहारके स्थानमें खेतके चारो ओर काटे आदिकोंसे ऐसी ऊंची वृत्ति बनवै कि जिसको बाह्यसे ऊंट न देखिसकै और उसमें जो कुत्ता वा शूकरके मुखके जानेके योग्य छिद्र हों उन सबोंको बंद कर देवै ॥ ३९ ॥ मार्गके समीप अथवा ग्रामके समीप अथवा कंटक आदिसे घेरे हुए परिहार ( बचावमें ) स्थित खेतको पालसमेत पशुपाल करि नही रोके हुए द्वार आदिसे कैसे हू धसिकै खाय तौ सौपण दंड देना चाहिये पशुके दंडका असंभवहै तिस्से पालहीको दंड देना चाहिये और पालके विनाही खानेको प्रवृत्त पशुओंको खेत रखानेवाला हांकि देवै ॥ २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः संपादं पणमहंति ॥ सर्वत्र तु सौदो देयः क्षेत्रि  
कस्येति धारणा ॥४१॥ अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवर्षशूस्त  
था ॥ सपालान्वा विपालान्वा न दण्डचान्मनुरर्ब्वीत् ॥ ४२ ॥

टीका—मार्ग और ग्रामके खेतोंसे अन्य खेतोंको खाता हुआ पशु सवापण दंडके योग्यहै यहां भी पालनेवालाही दंड देना योग्यहै सब खेतोंमें पशुके खाये हुएका फल क्षेत्रके स्वामीके लिये पाल अथवा पशुका स्वामी अपराधके अनुसार देवै यह निश्चय है ॥४१॥ दशदिनके भीतरकी व्याई हुई गौ तथा चक्र शूल से अंकित छोटा हुआ बैल और देवता संबंधी पशु चाहै पालसहित होय चाहै पाल रहित होंय खेतखाते होय तौ मनुने उनको अदंड्य कहाहै छोडे हुए बैलोंको गौओंके गर्भके लिये गोकुलमें पाल रखते हैं इसलिये पालका संबंधहै ॥ ४२ ॥

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ॥ ततोऽर्धदण्डो भू  
त्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥४३॥ एतद्रिधानमातिष्ठेद्दार्मिकः  
पृथिवीपतिः । स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमेऽ४४ ॥

टीका—खेत जोतनेवालेका निज बैल जो खेतखाय जाय अथवा वानेके समय न बोया जाय इन अपराधोंके होनेपर जिस राजाके भागकी हानि उस्से होय उस्से दशगुणा दंड उसपर हीना चाहिये और जो खेतवालेके विना जानेउसके नौकरोंसे उक्त अपराध होजाय तौ खेतवालेही पर दश गुनेका आधा दंड होना चाहिये ॥४३॥ स्वामीके और पालोंके रक्षाके अपराधसे पशुओंके खेत खा

नेरूप व्यतिक्रम होनेपर धर्म प्रधान राजा यह पहले कहा हुआ काम करै ॥४४॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः । ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां  
सुप्रकांशेषु सेतुषु ॥ ४५ ॥ सीमांवृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थ  
किंशुकान् । शाल्मलीन्सालतालांश्चक्षीरिणंश्चैव पार्दपान् ॥ ४६ ॥

टीका—दो ग्रामोंकी सीमाके मध्ये झगडा उत्पन्न होनेपर ज्येष्ठके महीनेमें सूर्यके तापसे तृणोके सूखि जानेसे सीमाके चिन्होंके प्रकट होनेपर राजा सीमाका निश्चय करै ॥ ४५ ॥ बड़ पीपल ढाक सेमल शाल ताल और दूधवाने वृक्ष को बहुत कालतक रहनेके कारण सीमाके चिन्हके लिये लगावै ॥ ४६ ॥

गुल्मान्वेषूँश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च । शरान्कुब्जकमु  
ल्मांश्च तथा सीमां न नश्यति ॥ ४७ ॥ तडांगान्युदपानानि वाप्यः  
प्रस्रवणानि च । सिमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ ४८ ॥

टीका—गुल्मोंको जिनमें शाखा नहीं निकलती हैं और वासोंको और बहुत कांटे तथा थोड़े कांटे आदिके भेदसे नानाप्रकारके सीमा वृक्षोंको और लताओं को लगावै और स्थल काहिये ऊंचेबनाये हुए भूमिके भागोंको और शरपतोंको और छोटे गुल्मोंको सीमाके चिन्ह करै ऐसा करनेपर सीमा नष्ट नहीं होती है ॥ ४७ ॥ तलाव कुवा बावडी जलनिकलनेके मार्ग देवताओंके मंदिर शिवालय आदिको दो ग्रामोंकी संधिके स्थानमें बनवावै सीमाके निर्णयके लिये लोकमें प्रसिद्ध करिकै बनवाये हुए इन तलाव आदिकोंमें जलपीनेवालेभी सुननेकी परंपरासे बहुत कालतक साक्षी रहते हैं ॥ ४८ ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् । सीमाज्ञाने नृणां  
वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ ४९ ॥ अश्मनोऽस्थीनि गोवालां  
स्तुषान्भूर्स्म कपालिकाः । करीषमिष्टकाङ्गराञ्छकंरा वालुका  
स्तथा ॥ ५० ॥ यानि चैवप्रकाराणि कालाद्भिर्निर्भक्षयेत् । तानि  
संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥ ५१ ॥

टीका—इस लोकमें सीमा निर्णयके मध्ये सदा मनुष्योंको भ्रमसे सीमाका ज्ञान होताहै इस बातको देखि कहे हुएसे भिन्न गूढ जिनको आगे कहेंगे ऐसे सीमाके चिन्होंको करावै ॥ ४९ ॥ पत्थर हड्डी गौके बाल धानकी भूसी कपाल करस ईंट

अंगारे ठीकरियां बालू तथा औरभी इसी प्रकारकी वस्तु काला अंजन विनौला आदि जिनकी बहुत दिनोंमेंभी भूमि अपने रूपमें नमिला लेवै उनको ग्रामकी संधियोंमें सीमाके मध्यमें ढालकर घट्टोमें भरकै सीमाओके अंतमें रखिदेवै इस बृहस्पतिके वचनसे बड़े पत्थरोंको छोड़कै घट्टोमें भरकै गुप्त भूमिमें गाडि देवै १०।११

एतौलिङ्गैर्न<sup>११</sup> येत्सीमां<sup>१२</sup> राजा विवदमानयोः ।  
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥५२॥

टीका—झगडा करनेवाले ग्रामोंकी सीमाका पहले कहे हुए इन चिन्होंसे राजा निर्णय करै और बसनेवालोकी सीमाका अविच्छिन्न कहिये बराबर चले आये भोग ( कब्जे ) से निर्णय होताहै तीनि पुरुष आदिके भोगसे नही क्योंकि तस्याधिः सीमा यह पर्यदासहै और दो ग्रामोंके बीचमें स्थित नदी आदिके प्रवाहसे इसपार उसपारके ग्रामोंकी सीमाका निश्चय करै ॥ ५२ ॥

यदि संज्ञाय एव स्यालिङ्गानामपि दर्शने । साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥ ५३ ॥ ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीमि साक्षिणः ॥ प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥ ५४ ॥

टीका—जो गुप्त और प्रकट चिन्होंके देखनेसेभी निर्णय न होय अर्थात् कि-सीने छुपे हुए कोयले भूसी आदिके ये घड़े लेकर दूसरे स्थानमें गाडि दिये हैं और यह वह सीमाका वृक्ष नहीं है वह नष्ट हो गया इत्यादि संदेह जो होय तौ साक्षियोंसे सीमा विवादका निर्णय होवै ॥ ५३ ॥ ग्रामके मनुष्योंके समूहमेंसे दोनों ग्रामके नियत किये हुए मनुष्यों और वादी प्रतिवादियोंके सामने सीमाके मध्ये सीमाके चिन्होंमें संदेह होनेपरुं साक्षियोंसे चिन्ह पूँछने चाहिये ॥ ५४ ॥

ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीमि निश्चयम् । निर्वधीयात्तथा सीमां सर्वास्तांश्चैव नमतेः ५५ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः । सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥ ५६ ॥

टी०—पूँछे गये वे सब साक्षी सीमाके मध्ये जिस भांति निर्णय करैं उसी प्रकारसे न भूलनेके लिये सीमाको पत्रमें लिखै और उन सब साक्षियोंके नाम लिखै ॥ ५५ ॥ लाल फूलोंकी मालाको धारण किये हुए और लालही वस्त्रोंको पहिरे हुए और माथेपर मट्टी ककरोंको रखकै जो हमारा सुकृतहै वह निष्फल होय ऐसे अपने सुकृतों करि शाप दिये गये वे शक्तिके अनुसार सीमाका निर्णय करैं ॥ ५६ ॥

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूर्यन्ते सत्यसाक्षिणः । विपरीतं नयन्तस्तु  
दांप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ ५७ ॥ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः  
सामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥ ५८ ॥

टीका—सत्यहै प्रधान जिनके ऐसे वे साक्षी शास्त्रमें कहे हुए विधानसे निर्णय करते हुए पापरहित होते हैं और झूठसे निश्चय करते हुए प्रत्येक सौपण दंड देनेयोग्य होते हैं ॥ ५७ ॥ दोग्रामोंकी सीमाके विवादमें साक्षी न होनेपर चारो औरोंके निकट बसनेवाले चारि औरके चारि ग्राम साक्षियोंके धर्मसे राजाके आगे सीमाका निर्णय करें ॥ ५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीमां साक्षिणाम् ॥ इमानप्यनुयुं  
ज्जीत पुरुषान्वर्नगोचरान् ॥ ५९ ॥ व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपांक्के  
वर्तान्मूलखानकान् ॥ व्यालग्रहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनंचारिणः ६०

टीका—साक्षि धर्मसे राजाके सामने और पासके चारि ग्रामोंके बसने वाले विश्वासयुक्त और ग्राम बसनेके समयमें लगाकै पुरखोंके क्रमसे उसग्रामके रहने वाले ऐसे सीमाके साक्षियोंके न होनेपर जो आगे कहे जायगे ऐसे निकट वर्तमान बनके फिरनेवाले मनुष्योंसे पूछे ॥ ५९ ॥ वहेलियोंसे अहीरोंसे धीवरोंसे कंजरांसे सांप पकडनेवालोंसे शिलोछ वृत्तिवालोंसे तथा औरभी फल फूल ईंधनके लिये बनके व्यवहारियोंसे पूछे ये तौ अपने प्रयोजनके लिये उस ग्रामसे सदा बनको जाते हुए उस ग्रामकी सीमाके जाननेवाले होते हैं ॥ ६० ॥

ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥ तत्रैतानि स्थानपयेद्रा  
जा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृह  
स्य च ॥ सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ ६२ ॥

टीका—पूछे गये वे व्याध आदि सीमारूप ग्रामकी संधियोंमें जिस प्रकारसे चिन्ह कहे उसी प्रकारसे राजा दोनो ग्रामोंकी सीमाको स्थापित करे ॥ ६१ ॥ एक ग्राममेंभी खेत कुआ तलाव बाग और घरोंकी सीमाके झगडेमें और पासके ग्रामोंके बसनेवाले साक्षियोंके प्रमाणसेही मर्यादाके चिन्होंका निश्चय जानना चाहिये व्याध आदिकोंके प्रमाणसे नहीं ॥ ६२ ॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवेदतां नृणाम् ॥ सेतौ पृथक्पृथग्द

पुंड्र्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥६३॥ गृहं तडांगमौरामं क्षेत्रं वा भी  
षया हरन् ॥ शतानि पञ्च दण्डयः स्यादज्ञानाद्विशतो धर्मः ॥६४॥

टीका—सीमाके चिन्होंके लिये झगडनेवाले मनुष्योंके और पास देशके वस-  
नेवाले जो झूठ कहैं तौ वे सब प्रत्येक राजा करि मध्यम साहसका दण्ड देनेयो-  
ग्य हैं ऐंसेही जो और पासके नहीं हैं उनकों पहले कहा हुआ दोसौ पण दण्ड दे-  
ना चाहिये ॥ ६३ ॥ घर तलाव वाग खेत इनमेंसे किसीको मारना बांधना आ-  
दि भय दिखा दवा करि ले लेवै तौ पांचसौ दंड करनेयोग्य होय और जो अप-  
नेकेभ्रमसे ले ले तौ उसपर दोसौ दंड किया जाय ॥ ६४ ॥

सीमायामविषयायां स्वयं राजैव धर्मवित् ॥ प्रदिशद्भूमिमेतेषामुप  
कारादि ति स्थितिः ॥६५॥ एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमावि  
निर्णये ॥ अर्त ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ ६६ ॥

टीका—चिन्ह तथा साक्षी आदिके न होनेसे सीमाका प्रमाण न हो सकनेपर  
धर्मज्ञ राजा पक्षपात रहित हो दो ग्रामोंके बीचमें स्थित झगडकी भूमिको जि-  
न ग्रामके वसनेवालोंका अधिक उपकार होता होय उसके विना निर्वाह न होता  
होय उन्हीके देवै यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥६५॥ यह सीमाके निश्चयको धर्म संपू-  
र्ण कहा इसके उपरांत वाक्पारुष्य कहौंगा दंडपारुष्यसे पहले वाक्पारुष्य  
होती है इससे पहले कही ॥ ६६ ॥

शतं ब्राह्मणमाकुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥ वैश्योऽर्घ्यधशतं द्वे  
वा शूद्रस्तु वर्धमर्हति ॥६७॥ पञ्चांशद्ब्राह्मणो दण्डयः क्षत्रियस्या  
भिर्शसने ॥ वैश्ये स्यादर्धपञ्चांशच्छूद्रे द्वादशको धर्मः ॥ ६८ ॥

टीका—यह चोर है ऐसे ब्राह्मणके आक्षेपरूप वचन कहिकै क्षत्रिय सौपण  
दंडके योग्य होता है ऐसे डेढ सौ अथवा दोसौ कार्यका हलकापन तथा भारीप-  
नकी अपेक्षासे वैश्य शूद्रभी ऐसेही ब्राह्मणकी बुराई करनेसे ताडनादि रूप वध-  
के योग्य होता है ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण जो पहले कहा हुआ आक्षेप क्षत्रियका करै तौ  
पचास पण दंडके योग्य है और वैश्य तथा शूद्रका जो कहा हुआ आक्षेप करै तौ  
ब्राह्मण पच्चीस और बारह पण क्रमसे दंड करने योग्य होय ॥ ६८ ॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥ वादेष्ववचनीयेषु तदेव



द्विगुणं भवेत् ॥६९॥ एकजातिद्विजातीस्तु वाचा दारुणया क्षिपे  
न ॥ जिह्वायाः प्रांभुयाच्छेदं जर्धन्यप्रभवो हिंसः ॥२७०॥

टीका—द्विजातियोंकी बराबरकी जातिमें कहे हुए आक्षेपके होनेपर बारह पण दंडहै और नही कहनेयोग्य बुरे वचनोंमें तथा भाई बहिनि आदिकी गाली देनेमें वही पहले कहे हुए सौपणका दूना अर्थात् दोसौ पण दंड होताहै ॥६९॥ शूद्र द्विजातियोंको पातक लगानेवाली वाणीसे गाली देकर जीभ काटनेके योग्य होताहै जिस्से पाद नाम निरुष्ट अंगसे उत्पन्नहै ॥ २७० ॥

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ॥ निक्षेप्योऽयमयः शङ्कु  
ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥७१॥ धर्मोपदेशं दर्पण विप्राणामस्य कुर्व  
तः ॥ तप्तमासेचयेत्तैलं वृत्के श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७२ ॥

टीका—अभिद्रोह आक्रोशको कहते हैं ब्राह्मण आदिकोंका, जैसे अरे यज्ञद-  
त्त तू ब्राह्मणोंमें नीचहै इत्यादिक आक्रोशसे नाम तथा जातिके ग्रहण करने-  
वालेके मुखमें अग्निसे तपी हुआ दशअंगुलकी लोहेकी कील डालनेयोग्य है  
॥ ७१ ॥ कैसे हू धर्मके लेशको जानके तुमको यह धर्म करना चाहिये ऐसे अहं-  
कारसे ब्राह्मणको उपदेश करने वाले शूद्रके मुखमें और कानोंमें जलता  
हुआ तेल रंजा डलवावै ॥ ७२ ॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ॥ वितथेन ब्रुवन्दर्पादा  
प्यिः स्याद्विशतं दर्मम् ॥७३॥ क्राणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि त  
थाविधम् ॥ तथ्येनापि ब्रुवन् दीप्योर्दण्डं कर्षापणावरम् ॥७४॥

टीका—दंडकी लघुतासे यह समान जानि विषय कहै शूद्र करि किये हुए द्वि-  
जातिके आक्षेप विषयक नही है । तुमने यह नही सुनाहै तुम इस देशमें नही  
उत्पन्न हुए हो तुझारी यह जाति नही है और तुझारे शरीरका संस्कार यज्ञोपवी  
त आदिकर्म नही किया गयाहै ऐसे अहंकारसे मिथ्या कहता हुआ दोसौ पण दं-  
ड देनेयोग्य होताहै ॥ ७३ ॥ कानेको पंगेओ तथा औरभी ऐसे हाथ आदि अंग  
हीनको सत्यबी काने आदि शब्दसे कहता हुआ बहुतही थोडा अर्थात् एक का-  
र्षापण दंडके योग्य होताहै ॥ ७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ॥ आक्षारयच्छतं दाप्यः

पन्थानं चाददुहुरोः ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो  
विज्ञानता ॥ ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेवं मध्यमः ॥ ७६ ॥

टीका—माता पिता स्त्री भाई पुत्र गुरू इनको पातक आदि लगानेवाले और गुरूको न मार्ग देनेवालेपर सौ पण दंड करना चाहिये ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियों करि आपसमें जा जातिसे पतित होनेयोग्य पातक लगानेपर दंड शास्त्रके जाननेवाले राजा करि दंड करनेयोग्य है दंडहीको विशेष करि कहते हैं क्षत्रिय को पातक लगानेवाले ब्राह्मणपर प्रथम साहस और ब्राह्मणको पातक लगानेवाले क्षत्रियपर मध्यम साहस दंड करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विदूशूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥ छेदवर्जं प्रणयनं दण्डं  
स्येति विनिश्चयः ॥ ७७ ॥ एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य  
तत्त्वतः ॥ अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ ७८ ॥

टीका—वैश्य तथा शूद्रोंकी जातिमें आपसमें जातिसे पतित होनेके योग्य पातक लगानेपर ब्राह्मण क्षत्रियके समान शूद्रको पातक लगानेवाले वैश्यपर प्रथम साहस और वैश्यको पातक लगानेवाले शूद्रपर मध्यम साहस ऐसे जीभ काटनेके विना तथा योग्य दंड करना चाहिये वह शास्त्रका निश्चय है ॥ ७७ ॥ यह पीछे कही हुई वाक्पारुष्यके दंडकी विधि यथावत कहिये ठीक ठीक कही अब इसके उपरान्त ताडन आदि दंड पारुष्यके निर्णयको कहोंगा ॥ ७८ ॥

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेष्टमन्त्यजः ॥ छेत्तव्यं तत्तदेवांस्यैतं  
नमनोरनुशासनम् ॥ ७९ ॥ पाणिमुर्धम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ॥  
पादेन प्रहरन्कोपात्पादं च्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥

टीका—अंत्यज शूद्र जिस किसी हाथ पांव आदि अंगसे साक्षात् अथवा छुपिके द्विजातिपर प्रहार करे वही इसका अंग काटना चाहिये यह मनुका उपदेश है मनुका ग्रहण आदरके लिये है ॥ ७९ ॥ मारनेके लिये हाथको अथवा दंड को उठाके हाथ काटनेको प्राप्त होता है और कुपित हो लातसे मारती हुआ पांचके काटनेरूप दंडको प्राप्त होता है ॥ २८० ॥

संहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ॥ कट्या कृताङ्को निर्वास्यः  
स्फिचं वार्यावर्कतयेत् ॥ ८१ ॥ अविनिष्ठीवतो र्दपाद्भ्रवोष्ठी छेदं  
येन्नृपः ॥ अवमूत्रयतो मेर्द्रमवशार्धयतो गुंदम् ॥ ८२ ॥

टीका—ब्राह्मणके आसनपर बैठा हुआ शूद्र कटिमें तपाये हुए लोहसे चिन्ह करिके देशसे निकालने योग्य है अथवा जैसे यह मरै नहीं ऐसे इसके स्फिच अर्थात् कटिके मांसपिंडका कटवाय देवै ॥ ८१ ॥ गर्वसे कफको थूक करि ब्राह्मणका अपमान करनेवाले शूद्रके राजा दोनो ओठ कटवाय देवै और मूत्र डालनेसे अपमान करनेवालेका लिंग कटवाय देवै और पादनेसे अपमान करनेवालेकी गुदाको कटवाय देवै ॥ ८२ ॥

केशेषु गृण्हतो हस्तौ छेदयेद्विचारयन् ॥ पादयोर्दाढिकार्यां च  
ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ ८३ ॥ त्वग्भेदकः शूलं दण्डयो लोहितस्य  
च दर्शकः ॥ मांसभेत्ता तु षणिं ष्कान्प्रवास्यस्त्वस्त्रिभेदकः ८४ ॥

टीका—अहंकारसे ब्राह्मणके बाल पकडनेवाले शूद्रके इसको पीडाहोगी अथवा न होंगी इसका विचार न करता हुआ राजा दोनो हाथोंको कटवाय देव और मारनेके लिये पांव ढाढी गरदन और अंडकोशोंके पकडनेवालेके दोनोही हाथोंको कटवाय देवै ॥ ८३ ॥ जो समान जातिकी त्वचा मात्रका भेद न करै तौ सौ पण दंड करनेयोग्य है और रक्त निकालनेवालाभी सौपण दंडके योग्य है और मांसका भेद न करनेवाला छः निष्क दंड करनेयोग्य है और हाडका भेदन करनेवाला तौ देशसे निकालने योग्य है ॥ ८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ॥ तथा तथा दमः कायौ  
हिंसायामि ति धारणा ॥ ८५ ॥ मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय  
प्रहेते सति ॥ यथायथा मर्हदुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥ ८६ ॥

टीका—वृक्ष आदि सब उद्भिदोंका उपभोग जिस जिस प्रकारसे फल पुष्प पत्र आदिसे उत्तम मध्यम अधम रूपसे होता है वैसेही हिंसामेंभी उत्तम साहस आदि दंड करना चाहिये यह निश्चय है ॥ ८५ ॥ मनुष्योंके तथा पशुओंके पीडा उत्पन्न करानेके लिये जो प्रहार करनेपर जैसी जैसी पीडाकी अधिकता होय वैसा वैसा दंड अधिक करै ऐसे मर्मस्थान आदिमें त्वचाका भेद आदि करनेपर त्वचाका भेदन करनेवाला सौपण दंड करने योग्य है दुःख विशेषकी अपेक्षासे इस कहे हुए दंडसे अधिकभी दंड करने योग्य है ॥ ८६ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥ समुत्थानव्ययं दांप्यः  
सर्वदण्डमर्थापि वा ॥ ८७ ॥ द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽ

ज्ञानतोऽपि वा ॥ सं तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ८८

टीका—हाथ पांव आदि अंगोंकी और व्रण ( घाव ) शौणित कहिये रुधिरकी पीडा होनेपर समुत्थान व्यय कहिये जितने समय करि पहली दृशाका प्राप्तिरूप समुत्थान होय अर्थात् अच्छा होके पहलासा हो जा उस कालमें पथ्य औषध आदिसे जितना खरच होय वह उसे दिवांना चाहिये जो उस खरचको पीडाका उत्पन्न करानेवाला न देना चाहै तौ जो उसपर उत्थान व्ययहै और दंडहै उसीको दंडभावसे राजा दिवावै ॥ ८७ ॥ जिनका विशेष दंड नहीं कहाहै ऐसी कडे और तांबेके कड़ाह आदि वस्तुओंमें जो जिसकी जानकर अथवा विना जाने बिगाडै उसका दूसरी वस्तु आदिसे संतोष करवै और नाश किये हुए द्रव्यकी बराबर राजाको दंड दैवै ॥ ८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ॥ मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः  
पुष्पमूलफलेषु च ॥ ८९ ॥ यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन  
एव च ॥ दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

टीका—चमड़ेकी वर्तन आदिमें और चर्म काठ मट्टी आदिके बने हुए अन्यके वासनोके नाश करनेपर उनके मोलसे पांच गुणा दंड राजाको देना चाहिये और स्वामीकाभी संतोष करानेही योग्यहै ॥ ८९ ॥ रथ आदि यान कहिये सवारीका और उसके चलानेवाले सारथीका तथा उसके स्वामीका जिसका वह यानहै उनके नाथ कटिजाना आदि दश कारण दंडको उल्लंघन करि वर्तमानहैं अर्थात् इन निमित्तोंके होनेपर प्राणियोंके मारनेमें और द्रव्यके नाश होनेमें यानके स्वामी आदिकोंको दंड नहीं होतहै यह मनु आदि कहते हैं और इनसे भिन्न कारणोंमें दंड होताहै ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भ्रम्ययुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥ अक्षभङ्गे च यान  
स्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ २९१ ॥ छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्यो  
स्तथैव च ॥ आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥ २९२ ॥

टीका—बैलोंकी नाथके कटि जानेपर जुआके टूट जानेपर अथवा भूमिके ऊची नीची होनेसे तिरछा जानेपर और यानकी धुरीके टूटनेपर तथा पहियाके टूटनेपर और चमड़ेके बंधनोंके टूटि जानेपर और जोतोंके तथा पगहियोंके टूट जानेपर और सारथी आदि करि किये हुए हटिजाओ हटिजाओ ऐसे ऊचा श-

वृद्धके होनेपर जो यानसे प्राणीकी हिंसा तथा द्रव्य आदिका नाश होजाय तौ सारथी आदिको दंड नहीं है यह मनुजी कहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

यत्रार्पकृते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ॥ तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो  
हिंसायां द्विशतं दर्मम् ॥ ९३ ॥ प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्ड्यम  
हति ॥ युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम् ॥ ९४ ॥

टीका—जहां सारथीके कुशल न होनेसे रथ इधर उधर मार्गको छोड़िके चले और उससे हिंसा होनेपर बिना सिखे हुए सारथी रखनेके कारण स्वामीपर दोसौ पण दंड करना चाहिये ॥ ९३ ॥ जो सारथी कुशल होय तौ सारथीही कहे हुए दोसौ पण दंडके योग्यहै स्वामी नहीं और सारथी जो कुशल न होय तौ उसमें सारथीके स्वामीके सिवाय औरभी यानमे बैठे हुए मनुष्य अकुशल सारथीके यानमें चढ़नेके कारण प्रत्येक सौसौ पण दंडके योग्यहै ॥ ९४ ॥

सं चेतुं पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥ प्रमापयेत्प्राणभृतस्तं  
त्र दण्डोऽविचारितः ॥ ९५ ॥ मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवर्तिकल्बि  
षं भवेत् ॥ प्राणभृत्सु महत्स्वर्थं गौर्गजोऽह्वयादिषु ॥ ९६ ॥

टीका—जो वह सारथी सामनेसे आती हुई बहुत सी गौओं करि अथवा दूसरे रथ करि रोका हुआ अपने रथके चलनेकी असावधानीसे पीछेको न हटा सके और सकड़े मार्गमें अपने रथके घोड़ोंको हांकता हुआ चले और जो घोड़ोंसे अथवा रथसे अथवा रथके अंग पहिया आदिकोंसे प्राणियोंको मारे तौ वहांभी विचारा हुआ दंड करना चाहिये ॥ ९५ ॥ सारथीकी असावधानीके कारण रथ आदि यानसे मनुष्यको मर जानेपर शीघ्रही चोरका दंड उत्तम साहस होता है और गौ गज आदि बड़े प्राणियोंके मारनेपर उत्तम साहसका आधा पांचसौ पण दंड होता है ॥ ९६ ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दर्मः ॥ पशूनां भवेद्दण्डः  
शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ ९७ ॥ गर्दभाज्जाविकानां तु दण्डः स्यापञ्चमा  
षिकः ॥ मांपकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरस्निपातने ॥ ९८ ॥

टीका—जिनकी जाति विशेष कही है उससे अन्य वचनमें विचरनेवाले छोटे पशुओंके मारनेमें और किन्नोर आदि पक्षियोंके मारनेमें दोसौ परम दंड होता है और ऊरु पृषत आदि शुभ मृगोंके तथा और शुकु हंस सारस आदि पक्षियोंके मारने

पर पांच सौ पण दंड होता है ॥ ९७ ॥ गधा बकरा और भेड़के मारनेमें पांच रूपेके प्राषि प्रमाण दंड होता है यहां सोनेके मासेका ग्रहण नहीं है क्योंकि आगे आगे लघु कहिये हलके दंडका कथन है और कुत्ता तथा सुअरके मारनेमें फिर एक रूपेका मासा दंड होता है ॥ ९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ॥ प्राप्तापराधास्तौ  
ड्याः स्यू रज्ज्वा वेष्टुदलेन वा ॥ ९९ ॥ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमा  
ङ्गे कथंचन ॥ अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरः किल्बिषम् ३००

टीका—स्त्री पुत्र दास शिष्य और सगाभाई इनमें जो कोई अपराध करै तौ रस्सीसे अथवा बहुत छोटी हलकी बांसकी लकड़ीसे ताडन करनेयोग्य होते है ॥ ९९ ॥ रस्सी आदिसेमी देहके पृष्ठ भागमें अर्थात् पीठिमें ताडना करने योग्य है शिरमें कभी नहीं कहे हुए प्रकारसे अन्यथा करनेमें वाग्दंड धनदंड ( जुर्माना ) रूप चौरदंडको प्राप्त होय ॥ ३०० ॥

एषोखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥ स्तेनस्यातः प्रवं  
क्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ १ ॥ परमं यत्नैर्मातिष्ठेत्स्तेनानां  
नियंहे नृपः ॥ स्तेनानां निग्रहादस्य यंशो रीष्टं च वर्धते ॥ २ ॥

टीका—यह दंड पारुष्यका निर्णय संपूर्णतासे कहा इसके उपरान्त चौर दंडके निर्णयका विधान कहोंगा ॥ १ ॥ चोरोंके दंड देनेमें राजा बड़ा भारी यत्न करै जिस्से चोरोंको दंड देनेसे राजाकी ख्याति होती है और उपद्रवरहित होनेसे देशभी बढता है ॥ २ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥ संत्रं हि वर्धते  
तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३ ॥ सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति  
रक्षतः ॥ अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥ ४ ॥

टीका—चोरोंके दंड देनेसे जो राजा साधुओंको अभय देता है वही सबोंका पूज्य और प्रशंसायोग्य होता है और उसका गवायन आदि सत्र कहिये यज्ञ विशेष जिसकी चोरोंका दंड देनारूप अभयहीं दक्षिणा है वह सदा बढाता है और निश्चित समय और नियत है दक्षिणा जिसकी ऐसा होता है यह तौ अभय दक्षिणा युक्त सब कालमें होता है ॥ ३ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले राजाका बनिया आदिसे तथा श्रोत्रिय आदिसे धर्मका छठा भाग होता है और नहीं रक्षा करनेवाले

की अधर्ममेंसे छटा भाग होताहै तिससे राजा यत्न करिके चोरोंके दंड देनेसे सबोंकी रक्षा करे ॥ ४ ॥

यदधींते यद्यजते यद्ददाति यद्वर्चति । तस्य षड्भागभायाजां सम्यग्भवति रक्षणात् ॥ ५ ॥ रक्षन्धर्मण भूतानि राजा वर्ध्यांश्च घातयन् ॥ यजतेऽर्हरह्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ६ ॥

टीका—जो कोई जप यज्ञ दान देवताका पूजन आदि करता है उसके छटे भागको राजा भलीभांति पालन करनेसे प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ राजा शास्त्रके अनुसार दंड देनेरूप धर्मसे पालन करता हुआ और चौर आदिकोंको दंड देता हुआ प्रतिदिन लक्ष गौ हैं दक्षिणा जिसकी ऐसे यज्ञसे यजन करताहै अर्थात् उनसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥ प्रतिभागं च दण्डं च स संद्यो नरकं व्रजेत् ॥ ७ ॥ अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ॥ तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ८ ॥

टीका—रक्षा न करता हुआ जो राजा बलि कहिये धान्य आदिका छटा भाग आदि और कर कहिये ग्राम तथा पुरके वासियोंसे प्रतिमहीने भादों और पूस आदि महीनोंके नियमसे लेनेयोग्य अथवा शुल्क कहिये जलके मार्गसे अथवा स्थलके मार्गसे वाणिज्य करनेवालोंसे नियत चौकी आदि स्थानोंमें द्रव्यके अनुसार लेनेयोग्य जो दान (महसूल) के नामसे प्रसिद्धहै और प्रतिभाग कहिये फल फूल शाक और तृण आदि भेंड जो प्रतिदिन लेनेयोग्यहै और दंड कहिये और व्यवहार आदिमें दंड लेताहै वह मुरिके शीघ्रही नरकको जाताहै ॥ ७ ॥ जो राजा रक्षा नहीं करताहै और बलिरूप धान्य आदिके छटे भागके लेताहै उसको सब लोगोंके समस्त पापोंके लेनेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् । अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ ९ ॥ अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ॥ निरोर्धनेन बन्धेन विविधेन वन्धेन च ॥ ३१० ॥

टीका—शास्त्रकी मर्यादाके न माननेवालेको और परलोकको न मानकर अनुचित दंड आदिसे धन लेकर बड़े हुएको औ रक्षा न करनेवालेको और कर तथा बलि आदिके खानेवाले राजाको नरकगामी जानै ॥ ९ ॥ अधर्मी चोर अ-

दिको अपराधकी अपेक्षासे तीनि उपायों करि यत्नसे दंड देवै उनको कहते हैं जेहलखानेमें डाल देनेसे और वेरी आदिके बंधनोंसे और ताडना तथा हाथ पांव आदिके काटने आदि नानाप्रकारके मारनेसे ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां सार्धूनां संग्रहेण च ॥ द्विजांतय इवेज्याभिः  
पूर्यन्ते संततं नृपाः ॥ ११ ॥ क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्य  
णां नृणाम् ॥ बालवृद्धानुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ १२ ॥

टीका—पापियोंके दंड देनेसे और साधुओंकी रक्षा करनेसे महायज्ञ आदि-  
कोंसे ब्राह्मणोंके समान सबकाल राजा पवित्र होते हैं तिससे अधर्मियोंको दंड दे  
और साधुओंपर अनुग्रह करै ॥ ११ ॥ कार्यवाले अर्था प्रत्यर्थियोंके आक्षेपसे क-  
हे हुए वचनोंको और बालक वृद्ध तथा रोगियोंके आक्षेपको आगे जो कहा  
जायगा ऐसे अपने उपकारकी इच्छा करनेवाला प्रभु सह लेवै ॥ १२ ॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यात्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥ यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते  
नरकं तेन गच्छति ॥ १३ ॥ राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धाव  
ता ॥ आर्चक्षणेन तस्तेयमेवंकर्मास्मिं शाधि माम् ॥ १४ ॥ स्कन्धे  
नादाय मूसलं लंगुडं वापि खादिरम् ॥ शक्तिं चोभयतस्ती  
क्ष्णामायसं दण्डमेवं वा ॥ १५ ॥

टीका—दुःखितों करि आक्षेप किया गया जो सह लेताहै वह उस्से स्वर्गलो-  
कमें पूजाको प्राप्त होताहै और जो दर्पसे नहीं सहताहै वह उस्से नरकमें जा-  
ताहै ॥ १३ ॥ यद्यपि सुवर्णस्तेयकृद्भिः इत्यादिसे प्रायश्चित्त प्रकरणमें कहैमे ति-  
सपरभी सुवर्णके चुरानेवाले प्रति इसको राजदंडरूपता, दिखानेके लिये दंड प्र-  
करणमें पढा ब्राह्मणके सुवर्णके चुरानेवाले और बाल खोले हुए वेगसे जाते हुए  
मैने ब्राह्मणका सुवर्ण चुराया है ऐसे चोरीको कहते हुए पुरुषको खैरका मूसलनाम  
आयुध अथवा दोनो औरसे पैना दंड अथवा लोहेकी शक्तिको कंधेपर रखके  
राजाके समीप जाना चाहिये . तिस पीछे ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला मैं हौं  
तिससे इस मूसल आदिसे मुझे मारो ऐसे राजासे कहना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षार्द्धा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ॥

अंशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्रोति किं लिषम ॥ १६ ॥

टीका—एकवार मूसल आदि मारनेसे प्राण जाते रहैं अथवा मरेके समान



हुए ज्मिवतेको छोड़ि देनेसे वह चोर उस पापसे छूटि जाताहै और जो राजा क-  
रुणा आदिसे उस चोरको न मारै तौ चोरके पापको होताहै ॥ १६ ॥

अन्नादे भूणहा माष्टि पंत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुंरौ शिष्यश्च या  
ज्यश्च स्ते नो राजनि क्विल्वपम् १७ राजनिधूतदण्डास्तु कृत्वा  
पापानि मानवाः॥निर्मलाः स्वर्गमार्यान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा १८

टीका—जो ब्रह्महत्या करनेवालेके अन्न खानेवालेमें उसका पाप आयजाता-  
है और ऋण जो गर्भहै उसकी हत्या करनेवालेका अन्न जो खाताहै उसको पा-  
प होताहै यह यहाँ कहा गया परंतु ब्रह्महत्याके पाप नष्ट नहीं होताहै और  
व्यभिचार करनेवाली स्त्रीके जार पतिको क्षमा करनेवाले पतिको पाप लगताहै  
और शिष्य संध्या तथा अग्निहोत्रादि न करनेसे उत्पन्न पापको सहनेवाले गु-  
रूमें स्थापित करताहै और विधिको उल्लंघन करनेवाला यजमान क्षमा करनेवा-  
ले याज्ञकमें अपने पापको डारताहै और चोर उपेक्षा करनेवाले राजाको अप-  
ना पाप देताहै तिस्से राजाको चोर दंड देनेयोग्यहै ॥१७॥ सुवर्णकी चोरी आ-  
दिक पापोंको करिके पीछे राजाओं करि दंड दिये गये मनुष्य रोकनेवाले पा-  
पके न होनेसे पहले किये हुए पुण्यके द्वारा सुकृती मनुष्योंके समान स्वर्गको  
जाते हैं ऐसे प्रायश्चित्तके समान दंडकोभी पापोंसे शुद्ध करनेका कारण कहाहै १८

यस्तु रज्जुं घटं कूपार्द्धरेद्रिद्याच्च र्यः प्रपांम् ॥ स दण्डं प्रामुष्यान्मांषं  
तं च तस्मिन्समाहरेत् ॥ १९ ॥ धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽ  
भ्यधिकं वधः ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ २० ॥

टीका—कुआके समीप पानी भरनेके लिये रक्खे हुए रस्सी और घडेमेंसे  
जो रस्सी अथवा घडेको चुरावै और जो पानी पिलानेके घरको फोडै उसपर  
सुवर्णका एक मासा दंड होना चाहिये और वह उस रस्सी आदिकों कुएपर र-  
क्खे ॥ १९ ॥ दोसो पलका एक द्रोण होताहै और वीस द्रोणका एक कुंभ हो-  
ताहै ऐसे दश कुंभोंसे अधिक धान्य चुरानेवालेका वध कहाहै वह तौ स्वामीकी  
गुणवत्ताकी अपेक्षासे ताडन अंगोंका काटना और मारना रूप जानना चाहिये  
और शेषमें फिर एक कुंभसे लगाकै दश कुंभतकके चुरानेमें चुराए हुए ग्यारह  
रुणा दंड दिवाना चाहिये और चुराया हुआ धान्य स्वामीको दिवावै ॥३२०॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥ सुवर्णरजतादीनामु-

तैमानां चै वार्ससाम् ॥ २१ ॥ पञ्चाशतस्त्वभ्याधिके हस्तच्छेद-  
नामिष्यते ॥ शेषे त्वेकादशगुणं मूर्ल्यादण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

टीका—जैसे धान्यमें वध कहा है वैसेही तुलासे प्रमाण करनेयोग्य सुवर्ण र-  
जत आदिकोंके और उत्कृष्ट कहिये बढिके रेशमी कपडे आदिकोंके सौपलसे अ-  
धिक चुरानेमें वध करनाही चाहिये ॥ २१ ॥ पहले कहे हुए पचाससे सौ तक  
चुरानेपर मनु आदिकोंने हाथ काटना कहा है और शेषमें एक पलसे लगाके प-  
चास पल तक चुरानेमें चुराये हुए धनसे ग्याहर शुणा दंड देना चाहिये ॥ २२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः। मुख्यानां चैव रत्नानां  
हरणे वधमर्हति ॥ २३ ॥ महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य चै।  
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

टीका—बडे कुलमें उत्पन्न मनुष्योंके और विशेष करि स्त्रियोंके और हीरा  
चैदर्य्य आदि श्रेष्ठ मणियोंके चुरानेमें वधकेयोग्य होता है ॥ २३ ॥ हाथी घोडा  
गौ भैंस आदि बडे पशुओंके तथा खड्ग आदि शस्त्रोंके और कल्याण घृत आदि  
औषधीके चुरानेवालेको दुर्भिक्ष आदि रूप समय और प्रयोजनको भले बुरे का-  
ममें लगा हुआ समाझि राजा ताडन अंगच्छेदन और वधरूप दंड करै ॥ २४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरीकायाश्च भेदने ।  
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ २५ ॥

टीका—ब्राह्मणकी गौओंके चुरानेमें और लादनेके लिये बांझ गौके नाथनेमें और  
भेड बकरी आदि पशुओंके चुरानेमें हालही आधा पांव कटि देना चाहिये ॥ २५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य चै ॥ दध्नः क्षीरस्य  
तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य चै ॥ २६ ॥ वेणुवैदलभाण्डानां  
लवणानां तैथैव चै ॥ मृन्मयानां चै हरणे मृदो भस्मन एव चै ॥  
॥ २७ ॥ मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य चै घृतस्य चै ॥ मांसस्य  
मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ २८ ॥ अन्येषां चैवमादीनां मद्या  
नामोदनस्य चै ॥ पक्वानानां चै सर्वेषां तन्मूल्याद्विगुणो दंडः ॥ २९ ॥

टीका—सूत कपास और किण्व कहिये सुराबीज गोवर गुड दही दूध मठा

पानी तृण ॥ और वेणु वैदल कहिये पतले वांसोंके टुकड़ोंसे बने हुए जल भरनेके पात्र आदिकोंको और सब प्रकारके नोन और मिट्टीके बने हुए बासनोंके चुरानेमें मिट्टीके तथा भस्मके चुरानेमें ॥ मछलीयों और पक्षियोंके तैल तथा घीके मांसके मधु ( शहत ) के और जो कुछ मृगचर्म गेंडके सींग आदिके ऐसेही औरभी बसासरी मनसिल आदिके और बारह प्रकारके मद्योंका और भातुको छोडकर पुआ लड्डू आदि पकवानोंको चुरानेमें चुराई हुई वस्तुके मॉलसे दूना दंड करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥

अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥३३०॥

टीका—फूलोंके और खेतमें लगे हुए हरे धान्योंके और गुल्मलता तथा वृक्षोंके और शुद्ध न किये हुए अन्य धान्योंके जो एक समर्थ पुरुषका भाररहें उनके चुरानेमें देशकाल आदिकी अपेक्षासे सुवर्णकी अथवा रूपेकी पांच रत्ती प्रमाण दंड होताहै ॥ ३३० ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ निरन्वये शतं दण्डः  
सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३१ ॥ स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म  
यत्कृतम् ॥ निरन्वयं भवेत्स्ते यं हत्वापन्हुयते च यत् ॥३२॥

टीका—साफ किये हुए धान्योंके और शाक मूल तथा फल आदिके चुरानेपर अन्वय द्रव्यके स्वामीके संबंधको कहते हैं जिसमें एक गाममें बसने आदिका कुछभी संबंध नहीं है वहां सौ पण दंड करना चाहिये और जहां संबंध है वहां पचासपल दंड करना चाहिये खलिहानमें प्रडे हुए धान्योंके चुरानेमें यह दंडहै वहाँ साफ किये जाते हैं और घरमें स्थित धान्योंके चुरानेमें पहले कहा हुआ ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो धान्यका ले लेना आदि कर्म द्रव्यके स्वामीके सामने बलसे हरलिया जाता है वह साहस होताहै सहवलको कहते हैं उससे जो होय उसको साहस कहते हैं इससे इसमें चोरीका दंड न करना चाहिये इस लिये इसका चोरीके प्रकरणमें पाठहै और जो स्वामीके पीठि पीछे लिया जातहै वह चोरी होती है और जो लेकर छपाया जाताहै वहभी चोरीहीहै ३२

यस्त्वेतान्युपकृतानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥ तस्माद्यं दण्डयेद्रा  
जो यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ॥ ३३ ॥ येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु

र्विचेष्टते ॥ तत्रदंष्ट्रं हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३४ ॥

टीका—जो मनुष्य संस्कार की हुई इन सूत आदि द्रव्योंको उपभोगके लिये चुरावै और जो तीनो अग्निओंको अग्निके घरसे चुरावै उसपर राजा प्रथम साहस का दंड करै और अग्निके स्वामीको अग्निके आधानकी हानि दिवावै ॥ ३३ ॥ जिस जिस हाथपांव आदि अंगसे संधि फोडने आदि जिस प्रकारसे चोर मनुष्यों में विरुद्ध धन लेने आदिकी चेष्टा करै उसी अंगका राजा उस प्रसंगके दूरी करनेके लिये कटवावै ॥ ३४ ॥

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नादण्डचो नाम  
राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ३५ कर्षापणं भवेदण्डचो यत्रा  
न्यः प्राकृतो जनः ॥ तत्र राजा भवेदण्डचः संहस्रमिति धारणा ॥ ३६

टीका—पिता आचार्य मित्र भाई माता स्त्री पुत्र और पुरोहित इनमेंसे कोई अपने धर्ममें न स्थित रहै वह क्या राजाके दंड देनेयोग्य नहीं है अर्थात् दंड देनेही योग्यहै ॥ ३५ ॥ जिस अपराधमें राजासे व्यतिरिक्त सामान्य जन एक कर्षापण दंडके योग्य होय उस अपराधमें राजा हजारपण दंडके योग्य होताहै यह निश्चय है अपने दंडको राजा जलमें डाले देवै अथवा ब्राह्मणोंको देदेवै दंडके वरुण स्वामी हैं यह आगे कहाहै ॥ ३६ ॥

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ॥ षोडशैव तु वै  
श्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्ण  
वापि शतं भवेत् ॥ द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तदोषगुणविद्धि सः ३८

टीका—जिस चोरीमें जो दंड कहाहै वह दंड चोरी गुणदोष जाननेवाले शूद्रपर आठ गुणा करनेयोग्यहै और चोरीके गुणदोष जाननेवाले वैश्यपर सोलह गुणा ऐसेही क्षत्रियपर बत्तीस गुणा और गुणदोष जाननेवाले ब्राह्मणपर चौंसठि गुणा अथवा सौ गुणा अथवा एकसौ अठ्ठाईस गुणा गुणकी अधिकताकी अपेक्षा यह ब्राह्मणहीपर होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वर्ण्यं तथैव च ॥ तृणं च गोभ्यो श्रिसार्थं  
मंस्तेयं मंनुरर्बवीत् ॥ ३९ ॥ योऽदत्तादायिनो हस्तालिप्सेत ब्राह्म  
णो धनम् ॥ यज्जनाध्यापनेनापियथा स्तेनस्तथैव सः ॥ ३४ ॥

टीका—लता और वनस्पतियोंके फूलोंको अपनेके समान ग्रहण करै और विना रक्षा किये हुए वानस्पत्य आदिकोंके मूल फलको और होमकी अग्निके लिये काष्ठको और गौके खानेके लिये तृणके लेनेको मनु चोरी नहीं कहते हैं तिससे इसमें दंड नहीं है और न अधर्म है ॥ ३९ ॥ अदत्तादायी जो चोर है तिसके हाथसे जो ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रतिग्रहसे पराये धनको जानिके लेनेकी इच्छा करै वह चोरकी तुल्य जानना चाहिये इसीसे चोरके समान दंड देने योग्य है ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्राविक्षू द्वे च मूलके ॥ आददानः परंक्षेत्रा  
न्नं दण्डं दातुमर्हति ॥ ४१ ॥ असंधितानां संधाता संधितानां च  
मोक्षकः ॥ दासांश्वरथहर्ता च प्रातः स्याञ्चोरकिल्बिषम् ॥ ४२ ॥

टीका—मार्गका खरच जिसका चुकि गया है ऐसा बटोही ब्राह्मण दो ईश्वरों और दो मूलियोंको पराये खेतसे लेता हुआ दंड देनेके योग्य नहीं होता है ४१ ॥ नहीं बंधे हुए पराये घोडा आदिकोंका बांधनेवाला और अश्वशाला आदिमें बंधे हुए ओंका खोलनेवाला और दास रथ घोडा इनका चुरानेवाला चोरके दंडको पावे वह दंड तौ भारी हलके अपराधके अनुसार मारण अंगच्छेदन और धनका ले लेना आदि जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥ यज्ञोऽस्मिन्प्रांभु-  
याल्लोके प्रेत्यं चानुत्तमं सुखम् ॥ ४३ ॥ ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेत्सुर्यश-  
श्चाक्षयमव्ययम् ॥ नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ४४

टीका—इस कही हुई विधिसे चोरोंका प्रबंध करता हुआ राजा इसलोकमें बड़ी ख्याति और परलोकमें उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ सबके अधिपति होनेरूप पदके प्राप्त होनेकी और अविनाशी तथा अक्षय यशके प्राप्त होनेकी इच्छा करता हुआ राजा बलसे घरके जलानेवाले और धनके लेनेवाले मनुष्यकी क्षणमात्रभी उपेक्षा न करै तत्काल दंड देवै ॥ ४४ ॥

वान्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसितः ॥ साहसस्य नरः कर्ता  
विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ४५ ॥ साहसे वर्तमानं तु योमर्षयति  
पार्थिवः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ४६ ॥

टीका—वाक्पारुष्य करनेवालेसे चोरसे तथा दंडपारुष्य करनेवाले मनुष्यसे साहस करनेवाला मनुष्य अतिशय करि पाप करनेवाला जानना चाहिये ॥४५॥ जो राजा साहस कर्ते हुए मनुष्यको सहतीहै अर्थात् क्षमा करताहै वह पाप करनेवालोंकी उपेक्षा करनेसे अधर्मकी वृद्धिसे नाशको प्राप्त होताहै और देशकी अपकार करनेसे मनुष्योंके द्वेषको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

न मित्रकारणाद्राजां विपुलाद्रां धनान्गमात् ॥ संमुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥४७॥ शस्त्रं द्विर्जातिभिर्ग्राह्यं धर्मोयत्रोपरुध्यते ॥ द्विर्जातानां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥४८॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिर्णानां च संगरे ॥ स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च निघ्नं न्धमेणं न दुष्यति ॥ ४९ ॥

टीका—मित्रके कहनेसे अथवा बहुतसे धनकी प्राप्तिसे सब जीवोंके दुखदेनेवाले साहसी मनुष्योंको राजा न छोडै ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण आदि तीन वर्णोंको उसकालमें सङ्ग आदि शस्त्र धारण करने चाहिये जिस समय वर्ण और आश्रमी साहस करनेवालोंसे धर्म न करने पावै तथा तीनो वर्णवालोंको राजारहित देशमें पराई सेना आने आदि कालमें उत्पन्न हुए स्त्री संगर आदिके प्राप्त होनेपर और अपनी रक्षाके लिये और दक्षिणा धन गौ आदिके हरनेके कारण संग्राममें और स्त्री तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त और गति न होनेके कारण धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारता हुआ दोषभागी नही होताहै दूसरेके मारनेमें भी यहां साहसका दंड नही करनेयोग्यहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥

आततायिनमार्यान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

टीका—गुरु बालक वृद्ध और बहुश्रुत ब्राह्मण इनमेंसे जो विद्यावृत्त आदिसे उत्कृष्टभी कोई मारनेके लिये आता होय और भागने आदिसेभी अपना बचाव न होसकता ह्येय तौ विना विचारके मारै ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥५१॥ परदाराभिर्गणेषु प्रवृत्तान्महोपतिः ॥ उद्रे जनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ५२ ॥

टीका—मनुष्योंके सामने अथवा एकान्तमें मारनेके लिये उद्यत आततायीके

मारनेमें मारनेवालेको कुछ अधर्म दंड तथा प्रायश्चित्त त्राम दोष नहीं लगता है कारण यह है कि मारनेवालेमें स्थित मन्यु अर्थात् क्रोधके अभिमानकी देवता हन्यमानमें स्थितहो क्रोधको लौटाय देती है और साहसमें अपराधके गौरवकी अपेक्षासे मीरण अंगच्छेदन और घनग्रहण आदि दंड करने चाहिये ॥ ५१ ॥ अब स्त्रीसंग्रहण कहते हैं ॥ पराई स्त्रियोंके भोगमें प्रवृत्त मनुष्योंके समूहको त्राक ओठ काटने आदि दंडोंसे चिन्हयुक्त करिकै राजा अपने देशसे निकाल देवे ॥ ५२ ॥

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ॥ येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ५३ ॥ परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः ॥ पूर्वमाक्षरितो दोषैः प्रामुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ५४ ॥

टीका—पराईस्त्रियोंमें गमन करनेसे उत्पन्न हुआ वर्णसंकर होता है जिस वर्णसंकर करि शुद्ध पत्नीयुक्त यजमान न होने कारण अग्निमें डाली हुई अहुति अच्छी भांति सूर्यको प्राप्त होती है इसका अभाव होनेपर वृद्धिनाम जगत्के मूलका नाश करनेवाला अधर्म जगत्के नाशके लिये होता है ॥ ५३ ॥ तिसको पहले परस्त्रीगमन आदिका दोष लगी चुका है वह पुरुष किसीकी स्त्रीसे एकांतमें बात करै तो प्रथम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ५४ ॥

यस्त्वनक्षरितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥ न दोषं प्रामुयात्किं चित्रं हि तस्य व्यतिक्रमः ॥ ५५ ॥ परस्त्रियं यो भिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ॥ नदीनां वापि संभेदे संसंग्रहणमामुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जिसको पहले परस्त्री आदिका दोष नहीं लगा है वह जो किसी कारण मनुष्योंके आगेभी बात करै तो वह दंड्यत्व आदि अर्थात् दंड देने योग्य दोषोंको न प्राप्त होय जिसे उसका कुछ अपराध नहीं है ॥ ५५ ॥ तीर्थ अरण्य वन आदिके कहनेसे शून्यस्थान जानना चाहिये। जो पुरुष पानी भरनेके घाटमें और अरण्य कहिये ग्रामसे बाहर लता गुल्मोंसे भरे हुए सूने देशमें और वन कहिये बहुत वृक्षोंसे भरे हुए स्थानमें और नदियोंके संगममें निर्दोषभी होनेपर किसी कारणसेभी बात करै वह हजार पण रूपसंग्रहण दंड जो आगे कहेंगे उसको पावे ॥ ५६ ॥

उपचारक्रिया कौलिः स्पर्शां भूषणवाससाम् ॥ सहैखद्वासनं चैव संवै संग्रहणं स्मृतम् ॥ ५७ ॥ स्त्रियं स्पृशेददे शो यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्त्या ॥ परस्परस्यानुमते सर्वसंग्रहणं स्मृतम् ॥ ५८ ॥

टीका—उपचारक्रिया कहिये माला सुगंध तथा चंदन आदि अनुलेपनका मे-  
जना और केलि कहिये हंसना आलिंगन करना आदि और अलंकार भूषण आ-  
दिकोंका स्पर्श करना और खट्टापर बैठना इन सबोंको मनु आदिने संग्रहण क-  
हाहै ॥५७॥ जो झूनेको अनुचित स्तन जघन आदि स्थानोंमें स्त्रीको छुवै अथवा  
उस स्त्रीकरके वृषण आदि स्थानमें छुआ गया सहि लैवै तौ आपसमें अंगीका-  
ररूप सब मनु आदिकोने संग्रहण कहाहै ॥ ५८ ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥ चतुर्णामपि वर्णानां दा-  
रा रक्ष्यतमाः सदा ॥ ५९ ॥ भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारव-  
स्तथा ॥ संभर्षणं सह स्त्रीभिः कुर्युप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥

टीका—दंडकी अधिकतासे यहां अब्राह्मण कहनेसे शूद्र जानना चाहिये नही  
इच्छा करती हुइ ब्राह्मणीमें उत्तम संग्रहण करनेसे शूद्र वधदंडको प्राप्त होताहै  
और चारो ब्राह्मण आदि वर्णोंके धन पुत्र आदिकोंमेंसे अधिकतासे स्त्री सदा र-  
क्षा करनेयोग्य है उस्से उस प्रसंगके दूर होनेके लिये उत्कृष्ट संग्रहणसे भी सब  
वर्णों करि स्त्रिया रक्षा करनेयोग्य हैं ॥ ५९ ॥ भिक्षासे जीनेवाले स्तुति पढनेवा-  
ले यज्ञकी दीक्षावाले और सूपकार कहिये रसोई करनेवाले आदि तथा भिक्षा  
आदि अपने कामके लिये गृहस्थोंकी स्त्रियोंके साथ विना रोक ठोकके संभाषण  
करै इस भांति इनको संग्रहण दोष नही होताहै ॥ ३६० ॥

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥ निषिद्धो भाषमाण-  
स्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ६१ ॥ नैष चारणदारेषु विधिनात्मोपजीवि-  
षु ॥ सज्जयन्ति हि ते नारीनिगूढाश्चारयन्ति च ॥ ६२ ॥

टीका—स्वामी करि मने किया हुआ स्त्रियोंके साथ बात न करै और जो  
मने किया हुआ बात करै तौ राजा करि सोलह सुवर्णके दंड योग्य होता है  
॥ ६१ ॥ पराई स्त्रीसे बात न करै यह बोलनेका निषेध नट और गवैया आ-  
दिकों स्त्रियोंमें नही है क्योंकि भार्या और पुत्र अपना तनु है यह कहाहै अर्था-  
त् भार्याही अत्माहै इस्से वे जीविका करते हैं धन लाभके लिये उसके जारसे कुछ  
नही कहते हैं उनमें और नट आदिकोंसे व्यतिरिक्तोंमें जो स्त्रियां हैं उनमेंभी यह  
निषेधकी विधि नही है जिस्से चारण आत्मोपजीवीभी हैं वे परपुरुषोंको लायके  
उनसे अपनी भार्याओंका आलिंगन कराते हैं और आप आये हुए परपुरुषों



कियी हुईसे गमन करता हुआ लिंगरहित करने योग्य है और रक्षितासे तौ गमन करता हुआ शरीर तथा धनसेहीन करनेयोग्यहै ॥ ७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्सर्वत्सरनिरोधतः ॥ सहस्रं क्षत्रियो  
दण्डचो मौण्डचं मंत्रेण चार्हति ॥७५॥ ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छे  
तां वैश्यप्रार्थिवौ । वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ७६

टीका—वैश्यको गुप्ता ब्राह्मणीमें गमन करनेपर एक वर्षतक बंधनमें रखकर पीछे सर्वस्व ग्रहणरूप दंड करना चाहिये अर्थात् उसका सब धन आदि छीनले और क्षत्रियामें गमन, करनेपर तौ वैश्यस्य क्षत्रियायां यह आगे कहेंगे और क्षत्रियको गुप्ताब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे हजार पण दंड देना चाहिये और गधेके मंत्रसे इसका मुंडन कराना चाहिये ॥ ७५ ॥ जो अरक्षिता ब्राह्मणीसे वैश्य तथा क्षत्रिय गमन करै तौ वैश्यपर पाचसौ दंड करै और क्षत्रियपर हजार करै वैश्यपर यह पांचसौका दंड शूद्राके भ्रम आदिसे निर्गुण जाति मात्रसे जीविका करनेवाली ब्राह्मणीके मध्ये जानना चाहिये और उससे अन्यब्राह्मणीके गमनमें तौ वैश्यकोभी हजारही दंड कहाहै ॥ ७६ ॥

उभावरिपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह । विधुतो शूद्रवदण्डचौ  
दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥७६॥ सहस्रं ब्राह्मणो दण्डचो गुप्तां विप्रां  
बलाद्भ्रजन् ॥ शतानि पञ्च दण्डचः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ७८

टीका—वे दोनोभी क्षत्रिय वैश्य अरक्षिता ब्राह्मणीके साथ मैथुन करनेसे शूद्रके समान सर्वस्व दंड करनेयोग्यहैं अथवा चटाईमें लपेट कर जलानेयोग्यहैं उनमें वैश्यको तौ लालकुशोकी चटाईमें और क्षत्रियको शरपतेके पत्तामें लपेटकर जलावै यह वसिष्ठका कहा हुआ विशेष ग्रहण करना चाहिये पहले हजार क्षत्रियपर दंड करना चाहिये और वैश्यपर सर्वस्व दंड करना चाहिये यह कहाहै तिस्से यह प्राणांतिक दंड गुणवत् ब्राह्मणीके गमन करनेमें जानना चाहिये ॥ ७७॥ रक्षिता ब्राह्मणीमे बलसे गमन करनेवाले ब्राह्मणपर हजार पण दंड होवै और इच्छा करनेवालीसे एकवार मैथुन करनेमें पाचसौ दंड करनेयोग्य होताहै ७८

मौण्डचं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते । ईतरेषां तु  
वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥७९॥ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्व  
पापेष्वपि स्थितम् । रीष्टादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ३८०

टीका—ब्राह्मणको वध दंडके स्थानमें शिरका मुडवा देना दंडहै यह शास्त्र-  
ने कहाहै और क्षत्रिय आदिकोका तौ कहे हुए मारनेसे दंड होताहै ॥ ७९ ॥ स-  
ब पाप करनेवालेभी ब्राह्मणको कभी न मारै अपितु सर्वस्व समेत अक्षत शरीर-  
को देशसे निकाल देवै ॥ ३८० ॥

नै ब्राह्मणकधाद्रूयानर्धमो विद्यते भुवि । तस्मादस्य वधं राजा मन-  
सापि न चिन्तयेत् ॥ ८१ ॥ वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो  
व्रजेत् । यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥ ८२ ॥

टीका—ब्राह्मणके वधसे और बडा अधर्म पृथिवीमें नही है तिस्से राजा सब  
पाप करनेवाले ब्राह्मणके वधको मनसे भी न विचारे ॥ ८१ ॥ जो रक्षिता क्षत्रि-  
यामें वैश्य गमन करै और क्षत्रिय जो रक्षिता वैश्यामें गमन करै तौ उन दोनों-  
को अरक्षिता ब्राह्मणीमें गमन करनेसे जो दंड कहे हैं जैसे वैश्यपर पांचसौ करै  
और क्षत्रियपर हजार ये दोनौही दंड वैश्य तथा क्षत्रियको होते हैं यह तौ वैश्य-  
का रक्षित क्षत्रियाके गमनमें पांचसौ दंड लघु होनेसे गुणवान वैश्य और निर्गुण  
जाति मात्रसे जीविका करनेवाली क्षत्रियाका शूद्राके भ्रम आदिसे गमन विषयक  
जानना चाहिये और क्षत्रियको रक्षित वैश्यामें ज्ञानसे हजारदंड योग्यही है ॥ ८२ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ॥ शूद्रायां क्षत्रियं  
विशोः साहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ८३ ॥ क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये  
पञ्चशतं दमः । मूत्रेण मौण्डचमिच्छेत् क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥ ८४ ॥

टीका—रक्षित क्षत्रिय वैश्यामें गमन करता हुआ ब्राह्मण सहस्र दंड देनेयो-  
ग्य है और रक्षिता शूद्रामें गमन करनेसे क्षत्रिय वैश्य सहस्रही दंडके योग्य होते हैं  
॥ ८३ ॥ अरक्षिता क्षत्रियाके गमनमें वैश्यपर पांचसौ दंड होताहै और क्षत्रिय-  
को अरक्षिता क्षत्रियाके गमन करनेमें गधेके मूत्रसे मुंडन और पांचसौ रूपये  
दंड होना चाहिये ॥ ८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ॥ शतानि पञ्च दण्डचः  
स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥ ८५ ॥ ग्रस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्य  
स्त्रीगो न दुष्टवाक् न साहसिकदण्डघ्नो स राजा शक्रेलोकभाक् ८६

टीका—अरक्षिता क्षत्रिया वैश्या अथवा शूद्रामे गमन करता हुआ ब्राह्मण पां-  
चसौ दंडके योग्य होताहै और अंत्यज कहिये चांडाल उसकी स्त्रीसे गमन क-

रता हुआ हजार दंडके योग्य होताहै ॥ ८९ ॥ जिस राजाके राज्य भरमें चोर तथा परादि स्त्रीसे गमन करनेवाला और कडुई बात कहनेवाला और घरों का जलाना आदि साहस करनेवाला तथा दंडपारुष्य करनेवाला नहीं है वह राजा स्वर्गपुरको जाताहै ॥ ८६ ॥

एतेषां निर्ग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥ साम्राज्यकृत्संजात्येषु लोके चैव यज्ञस्करः ॥ ८७ ॥ ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं च त्विक्त्यजेद्यदि ॥ शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतंशतम् ॥ ८८ ॥

टीका—अपने देशमें इन स्तेन आदि पांचका दंड देनेवाला और समान जातिके राजाओंमें राजाका साम्राज्य करनेवाला इस लोकमें यज्ञ करनेवाला होताहै ॥ ८७ ॥ जो यजमान कर्म करनेमें समर्थ और अतिपातक आदि दोषोंसे रहित यजन करानेवालेको अथवा ऋत्विक जो दुष्ट नहीं ऐसे यजमानको छोड़ै तो उन दोनोपर सौ सौ दंड करना चाहिये यह दंडके प्रसंगसे कहा ॥ ८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥ त्यजन्नपतितानेता न राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ८९ ॥ आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ॥ न विभ्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥ ३९० ॥

टीका—माता, पिता स्त्री और पुत्र ये सेवा तथा पोषण आदि न करनेसे त्यागने योग्य नहीं हैं तिससे पातक आदि दोषोंसे बिना इनको त्यागता हुआ एक एकके त्यागमें राजा करि छसौ पण दंड करनेयोग्य होताहै ॥ ८९ ॥ द्विजातियोंके गृहस्थ आश्रमोंके कार्यमें यह शास्त्रार्थ है यह शास्त्रार्थ नहीं है ऐसे-आपसके विवादोंका अपना हित करनेकी इच्छा करनेवाला राजा यह शास्त्रार्थ है ऐसे सहसा विशेष कर न कहै ॥ ३९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ सात्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ९१ ॥ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विशतिद्विजे ॥ अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ९२ ॥

टीका—जो जैसी पूजाके योग्यहै उसका वैसेही पूजन करि और ब्राह्मणोंके साथ पहले प्रीतिसे कोप रहित करिके तिस पीछे इनका जो निज धर्म है उसको चित्तवै ॥ ९१ ॥ सदा घरमें रहनेवाला प्रातिवेश्य कहाताहै और अंतरसे बसनेवाला अनुवेश्य जिस उत्सवमें बीस अन्य ब्राह्मणभोजन कराये जाय उसमें भो-

जनके योग्य प्रातिवेश्य. अनुवेश्य ब्राह्मणोंको न भोजन कराता हुआ ब्राह्मण एक रूपेका मासा दंड करने योग्य है ॥ ९२ ॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् । तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैवं माषकम् ॥ ९३ ॥ अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्यास्थं विरश्च यः ॥ श्रोत्रियेषूपकुर्वश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥ ९४ ॥

टीका—विद्या और आचारयुक्त तथा नाना प्रकारके गुणों करि युक्तको विवाह आदि विभवके कार्योंमें प्रतिवेश्य अनुवेश्योंको नहीं भोजन कराते हुएको उस अन्नके न भोजन करनेवालेके लिये दूना दंड दिवाना चाहिये और एक सुवर्णका मासा राजाको दंड देवै ॥ ९३ ॥ अंधा बहिरा पंगा सत्तारिवर्षकी अवस्थाका और श्रोत्रिय और धनधान्यसे उपकार करनेवाला ये किसी करिके और जिसका कोशक्षीण होगयाहै ऐसे राजा करके अपना लेनेयोग्य भी कर लेनेयोग्य नहीं है ॥ ९४ ॥

श्रोत्रियं व्याधितात्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ॥ मर्हाकुलीनर्मायं च राजा संपूजयेत्सदा ॥ ९५ ॥ शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्ने जैकः शनैः ॥ न च वासांसि वासोभिर्निहरेन्न च वासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विद्या तथा आचारयुक्त ब्राह्मणको रोगीको पुत्रकर्मिण आदिसे दुस्वीको बालकको वृद्धको दरिद्रीको बड़े कुलमें उत्पन्नको और उत्तम चरित्रवालोंको राजा दान मान और हितके करनेसे सदा पूजन करै ॥ ९५ ॥ सेमल आदि वृक्षके चिकने पट्टेपर धोबी हौले हौले कपडे धोवै और पराये वृक्षोंमें औरके वस्त्र न मिलावै तथा औरके वस्त्र औरके पहिरनेको न देवै जो ऐसा करै तो यह दंडयोग्य होय ॥ ९६ ॥

तंतुवायो दशंपलं दद्यादेकपलाधिकम् ॥ अंतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दर्मम् ॥ ९७ ॥ शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः ॥ कुशुर्यं यथापण्यं ततो विशं नृपो हरेत् ॥ ९८ ॥

टीका—कोली कपडा बुननेके लिये दसपल सूत लेकर माडी आदि लगनेके कारण ग्यारह पल कपडा देवै और जो इस्से कम दे तो राजाको वारह पण दंड दे और स्वामीको राजी करै ॥ ९७ ॥ स्थल तथा जलके मार्गसे व्यवहार करने वालोंसे राजाके लेनेयोग्य भागको शुल्क कहते हैं उनके नियत करनेमें चतुर और

सर्व वेचनेयोग्य वस्तुओंके सार असारके जाननेवाले वे वेचनेकी वस्तुओंमें जितना धन जिसका मोल अनुरूपण करें उस नफेके धनसे वीसवां भाग राजा लेवै ९८ ॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ॥ तानिनिर्हरतो लो  
भात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥ ९९ ॥ शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्र  
यी ॥ मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥ १०० ॥

टीका—राजाके संबंधसे जो वेचनेकी वस्तु प्रसिद्ध हैं जैसे राजाके कामके उ-  
सी देशमें उत्पन्न हुए हाथी घोडा आदि तथा जो मने की हुई वस्तु हैं जैसे दुर्भे-  
क्षमें अन्न दूसरे देशमें न लेजाना उनको लोभसे दूसरे देशमें लेजानेवाले बनिया-  
का राजा सर्वस्व ले लेवै ॥ ९९ ॥ शुल्क (महसूल) बचानेके लिये जो मार्ग  
छोडकर चलताहै अथवा अकाल कहिये रात्रि आदिमें लेता वेचताहै और शुल्क  
घटानेके लिये वेचनेकी वस्तुकी गिनाती कम बताताहै वह राजाके देने योग्य  
रूपपाये हुएका आठगुण दंड देवै ॥ १०० ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ॥ विचार्य सर्वपर्यायानां  
कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ १ ॥ पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ॥  
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घं संस्थापनं नृपः ॥ २ ॥

टीका—कितनी दूरसे आयाहै और दूसरे देशकी वस्तुका आगम कितनी  
दूरिपहुचाया जाताहै और अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुका निकलना किस समय  
तक रहा कितना मोल मिलता है और इसमें नफा कितनाहै और कर्म कर-  
नेवाले नौकर आदिकोंके भोजन वस्त्र आदिमें कितना खर्च हुआ इस भांति  
विचार करिके जैसे मोल लेनेवालो और वेचनेवालेको पीडा न होय ऐसे सब  
वस्तुओंका क्रय विक्रय करावै ॥ १ ॥ विकनेकी वस्तुओंका आना जाना नियत  
नहीं है इस्से अस्थिर मोलकी वस्तुओंकी पांच रात्रि वीतनेपर और स्थिर मोलकी  
वस्तुओंकी पक्ष वीतनेपर अर्घांति जाननेवाले बनियोंके सामने राजा आप्त पुरु-  
षोंके साथ व्यवस्था करै ॥ २ ॥

तुल्यमानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षड्सु षड्सु च मां  
सेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ३ ॥ पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं  
तरे ॥ पादं पशुश्च यो पिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४ ॥

टीका—तुल्य मान कहिये सुवर्ण आदिके परिमाणके लिये जो किया जाताहै

और प्रतिमान प्रस्थ द्रोण आदि अपना निरूपित जैसे होय छः छः महीमे वीतनेपर सम्ये पुरुषोंके साथ फिर उसकी परिक्षा करै ॥ ६ ॥ भांडपूर्वाणियानानि यह आगे कहेंगे तिस्से खाली छकडा आदि यानपर एक पण लेना चाहिये और पुरुषके ले चलने योग्य भारपर आधापण और गौ आदि पशुपर चौथाई पण और भार-रहित मनुष्यपर पणका आठवा भाग उतराई लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

भाण्डपूर्णाणि यानानि तार्यं दार्प्यानि सारतः॥ रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुंमांसश्चापरिच्छेदाः ॥ ५ ॥ दीर्घाध्वनि यथादेशं यथा कालं तरो भवेत् । नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ६॥

टीका—वेचनेयोग्य द्रव्यसे भरे हुए छकडे आदिपर द्रव्यके उत्कर्षकी अपेक्षासे उतराई देनी चाहिये और खाली गोनि कंडोल आदिपर कुछ थोड़ी उतराई देनी चाहिये और दरिद्रियोंसे आधेसेभी कम दिवानी चाहिये ॥ ५ ॥ पहले नदीके वारपार उतरनेके लिये कहाहै अब नदीके मार्गसे जलनेयोग्य दूरिके मार्गमें प्रबल-वेग तथा स्थिर जलयुक्त नदी आदि देश और ग्रीष्म वर्षा आदि कालकी अपेक्षासे उतराईका मोल कल्पना करने योग्य यह नदीके किनारोंमें जाजनां चाहिये समुद्रमें तौ जहाजका चलना पवनके आधीन होनेसे अपनी आधीनता न होनेपर अधिक उतराईके द्रव्यका सूचित करनेवालाहै इसमें नदीकी भांति योजन आदि नहीं है इस्से वहां उचितही उतराई लेनी चाहिये ॥ ६ ॥

गर्भिणी तु द्विमांसादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः । ब्राह्मणा लिङ्गिन-  
श्चैवं न दार्प्यास्तारिकं तरे ॥ ७ ॥ यत्रावि किञ्चिद्दार्शानां विशी-  
र्येतापराधतः । तद्दार्शै रेवं दार्तव्यं समांगम्य स्वतोऽर्शतः ॥ ८ ॥

टीका—दो महीनोके उपरंतकी गर्भिणी स्त्री तथा संन्यासी मुनि वानप्रस्थ ब्राह्मण और ब्रह्मचारि येषां उतरनेमें उतराईका मूल्य न देवै ॥ ७ ॥ नावमें चढने वालोकी नौकाकेवृत्तोंके दोप्रसे हानि होजाय तौ गयी हुवा धन नाववालेही मिलकर हिस्सेसे देवै ॥ ८ ॥

एषं नौयारिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥ दार्शापराधतस्तौये  
दैविके नास्ति निर्ग्रहः ॥ ९ ॥ वाणिज्यं कारयेद्देश्यं कुसीदं कृषि-  
मैवं च ॥ पशूनां रक्षणं चैवं दार्शयं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥

टीका—मल्लाहोंके दोषसे जो पानीमें नष्ट होजाय उसको मल्लाह देवै यह पहले मनुका कहा हुआ दंड देवी उपद्रवमें नहीं है यह विधान करनेके लिये नौका ओसे जानेवालोंका यह व्यवहार कहा देवसे उत्पन्न हुई आंधी आदिसे नावके टूटने करि धन आदिका नाश होनेपर मल्लाहोंको दंड नहीं है ॥ ९ ॥ वैश्यसे वाणिज्य व्याजकी जीविका सेती पशुओंका पालना ये कर्म करावै और शूद्रोंसे राजा द्विजातियोंकी दास्य कहिये सेवा करावै ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं च वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितौ। विभूयादानृशंस्येन स्वां  
नि कर्माणि कारयन् ॥ ११ ॥ दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृ  
तान्द्विजान् ॥ अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्डचः शतानि षट् १२

टीका—ब्राह्मण पीडित क्षत्रिय वैश्योंसे करुणा करिके अपनी रक्षा तथा खेती आदि कामोंको करवावै और भोजन वस्त्र आदिसे उनका पोषण करै और जो धनाढ्य ब्राह्मण आये हुए उन दोनोंको न रक्खे तौ राजा करि दंड करनेयोग्यहै यह प्रकरणकी सामर्थ्यसे जानाजाताहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत किये हुए द्विजातियोंसे उनकी इच्छाके विना प्रभुता करि लोभसे पांय धोना आदि दम्तोंका काम कराताहै उसपर छसौ पण दंड करना चाहिये ॥ १२ ॥

शूद्रं तु कार्श्येदास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ॥ दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ १०  
ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ १३ ॥ न स्वामिना निःसृष्टोऽपि शूद्रो दास्या  
द्विसृच्यते ॥ निःसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ १४ ॥

टीका—भोजन आदिसे पाले हुए अथवा न पाले हुए शूद्रसे दासका काम करावै जिसे यह ब्राह्मणके दासभावहीके लिये प्रजापति करि बनाया गयाहै ॥ १३ ॥ स्वामी करि त्याग किया गयाभी शूद्र दासभावसे नहीं छूटता है जिस्मे दास्य शूद्रका सहज कहिये साथ उत्पन्नहै कौन उस शूद्रत्व जातिके दास्यतो दूरि कर सकताहै अर्थात् कोई नहीं जो ऐसा न होय तौ जो आगे कही जागी ऐसी दास्य करनेकी गणनाही व्यर्थ होजाय ॥ १४ ॥

ध्वर्जाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ ॥ पैत्रिको दण्डदासश्च सं  
सैते दास्योनयः ॥ १५ ॥ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवार्धनाः स्मृ  
ताः ॥ यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ १६ ॥

टीका—संग्राममें स्वामीसे जीता भोजनके लोभसे आया हुआ भक्त दास तथा अपनी दासीसे उत्पन्न और मोलसे लिया हुआ और दूसरे करि दिया हुआ तथा पिता आदिके क्रमसे जो चला आता है और दण्ड आदिके धनकी शुद्धिके लिये जिसने दासपन अंगीकार किया है ये सात संग्राममें स्वामीसे जीते आदि दासपनके करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ भार्या पुत्र तथा दास ये तीनि मनु आदिकों करि अधन कहे गये हैं कारण यह है कि जिस धनको वे जोरते हैं वह धन जिसके वे भार्या आदि हैं उसका होता है यह तौ भार्या आदिकी पराधीनता दिखानेके लिये है क्योंकि आगे अध्यायि आदि छ प्रकार स्त्रीधन कहा जायगा १६ ॥

विश्वं ब्रह्मणः शूद्रां द्रव्योपादानमाचरेत् ॥ न हि तस्यास्ति किञ्चिदस्त्वं भर्तृहो र्यधनो हि सं १७ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ॥ तौ हि च्युतौ स्वर्कर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् १८

टीका—निस्संदेह ब्राह्मण शूद्रसे धन ग्रहण करै जिस्से उसका कुछभी स्वत्व (हक) नहीं है कारण यह है कि इसका धन स्वामीके लेने योग्य है ऐसे आपत्तिमें ब्राह्मण बलसेभी इसका धन लेता हुआ राजा करि दंड देनेयोग्य नहीं है इस लिये यह कहा जाता है ॥ १७ ॥ वैश्यको खेती आदि और शूद्रको द्विजातिकी सेवा आदि कर्म राजा यत्रसे करावै कारण यह है कि वे अपनी जातिके कर्मसे च्युत हो अशास्त्रीय जोड़े हुए धनके मद आदिसे जगत्को व्याकुल न करदें १८

अहन्यहन्यंवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ॥ आयव्ययौ च नियत्स्रं  
वाकरान्कोशमेवं च ॥ १९ ॥ एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारात्समा  
पयन् ॥ व्यपोह्य किर्लिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ४२० ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

टीका—राजा प्रारंभ किये हुए कार्योंकी सिद्धिको प्रतिदिन उनके अधिकारियोंके द्वारा देखै ऐसेही हाथी घोड़ोंको कि आज क्या आया और क्या गया और सोना चांदीके उत्पत्तिस्थानोंको और कोशागार (खजाने) को देखै व्यवहारके देखनेमें असमर्थभी राजा अपने धर्मोंको न छोड़े यह दिखानेके लिये कहेका फिरि कथन है ॥ १९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इन सब ऋणादान आदि व्यवहारोंको तत्वसे निर्णय करि पूरा करता हुआ राजा सब पापोंको छोड़कर स्वर्ग आदिकी प्राप्तिरूप उत्कृष्ट गतिको प्राप्त होता है ॥ ४२० ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकता-  
यांकुल्लूकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



## अथ नवमोऽध्यायः

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्तमानि तिष्ठतोः॥संयोगे विप्रयोगे च  
धर्मोन्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥१॥ अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः  
स्वैर्दिवानिज्ञम्॥विषयेषु च सर्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वंशे॥२॥

टीका—नत्वापित्रोःपदद्वंद्वंध्यात्वाशंकरमव्ययम्॥अष्टमाध्यायविवृतिःकेशवेनम  
द्योच्यते ॥ १ ॥ धर्मके लिये हित और आपसमें कभी चलनेवाला नहीं ऐसे मा-  
र्गमें स्थित और संयुक्त अथवा वियुक्त और परंपरासे चले आनेके कारणसे नि-  
त्य ऐसे पुरुष तथा पत्नीके धर्मोंको कहौंगा; स्त्रीपुरुषके आपसके धर्ममें व्यति-  
क्रम होनेपर दोमेंसे एक करि सूचित किये गये राजाको दंडसेभी अपने धर्मकी  
व्यवस्था स्थापन करनी चाहिये इस्से व्यवहारमें-इसका कथन है ॥ १ ॥ अपने  
भर्ता आदिकों करि स्त्रियां सदा वशमें रखने योग्य हैं निषिद्ध नहीं ऐसे रूप रस  
आदि विषयोंमें प्रसंग करती हुई अपने वश करने योग्य हैं ॥ २ ॥

पिता रक्षति कौमारं भर्ता रक्षति यौवने॥ रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न  
स्त्री स्वार्तन्त्र्यमर्हति ॥३॥ कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानु  
पयन्पतिः ॥ मृते भर्तारि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षितो ॥ ४ ॥

टीका—विवाहसे पहले स्त्रीकी पिता रक्षा करता है पीछे पीछे तरुण अवस्था  
में भर्ता रक्षा करताहै उसके अभावमें पुत्र तिस्से स्त्री किसी अवस्थामें स्वतंत्र न  
होय और जिसके पतिपुत्र नहीं हैं उसकी पिता आदिभी रक्षा करते है ॥ ३ ॥  
प्रदानके कालमें नहीं देता हुआ पिता निंदा योग्य होताहै ऋतुके पहले  
प्रदान काल गौतमने कहाहै और पति ऋतु कालमें पत्नीसे नहीं गमन कर्ता  
हुआ निंदायोग्य होताहै और पतिके मरनेपर माताकी न रक्षा करनेवाला  
पुत्र निंदायोग्य होताहै ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥ द्वयोर्हि कुलं  
योः शोकेमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥ इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो ध  
र्ममुत्तमम् ॥ यतन्ते रक्षितुं भार्या भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

टीका—दुःशीलताके करनेवाले थोड़ेभी कुसंगसे स्त्री विशेष करि रक्षा क-  
रने योग्यहैं और बहुतका तौ क्या कहनाहै, और उनकी उपेक्षा करनेसे पिता  
भर्ताके दोनो कुलोंको संताप कराती है ॥ ५ ॥ सब ब्राह्मण आदि वर्णोंके भा-

या रक्षण धर्मको आगेके श्लोकमें कही हुई रीतिसे सब धर्मोंसे उत्तम जानते हुए अंधे पंगे आदिभी भार्याकी रक्षा करनेका यत्न करें ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥ स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥ पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥ जायां यास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

टीका—जिस्से यत्नपूर्वक भार्याकी रक्षा करनेमें असंकीर्ण विशेष करि शुद्ध संततिके उत्पन्न करनेसे आपनी संततिको तथा शिष्टसमाचारको और पिता पितामह आदिके वंशको और आपको विशुद्ध संताति है कारण जिसका ऐसे और्ध्वदेहिक कर्मोंके लाभसे अपने धर्मकी भी रक्षा करता है तिस्से स्त्रियोंकी रक्षा करनेका यत्न करै ७ पति शुक्ररूपसे भार्यामें प्रवेश करिकै गर्भभावकी प्राप्त हो उरु भार्यामें पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है । तथा च श्रुतिः आत्मावै पुत्रनामासि इति ॥ जायाका वही जायात्वहै जिस्से इसमें पति फिर उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ॥ तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ॥ एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्तां परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

टीका—शास्त्रसे विहित होय अथवा निषिद्ध होय जैसे पतिका स्त्री सेवन करती है वैसे शास्त्रोक्त पुरुषका सेवन करनेसे उत्कृष्ट और निकष्ट पुरुषके सेवनसे निकृष्ट पुत्रको उत्पन्न करती है तिस्से संततिकी शुद्धिके लिये पत्नीकी यत्नसे रक्षा करै ॥ ९ ॥ कोई बलसे रोकने आदिसेभी स्त्रीकी रक्षा करनेको नहीं समर्थ है वहांभी व्यभिचार होता है किंतु इन कहे हुए रक्षा करनेके उपायोंके योगसे वै रक्षा करनेको समर्थ है ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चै नान्ये चैव नियोजयेत् । शौचे धर्मेऽन्नपत्त्यां च पारिणाह्यस्य वक्षणे ॥ ११ ॥ अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैरासक्ता रिभिः ॥ आत्मानमात्मना यास्तु रक्षयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

टीका—धनके संग्रहण करने तथा खरच करनेमें द्रव्य तथा शरीरके शुद्ध करनेमें और पतिकी सेवामें और अन्नके सिद्ध करने अर्थात् रसोईके बनानेमें और घरकी सामग्री शय्या आसन कुंड कडाह आदिके देखनेमें इसको लगावै ॥ ११ ॥ आप्त तथा आज्ञाकारी पुरुषों करि घरमें रोकी हुईभी रक्षित नहीं होती है जो दुः-

दशीलतासे अपनी रक्षा नहीं करती है और जो धर्मज्ञतासे आप अपनी रक्षा करती है वेही सुरक्षित होती हैं इसीसे धर्म अधर्मका फल स्वर्ग नरककी प्राप्तिके उपदेशसे उनका संयम करना योग्य है ॥ १२ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽर्दनम् ॥ स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च  
नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥ नैतां रूपं परीक्षन्ते नासां वर्षसि सं  
स्थितिः ॥ सुरूपं वा विरूपं वा पुमानि त्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

टीका—भय पीना असत्पुरुषोंका संसर्ग पतिसे वियोग भ्रमण करना कुसम-यमें सोना पराये घरमें रहना ये छः स्त्रीके व्यभिचार दोषके उत्पन्न करनेवाले हैं तिससे ये इनसे रक्षा करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ ये सुंदर रूपका विचार नहीं करती है और न इनका यौवन आदि अवस्थामें आदर होता है किंतु सुरूप होय अथवा कुरूप होय पुरुष है यही मानिके उसको भोगती है ॥ १४ ॥

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः । रक्षिता यत्नतोऽपीह  
भर्तृष्वेतां विकुर्वते ॥ १५ ॥ एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिर्न  
सर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

टीका—पुरुषके दर्शनसे संभोग आदिकी इच्छा होनेके कारण और चित्तकी स्थिरता न होनेसे और स्वभावसे स्नेह रहित होनेके कारण यत्नसेभी रक्षा की गई ये व्यभिचारके आश्रयसे भर्ताओंमें विकार युक्त होजाती है ॥ १५ ॥ ऐसे दो श्लोकोंमें कहे हुए इनके स्वभावको हिरण्यगर्भकी सृष्टिके समय उत्पन्न जानि पुरुष इनकी रक्षाके लिये उत्कृष्ट यत्न करे ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमर्नाजवम् । द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्री  
भ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो  
व्यवस्थितः । निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः १८

टीका—शय्या आसन अलंकार करनेका स्वभाव काम क्रोध कुटिलता पराई हिंसा कुत्सित आचार ये सब मनुने सृष्टिकी आदिमें स्त्रियोंके लिये बनाये तिससे यत्नसे ये रक्षा करने योग्य हैं ॥ १७ ॥ स्त्रियोंकी जातकर्म आदि क्रिया मन्त्रोंसे न होती है यह शास्त्रकी मर्यादा है तिससे मन्त्र सहित संस्कार न होने कारण इनके अंतःकरण पापरहित नहीं होते हैं इन्द्रियां प्रमाण हैं और धर्ममें प्रमाण-ऐसी श्रुति, सृष्टि, रहित होनेसे धर्मज्ञ नहीं होती हैं और अमन्त्र कहिये पापके दू-

रिकरनेवाले मंत्रोक्तिरहित होनेके कारण पाप होनेपर भी उसके दूरि करनेको नहीं समर्थ होती हैं श्रुतिके समान स्त्रियां अशुभहैं यह शास्त्रकी मर्यादा है तिससे यत्नसे रक्षा करने योग्यहै यह तात्पर्य है ॥ १८ ॥

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीर्ता निर्गमेष्वपि । स्वालक्षण्यं परीक्षार्थं  
तांसां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥ यन्मे मातां प्रलुलुभे विचरन्त्यप  
तिव्रता । तन्मे रेतःपितां वृक्तमि त्यस्यैतन्निर्दर्शनम् ॥ २० ॥

टीका—व्यभिचारशील होना यह स्त्रियोंका स्वभावहै यह कहा उसमें श्रुतिके प्रमाण लिखते हैं ॥ बहुतसे श्रुतियोंके वाक्य जैसे नचैतद्विबोब्राह्मणाःसोऽब्राह्मणावा इत्यादिक निगमोमें स्त्रियोंकी स्वालक्षण्य कहिये व्यभिचार शीलताके जाननेके लिये पढी हैं उनमेंसे जो निष्कृतिरूप अर्थात् व्यभिचारके प्रायश्चित्तभूतहैं उन श्रुतियोंको सुनिये ॥ १९ ॥ कोई पुत्र अपनी माताके मानसिक व्यभिचारको जानिकै कहताहै कि मन वाणी काय और कर्मसे पतिसे भिन्न पुरुष की इच्छा नहीं करती है वह पतिव्रताहै उससे अन्य अपतिव्रता होती है मेरी माता अपतिव्रता हो पराये घरमें जाती हुई जो परपुरुषपर लोभयुक्त हुई उस परपुरुषके संकल्पसे दुष्ट माताको रजोरूप वीर्यको मेरा पिता शोधन करो इस प्रकृत स्त्रीकी व्यभिचार शीलताके मध्ये इतिकरणहै अंत जिनका ऐसे मंत्रके तीनिपाद सूचकहैं यह मंत्र चातुर्मास्य आदिमें काम देताहै ॥ २० ॥

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसां । तस्यैष व्यभिचार  
स्य निह्वंः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥ यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत  
यथा विधि । तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणैव निर्गंगा ॥ २२ ॥

टीका—यह मंत्र मानसी व्यभिचारका प्रायश्चित्तरूपहै सो दिखाते हैं ॥ जो स्त्री पति जिसको नहीं चाहता ऐसे दूसरे पुरुषके साथ मगन करनेको मनसेभी नहीं चाहती है उसके चित्तके चलामान होनेका यह प्रायश्चित्तका मुख्य मंत्रहै भलीभांतिसे शोधनेवाले मनु आदिने कहाहै माता शब्दका श्रवणहै तिससे यह पुत्रहीका मुख्य प्रायश्चित्तरूप मंत्रहै माताका नहीं ॥ २१ ॥ स्त्री विवाह आदिकीविधिसे जैसे भले बुरे पतिसे संयुक्त होती है उसके गुण उस भर्ताके समान होजाते हैं जैसे समुद्रमें मिलकर मीठे जलकी नदी स्वारी जलकी होजाताहै ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारङ्गीमन्दर्पालेन ज

गार्गाभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥ एतांश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्र  
सूतयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥

टीका—इस उत्कर्षमें दृष्टांत देते हैं ॥ जैसे निकृष्टयोनि अक्षमाला नाम वसिष्ठ के साथ व्याही गई और चटकानाम मंदपालनाम ऋषिको व्याही गई ये दोनों पूज्यताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ ये तथा औरभी निकृष्टसे उत्पन्न सत्यवती आदि स्त्रियां अपने २ पतिके गुणोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुई ॥ २४ ॥

एषोर्दिता लोकर्यात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥ प्रेत्येह च सुखोद  
कान्प्रजार्धर्मान्निबोधत ॥२५॥ प्रजनार्थं महोभागाः पूजार्हा गृह  
दीप्तयः ॥ स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशोषोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥

टीका—यह सदा शुभस्त्रीपुरुषोंके विषयक लोकाचार कहा अब इस लोक तथा परलोकमें आगेको सुखके कारण ऐसे कथा क्षेत्रीका संतान है अथवा वीजी का इत्यादि प्रजाके धर्मोंको सुनिये ॥ २५॥ यद्यपि इनकी रक्षाके लिये दोष कहे है तिसपरभी उपाय होसकनेके कारण दोषका अभावहै ये स्त्रियां बड़े उपकाररूप गर्भके उत्पन्न करनेके लिये बहुतसे कल्याणके पात्रहैं तिससे वस्त्र अलंकार आदिके देनेसे बड़े मानके योग्य और अपने घरकी शोभा करनेवाली हैं स्त्री और श्री घरोंमें तुल्यरूपहैं इनमें कुछ विशेष नहीं हैं जैसे श्रीके विना घर शोभित नहीं होताहै ऐसेही स्त्रीके विनाभी शोभा नहीं पाताहै ॥२६॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥ प्रेत्येह लोकर्यात्रा  
याः प्रेत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ २७ ॥ अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा  
रैर्विरुत्तमा ॥ दारिणीनस्तथा स्वर्गं पितृणामात्मनश्च ह ॥२८॥

टीका—संतानका उत्पन्न करना और उत्पन्न हुएका पालना और प्रतिदिन आतिथि मित्र आदिका भोजन आदि लोकमें व्यवहारकी प्रत्यक्ष भार्याही कारण है ॥ २७ ॥ संततिका उत्पन्न करना कहभी चुके परन्तु पूजाकी योग्यता सूचित करनेके लिये फिरि कहाहै अग्निहोत्र आदि धर्मके कार्य सेवा और उत्कृष्ट प्रीति तथा संतानके उत्पन्न करने आदिसे पितरोंका और अपना स्वर्गका निवास ये सब कार्य स्त्रीके आधीनहै ॥ २८ ॥

पतिं या न्नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकानाप्रोति  
सद्भिः सांघ्वीति चोच्यते २९ व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्रीलोकेप्राप्ते

तिं निन्द्यताम् ॥ मृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगेऽथ पीडयते ॥ ३० ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी तथा देहसे संयत हो मन वाणी तथा देहसे व्यभिचारको नहीं प्राप्त होती है वह पतिके साथ अर्जुन किये हुये स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती है और इस लोकमें सज्जनों करि साध्वी कही जाती है ॥ २९ ॥ दूसरे पुरुषके योगसे लोकमें निंदाको और दूसरे जन्ममें स्यारीकी योनिको पान्ती है और क्षयीरोग आदिसे पीडित होति है स्त्री धर्म कहभी चुके परन्तु ये दो श्लोक उत्तम संतानके निमित्त हैं इस कारण बहुत प्रयोजनके जानि फिरि पढ़े ०

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥ विश्वं जन्ममिमं पुण्यं  
मुपन्यासं निबोधताम् ॥ ३१ ॥ भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्त  
रि ॥ औद्दुरुर्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

टीका—पुत्रके मध्ये शिष्ट मनु आदिकोंने और पहले उत्पन्न हुए महर्षियोंने यह कहा है अब सर्व जनोंका हितकारी आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ३१ ॥ भर्त्ताका पुत्र होता है यह मुनि मानते हैं भर्त्तामें दो प्रकारकी श्रुति है कोई विना व्याहेभी उत्पन्न करनेवाले भर्त्ताको उस पुत्रसे पुत्रवाला कहते हैं और अन्य तौ नहीं भी उत्पन्न करनेवाले व्याहनेवाले भर्त्ताको दूसरे करि उत्पन्न किये हुए पुत्र करि पुत्रि कहते है ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥ क्षेत्रबीजसमायो  
गात्संभवं सर्वदेहिनाम् ३३ ॥ विशिष्टं कुत्रचिद्वीजं स्त्रीयो निस्त्वे  
वं कुत्रचित् ॥ उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशंस्यते ॥ ३४ ॥

टीका—धान आदिके उत्पत्तिके स्थानको क्षेत्र कहते हैं उसके तुल्य स्त्री मुनियों करि कही गई है और पुरुष धान आदिके बीजके तुल्य कहा गया है यद्यपि रेत बीज है परन्तु उसका आधार होनेसे पुरुष बीज कहा जाता है क्षेत्र और बीजके योगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है इस भांति दोनोको विशिष्ट कारण होनेसे यह कहना योग्य है ॥ ३३ ॥ क्या जिसका क्षेत्र है उसका अपत्य है अथवा जिसका बीज है इसपर कहते है ॥ कहीं बीज प्रधान है जे अनियुक्तमें उत्पन्न हुआ है इस न्यायसे बीजा चंद्रमाके बुध उत्पन्न हुआ तैसेही व्यासऋष्यशृंग आदि बीजवालोहीके पुत्र हुए कहीं क्षेत्रकी मुख्यता है जैसे यस्तल्पजः प्रमीतस्य यह कहा है इसीसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र क्षत्रियोंमें ब्राह्मण करि उत्पन्न किये गयेभी धृतरा-

ए आदिक क्षेत्रिय क्षेत्रवालेहीके पुत्र हुए और जहां बीज और योनि दोनोंकी समताहै वहां व्याहनेवालाही उत्पन्न करनेवालाहै उसकी अच्छी संतति होतीहै ३४

बीजस्य चैवं योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥ सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥ यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादि ते ॥ तादृशो हति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥

टीका—वहाँ बीजकी प्राधान्यकी अपेक्षासे कहते है ॥ बीज और क्षेत्रमें बीजप्रधान कहा जाताहै जिस्से संपूर्ण पंचभूतोंसे बने हुए ओकी उत्पत्ती बीजमें स्थित वर्ण रूपके चिन्होंहीसे उपलक्षित दिखाई देती है ॥ ३५ ॥ जिस जातिका धान आदि बीज ग्रीष्म आदि कालमें जोतने आदि करि संस्कार किये हुए खेतमें बोया जाताहै उसकी जातिहीका वह बीज अपने वर्ण आदिकों करि उपलक्षित उस खेतमें उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शश्वती यो निरुच्यते ॥ न च योनिं गुणा न्काश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥ ३७ ॥ भूमावप्येकैकदारे कालोत्तानि कृषीवलैः ॥ नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

टीका—इस भाँति अन्वयके प्रकार बीजकी प्राधान्यता दिखाकै अब व्यतिरेक मुखसे दिखानेको कहते हैं ॥ निश्चय यही भूमी भूतोंसे बने हुए वृक्ष गुल्मलता आदिकी नित्य योनि कहिये क्षेत्ररूप कारण सब लोगों करि कही जाती है और भूमिनाम योनिके किन्ही मटरूप आदि स्वरूप धर्मोंको बीज अपने विकार अंकुर शाखा आदिकी अवस्थाओंमें नही भेजताहै तिस्से योनिके गुणोंके न वर्तमान होनेसे क्षेत्रकी प्रधानता नहीं ॥ ३७ ॥ भूमिमें एकही क्यारिमें किसानोकरि समयमें बोये गये धान मूंग आदि बीजके स्वभावसे नानारूप उत्पन्न होते हैं और भूमिके एक होनेसे एकरूप नहीं होते है ॥ ३८ ॥

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिलौ माषास्तथा यवाः ॥ यथाबीजं प्ररोहं न्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥ अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ॥ उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

टीका—व्रीहि कहिये साठी धान और शालि कहिये कलम धान आदि और मूंग तिल उडद तथा जव बीजके स्वभावको नही छोडकर नाना रूप उत्पन्न होते

है ॥ ३९ ॥ धान बोयेसे मूंग आदि उत्पन्न होय यह संभव नहीं होता है ॥ जिस्से जो जो बीज बोया जाता है सोई उगता है ऐसे बीजके गुणोंके अनुवर्त्तन कहिये साथ रहने से और क्षेत्रके धर्म न रहनेसे धान आदिमें और मनुष्योंमेंभी बीजकी मुख्यता है ४०

तत्प्राज्ञेन विनतितेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ॥ आर्युष्कामेन वर्त्तव्यं न जानुं पर्ययोषिति ॥ ४१ ॥ अत्र गार्था वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ॥ यथा बीजं न वर्त्तव्यं पुंसां परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

टीका—अव क्षेत्रकी प्राधान्यता कहते है ॥ वह बीज स्वाभाविक बुद्धिवाले और पिता आदि करि सिखाये और वेद तथा उसके अंगोंके मानने वाले आयुकी इच्छा करनेवालेको पराई स्त्रीमें कभी न बोना चाहिये ॥ ४१ ॥ वीते हुए कालके जाननेवाले इस आर्यमें वायुकी कही हुई गाथा अर्थात् छंद विशेष करि युक्त वाक्योंको कहते है जैसे परपुरुष करि परस्त्रीमें बीज न बोना चाहिये यह ॥ ४२ ॥

नश्यतीर्षुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्धयतः ॥ तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥ ४३ ॥ पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ॥ स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥ ४४ ॥

टीका—जैसे और करि वेधे हुए करसायल मृगके उसी छेदमें वेधने वाले दूसरेका फेंका हुआ बाण निष्फल होता है पहले मारनेवाले करि मारे जानेके कारण उसीको मृगका लाभ होजाता है ऐसे परस्त्रीमें बोया गया बीज शीघ्रही निष्फल होता है क्योंकि गर्भ ग्रहणके पीछे क्षेत्रीको अपत्य मिलता है ॥ ४३ ॥ इस पृथिवीको पहले पृथुराजा करि ग्रहण करनेसे अनेक राजोंका संबध होनेपरन्तु पृथुकी भार्या पहले भूतकालके जाननेवाले जानते हैं और स्थाणु जो दूट आदि हैं उनकोदकर जो खेत करता है उसीका वह क्षेत्र कहते है ऐसेही मृग आदिमें जिसने पहले शर आदि चलाया है उसीका वह मृग कहते हैं ऐसे पहले परिग्रह करनेवालेकी स्वामिता होनेसे व्याहनेवालेहीकी संतान होती है उत्पन्न करनेवालेकी नहीं ॥ ४४ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्यात्मा प्रजेति ह । विप्रैः प्राहुस्तथा च तद्यो भर्ता सां स्मृताङ्गना ॥ ४५ ॥ न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते । एवं धर्म विजानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ४६ ॥



टीका—पुरुष एकही नहीं होता है किंतु भार्या अपना देह और अपत्य कहिये संतान इन सबों समेत पुरुष होता है यह वेदके जानने वाले ब्राह्मण कहते हैं जो भर्ता है वही भार्या कही गई है उसमें उत्पन्न किया हुआ अपत्य भर्ताहीका होता है ॥ ४५ ॥ निष्क्रय वेचना और विसर्ग दान दोनों बातोंसे स्त्री भर्ताके भार्यापनसे नहीं छूटती है ऐसे पहले प्रजापतिके कहे हुए नित्य धर्मको हम मानते हैं इस भाँति मोल आदिसेभी पराई स्त्रीको अपने आधीन करिके उसका उत्पन्न किया हुआ पुत्र आदि संतान क्षेत्रवालेहीका होता है बीजवालेका नहीं ॥ ४६ ॥

संकृद्दंशो निपतति संकृत्कन्या प्रदीयते। संकृदां ह ददातीति त्री  
प्येतां नि सतां संकृत् ॥ ४७ ॥ यथा गोऽश्वोऽष्टदासीषु महिष्यजा  
विक्रासु च। नोत्पादकः प्रजाभागी तथैर्वान्याङ्गनास्वर्षि ॥ ४८ ॥

टीका—पिता आदिके धनमें भाईयोंका धर्मसे किया हुआ विभाग एकही वार होता है फिर अन्यथा नहीं किया जाता है तैसेही पिता आदि करि कन्या एकहीवार किसीको दी गई फिर दूसरेको नहीं दी जाती है ऐसेही और करी पहले और को दी हुई होनेपर पीछे पिता आदि करि प्राप्त हुई भी उसमें उत्पन्न किया हुआ पुत्र बीजवालेका नहीं होता है इस लिये यह कहा है तैसेही कन्या से भिन्नभी आदि द्रव्यमें एकहीवार देता हों यह कहता है न कि दूसरेको देता हों यह ये तीनि बातें सज्जनोंकी एकवार होती ॥ ४७ ॥ जैसे पराई गौ घोड़ी ऊँटिनी दासी भैंस बकरी भेड़ इनमें अपने बैल आदिको छोड़ बछड़े आदिका उत्पन्न करनेवाला उसको नहीं पाता है तैसेही पराई स्त्रियोंमें उत्पन्न करनेवाला संतानको नहीं पाता है ॥ ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परिक्षेत्रप्रवापिणः। ते वै ससूर्यस्य जातस्य  
न लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥ यदन्यगोषु वृषभो वर्त्सानां जनं  
येच्छतम्। गोमिनामेवं ते वर्त्सा मोघं संकन्दितमार्षभम् ॥ ५० ॥

टीका—जे क्षेत्रके स्वामी नहीं है ऐसे बीजके स्वामी पराये खेतमें बीज बोते हैं वे उसमें उत्पन्न हुए धान्य आदिके फलको किसी देशमें नहीं पाते हैं यह दृष्टांत है ॥ ४९ ॥ जो औरकी गौजोंमें बैल सौभी बछड़े उत्पन्न करै तौ वे सब बछड़े स्त्री जो गौ है उसके स्वामीके होते हैं न कि बैलके स्वामीके और बैलका जो वीर्य सींचना है वह बैलके स्वामीका निष्फलही होता है जैसे गोऽश्वोष्ट्र इस श्लोकसे

उत्पन्न करनेवाला प्रज्जाका पानेवाला नहीं होताहै इसमें यह दृष्टांत कहसकै ॥५०॥

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परिक्षेत्रप्रवपिणः ॥ कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजं लभते फलम् ॥ ५१ ॥ फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा । प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्यो निर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

टीका—जैसे गौ आदिके गर्भोंमें वैसेही स्त्रीकी संतानमें स्वामीपनसे रहित होते हुए पराई भार्यामें जो बीज बोते है वे क्षेत्रके स्वामियोंहीका संतानरूप प्रयोजन करते है और बीजका सीचने वाला संतानरूप फलको नहीं पाता है ॥ ५१ ॥ जो इसमें जो संतान उत्पन्न होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा इस भांति जहां नियम नहीं किया गयाहै वहां निस्संदेह कही हुई रीतिसे खेतवालेका संतानहै बीजसे क्षेत्र बलवानहै ॥ ५२ ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ॥ तस्यैह भार्गिनो दृष्टौ बीजी क्षेत्रिकं एव च ॥ ५३ ॥ ओषवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वत्तां लभते फलम् ॥ ५४ ॥

टीका—जो इसमें संतान होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा ऐसे कह कर वह क्षेत्र स्वामी करि बीज बोनेके लिये जो बीजवालेको दिया जाताहै उस संतानके लोकमें बीजवाला और खेतवाला दोनो स्वामी पानेवाले देखे गये हैं ॥ ५३ ॥ जलके वेग तथा पवन करि दूसरेके खेतसे लाया गया बीज जिसके खेतमें उत्पन्न होताहै वह बीज उस खेतके स्वामीहीका होताहै जिसने बीज बोयाहै वह उसके फलको नहीं पीताहै ऐसे अपनी भार्याके भ्रमसे प्लुत-ई भार्याके गमनमें मेरा यह पुत्र होगा ऐसा जाननेपर क्षेत्रवालेहीका पुत्र है यह देखाया गयाहै ॥ ५४ ॥

एष धर्मो गवांश्वस्य दांस्युष्ट्राजाविकस्य च । विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥ एतद्भिः सारफलगुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममार्पदि ॥ ५६ ॥

टीका—गौ घोडी दासी ऊंटनी बकरी और भेड इनकी संततिमेंभी यही व्यवस्था जाननी चाहिये जो क्षेत्रका स्वामीही गौ आदिकी संततिका स्वामीहै बैल आदिका स्वामी नहीं और नियम करनेपर तो दोनो संततिके स्वामी होते-

है ॥ ५५ ॥ यह बीज तथा योनिंकी प्रधानता और अप्रधानता तुमसे कही इस पीछे स्त्रियोंके संतान न होनेमें जो करना चाहिये सो कहोंगा ॥ ५६ ॥

भ्रातृज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यर्जस्य सा। यवीयसस्तु यां भा  
र्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ ५७ ॥ ज्येष्ठो यवीयसो भार्या यवीया  
न्वार्जस्यस्त्रियम् ॥ पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥

टीका—जेठे भाईकी स्त्री छोटे भाईकी गुरु पत्नी होती है और छोटे भाईकी स्त्री बड़े भाईकी पुत्रवधू मुनियोंने कही है ॥ ५७ ॥ जेठा और छोटा दोनों भाई आपसमें वह उसकी और वह उसकी भार्यामें गमन करिके संतानका अभाव न होनेपर नियुक्त भी पतित होते हैं ॥ ५८ ॥

देवराद्रा संपिण्डाद्रा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥ प्रजेप्सिताधिगन्तव्या  
संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥ विधवायां नियुक्तस्तु धृताक्तो वाग्यतो  
निशि ॥ एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥ ६० ॥

टीका—संतानके न होनेमें पति आदि गुरुओं करि आज्ञा दी गई स्त्री देवर अथवा अन्य सपिंडसे अच्छे प्रकारसे जो आगे कहा जायगा ऐसे घृताक्त आदि नियमवाले पुरुषके गमनसे वाञ्छित प्रजा उत्पन्न करावै वाञ्छित कहनेसे कार्यके अयोग्य पुत्र उत्पन्न होनेसे फिर गमन पाया जाता है ॥ ५९ ॥ विधवामें इस कहनेसे जाना गया कि संतान उत्पन्न करनेयोग्य पतिके न होनेपर यह है इस्से पतिके जीवते हुएभी अयोग्य पति आदि गुरुओं करि आज्ञा दिया हुआ धीसे सब कर्त्तरसे लेप करि मौन हो रात्रिमें एकपुत्र उत्पन्न करै दूसरा नहीं ॥ ६० ॥

द्वितीयमेकं प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदुः। अनिर्वृतं नयोगार्थं पश्य  
न्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥ विधवायां नयोगार्थे निर्वृते तु यथा  
विधि। गुरुवच्च स्नुषावच्च वत्तैर्यातां परस्परम् ॥ ६२ ॥

टीका—नियोगसे पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले अन्य आचार्य अ-पुत्र एकपुत्र समानहै यह शिष्टोंके कहनेसे प्राप्त नियोगके प्रयोजनको मानते हुए स्त्रियोंमें दूसरे पुत्रका उत्पन्न करना धर्मसे मानते हैं ॥ ६१ ॥ विधवा आदिमें नियोगका प्रयोजन गर्भाधान शास्त्रकी रीतिसे संपन्न होनेपर जेठा भाई और छोटे भाईकी स्त्री आपसमें गुरुके समान और पुत्रवधूके समान व्यवहार करै ॥ ६२ ॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तयतां तु कर्मतः॥ तावुभौपतिं तौ  
स्यौतां स्नुषांगगुरुतल्पगौ ६३. नान्यस्मिन्विधवा नारी नि योक्त  
व्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन्हं नियुञ्जाना धर्म हन्युः सर्नातन्म् ६४

टीका—आंपसकी भार्याओंमें नियुक्त जेठे और छोटे भाई दोनो घृत आदि  
के विधानको छोड़ि जो अपनी इच्छासे वतै तौ स्नुषागामी और गुरुदारंगामी दोनो  
पतित होजाय ॥ ६३ ॥ इस भांति नियोग कहिके दूषण देनेको कहते हैं ॥ ब्रा-  
ह्मण आदिकों करि विधवा स्त्री भर्त्तासे अन्यदेवर आदिमें नही नियोग कराने  
योग्यहै जिस्से स्त्रीको अन्यमें नियोग कराते हुए वे स्त्रियोंका अनादि सिद्ध.ए-  
क पतिभावके धर्मको नाश करते हैं ॥ ६४ ॥

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥ न विवाहविधावु  
क्तं विधवावेदनं पुनः॥६५॥अयं द्विजैर्द्वि विद्वद्भिः पशुधर्मो विग  
हितः॥मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥६६॥

टीका—अर्थमणनुदेवं इत्यादिक विवाहके मंत्रोंमें किसी शास्त्रमें नियोग  
नही कहाहै और न कहीं विवाहके विधान करनेवाले शास्त्रोंमें दूसरे पुरुषके साथ  
विवाह कहाहै ॥ ६६ ॥ जिस्से यह पशु संबंधी मनुष्योंकाभी व्यवहार विद्वानों  
करि निंदितहै जो यह अधर्मी वेणनामराजाके राज्यके समय करनेयोग्य  
कहा गया इसीसे वेणसे लगाकर प्रवृत्त यह नियोग आदि मानहै इसलिये  
निंदा किया जाताहै ॥ ६६ ॥

सं महीमखिलां भुञ्जन्तर्जर्षिप्रवरः पुरा॥वर्णानां संकरं चक्रे कामो  
पहतचेतनः॥६७॥ततः प्रभृति यो मोहार्त्प्रमर्तिपतिकां स्त्रियम्॥  
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥६८ ॥

टीका—वंह वेण पहले समयमें संपूर्ण पृथ्वीका पालन करता भया इसीसे  
राजर्षियोंमें श्रेष्ठहै धर्मात्मापनसे नही, कामसे उपहत कहिये नष्टहै बुद्धि जिसकी  
ऐसे वेणने भाईकी भार्यामें गमन करनारूप वर्णसंकर चलाया ॥ ६७ ॥ वेणके  
समयसे लगाकै जो जिसका पति मरिगयाहै ऐसी स्त्रीमें शास्त्रका अर्थ न जान  
संतानके लिये देवर आदिमें नियुक्त करताहै सज्जन उसकी लिश्रय करि निंदा  
करते है यह तौ अपना कहा हुआ नियोगका निषेध कलियुगके लिये है ॥६८॥

यस्मा प्रियेतं कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥ तामनेन विधा-  
नेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥ यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां  
शुचिब्रताम् ॥ मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृद्वतावृतौ ॥ ७० ॥

टीका—नियोगके प्रकरणसे कन्यागत विशेष कहते हैं ॥ जिस कन्याका वाणीसे दान करनेपर भर्ता मरिजाय उसको इस आगे कहहेहुए विधानसे भर्ताका सगा भाईव्याहि लेवे ॥ ६९ ॥ वह देवर विवाहकी विधिसे इसको अंगीकार करि-  
श्वेत वस्त्रोंको धारण करनेवाली और काय तथा मनकी शुद्धतासे शोभायमान उस स्त्रीमें गर्भधारण होने तक एकांतमें ऋतुऋतुमें एकवार गमन करै ऐसे कन्या-  
के नियोग प्रकारसे और विवाहके न ग्रहण करनेसे गमनके उपदेशसे जिसके लिये वाग्दत्ता उसी वह संताति होती है ॥ ७० ॥

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ॥ दत्त्वा पुनः प्रयच्छ-  
न्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ ७१ ॥ विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां  
विगर्हिताम् ॥ व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥ ७२ ॥

टीका—किसीके लिये वाणीसे कन्याको देकर उसके मरनेपर दानके गुण-  
दोषका जाननेवाला पुरुष उसको दूसरेके लिये दान न करै जिसे एकके लिये देकर दूसरेको देता हुआ पुरुषानृत दोषको प्राप्त होताहै साप्तपदी करणके अर्थात् सात्मावरोके न होनेसे भार्यापनके सिद्ध न होनेके कारणसे फिर दानकी शंका होनेपर यह वचन कहाहै ॥ ७१ ॥ अद्विरेवद्विजाग्र्याणां इत्यादि विधिसे ग्रहण करिकेभी वैधव्य आदि युक्त रोगिणी और जिसको योनिके क्षत होनेका दोष लगाहै और जो अधिक तथा हीन अंगोकी छपाके व्याही गई ऐसी और भावरें पडनेसे पहले जानी गई कन्याको त्याग करै उसके त्यागनेमें दोष नहीं है इस लिये यह कहाहै त्यागके लिये नहीं ॥ ७२ ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ॥ तस्य तद्विंशं कु-  
र्यात्कन्यादानदुरात्मनः ॥ ७३ ॥ विधाय वृत्ति भार्यायां प्रवसेत्का-  
र्यवान्नरः ॥ अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥

टीका—जो दोष युक्त कन्याको दोषोंके विना कहे दान करताहै उस दुना-  
त्मा कन्या देनेवालेके दानको लौदा देनेसे व्यर्थ करै यही त्यागमें दोष न हो-

नके लिये कहा है ॥ ७३ ॥ काम पडनेपर मनुष्य पत्नीके अन्न वस्त्रका प्रबंध करि दूसरे देशको जाय क्योंकि भोजनादिक न होनेसे पीडित शीलवालीभी स्त्रीदूसरे पुरुषके मेलको प्राप्त होजायगी ॥ ७४ ॥

विधाय प्रोषिते वृत्ति जीवेन्नियममास्थिता ॥ प्रोषिते त्वविधायै  
व जीवेच्छिल्पैरर्गाहितैः ७५. प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्यो ऽष्टौ  
नरः समाः ॥ विद्यार्थं षट् यज्ञो ऽर्थं वा कार्मार्थं त्रिंस्तु वर्त्सरान् ७६ ॥

टीका—भोजन वस्त्र अदि देकर पतिके परदेश जानेपर देहका अलंकार करने तथा परायें घरमे जानेसे रहित हो जीवै और भोजन वस्त्र न देकर जानेपर सूतके कातने आदि अनिदित कामोंसे जीविका करै ॥ ७५ ॥ गुरूकी आज्ञाके करने आदि धर्मकार्यके लिये परदेशमें गया पति पत्नीको आठवर्षतक रहि देखनेयोग्य है तिसके उपरांत पतिके समीप जाय सोई वसिष्ठने कहा है कि परदेशीकी स्त्री आठ वर्षतक स्थित रहै उपरांत पतिके पास जाय और विद्याके लिये परदेशमें गया हुआ पति छवर्ष तक राह देखने योग्य है और अपनी विद्या आदिसे यशके लिये परदेशमें गया हुआभी छवर्ष और दूसरी भार्यासे भोग आदि करनेके लिये गया हुआ तीनवर्ष तक राह देखने योग्य है ॥ ७६ ॥

सर्वत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्ती योषितं पतिः ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरत्वेनां  
दायं हृत्वा न संवसेत् ॥ ७७ ॥ अतिक्रामेत्प्रमत्तं यां मत्तं रोगात्तमेव  
वा ॥ सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥ ७८ ॥

टीका—पतिसे द्वेष करती हुई स्त्रीको एकवर्ष तक देखै तिसके उपरांतभी द्वेष माननेवालीको अपने दिये हुए अलंकार आदि धनको लेकर उससे गमन न करै भोजन वस्त्र तौ देना होगा ॥ ७७ ॥ जो स्त्री जुआ आदि प्रमाद वलिको अथवा मद उत्पन्न करनेवाली वस्तुके पीने आदिसे मतवारेको अथवा सेवा आदि न करनेसे जो तिरस्कार करै उसके अलंकार शय्या आदि लेकर तीन महीने तक गमन नकरै ॥ ७८ ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमवीजं पापरोणिणम् ॥ न त्यागोऽस्ति द्विषं  
न्त्याश्च न च दार्यापवर्तनम् ॥ ७९ ॥ मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूल  
ला च यो भवेत् ॥ व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिर्साऽर्थघ्नी च संवृदा ८०

टीका—उन्मत्त कहिये वात आदि दोषके क्षोभसे जो प्रकृतिमें नहीं स्थितकी और पतितकी और ग्यारहें अध्यायमें जो कहा जायगा ऐसे नपुंसककी और बी-जरहितकी और कोढ़ आदि पापरोग करि युक्त पतिकी सेवा न करनेवाली स्त्री-का त्याग नहीं है और उसका धन लेना चाहिये ॥७९॥ निषिद्ध मद्यपान करने वाली और निषिद्ध आचारवाली और पतिसेप्रतिकूल चलनेवाली और कुष्ठ आदि रोग करि युक्त और भृत्य आदिकी ताडना करनेवाली और सदा बहुत स्वर्च करनेवाली जो स्त्री होय तौ उसके रहनेपरभी दूसरा विवाह करना चाहिये ॥८०॥

वन्ध्याष्टमेऽधि वेद्याब्दे दशमे तु मूर्तप्रजा ॥ एकदशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥८१॥ रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ॥ सांनुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या चैकहिचित् ॥८२॥

टीका—पहले ऋतुधर्मसे लगाकै जिसके आठ वर्षतक संतति न होय तौ आठमें वर्ष दूसरा विवाह करना चाहिये और जिसके संतान मरजाते होय उसके रहते दशमें वर्ष और स्त्रीसंततिवालीके ग्यारहें वर्ष और अप्रिय बोलनेवालीके तौ शीघ्रही अन्य विवाह करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगिणी होनेपरभी पतिके अनुकूल होय और शीलवाली होय उसकी आज्ञा लेकर दूसरा विवाह करना चाहिये कभी यह अपमान करनेयोग्य नहीं है ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तुभ्या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ॥ सा सद्यः सत्रिं रोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥८३॥ प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ॥ प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि पट्टं

टीका—जो स्त्री दूसरा विवाह करनेपर कुपित हो घरसे निकलै वह उसी दिन रस्सी आदिसे बांधिकर रखनेयोग्य है और कोप दूर होने तक पिता आदिके समीप छोड़नेयोग्य है ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रिय आदिकी स्त्री भर्ता आदिके मने करनेपरभी विवाह आदि उत्सवोंमेंभी निषिद्ध मद्यको पीवै अथवा नाच आदिमें स्थित जनोकें समूहमें जाय वह छ रत्ती सुवर्ण व्यवहारके प्रकरणसे राजा दंड करने योग्य है ॥ ८४ ॥

यदि स्वाश्र्यापराश्रैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥ तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वैश्वं च ॥८५॥ भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम् ॥ स्वां चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ॥८६॥

टीका—जो द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपनी जातिकी तथा दूसरी जातिकी स्त्रियोंको व्याहें तौ उनका द्विजातिके क्रमसे वाणीका सत्कार और दायविभागकी उत्कर्षताके लिये वस्त्र अलंकार आदिके देनेसे, जेठपनकी पूजा और घरभी प्रधान होय अर्थात् सवाते ब्राह्मणीकी अधिक होय उससे कम क्षत्रियकी उससे कम वैश्याकी यही क्रम सब वर्णोंमें जानिये ॥ ८५ ॥ भर्त्सिका के देहकी परिचर्या कहिये टहल और अन्न देना आदि धर्मका काम तथा भिक्षाका देना अभ्यागतोंको परोसना और होमकी द्रव्योंका देना आदि प्रतिदिनका कर्म द्विजातियोंके सजातिहीकी स्त्री करै दूसरी जातिकी कभी न करै ॥ ८६ ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोर्हात्सजात्या स्थितयान्यया ॥ यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तैर्वै संः ॥ ८७ ॥ उत्कृष्टायाभिहूपाय वराय सद्धं शाय च ॥ अप्राप्तमपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥

टीका—जो अपनी जातिकी स्त्रीके निकट होनेपर देहकी सेवा आदि कर्मोंको अन्य जातिकी स्त्रीसे मूर्खताके कारण कराताहै वह जैसे ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न ब्राह्मण चाण्डाल होता है वैसेही पूर्व ऋषियों करि देखा गयाहै ॥ ८७ ॥ कुल तथा आचार आदिसे उत्कृष्ट और सुंदर रूपयुक्त और समान जातिके वरको विवाह समयके अयोग्यभी आठवर्षकी कन्या व्याहि देवे इस प्रकारसे धर्म नहीं हीन होताहै उस कालसे पहलेभी कन्याको ब्राह्म विवाहकी विधिसे देवे ८८

काममामरणात्तिष्ठेद्देहे कन्यतुमत्यपि नैवे नानां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यतुमती सती ॥ ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्धिन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

टीका—उत्पन्नहै ऋतुधर्म जिसके ऐसी कन्या मरणपर्यंत पिताके घरमें रहै सो अच्छा परंतु विद्या और गुणों करि रहितको पिता आदि कभी न देवे ८९ ॥ पिता आदि करि गुणवान् वरको नहीं दी गई कन्या ऋतुमती होनेपर तीन वर्ष राह देखै फिरि तीन वर्षके उपरांत अधिक गुणयुक्त वर न मिलनेपर समान जाति गुणवाले वरको आपुं वरै ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥ नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ॥ ९१ ॥ अलंकारं नददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ॥ मार्तृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ९२



टीका—पिता आदि करि नहीं दी गई कुमारी जो कहे हुए विवाहके कालमें भर्त्सकों आपही वरै तो वह कुछभी पापको नहीं प्राप्त होती है और न उसका पति पापको प्राप्त होताहै ॥ ९१ ॥ आप पतिको वरनेवाली कन्या वरके अंगीकार करनेके पहले पिता मता तथा भाईके दिये हुए अलंकार उन्हीको दे दे और जो न दे तो चोर होय ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतमती हरन् । सं हि स्वांम्या-  
दतिक्रामेदतूनां प्रतिरोधेनात् ॥९३॥ त्रिंशद्द्वर्षोवहेत्कन्यां ह्यद्यां  
द्वादशवार्षिकीम् । त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति संत्वरः ॥९४॥

टीका—ऋतुमती कन्याका व्याहनेवाला पिताको कन्याका मूल्य न देवै कारण यह है कि पिता ऋतुका कार्य संततिके रोकनेसे कन्याके स्वामीपनसे हीन होजाताहै ॥ ९३ ॥ तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी मनोहर कन्याके साथ व्याह करै अथवा चौबिस वर्षका आठ वर्षकी को व्याहै और शीघ्रता करनेवाला गृहस्थ धर्ममें दुख पाताहै यह योग्यकाल दिखानेके लिये कहा है कुछ नियमके लिये नहीं ॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिभार्यां विन्दते ने च्छयात्मनः । तां सार्ध्वीं विभ्रया-  
न्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥ प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संता-  
नार्थं च मानवाः । तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतो पत्न्या संहोदितः ९६

टीका—भगोऽर्घ्यमासवितापुरंधिर्मह्यंत्वादुर्गहपत्यायदेवा इत्यादि मंत्रके सूचित करनेसे जो देवताओं करि दीई भार्या है उसको पति प्राप्त होताहै अपनी इच्छासे नहीं उस पतिव्रताको देवताओंका प्रिय करता हुआ द्वेषयुक्त होनेपरभी भोजन वस्त्र आदिसे सदा पालन करने योग्यहै ॥ ९५ ॥ जिस्से गर्भग्रहण करनेके लिये स्त्री उत्पन्न की गई हैं और गर्भ आधान करनेके लिये मनुष्य तिस्से गर्भ उत्पन्न करनेके समान इन दोनोंका अग्निका आधान आदिभी धर्मपत्नीके साथ साधारण कहाहै क्षौमेवसानावग्नीनादधीयातां इत्यादि वेदमें विहितहै तिस्से भार्या-विभ्रयात् पहले कहे हुएका शेषहै ॥ ९६ ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां भ्रियेत यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या  
यदि कन्याऽनुमन्यते ॥९७॥ आददित न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं

दर्दत् ॥ शुल्कं हि गृण्हन्कुरुते छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

टीका—कन्याका शुल्क तौ दे दिग्ना होय परन्तु विवाह न हुआ होय उस समय शुल्क देनेवाला वर मरजाय तौ पिता आदि करि यह कन्या देवरको देने योग्य है जौ वह स्त्री अंगीकार करै तौ ॥९७॥ शास्त्रका न जाननेवाला शूद्रभी कन्याको देता हुआ शुल्कको न लेवै फिरि शास्त्र पढे हुए द्विजातिका तौ क्या कहना है जिस्से शुल्कको लेता हुआ मनुष्य गुप्त कन्याका विक्रय करता है ॥९८॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः । यदन्वस्य प्रतिज्ञाय  
पुनरन्वस्य दीयते ॥ ९९ ॥ नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि  
जन्मसु । शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥

टीका—इसको पहले शिष्ट लोगोने कभी नहीं किया न और वर्त्तमान कालके करते हैं जो और की कन्याको अंगीकार करिके फिरि औरको देवै यह जिसका शुल्क ले लिया है उस कन्याके मध्ये कहा है ॥ ९९ ॥ पहले कल्पोंमेंभी यह हुआ यह हमने कभी नहीं सुना है कि जो शुल्कनाम मोलसे किसी सज्जनने गुप्त कन्याका विक्रय किया होय ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः । एष धर्मः समा-  
सेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १ ॥ तर्था नित्यं यतेर्यातां स्त्रीपुंसौ  
तु कृतक्रियौ । यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥ २ ॥

टीका—भार्या और पतिके मरनेतक धर्म अर्थ और काममें परस्पर व्यवचि-  
र न होय यह संक्षेपसे स्त्री पुरुषका उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये ॥ १ ॥ जिन्होंने  
विवाह किया है ऐसे स्त्रीपुरुष सदा ऐसा यत्न करै जैसे धर्म अर्थ और काममें  
परस्पर वियुक्त होनेपरभी व्यवचिार युक्त न होंय ॥ २ ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः । आर्षव्यपत्यंप्राप्तिश्च  
दायंभागं निबोधत ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं पितुंश्च मातुंश्च संमेत्य भ्रातरः  
संमम् । भृजेरनपैतृकं रिक्थमनीशीस्ते हि जीवतोः ॥ ४ ॥

टीका—भार्या और पतिका परस्पर अनुराग युक्त यह धर्म तुमसे कहा और  
संतानके न होनेमें संततिकी प्राप्ति कही अब दाय जो पिता आदिका धन है उस-

के विभागकी व्यवस्था सुनिये ॥ ३ ॥ भाई मिलिके पिताके मरनेके उपरांत पिताके धनको और माताके मरनेके पीछे माताके धनको बराबर करके बाँटि लेवै और माता पिताके जीवते हुए उनके धनके स्वामी नही होते हैं ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पितृयं धनमशेषतः ॥ शोषास्तमुर्पजिवियुर्यथै  
व पितरं तथा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ॥ पि  
तृणामनृणश्चैव सं तस्मात्सर्वमहति ॥ ६ ॥

टीका—जो ज्येष्ठ धर्मात्मा होय तो पिताके संपूर्ण धनको वही लेवै और छोटे उससे पिताके समान भोजन वस्त्र पावै और ऐसे सब साथही रहै ॥ ५ ॥ उत्पन्न होनेहीसे संस्कार रहित भी जेठे पुत्रसे मनुष्य पुत्रवान् होताहै और पितरोंके ऋणसे छूटि जाताहै इससे ज्येष्ठही सब धनके योग्यहै यह पहलेका शेषहै ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्रुते ॥ स एव धर्मजः पुत्रः का  
मजानितरान्विदुः ॥ ७ ॥ पितेर्व पालयेत्पुत्राज्येष्ठो भ्रातृन्यवी  
र्यसः ॥ पुत्रवर्षापि वतैरज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ ८ ॥

टीका—जिसके उत्पन्न होनेपर ऋणका शोधन और जिसके उत्पन्न होनेसे अमृतत्वको प्राप्त होताहै वही पिताका धर्मके कारणसे उत्पन्न पुत्र होताहै और औरोंको तो काममात्रके कारणसे उत्पन्न मुनीश्वर जानते हैं तिससे वही सब धनको ग्रहण करै ॥ ७ ॥ विभाग न होनेमें जेठा भाई छोटे भाइयोंको भोजन वस्त्र आदिसे पिताके समान पाल करै और छोटे भाई पुत्रोंके समान जेठे भाईमें धर्मसे वतै ॥ ८ ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ॥ ज्येष्ठः पूज्यतमो लो  
केज्येष्ठः सद्भिर्गर्हितः ॥ ९ ॥ यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स  
पितेर्वसः ॥ अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्सं संपूज्यस्तु बंधुवत् ॥ ११० ॥

टीका—जिसका विभाग नही हुआहै ऐसा जेठा जो धर्मात्मा होय तो छोटे भी उसके अनुगामी होनेसे धार्मिक होनेके कारण जेठा कुलको बढ़ाताहै और जो अधर्मी होय तो छोटेकोभी उसके अनुगामी होनेके कारणसे जेठा कुलका नाश कर देताहै लोकमें गुणवान् ज्येष्ठ अतिपूज्यहै ॥ ९ ॥ जो जेठा छोटे भाइयोंमें पिताके समानवर्तताहै वह पिताके समान और माताके सम्मन आनिध होता

हे और जो ऐसे नहीं वर्त्तताहै वह मामा आदि वंशुओंके समान पूजने योग्यहै १०

एवं सहै वैसेयुर्वीं पृथग्वां धर्मकाम्यया ॥ पृथग्विर्वर्धते धर्मस्तस्मा  
द्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥ ११ ॥ ज्येष्ठस्य विश उद्धारः सर्वद्रव्याञ्च यद्ग  
म् ॥ ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु तृतीयसः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे विना ढंटे हुए भाई एकसाथ रहैं अथवा धर्मकी कामनासे जुड़े जुड़े पंचयज्ञ करनेसे उनका धर्म बढ़ताहै तिससे तिससे विभाग ( वांट ) करना धर्महीके लिये है ॥ ११ ॥ साझेके साधारण धनसे बीसवां भाग निकाल कर जेठको देवैं और घरकी सब वस्तुओंमें जो उत्तम होय वहभी जेठको देवैं और मध्यम कहिये मझलेको चालीसवां भाग दे और छोटेको अस्सीमा भाग देकर सब बराबरि वाटि लेवैं ॥ १२ ॥

ज्येष्ठश्चैवं कनिष्ठश्च संहरतां यथोदितम् ॥ येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठा  
भ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ १३ ॥ सर्वेषां धनजातानामाददीता  
ग्र्यमग्रजः ॥ यञ्च सातिशयं किञ्चिद्दशतंश्चाभुयाद्गम् ॥ १४ ॥

टीका—जेठा तथा छोटा पहले श्लोकमें कहे हुए २०।४०।८०। भागोंको लेवैं और जेठ तथा छोटेसे भिन्न जो मध्यमहैं उनके बीचकी छुटाई बडाईकी अपेक्षाको नहीं करिके सब भझलोंमें प्रत्येकको कहाहुवा चालीसवां भाग देना चाहिये मझलोंमें छुटाई बडाईकी अपेक्षासे विभागकी विषमता दूर करनेके लिये यह कहाहै ॥ १३ ॥ धनके सब प्रकारोंमेंते जो श्रेष्ठ धन होय उसको ज्येष्ठ लेवैं और दश गौ आदि पशुओंमेंसे श्रेष्ठ एकज्मेष्ठ लेवैं यह वहांके लिये है जहां जेठा गुणवान होय और अन्य सब निर्गुणी होंय ॥ १४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥ यत्किञ्चिदेव देयं तु  
ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ १५ ॥ एवं समुद्धृतोद्दारे समानंशान्प्रकल्पये  
त् ॥ उद्दारेऽनुद्धृते त्विषामियं स्यादंशकल्पना ॥ १६ ॥

टीका—सब समान गुण होनेमें कहते हैं दशमेंसे श्रेष्ठको ज्येष्ठ पावै यह जो उद्धार कहाहै सो यह पढने आदि कर्म करनेवाले भाइयोंमे जेठका नहीं है तिस-पद्मी यत्किञ्चित् पूजा बढ़ानेवाला द्रव्यं जेठको देना चाहिये ऐसे बराबर गुण-वालोंमें उद्धारक निषेध देखा गयाहै इस कारण पहलेमें गुणोंकी अधिकताकी

अपेक्षासे उद्धारकी विषमता जाननी चाहिये ॥ १५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे जिससे वीसमा भाग निकाल लिया गया है ऐसे धनमेंसे सब भाइयोंके बराबर भाग करै वीसमा भाग आदिमें तौ फिरि नही निकाली हुई भागकी कल्पना आगे कही हुई होती है ॥ १६ ॥

एकाधिकं हरेज्येष्ठः पुत्रोऽप्यर्धं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयां  
स इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥ स्वेभ्योऽश्वेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्र  
दद्युर्भ्रातरः पृथक्। स्वार्त्स्वां दंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्त्रुरदित्संवः १८

टीका—एक अधिक अंश अर्थात् दो भागोंको जेठा पुत्र ग्रहण करै और अधिक अर्द्ध अर्थात् डेढ भाग जेठेसे छोटा ग्रहण करै और छोटे फिरि एक एक भाग ग्रहण करै यह धर्म व्यवस्थित है यह ज्येष्ठ और उससे छोटीकी गुणवान होनेकी अपेक्षासे और छोटोंके निर्गुण होनेमें जानना चाहिये कारण यह है कि जेठेका और उससे छोटोंका अधिका देखा जाता है ॥ १७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारो भाई अपनी जातिकी अपेक्षा स्वेभ्यश्चतुरोऽश्वान् हरेयुः विप्र इत्यादिसे आगे कहे हुए भागोंमेंसे अपने अपने भागसे चौथा भाग जुदा जुदा भाग कन्याओं के लिये और विना व्याही बहिनीको जो जिसकी सगी बहिनी होय उसीको संस्कारके लिये देवै इस भांति सब देवै जो सगी न होय तौ दूसरी मातासे उत्पन्न ऊंचे नीचों करि संस्कार करनेही योग्य है जो बहिनोंके संस्कारके लिये चौथा भाग देना चाहै तौ पतित होय ॥ १८ ॥

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ॥ अजाविकं तु विषमं  
ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ १९ ॥ यवीयां ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेदिति ॥ समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥

टीका—घोडा आदि एक शफ कहिये एक स्त्रुरके कहे जाते है एक शफ समेत बकरी भेड आदिके वांटनेके समय बराबर करके वांटै और जिसका विभाग न हो सकता होय उसको न वांटै वह तौ जेठेहीका होता है उसकी बराबर दूसरी वस्तु देनेसे बराबरी करिके अथवा बेंचके उसके मोलको न वांटै ॥ १९ ॥ छोटा जो जेठे भाईकी स्त्रीमें नियोगसे पुत्र उत्पन्न करै तौ उस चाचाके साथ उस क्षेत्रजका बराबरी विभाग होता है पिताके समान उद्धार समेत नही होता है यह भागकी व्यवस्था नियत है जो नियोगसे नही उत्पन्न है उसका अनांशित्व कहिये

भाग न पाना आगे कहैयै यद्यपि समेत्यभ्रातरस्समम् यह कहा है तिसपरंभी इसी सूचनसे जिसका पिता मरिगयाहै ऐसे पौत्रकाभी पितामह कहिये दादके धनमें पिताके समान विभागहै यह प्राया जाताहै ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोर्पेद्यते । पितां प्रधानं प्रजने तस्मा  
द्धर्मेण तं भजेत् ॥ २१ ॥ पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च  
पूर्वजः ॥ कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ २२ ॥

टीका—जेठे भाईका क्षेत्रज पुत्रभी पिताके समान उद्धार समेत भाग पानेके योग्यहै इस शंकाको दूरि करि पहिले कहे हुएहीको दृढ कुरते है अप्रधान क्षेत्रज पुत्र प्रधान क्षेत्रकाले पिताका धर्मसे उद्धार समेत विभागके लेनेसे संबंधयुक्त नही होताहै क्षेत्रीभी पिताके क्षेत्रके द्वारा पुत्रके उत्पन्न करनेमें प्रधान होयहै तिससे पहले कहे हुएही धर्मसे विभागकी व्यवस्थारूप चाचाके साथ उस क्षेत्रजका विभाग करै यह पहलेहीके शेषहै ॥ २१ ॥ जो पहले व्याही हुईमें छोटा पुत्र उत्पन्न होय और पीछे व्याही हुईमें जेठा होय तौ वहां कैसा विभाग होय यह जो संदेह होय तौ क्या माताके विवाहके क्रमसे पुत्रका जेठापन अथवा अपने जन्मके क्रमसे तव ॥ २२ ॥

एकं वर्षभर्मुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ॥ ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदू-  
नानां स्वमातृतः ॥ २३ ॥ ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायांहरदृषभपो-  
दशाः ॥ ततः स्वमातृतः शेषां भजेत्त्रिति धारणा ॥ २४ ॥

टीका—पहलीमें उत्पन्न हुआ छोटाभी एक बैल उद्धार लेवै तिस प्रीछे उस श्रेष्ठ बैलसे और जे अश्रेष्ठ बैल होय तब उस जेठीसे उत्पन्न पुत्रसे माताके कारण क्रम ऐसे छोटाको प्रत्येक एक एक बैल होते हैं माताके विवाहके क्रमसे जेठापन होताहै ॥ २३ ॥ पहले व्याही हुई स्त्रीमें जो जो उत्पन्न हुआ वह जन्मसेभी भाइयोंसे जेठा वह सोलह बैलसमेत पंद्रह गौओंको लेवै तिस पीछे जो और बहु-तसी माताओंसे उत्पन्न वे पुत्र अपनी माताके व्याहके जेठेपनकी अपेक्षा वाँकी गौओंको वाटि लेवै यह निश्चयहै ॥ २४ ॥

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्येष्ठ्यमस्ति  
जन्मतो ज्येष्ठ्यमुच्यते ॥ २५ ॥ जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्या-  
स्वपि स्मृतम् ॥ यमयोश्चैवं गंभेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥ २६ ॥

टीका—समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंको जानिमें स्थित विशेष न होनेपर माताके क्रमसे जेठापन ऋषियों करि नही कहा जाताहै किंतु जन्महीके क्रमसे इसीसे छोटीसेभी उत्पन्न पहले कहा हुआही वीसमे भाग द्वांश आदिकों ग्रहण करै-ऐसे माताके जेठे पनके विहित तथा निषिद्ध होनेसे सोलहके लेने और न लेनेकाभी विकल्प हुआ वह तौ भाइयोंके गुणवान् तथा निर्गुण होनेके कारण लघुतासे व्यवस्थित हुआ ॥ २५ ॥ स्वब्रह्मण्यनाम मंत्र ज्योतिष्टोममें इंद्रके बुलानेके लिये पढा जाताहै वह प्रथम पुत्र करि पिताका उद्देश करिके आवाहन किया जाता है अमुकका पिता यज्ञ करताहै ऐसा ऋषियोंने कहाहै और गर्भमें एकही साथ जिनका निर्षेक हुआ है ऐसे यम कहिये जोडियोंकी जन्मके क्रमसे ज्येष्ठता कही गई है ॥ २६ ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥ यदपत्यं भवे-  
दस्यां तन्मम स्यात्स्वर्धाकरम् ॥ २७ ॥ अनेन तु विधानेन पुंरा-  
जंकेऽथ पुत्रिकाः। विवृद्धचर्थं स्ववंशस्यस्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥ २८ ॥

टीका—जिसके पुत्र नहीं है वह जो इसमें अपत्य उत्पन्न होय सो मेरा श्राद्ध आदि और्ध्वदेहिक कर्मोंका करनेवाला होय ऐसे कन्यादानके समयमें जमाई के साथ निर्यमरूप विधानसे कन्याको पुत्रिका करै ॥ २७ ॥ पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेबुझे दक्ष प्रजापति अपना वंश बढानेके लिये इस कहे हुए विधानसे सब बेटियोंको पहले आप पुत्रिका करते भये ॥ २८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सोमाय राज्ञे सत्कृत्य  
प्रीतात्मा संसर्वशतिम् ॥ २९ ॥ यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण  
दुहिता समा ॥ तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् १३० ॥

टीका—होनेवाले पुत्रिकापुत्रके लाभसे प्रसन्न दक्षप्रजापतिने अलंकार आदिसे सत्कार करिके दशपुत्रिका धर्मको दी तेरह कश्यपको सत्ताईस द्विजोंके तथा औषधियोंके राजा चंद्रमाको दी ॥ २९ ॥ आत्माका स्थानी पुत्रहै और उसीके अंगोंसे उत्पन्न होनेके कारण पुत्रके समान कन्याहै इसीसे पिताके आत्मस्वरूप उस कन्याके विद्यमान होनेपर पुत्ररहित मरे हुए पिताका धन पुत्रिकाले भिन्न दूसरा कैसे लेवै ॥ १३० ॥

मातुस्तु योतं कथं स्यात्कुमारीभाग एव सः ॥ दौ हित्र एव च हरेत् १३१ ॥

दपुत्रस्यखिलं धनम् ॥ ३१ ॥ दौहित्रो ह्यखिलं रिक्तमपुत्रस्यं  
पितृहरेत् ॥ सर्वं दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ ३२ ॥

टीका—माताका जो धन है वह उसके मरनेपर कुमारीका भागहै उसमें पुत्रों का भाग नहीं है कुमारी कहनेसे विना व्याही जाननी चाहिये और पुत्ररहित मरे हुए नानाका धन दौहित्र अर्थात् पुत्रिकापुत्र ही सब लेवै ॥ ३१ ॥ दौहित्र अर्थात् पुत्रिकापुत्र ही अन्यपुत्ररहित पिताका संपूर्ण धन लेवै और वही पिता और नानाके लिये दो पिंड देवे ॥ ३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोकं न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥ तयोर्हि मातापितृ  
रौ संभूतौ तस्यं देहतः ॥ ३३ ॥ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रो  
ऽनुजायते ॥ समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठतां नास्ति हि स्त्रियाः ३४

टीका—पुत्र तथा दौहित्रमें लोकमें तथा धर्मके काममें कुछ विशेष नहीं है कारण यह है कि दोनोंके माता पिता उसके देहसे उत्पन्नहैं यह पहलेहीका अनुवादहै ॥ ३३ ॥ पुत्रिका करनेपर जो करनेवालेके पीछे पुत्र उत्पन्न होय तो उनके विभाग कालमें समान विभाग होय पुत्रिकाको उद्धार न देना चाहिये जिसे जेठी होनेपरभी उसका जेठापन उद्धारके समयमें नहीं आदर करनेयोग्यहै ॥ ३४ ॥

अपुत्रायां भूतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥ धनं तत्पुत्रिकाभतां  
हरेत्तैवाविचारयन् ॥ ३५ ॥ अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सह  
शात्सुतम् ॥ पौत्रे मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ ३६ ॥

टीका—पुत्ररहित पुत्रिकाके कैसे हूँ मरनेपर उसके धनको उसका पतिहीविना विचारके ग्रहण करै पुत्रिकाकी पुत्रकी समतासे पुत्र तथा पुत्रीरहित मृतपुत्र पिताके धन ग्रहणकी प्रसक्ति होनेपर उसके निवारणके लिये यह वचन है ॥ ३५ ॥ पुत्रिका की हुई अथवा न की हुई समान जातिके पतिसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै उस दौहित्र करि पौत्रका काम करनेसे मातामहपौत्री है और वह इसको पिंड देवै और उसके धनको लेवै ॥ ३६ ॥

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥ अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्र  
ध्नस्याप्तोति विष्टपम् ॥ ३७ ॥ पुत्राम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं  
सुतः ॥ तस्मात्पुत्रं इति प्रोक्तं स्वयमेवं स्वयम्भुवा ॥ ३८ ॥



टीका—उत्पन्न हुए पुत्रसे स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होताहै और पौत्रसे बहुत काल तक उन्हीमें रहताहै तिस पीछे पुत्रके पौत्रसे आदित्यलोकको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ जिस्से पुंनाम नरकसे सुत पिताकी रक्षा करताहै उस रक्षा करनेसे आपही ब्रह्माने पुत्र यह कहाहै ॥ ३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥ दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रै न सं  
तारयति पौत्रवत् ॥३९॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिका  
सुतः ॥ द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥१४०॥

टीका—पौत्र तथा दौहित्र इन दोनोमें लोकमें कुछ विशेष नहीं है जिस्से दौहित्रभी नानाको परलोकमें पौत्रके समान निस्तार करताहै ॥ ३९ ॥ पुत्रिकापुत्र पहले माताको पिंड दे और दूसरा माताके पिता कहिये नानाको और तीसरा माताके पितामह अर्थात् परनानाको देवै ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दंत्रिमः ॥ सर्स हरेते व तद्रिक्थं सं  
प्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥४१॥ गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दंत्रिमः क्वचि  
त् ॥ गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददंतः स्वधा ॥ ४२ ॥

टीका—जिसका दत्तक अर्थात् गोदलिया हुआ पुत्र सब गुणोंसे संपन्न होय और दूसरे गोत्रसेभी आया होय वह औरस कहिये निजपुत्रके होनेपरभी पिताके धनका भाग पावै ॥ ४१ ॥ दत्तक अपने पिताके गोत्र तथा धनको कभी नहीं पाताहै पिंड तो गोत्र तथा रिक्थ हिस्सेका अनुगामी होताहै जिसके गोत्र और रिक्थको भजताहै कहिये प्राप्त होताहै उसीको वह पिंड देताहै तिससे पुत्र देनेवाले जनकके उस पुत्रकारि करनेयोग्य स्वधा कहिये पिंड श्राद्ध आदि निवृत्त होजाते हैं ॥ ४२ ॥

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्यात्तश्च देवरात् ॥ उभौ तौ नाहं तो भा  
गं जारजातककामजौ ॥४३॥ नियुक्तायामपि पुर्मान्नायां जातोऽवि  
धान्नतः ॥ नैवाहः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सं ॥४४॥

टीका—जो गुरु आदिके नियोग विना उत्पन्नहै और जो सपुत्रामें नियोगसेभी देवर आदि करि कामसे उत्पन्न किया गयाहै वे दोनो क्रमसे जारसे कामकी इच्छासे उत्पन्नहै धनके भागयोग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ नियुक्ताभी स्त्रीमें घृत-

लेप आदि नियोगकी, विधिके विना उत्पन्न हुआ पुत्र-क्षेत्रवाले पिताका धन पानेयोग्य नहीं है जिससे यह पतित करि उत्पन्न किया गया है जे नियुक्त विधि-के विना पुत्र उत्पन्न करते हैं वे पतित होते हैं ॥ ४४ ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ॥ क्षेत्रिकस्य तु तद्दी जं  
धर्मतः प्रसंवश्च सः ॥४५॥ धनं यो विभृयाद्भ्रातृमृतस्य स्त्रियमेव  
च ॥ सांस्पत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ ४६ ॥

टीका—नियुक्तामें उत्पन्न हुआ क्षेत्रज पुत्र औरसके समान लैवै जिससे उस-का कारण भूतबीज क्षेत्रके स्वामीका है और संतानभी धर्मसे उसीके लिये है ॥ ४५ ॥ जो मरे हुए भाईके जो रक्षा करनेमें असमर्थ पकरि दिये हुए स्थावर-जंगम धनकी रक्षा करै और उसकाभी पोषण करै, वह नियोग धर्मसे उसमें भाईका पुत्र उत्पन्न करै उस अपत्यको वह धनदे देवै ॥ ४६ ॥

यां नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्राप्यर्वाभुयात् ॥ तं कामजमरिक्थीयं  
वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥४७॥ एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैक्योनिषु  
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका—गुरु आदि करि आज्ञा दी गई जो स्त्री देवरसे अथवा अन्यसे कहि ये असापिंडसे पुत्रको उत्पन्न करै वह पुत्र जो कामज होय तौ उस वृथा उत्पन्न हुये को भाग न पानेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ४७ ॥ समान जातिकी स्त्रियोंमें एक पतिसे उत्पन्न पुत्रोंकी यह विभागविधि जाननी चाहिये अब नाना जा-तिकी बहुतसी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंका विभाग सुनिये ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥ तासां पुत्रेषु जातेषु विं  
भागेऽयं विधिः स्मृतः ॥४९॥ कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च  
वेष्टम च ॥ विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ ५० ॥

टीका—ब्राह्मणके क्रमसे जो ब्राह्मणी आदि चारि स्त्रियां होंय तौ उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर यह आगे कही हुई विभागकी विधि मनु आदिकोंने कही है ॥ ४९ ॥ खेत करनेवाला बैल और घोडा आदि सवारी अंगुठी आदि गहना और घर प्र-धान जितने भाग है उनमेंसे एक प्रधानभूत अंश ब्राह्मणीपुत्रके उद्धारके लिये देना चाहिये और बाकी आगे कही हुई रीतिसे बांटे लेने चाहिये ॥ ५० ॥

त्र्यंशं दद्याद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः । वैश्याजः सार्धमेवंशं-  
मं शं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५१ ॥ सर्वे वा रिक्थजातं तद्दर्शधा परि-  
कल्प्य च । धर्म्य विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणीका पुत्र धनमेंसे तीन भाग लेवै दो क्षत्रियाका पुत्र डेढ वैश्याका और एक अंश शूद्राका पुत्र ऐसे जहां ब्राह्मणी और क्षत्रियाको पुत्र दो-ही हैं तहां पांच भाग किये हुए धनमेंसे तीन भाग ब्राह्मणीपुत्रके और दो क्षत्रियापुत्रके इसी रीतिसे ब्राह्मणी और वैश्या पुत्र आदिमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें यही कल्पना करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ अथवा सब धनका प्रकार जिसमें से उद्धार नहीं निकलाहै उसके दशभाग कस्के विभागके धर्मका जाननेवाला धर्मसे-विरुद्ध नहीं ऐसा विभाग आगे कही हुई विधिसे करै ॥ ५२ ॥

चतुरोऽशान् हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः । वैश्यापुत्रो हरेद्व्यं-  
शमं शं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५३ ॥ यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यस-  
त्पुत्रोऽपि वा भवेत् । नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ५४

टीका—चारि भाग ब्राह्मण लेवै तीन भाग क्षत्रियाका पुत्र और दो वैश्याका पुत्र और एक शूद्रासे उत्पन्न ऐसे ब्राह्मणी और क्षत्रियाके पुत्र होनेपर धनके सात भाग करिके उनमेंसे चारि भाग ब्राह्मणके तीन क्षत्रियापुत्रके ऐसेही ब्राह्मणी वैश्यापुत्र आदिकोंमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें कल्पना करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मणके द्विजाति की सब स्त्रियोंमें पुत्र होंय अथवा न होय तिसपरभी शूद्रापुत्रके लिये अनंतर जो अधिकारी होय वह दशमभागसे अधिक धर्मसे न देवै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् । यदर्वास्यं पितौ  
दद्यात्तदेवास्यं धनं भवेत् ॥ ५५ ॥ समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा  
द्विजन्मनाम् । उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ ५६ ॥

टीका—शूद्राका पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके धनका पानेवाला नहीं होताहै किंतु जो धन इसको पिता देवै वही उसका होताहै ॥ ५५ ॥ द्विजातियोंके समान जातिकी स्त्रियोंमें जे पुत्र उत्पन्नहैं वे सब जेठेको उद्धार देकर बाकीके बराबरि विभाग करिके जेठेके साथ और सब वाँटि लेवै ॥ ५६ ॥

शूद्रस्य तु सर्वैर्नान्यां भार्या विधीयते। तस्यां जाताः संमांशाः  
 स्युर्यदि पुत्रंशतं भवेत् ॥ ५७ ॥ पुत्रान् द्वादश यानां ह नृणां  
 स्वायम्भुवो मनुः। तेषां षड् बन्धुदायादाः षड्दायाद्वान्धवाः ५८ ॥

टीका—शूद्रके समानजातिही स्त्री कही गई हैं ऊची नीची नही उससे उत्पन्न हुए जो सौभी पुत्र होय तो उनका बराबरही भाग होय किसीको उद्धार न देना चाहिये ॥ ५७ ॥ जिन द्वादश पुत्रोंको स्वायंभूमनुने कहाहै उनमेंसे पहिले छः बांधव और गोत्रदायादभीहैं तिस्से बांधव होनेके कारण सपिंड तथा समानोदकोंका पिंड तथा जलदान आदि करते हैं और समीपी न होनेसे गोत्रका भाग लेते हैं और पिंडले ६ गोत्र तथा धनके लेनेवाले नही होते हैं और बांधव तौ होते हैं तिस्से बंधु कार्य जलदान आदि करते हैं ॥ ५८ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैवं दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोऽपि विद्वश्च  
 दार्यादा बान्धवाश्च षट् ॥ ५९ ॥ कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौन  
 र्भवस्तथा ॥ स्वयं दत्तश्च शूद्रश्च षड्दायाद्वान्धवाः ॥ १६० ॥

टीका—औरस १ क्षेत्रज २ दत्तक ३ कृत्रिम ४ गूढोत्पन्न ५ और अपविद्ध ६ ये भागपानेवाले और बांधव होते है ॥ ५९ ॥ कानीन १ सहोढ २ क्रीत ३ पौनर्भव ४ स्वयंदत्त ५ और शूद्र ६ ये छः गोत्र तथा धनके पानेवाले नही होते हैं और बांधव तौ होते हैं ॥ १६० ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतैरञ्जलम् ॥ तादृशं फलमाप्नोति  
 कुपुत्रैः संतैरस्तमः ॥ ६१ ॥ यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ  
 संतौ ॥ यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्वृत्तीतनेतैरिः ॥ ६२ ॥

टीका—औरसके साथ क्षेत्रज आदि पढे हैं इस्से तुल्यताकी शंका होनेपर उसके दूरि करनेके लिये कहते हैं ॥ फूस आदि तृणोंसे बनी हुई बुरी उडप आदि एक भांतिकी नावसे जलको उतरता हुआ जिस भांतिके फलको पाताहै वैसेही क्षेत्रज आदि कुपुत्रोंसे परलोकमें कठिनतासे पार होने योग्य दुःखको पाताहै इस्से यह दिखाया गया कि मुख्य औरस पुत्रके समान क्षेत्रज आदि पुत्रोंकी संपूर्ण कार्य करनेमें योग्यता नही होती हैं ॥ ६१ ॥ पुत्ररहित करि पराये क्षेत्रमें नियोगसे उत्पन्न किया हुआ पुत्र उभयोरप्यसौरिक्थीपिंडदाताचधर्मतः अर्थात् यह दोनोका धर्मसे भाग लेनेवाला और पिंड देनेवाला है इस याज्ञवल्क्यके

वचनको मध्ये जब क्षेत्रिक पिताके क्षेत्रजके पीछे और पुत्र होय तब वे औरस और क्षेत्रज यद्यपि एक पिताके रिक्थके योग्य होय तिसपरभी जो जिसके पिताको धन होय उसीको वह लेवै क्षेत्रज क्षेत्रवाले पिताका नहीं पावै ॥ ६२ ॥

एक औरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥ शेषाणामानृशंस्यार्थं  
प्रदद्यात्तुं प्रजीवनम् ॥ ६३ ॥ षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृका-  
र्द्धनात् ॥ औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वां ॥ ६४ ॥

टीका—पहले रोग आदिसे और सपुत्रके न होनेमें क्षेत्रज आदि पुत्रके कर लेनेपर पीछे औषध आदिसे स्नेह निवृत्त होनेसे जो औरस उत्पन्न होय तिसपर यह कहते हैं कि औरसही एक पुत्र पिताके धनका स्वामी है और क्षेत्रजको छोड़िके जो बाकी रहे उनको भोजन वस्त्र देवै ॥ ६३ ॥ पिताके धनका विभाग करता हुआ और सपुत्र क्षेत्रजको उसका छठा अथवा पांचवा भाग देवै निर्गुण स-गुणकी अपेक्षासे यह छ पांचका विकल्पहै ॥ ६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भोगिनौ ॥ दशपिरे तु क्रमशो  
गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ ६५ ॥ स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पां-  
दयेद्धि यम् ॥ तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ ६६ ॥

टीका—औरस तथा क्षेत्रज पुत्र कहे हुए प्रकारसे पिताका धन लेनेवाले होते हैं और फिर दत्तक आदि दश पुत्र गोत्र भागी होते हैं और पूर्वाभावेपरः इस क्रमसे धनकेभी भाग पानेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ कन्याकी अवस्थामें जिसका विवाह संस्कार हुआ है ऐसी अपनी स्त्रीमें जिसको आप उत्पन्न करै उस पुत्रको औरस मुख्य जानै सजातीया स्त्रीमें आप उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस जानना चाहिये ॥ ६६ ॥

यस्तुर्लपजः प्रमीतस्य क्लोबस्य व्यार्धितस्य वां ॥ स्वधर्मेण नियु-  
क्तायां सं पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ६७ माता पिता वां दद्यातां यमद्भिः  
पुत्रमापादि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं सं ज्ञेयो दन्निमः सुतः ॥ ६८ ॥

टीका—जो मरे हुएकी अथवा नपुंसककी अथवा संतति रोकनेवाले रोग करि युक्तकी भार्यामें घृत लगाने आदि नियोगके धर्मसे गुह्य करि नियुक्तमें उत्पन्न हुए पुत्रको मनु आदि क्षेत्रज कहते हैं ॥ ६७ ॥ माता तथा पिता आपसकी

संमतिसे लेनेवालेकी समान जातिको जिस पुत्रको उसीकी पुत्र न होनेरूप आपत्तिमें भय आदिके विना प्रसन्नतासे जल ले संकल्प करिके देवै वह दत्त्रिम पुत्र जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ॥ पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं संविज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ ६९ ॥ उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायित कस्यै सं ॥ स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ १७० ॥

टीका—माता पिता पिताके परलोकके करने न करनेके गुण दोषके जानने-वाले और माता पिताकी सेवा आदि पुत्रके गुणों करि युक्त जिस समान जातिके पुत्रको पुत्र करते हैं उसको कृत्रिम पुत्र जानिये ॥ ६९ ॥ जिसके घरमें स्थित भार्यासे जो पुत्र उत्पन्न होय वह सजातिकाहै यह ज्ञान होनेपरभी किस पुरुषके यह पुरुषसे यह उत्पन्नहै यह न जानना जाय तौ वह घरमें गुप्त उत्पन्न हुआ उसका पुत्र होताहै जिसकी भार्यामें उत्पन्न होय ॥ ७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तैर्योन्यतरेण वा ॥ यं पुत्रं परिगृणीयादपविद्धः सं उच्यते ॥ ७१ ॥ पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्द्रहः ॥ तं कानीनं वं देष्माम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥ ७२ ॥

टीका—माता पिता करि त्यागकिया गया होय अथवा उनमेंसे एकके मरनेपर अथवा अन्य करि त्याग किये हुए पुत्रको जो अंगीकार करता है उसका वह अपविद्धनाम पुत्र कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ पिताके घर कन्या जिस पुत्रको छुपा हुआ उत्पन्न करै उस कन्याके व्याहनेवालेके पुत्रको नामसे कानीन कहें ७२

यो गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ॥ वोढुः संगंभो भवति सहोढ इति चोच्यते ७३ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रो र्यमन्ति कात् ॥ स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ७४

टीका—जो गर्भिणी ज्ञातगर्भा अथवा अज्ञातगर्भा व्याही जाय उसमें उत्पन्न हुआ वह गर्भ व्याहनेवालेका पुत्र होताहै और सहोढ कहा जाताहै ॥ ७३ ॥ जो पुत्रके लिये माता पिताके समीपसे जिसको मोल लेवै वह क्रीतक उसका पुत्र ह्येताहै मोल लेनेवालेके गुणोंके समान होय अथवा हीन होय वहां जातिसे समान ता असमानता नहीहै सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः अर्थात् समाज जातिके

पुत्रोंमें मैत्रे यह विधि कही है यह याज्ञवल्क्यने सबही पुत्रोंको सजातीय कहाहै तिससे मानवशास्त्रमें भी क्रीतके सिवाय सब पुत्र सजातीय जानने चाहिये ॥७४॥

या पत्न्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥ उत्पादयेत्पुन  
भूत्वां स पौनर्भव उच्यते ॥७५॥ सा चेदक्षतयोनिः स्याद्दत्तप्रत्या  
गतापि दा ॥ पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ ७६ ॥

टीका—भर्ता करि छोडी गई अथवा जिसका भर्ता मरिगया ऐसी जो स्त्री दूसरेकी फिर भार्या होकर जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव पुत्र होताहै ॥ ७५ ॥ जो अक्षत योनि वह स्त्री दूसरेका आश्रय ले तौ उस पौनर्भव भर्ताके साथ फिर विवाहनाम संस्कारके योग्यहै अथवा कौमार पतिको छेडेडि औरका आश्रय लेकर फिर उसीके पास लौट कर आवै तौ उस कुमार भर्ताके साथ फिर विवाह नाम संस्कारके योग्य है ॥ ७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्याद्दकारणात् ॥ आत्मानं स्पृश-  
येद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु सं स्मृतः ॥ ७७ ॥ यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां  
कामादुत्पादयेत्सुतम् । स पारयन्नेवं श्वस्तस्मात्पारश्वः स्मृतः ७८

टीका—जिसके माता पिता मरि गये होय वह अथवा छोडनेके योग्य कार-  
रणके विना द्वेष आदिसे उन करि छोडा गया जिसको अपना आत्मा देताहै व-  
ह उसका स्वयंदत्तनाम पुत्र मनु आदिकोंने कहाहै ॥ ७७ ॥ विनास्वेषविधिः स्मृ-  
तः अर्थात् विवाहिताओंमें यह विधि कही है इस याज्ञवल्क्यके वचनसे व्याहीही  
हुई शूद्रोंमें ब्राह्मण कामसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह जीवते हुएही मरेके समा-  
नहै यद्यपि यह पिताके उपकार लिये श्राद्ध आदि करताहै तिसपरभी संपूर्णका  
उपकारक न होनेके कारण मरेके तुल्य कहाहै ॥ ७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥ सोऽनुज्ञांतो  
हरे दशमि ति र्थमा व्यंस्थितः ॥ ७९ ॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेताने-  
कादश यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ८०

टीका—ध्वजाहतादिक कहे है लक्षण जिसके ऐसी दासीमें अथवा दासकी  
दासीमें जो शूद्रका पुत्र होताहै वह पिताकी आज्ञासे व्याही हुईके पुत्रोंकी बरा-  
बर भाग पानेवाला होताहै अर्थात् तुल्यभाग पाताहै यह शास्त्रकी व्यवस्थाहै ७९

इन क्षेत्रज आदि उक्त ग्यारह पुत्रोंको पुत्रके उत्पन्न करनेकी विधिका और और रस पुत्र करि करनेयोग्य श्राद्ध आदिका लोप न होय इस लिये मुनिगोंने पुत्रके प्रतिनिधि कहिये स्थानी कहते हैं ॥ १८० ॥

यं एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ॥ यस्य ते बीजतो  
जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ ८१ ॥ भ्रातृणामेकजातानामेक-  
श्वेतपुत्रवान् भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ ८२ ॥

टीका—जो ये क्षेत्रज-आदि अन्यके बीजसे उत्पन्न पुत्र और सपुत्रके प्रसंग-से कहे व जिसके बीजसे उत्पन्न हैं उसीके पुत्र होते हैं क्षेत्रवालेके नहीं और स-पुत्रके होनेपर तथा पुत्रिकाके होनेपर वे न करने चाहिये इसलिये यह कहा है ॥ ८१ ॥ एक माता पितासे उत्पन्न बहुतसे भाइयोंमें जो एक पुत्रवाला होय और अन्य पुत्ररहित होय तौ उस एक पुत्रसे सब भाइयोंको मनु पुत्रसहित कहते हैं तिस पीछे तौ उसके होनेपर और पुत्रप्रतिनिधि न करने चाहिये वही पिंडका देनेवाला और भाग लेनेवाला होता है इस्से यह कहा गया ॥ ८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेका चैत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण  
प्राह पुत्रवतीमनुः ॥ ८३ ॥ श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान् रिक्थ  
मर्हति ॥ बहवश्चेत्संष्टाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ ८४ ॥

टीका—एकहै पति जिनका ऐसी सब स्त्रियोंमें जो एक पुत्रवती होय तौ उस एक पुत्रसे मनुने उन सबोंको पुत्रयुक्त कहा है तिससे सौतिके पुत्र होनेपर स्त्रीको और दत्तक आदि पुत्र न करने चाहिये इस लिये यह कहा है ॥ ८३ ॥ औरसे आदि पुत्रोंमें पहला पहला श्रेष्ठ है और वही भाग पानेवाला है सचान्यान्विध्यात् इस विष्णुके वचनसे औरस आदि पुत्रोंमें पहले पहलेके न होनेमें अगिला अगिला रिक्थके योग्य है पहलेके होनेमें दूसरेका पाल वही करै ऐसे पुत्रत्व सिद्ध होनेपर शूद्रापुत्रका बारह पुत्रोंमें पाठ क्षेत्रज आदिकोंके होनेपर धनकी अयोग्यता दिसानेके लिये होनेसे सार्थक है अन्यथातौ क्षत्रिया वैश्या पुत्रके समान और सत्व होनेसे क्षेत्रज आदिकोंके होनेपरभी धनको पावै और जो समानरूप बहुतसे पौनर्भव आदि पुत्र होय तौ सबही वांछि करि धनको लेंवें ॥ ८४ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥ पितां हरेदपुत्रस्य



रिक्थं भ्रातर एव च ॥८५॥ त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ॥ चतुर्थः संप्रदातेषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८६ ॥

टीका—न सगे भाई न पिता किंतु औरसके न होनेमें क्षेत्रज आदि गौण पुत्र पिताका धन लेनेवाले होते हैं यह इस्से कहा जाताहै औरसका तौ एकएवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः अर्थात् एकही औरसपुत्र पिताके धनका स्वामी है इसीसे सिद्ध है और जिसके मुख्य गौण दोनो प्रकारके पुत्र नहीं हैं और पत्नी तथा दुहिताभी मही हैं उसके धनको पिता पावै और उनकी माताके भी न होनेपर भाई पावै यह आगे विस्तारसे कहेंगे ॥ ८५ ॥ अब क्षेत्रज आदिकोंका भी पुत्ररहित पितामह आदिके धनमेंभी अधिकार दिखानेको कहते हैं ॥ पिता आदि तीनिका जलदान करना चाहिये और उन्ही तीनिके लिये पिंड देना चाहिये और चौथा पिंडोदकका देनेवालाहै पाचमेंका यहां संबंध नहीं है तिस्से पुत्ररहित पितामह आदिके धनमे गौण पुत्रोंका अधिकार योग्यहै और सपुत्र पौत्रोंका तौ पुत्रेण लोकान् जयति इसीसे पितामहके धनमे भागी होना कहाहै ॥ ८६ ॥

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्यै धनं भवेत् ॥ अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥८७॥ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ॥ त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ८८

टीका—सपिण्डोंके मध्यमें जो बहुत समीपी सपिण्डस्त्री अथवा पुरुष होय उसका मरे हुए मनुष्यका धन होताहै इसके उपरान्त सपिण्डकी संतान न होनेपर समानोदक आचार्य तथा शिष्य ये क्रमसे धनको लेवै ॥ ८७ ॥ इन सबोंके न होनेमें तीनो वेदोंके पढनेवाले बाहरी भीतरी शौच करि युक्त जितेंद्रिय ब्राह्मण धनके लेनेवाले होते हैं और वेही पिंड देनेवाले होते हैं ऐसा होनेपर मरे हुए धनीके श्राद्ध आदि धर्मकी हानि नहीं होती है ॥ ८८ ॥

अर्ह्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥ इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ८९ ॥ संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ॥ तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तस्मिन्प्रतिपादयेत् १९०

टीका—ब्राह्मणका धन राजाको कभी न लेना चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादाहै कि उक्त लक्षण ब्राह्मणके न होनेपर ब्राह्मण मात्रको देना चाहिये और क्षत्रि-

य आदिकोंका धन कहे हुए धन लेनेवालोंके न होनेपर राजा लेवै ॥ ८९ ॥ पु-  
त्र रहित मरे हुएकी स्त्री पुरुषके मरुओंसे आज्ञा ले नियोगधर्मसे पुत्रको उत्पन्न  
करै विस मरे हुएका जो धन होय वह उस पुत्रको देवै ॥ १९० ॥

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यांजातौ स्त्रिया धने ॥ तयो र्यद्यस्य  
पितृस्य स्यात्तत्सं गृह्णीत ने तरः ॥ ९१ ॥ जनन्यां संस्थितायां तु समं  
सर्वे सहोदराः ॥ भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सर्वाभयः ॥ ९२ ॥

टीका—दोसे उत्पन्न जो पुत्र स्त्रीके समीप स्थित धनमें विवाद करै तौ जो  
जिसके पिताका धन होय वह उसका पावै और पितासे उत्पन्न दूसरेके पिताका  
न पावै ॥ ९१ ॥ माताके मरनेपर सगे भाई तथा बिना व्याही हुई वहिनै माताके  
धनको वरावरि वांटे लेवै और व्याही हुई तौ धनके अनुरूप सम्मान पाती हैं ९२

यास्तांसांस्युर्दुहितैस्तांसामपि यथार्हतः ॥ मातामह्या धनार्त्तिकं-  
श्वित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९३ ॥ अन्वग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च  
प्रीतिकर्मणि ॥ भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ ९४ ॥

टीका—उन बेटीयोंकी जो बिनाव्याही बेटियां हैं उनके लिये भी नानीके  
धनसे जैसे उनका सत्कार होय वैसे प्रीतिसे कुछ देना चाहिये ॥ ९३ ॥ विवा-  
हके समय अग्निके समीप जो पिता आदि करि दियागया होय उसको अध्याग्नि  
कहते हैं और जो पिताके घरसे पतिके घर लेजानेके सम मिलै उसको अध्यावा-  
हनिक कहते हैं और जो प्रीतिनिमित्तक कर्ममें भर्ता आदि करि दियागया होय  
तथा भाई और पिताने जो और समयमें दिया होय इस भांति छः प्रकारका  
स्त्रीधन कहा गया है ॥ ९४ ॥

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥ पत्यौ जीवति वृत्ता-  
याः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु  
यद्द्रुमु ॥ अप्रजायामतीतायां भर्तुरेवैर्तदिष्यते ॥ ९६ ॥

टीका—विवाहके उपरान्त पतिके कुलसे अथवा पिताके कुलसे जो स्त्रीको  
मिला और जो पतिने प्रसन्न होके दिया वह और जो अध्याग्नि आदि पहले श्लो-  
कमें कहा है वह भर्ताके जीवते मरी हुई स्त्रीका सब धन उसके पुत्रोंका होता है ॥  
९५ ॥ जिनके ऋक्षण कह चुके हैं ऐसे ब्राह्मण आदि पांच विवाहोंमें जो स्त्री सं-

बंधी धनहै वह पुत्ररहित उस स्त्रीके मरनेपर भतीहीका मनु आदिने कहाहै ॥९६॥

यत्त्वस्याः स्याद्भनं दत्तं विवाहेष्वसुरादिषु ॥ अप्रजायामतीता  
यां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ ९७ ॥ स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं  
कथंचन ॥ ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ ९८ ॥

टीका—जो उक्त लक्षण आसुर राक्षस और पैशाच विवाहोमे छ प्रकारकाभी जो स्त्रीका धन है वह उस पुत्र रहितके मरनेपर माता पिताका होताहै ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणकी नाना जातिकी स्त्रियोंमें जो क्षत्रिया आदि स्त्री पुत्रपति रहित मरजाय तौ उसका पिताका दिया हुआ धन सजाति विजाति सौतिके कन्या पुत्रोंके होनेपरभी ब्राह्मणी सौतिकी कन्या लेवै उसके न होनेमें उसके पुत्रका वह धन होताहै ॥ ९८ ॥

नं निहारं स्त्रियः कुयुःकुटुम्बाद्बहुमध्यगात् । स्वकादपि चं  
वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥ ९९ ॥ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिर-  
लंकारो धृतो भवेत् । न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥ २

टीका—भाई आदि बहुत साधारण कुटुंबके धनसे भार्या आदि स्त्रियोंको रत्न अलंकार आदिके लिये धनका संग्रह न करना चाहिये और पतिकी आज्ञा विना पतिके धनसेभी न करना चाहिये तिससे यह स्त्रीधन नहीं है ॥ ९९ ॥ पतिके जीवते हुए जो अलंकार पतिकी सम्मतिसे स्त्रियों करि धारण किया जाय उसके मरनेपर विभागके समय पुत्र आदि उसको न वांटै वांट करनेसे पापी होते है ॥ २००

अनंशौ क्लीवपतितौ जात्यन्धवधिरौ तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये  
चं केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ १ ॥ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनी-  
षिणा । ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २ ॥

टीका—नपुंसक पतित जन्मांध बहिरा उन्मत्त जड गूंगा और जे कुणि पंगा आदि जिनकी इंद्रियां विगडी हैं वे पिता आदिके धनके पानेवाले नहीं होते हैं केवल अन्न वस्त्रके भागी होते है ॥ १ ॥ शास्त्रका ज्ञाता धन लेनेवाला सब इन नपुंसक आदिकोंके लिये जीवनेतक अपनी शक्तिसे भोजन वस्त्र देवै जो न दे तौ पापी होय ॥ २ ॥

यद्यार्थता तु दारैः स्यात्क्लीवादीनांकथंचन । तेषामुत्पन्नतन्वना-

मंपत्यं दीयमर्हति ॥ ३ ॥ यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति । भांगो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ ४ ॥

टीका—जो कैसे हू इनकी विवाहकी इच्छा होय तौ क्लीबके क्षेत्रज्ञ पुत्र उत्पन्न होनेपर उन उत्पन्न हुए अपत्योंका अपत्य धनका भागी होताहै ॥ ३ ॥ पिताके मरणपर भाइयोंके साथ नहीं बंटा हुआ जेठा अपने पौरुषसे जौ कुछ धन पावै उस धनमेंसे विद्याका अभ्यास करनेवाले छोटे भाइयोंका भाग होता है औरोका नहीं ॥ ४ ॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहिातश्चैद्धनं भवत्संमस्तत्र विभागः स्यादपित्र्यं इति धारणा ॥ ५ ॥ विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् । मैत्र्यमौद्राहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ ६ ॥

टीका—विद्याहीन सब भाइयोंके खेती वणिज आदि व्यापारसे जो धन उत्पन्न होय अपने जोडे हुये धनमें उसमें पिताके धनको छोड़िके बराबर वांट होय उद्धार न निकाला जाय यह निश्चयहै ॥ ५ ॥ विद्या मैत्री और विवाहसे जोडा हुआ और माधुपर्किक कहिये मधुपर्क देनेके समय पूज्यतासे जो मिला होय वह उसीका होता है ॥ ६ ॥

भ्रातृणां यस्तु ने हेतु धनं शक्तः स्वकर्मणा । सं निर्भाज्यः स्वकादंशार्तिकश्चिद्धत्वोपजीवनम् ॥ ७ ॥ अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपाजितम् । स्वयमीहितलब्धं तत्राकांभो दातुमर्हति ॥ ८ ॥

टीका—राजाके साथ जाने आदि कर्मसे धनके संचय करनेमें समर्थ जो भाइयोंके साधारण धनको नहीं चाहताहै वह अपने भागमेंसे कुछ थोडासा देकर भाइयों करि जुदा करने योग्यहै इस्से उसके पुत्र कालांतरमें उस धनमें विवाद नहीं करि सकते हैं ७ पिताके धनको स्वर्च न करिके जो खेति आदि क्लेशसे संचय करै तौ उस अपनी चेष्टासे प्राप्त धन इच्छाके विना भाइयोंको नहीं देने योग्यहै ८

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाभुयात् ॥ न तत्पुत्रैर्भजत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ ९ ॥ विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्धुनयदि ॥ संमस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥

टीका—पिता करि असमर्थ होनेके कारण उपेक्षा करनेसे नहीं प्राप्त हुए पि-

ताके धनको जो पुत्र अपनी सामर्थ्यसे ले तौ उस अपने संचित धनका इच्छाके विना पुत्रोंसाथ न विभाग करै ॥ ९ ॥ पहले उद्धार समेत अथवा विना उद्धारके वंटे हुए भाई धनको इकट्ठा करि साथ रहके जीविका करते हुए जो फिरि वाँट करै तौ वहाँ बराबर वाट करना चाहिये जेठेको उद्धार न देना चाहिये ॥ २१ ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीर्येतांशप्रदानतः ॥ त्रियेतान्यतरो वा  
पि तस्य भागो न लुप्यते ॥ ११ ॥ सोदर्या विभजेरस्तं समेत्य सहि  
ताः समम् ॥ भ्रातरो ये च संमृष्टा भंगिन्यश्च सर्वाभयः ॥ १२ ॥

टीका—जिन भाइयोंमें कोई विभागके समय संन्यास आदि करि अपने भागसे हीन होजाय अथवा मरजाय तौ उसका भाग लुप्त नहीं होताहै ॥ ११ ॥ सगे भाई मिलि करि और सगी वहिनै इकठे रहते होंय तौ उस भागको बराबरि करि वांटि लेवैं सगों और सौतेलोंमेंसे जो मिलाये हुए धनके कारण योगक्षे मको वांटि लेवैं न सबसगे न सौतेले यह तौ पुत्र पत्नी और माता पिताके न होनेमें जानना चाहिये ॥ १२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिर्कुर्वीत लोभाद्भ्रातृन्यवीयसः ॥ सोऽज्येष्ठः स्याद्  
भागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥ १३ ॥ सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति  
भ्रातरो धनम् ॥ नर्चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १४

टीका—जो जेठा भाई लोभसे छोटे भाइयोंको धोखा दे वह जेठे भाईकी पूजासे रहित और उद्धार सहित भागसे रहित हो राजाके दंडयोग्य होय ॥ १३ ॥ नहीं पतितभी जे भाई जुवां तथा वेश्याकी सेवा आदि कुकर्मोंमें लगे हुए बे धन पानेके योग्य नहीं हैं और छोटोंके विना दिये जेठा साधारण धनसे अपने लिये मुख्य धन न करै ॥ १४ ॥

भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥ न पुत्रभागं विषमं पि  
ता दद्यात्कथंचन ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पितृभ्यमेव हरेद्धनं  
म् ॥ संमृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत सतैः सह ॥ २१६ ॥

टीका—पिताके साथ स्थित विना वंटे हुए भाइयोंका जो साथ धनसंचय करनेके लिये उत्थान होय तौ वाटनेके समय किसी पुत्रको पिता अधिक न देवै ॥ १५ ॥ जब जीवते हुए पिता करि पुत्रोंका इच्छासे विभाग किया गया होय

तब विभागके उपरान्त उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके मरनेपर पिताहीके धनको लेवै और जिन्होंने वटे हुए पिताके साथ फिर धनको मिलाया होय उनके साथ वह पिताके मरनेपर विभाग करै ॥ १६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवामुयात् ॥ मातर्यपि च वृत्तायां  
पितुमाता हरेद्धनम् ॥ १७ ॥ ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथा  
विधि ॥ पश्चाद्दृश्येत र्यत्किञ्चित्सर्वं समंतां नयेत् ॥ १८ ॥

टीका—अपत्य रहित पुत्रका धन माता ग्रहण करै और माताके मरनेपर पत्नी पिताके भाई और उनके पुत्रोंके होनेपर पिताकी माता अर्थात् दादी धनको लेवै ॥ १७ ॥ पिता आदि करि लिये हुए सब ऋणमें तथा धनमें शास्त्रके अनुसार विभाग होनेपर जो कुछ पिताका ऋण धन विभागके समय विना जाना निकले वह सब बराबर करके वांटना चाहिये शोधन करनेयोग्य न लेना चाहिये और न जेठेको उद्धार देना चाहिये ॥ १८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः । योगक्षेमं प्रचारं च न विभां-  
ज्यं प्रचक्षते ॥ १९ ॥ अयमुक्तो विभागोर्वः पुत्राणां च क्रिया-  
विधिः । क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्म निबोधत ॥ २० ॥

टीका—वस्त्र वाहन और आभरण साझेके समयमे जो जित करि भोगा गया वह उसीका है वाटने योग्य नहीं हैं यह तौ अतिन्यून तथा अधिकमूल्यविषयक नहीं है और जो बहु मूल्य आभरण आदि है वह तौ वाटनेही योग्य है और कृतान्न कहिये भात सत्तु आदि सो नहीं वाटने योग्य है उदक कहिये कुवा आदिमें स्थित जल सर्वो करि भोगने योग्य है वाटने योग्य नहीं है और स्त्रियां कहिये दासी आदि जिनका बराबर भाग नहीं रोता है वे नहीं वाटने योग्य हैं किंतु बराबर काम करवाने योग्य हैं और योगक्षेम कहिये मंत्री पुरोहित आदि और प्रचार कहिये गौ आदिके प्रचारका मार्ग इन सबको मनु आदि अविभाज्य कहिये नहीं वाटने योग्य कहते है ॥ १९ ॥ यह क्षेत्रज आदि पुत्रोंका दायभाग अर्थात् क्रमसे विभाग करनेका प्रकार तुमसे कहा अब द्यूत कहिये जुवाकी व्यवस्था सुनिये २०

द्यूतं समाह्वयं चैवं राजा राष्ट्रान्निवारयेत् । रंज्यान्तकरणावेतौ  
द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २१ ॥ प्रकाशमेतत्तार्स्कर्यं यद्देवंस-  
माह्वयौ । तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२ ॥

टीका—जिनके लक्षण आगे कहेंगे ऐसे द्यूत और समाह्वय कहिये प्राणि द्यूत इनको राजा अपने देशसे दूर करै जिस्से ये दोनो दोष राजाके राज्यके विनाश करनेवाले है ॥ २१ ॥ ये दोनो द्यूत और समाह्वय प्रत्यक्ष चोरी है तिस्से इनके निवारणमें राजा नित्य यत्न करता रहै ॥ २२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तैल्लोके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियते यस्तु  
सं विज्ञेयः समाह्वयः ॥२३॥ द्यूतं समाह्वयं चैवं यः कुर्यात्कारयेत्  
वा । तान्सर्वान्धातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २४ ॥

टीका—फांसा और शलाका आदि प्राण रहित वस्तुओंसे जो किया जाता है उसको लोकमें द्यूत कहते हैं और जो प्राणी कहिये मेढा मुरगा आदिसे दाव लगाकै किया जाताहै उसको समाह्वय जानिये लोकमें प्रसिद्ध इन दोनोंके लक्षणोंका कहना त्यागके लिये हैं ॥ २३ ॥ द्यूत और समाह्वयको जो करे और जो अधिष्ठाता होकै करावै उन दोनोंके अपराधकी अपेक्षासे राजा हथ काटना आदि वध करै और यज्ञोत्पवीत आदि ब्राह्मणोंके चिन्ह धारण करनेवाले शूद्रोंको मारै ॥ २४ ॥

कितवान्कुशीलवान्कूरान्पार्षण्डस्थांश्च मानवान् । विकर्मस्था-  
शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निवासयेत्पुरात् २५ एते राष्ट्रवर्तमानाराज्ञः  
प्रच्छन्नतस्कासाः।विकर्मक्रियया नित्यं बांधन्ते भद्रिकाःप्रजाः२६

टीका—द्यूत आदिके सेवन करनेवालोंको नाचनेवालोंको गानेवालोंको और बेदसे द्वेष करनेवालोंको और श्रुतिस्मृतिसे वाहरी व्रतधारण करनेवालोंको और आपत्तिके विना पराये कर्मसे जीविका करनेवालोंको और मद्यबनानेवालोंको राजा शीघ्रही अपने देशसे निकाल देवै २५ये कितव आदि छुपे हुए चोर राजाके देशमें बसते हुए नित्य छलनेकी क्रियासे सज्जनोंको पीडा देते हैं ॥ २६ ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् । तस्माद्द्यूतं न सेवेत ही-  
स्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २७ ॥ प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत  
योनैः । तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २८ ॥

टीका—अभी यह नही किंतु पहले कल्पमेंभी यह द्यूत अतिशय करि वैर करनेवाला देखा गयाहै इस्से बुद्धिमान् हंसीके लियेभी उसका सेवन न करै ॥२७॥ जो मनुष्य उस द्यूतका गुप्त अथवा प्रकट सेवन करता है उसको जैसी राजाकी इच्छा होय वेसा दंड होय ॥ २८ ॥

क्षत्रविद्यूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् । आनृण्यं कर्मणा गं  
च्छेद्विप्रौ दद्याच्छनैःशनैः॥२९॥ स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां  
च रोगिणाम् । शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विद्वर्ष्यार्षृपतिर्दमम्॥२३०॥

टीका—अब हारे हुएओंके धन न होनेपर यह कहते हैं ॥ क्षत्रिय वैश्य और  
शूद्रजातिमें उत्पन्न पुरुषके धन न होनेसे धन देनेको न समर्थ होय तौ उससे उस-  
के योग्य कर्म करवाके धनका सोधन करै और ब्राह्मण तौ जैसा मिलता जाय  
वैसा क्रमसे देता जाय कर्म करवानेयोग्य नहीं है ॥२९॥ स्त्री बालक वृद्ध उन्मत्त  
दरिद्री और रोगियोंको शिफा वांसका खंड और रस्सी आदि करि बांध-  
ने आदिसे राजा दण्ड करै ॥ २३० ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्याणाम् ॥ धनोष्मणां प  
च्यमानास्तांनिःस्वान्कारियेन्नृपः॥३१॥ क्रूटशासनकर्तृश्च प्रकृती  
नां च दूर्षकान्॥स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्विद्विसेविनस्तथा॥३२॥

टीका—जे व्यवहार आदिके देखने अर्थात् निर्णय करनेमें राजां करि नियत  
किये हुए उत्क्रोच धन कहिये घूसि लेनेसे तथा तेजीसे बिगड कर अर्थी आदिके  
कामको बिगाडै राजा उनका धन आदि सर्वस्व छीन लेवै ॥ ३१ ॥ छलसे  
राजाकी आज्ञा (हुक्म) लिखनेवालोंको और स्त्री बालक तथा ब्राह्मणके  
मारनेवालोंको और शत्रुकी सेवा करनेवालोंको राजा मार डालै ॥ ३२ ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ॥ कृतं तद्धर्मतो विद्यो  
न्न तद्द्रूयो निर्वर्तयेत्॥३३॥ अर्मात्याः प्राद्विवाको वा यत्कुर्युः का  
र्यमन्यथा ॥ तत्सर्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत्॥३४॥

टीका—जहां ऋणदान आदि व्यवहारमें जिस कार्यका शास्त्रकी व्यवस्थासे  
निर्णय होगया होय और कहे हुए दण्ड तक जो पहुंचि गया होय उस किये  
हुएको अंगीकार करै फिरि न लौटावै यह विनाकारण कि हुएकी व्यवस्थाहै इ-  
स्से कारणसे किये हुएको तौ लौटावै ॥ ३३ ॥ राजाके मंत्री अथवा प्राद्विवाक  
व्यवहारके देखनेमें नियत किये हुए जो भली भांति निर्णय न करै तौ राजा  
अप करै और उनपर हजार पण दंड करै यह तौ घूसिका धन न लेनेमें कहा-  
है उसको तौ पहले कह चुके हैं ॥ ३४ ॥



ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगुः ॥ एते सर्वे पृथक् ज्ञेया  
महापातकिनो नराः ॥ ३५ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्व  
ताम् ॥ शरीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—ब्रह्महा कहिये ब्राह्मणका मारनेवाला मद्यका पीनेवाला अर्थात्  
पैठीका पीनेवाला द्विजाति और पैठी माध्वी तथा गौडीका पीनेवाला ब्रा-  
ह्मण और ब्राह्मणका सुवर्ण चुरानेवाला तस्कर और गुरुकी स्त्रीसे गमन करने  
वाला ये सब प्रत्येक महापातकी जाननेयोग्यहैं ॥ ३५ ॥ प्रायश्चित्त कर-  
नेवाले इन चारो महा पातकियोंको शरीरसंबंधी और धनके ले लेनेसे धनसंबं-  
धी अपराधके अनुसार धर्मयुक्त आगे कहे हुए दण्डको करै ॥ ३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुरार्ध्वजः ॥ स्तेये च श्वर्षदं का  
यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ ३७ ॥ असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपा  
ठ्याविवाहिनः ॥ चरैर्युः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ३८ ॥

टीका—नांकर्याराज्ञाललाटेस्युः अर्थात् राजा करि ललाटमें नअंकनकरने  
योग्यहैं यह आगे कहाहै इस्से ललाटही अंकनका स्थान जाना जाताहै वहां गु-  
रुपत्नीसे गमन करनेवालेके ललाटमे तपे हुए लोहसें जीवने तक रहनेवाले भगकी  
आकृति गुरुकी पत्नीसे गमनका चिन्ह करै ऐसेही मदिरापान करनेपर पीनेवालेके  
लंबा सुराध्वजके आकार चिन्ह करै और सोना चुरानेपर चुरानेवालेके माथेमें  
कुत्तेके पैरका और ब्राह्मणकी हत्या करनेवालेके कबंध पुरुषका अर्थात् विना  
शिरके पुरुषका चिन्ह करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इनको अन्न आदि न भोजन क-  
रावै और न इनको यजन करावै और न इनको पढावै और इनके साथ कन्या-  
दान अदि संबंध न करना चाहिये ये तौ निर्द्धन होनेसे याचन आदि दीनता-  
युक्त और सब श्रौत आदि कर्मोंसे रहित पृथिवीमें भ्रमण करै ॥ ३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दर्या निर्नम-  
स्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ प्रायश्चित्तं कुर्वाणाः सर्ववर्णा  
यथोदितम् ॥ नांकर्याराज्ञां ललाटेस्युर्दीप्यास्तू तमसांहसन् २०

टीका—ज्ञातिके मनुष्यों करि तथा मामा आदि संबंधियों करि ये अंक कि-  
ये हुए पुरुष छोडनेयोग्यहैं इनके ऊपर दया न करनी चाहिये और न ये नम-

स्कार करनेयोग्यहैं ग्रह मनुकी आज्ञाहै ॥ ३९ ॥ शास्त्रमें कहे हुए प्रायश्चित्तके करनेकाले ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण ललाटमें नही अंक करनेयोग्य हैं किंतु उत्तम साहस दंड करने योग्यहैं ॥ २४० ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैवै कार्यो मध्यमसाहसैः॥विवांस्यो वा भवेद्राष्ट्रा-  
त्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥ ४१ ॥ इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्य-  
कामतः ॥ सर्वस्वहारमहन्ति कायतस्तु प्रवासनम् ॥ ४२ ॥

टीका—इतरे कृतवन्तस्तु इस आगेके श्लोकमें कहा हुआ अकामतः यह यहां-  
भी योजना करनी चाहिये तिस्से अकामसे किये हुए इन् अपराधोंमें गुणवान्  
ब्राह्मणको मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये और पहले कहा हुआ उत्तम साहस  
निर्गुणीके लिये जानना चाहिये, और कामसे इन अपराधोंमें धनधाम्य आदि  
सामग्री समेत ब्राह्मण देशसे निकालनेयोग्य है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणसे अन्य क्षत्रिय  
आदि इन पापोंको विना इच्छाके करै तौ सर्वस्व हरनेके योग्य है और इच्छा-  
से इनके इन अपराधोंमें प्रवास कहिये वधके योग्यहैं ॥ ४२ ॥

नाददीर्तं नृपैः साधुमहापातकिनो धनम् ॥ आददानस्तु तल्लो-  
भात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ ४३ ॥ अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायो-  
र्पादयेत् ॥ श्रुतवृत्तोर्षपत्रे वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥

टीका—धार्मिक राजा दण्डरूप इन महापातकियोंके धनको न लैवै और  
लोभसे लेता हुआ महापातक दोषका संसर्ग होताहै ॥ ४३ ॥ फिरि वह दण्ड-  
का धन कहां जाय इस लिये कहते हैं ॥ उस दण्डके धनको नदी आदिके जलमें  
डालकर वरुणको देवै अथवा शास्त्र तथा उत्तम चरित्रयुक्त ब्राह्मणको देवै ॥ ४४ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥  
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ४५ ॥

टीका—महा पातकीके दण्डके धनके स्वामी वरुणहैं जिस्से दंडधारी होनेके  
कारण राजाओंकेभी स्वामी हैं तैसेही सब वेदोंका पढनेवाला ब्राह्मण सब जग-  
तका प्रभुहै इस्से प्रभुत्वसे वे दोनो दंडके धनके योग्यहैं ॥ ४५ ॥

यत्र वैजयते राजा पापकृद्भ्यो धनो गमम् ॥ तत्र कालेन जायन्ते मा-  
नवा दीर्घजीविनः ॥ ४६ ॥ निष्पद्यन्ते च संसृतानि यथोक्तानि विशां

पृथक् ॥ बालांश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥ ४७ ॥

टीका—जिस देशमें राजा महापातकीके धनको नहीं लेताहै वहां परिपूर्ण कालसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं और दीर्घ आयुके होते हैं और वैश्योंके जैसे धान आदि शस्य बोये जातेहैं वैसेही पृथक् पृथक् उत्पन्न होते हैं और अकालमें बालक नहीं मरते हैं और अंगभंग कोई प्राणी नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणान्वाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ॥

हन्याच्चि त्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ ४८ ॥

टीका—शरीरकी पीडा और धन लेने आदिसे ब्राह्मणको इच्छासे बाधा देनेवाले शूद्रको हाथ काटने आदि दुःख देनेवाले वधके उपायोंसे राजा मारे ४८

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥ अर्धमो नृपतेर्दृष्टो  
धर्मस्तु विनिर्यच्छतः ॥ ४९ ॥ उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवद्  
मानयोः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

टीका—शास्त्रसे अवध्यके मारनेमें जितना अधर्म होताहै उतनाही मारनेयोग्यके छोड़नेमेंभी शास्त्रके अनुसार दंड देते हुए राजाका धर्म होताहै तिस्से उसको करै ॥ ४९ ॥ ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें परस्पर विवाद करनेवाले अर्थो प्रत्यर्थाका यह कार्यनिर्णय विस्तारसे कहा ॥ १० ॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ॥ देशानलब्धांल्लिप्से  
तं लब्धांश्च परिपालयेत् ॥ ५१ ॥ सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्ग  
श्च शास्त्रतः ॥ कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

टीका—इस कहे हुए प्रकारसे धर्मयुक्त व्यवहारोंका निर्णय करता हुआ राजा प्रजाकी प्रीतिसे नहीं पाये हुए देशोंके लेनेकी इच्छा करै और पाये हुए देशोंकी भली भांतिसे रक्षा करै ॥ ५१ ॥ जांगल सम्यसंपन्न इस कही हुई रीतिसे जो भली भांति आश्रित देशहै उसमें सातमें अध्यायमें कहे हुए प्रकारसे किला बनाकर चोर साहसिक आदि कंटकोंके दूरि करनेमें सदा बड़ा यत्न करै ॥ ५२ ॥

रक्षणौदार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥ नरेन्द्रास्त्रिर्दिवं या  
न्ति प्रजापालनतत्पराः ॥ ५३ ॥ अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृ

ण्हातिं पार्थिवः ॥ तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ ५४ ॥

टीका—जिसे साधु आचरणवालोंकी रक्षा करने और चोर आदिकोंको दंड देनेसे प्रजाके पालनेमें उद्योग युक्त राजा स्वर्गको जाते है तिससे कंटको के उखाडनेमें यत्न करै ॥ ५३ ॥ जैसे फिरि राजा चोर आदिकोंको न दूरि करता हुआ छटा भाग आदि कहे हुए करको लेताहै उसपर देशकी वसनेवाले मनुष्य क्रोधित होतेहैं और दूसरे कर्मोंसे प्राप्त हुईभी उसकी स्वर्गकी गति इस पापसे रुकि जाती है ॥ ५४ ॥

निर्भयं तु भवेत्स्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ॥ तस्य तद्वर्धते नित्यं  
सिच्यमान इव द्रुमः ॥ ५५ ॥ द्विविधास्तस्करान्विद्यात्परद्रव्याप  
हारकान् ॥ प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारुक्षुर्मही पतिः ॥ ५६ ॥

टीका—जिस राजाके बाहुबलके आश्रयसे देश चोर आदिकोंके भयसे रहित होताहै उसका वह देश नित्य ऐसे वृद्धिको प्राप्त होताहै जैसे जलके सीचनेसे वृक्ष ॥ ५५ ॥ चार कहिये दूतही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा दूतोंहीके द्वारा प्रकट तथा गुप्त दो भांतिके पराये धनके लेनेवालोंको जानै ॥ ५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥

प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनादविकारदयः ॥ ५७ ॥

टीका—उन चोर आदिकोंमेंसे जो तराजु वांट आदिके घाटि होनेसे सुवर्ण आदि बेचनेकी वस्तुके बेचने वाले पराये धनको लेते हैं वे खुले ठगनेवाले चोर हैं और सेंधिके फोडने आदिसे तथा वनके रहनेवाले जे लूटिसे पराये धनको लेते है वे गुप्त चौरहै ॥ ५७ ॥

उत्कोचकांश्चौपधिकान् वञ्चकाः कितर्वास्तथा ॥ मङ्गलादेशवृत्ता  
श्च भद्राश्चक्षणिकैः सह ॥ ५८ ॥ असम्यक्कारिणश्च वमहामात्रा  
श्चिकित्सकाः ॥ शिल्पोपचारियुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ ५९ ॥  
एवमादीन्विजानीर्यात्प्रकाशांल्लोककण्टकान् ॥ निमूढचारिणश्चा  
न्याननार्यानार्यालिङ्गिनः ॥ २६० ॥

टीका—घूसि लेनेवाले जे कार्यों जे मुकद्दमेवाले हैं उनसे धन लेकर अयोग्य कार्य करते हैं और औपधिक जे भय दिखाकै छलते हैं और वंचक जे सुवर्ण

आदि द्रव्यको लेकर घटकी द्रव्य ढालकर छलते हैं और रकितव जे द्यूत तथा प्राणिद्यूतसे खेलते हैं और जे धन पुत्र लाभ आदि मंगलोंकी ममताको कहकर जीविका करते है वे मंगलादेशवृत्तहै और जे कल्याण करनेवाले आचारोंसे पापोको छुपकै धन लेते है वे भद्रहैं और जे हाथोंकी रेखा आदिके देखनेसे शुभअशुभ फल कहिकै जीविका करते हैं वे ईक्षणिक हैं और जे हाथीकी शिक्षासे जीवते हैं वे महामात्रहैं और जे चिकित्सासे जीविका करते है वे चिकित्सकहैं महामात्र और चिकित्सक ये नो असम्यक्कारी अर्थात् अच्छा काम करनेवाले नहींहैं और शिल्पोपचारयुक्त कहिये जे चित्रके लिखने आदि उपायसे जीवते हैं नियुक्त किये गये ये भी शिल्पका उत्साह दिला करि धनको ले लेते हैं और पराय स्त्री कहिये केश्याभी दूसरेके दश करनेमे चतुर होती हैं इत्यादि खुले हुए लोकके छलने वालोंको राजा चारोंके द्वारा जानै तथा और भी गुप्त रूपसे विचूरनेवाले शूद्र आदिकोंके जो ब्राह्मण आदिकोंका वेष धारण करते हैं उनको धन हरनेवाले जानै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ २६० ॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गुणैस्तत्कर्मकारिभिः॥ चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्सह्यं वंशमानयेत् ॥ ६१ ॥ तेषां दोषानभिर्याप्य स्वस्वे कर्मणि तत्त्वतः॥ कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः॥ ६२ ॥

टीका—उन कहे हुए वंचकोंको गुप्तरूप सभाके मनुष्योंके द्वारा तथा उस कामके करनेवाले सम्य मनुष्योंके द्वारा जैसे बनियोंकी चोरीको बनियोंके द्वारा इत्यादिक पुरुषोंकरि तथा इनसे भिन्न सातमें अध्यायमें कहे हुये कापटिक आदि आदि अनेक स्थानोंमें स्थित चारोंके द्वारा जानि उत्सादन करिके अपने वंशमें करै ॥ ६१ ॥ उन प्रकट तथा गुप्त तस्करोंके अपने कर्म चोरी आदिमें संधि फोडने आदि पारमार्थिक दोषोंको लोकमें उनसे कहवाय उनके समीपके धन तथा शरीर आदिके सामर्थ्यकी अपेक्षासे तथा अपराधकी अपेक्षासे उनपर राजा दंड करै ॥ ६२ ॥

न हि दण्डादृते शक्यैः कर्तुं पापविनिग्रहः ।

स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ ६३ ॥

टीका—जिस कारणसे चोरोंका और विनीत वेषसे पृथिवीतलमें विचरनेवाले पाप करनेकी बुद्धिवाले मनुष्योंका दंडदेनेके विना पाप क्रियामें नियम नहीं हो सकताहै इस्से इनको दंड दैवै ॥ ६३ ॥

सभाप्रपापू पशालवेशमद्यान्नविक्रयाः । चतुष्पंथाश्चैत्यवृक्षाः स-  
 माजाः श्रेक्षणानि च ६४ ॥ जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेश-  
 नानि च । शून्यानि चाप्यंगाराणि वनान्युपवनानि च ॥ ३५ ॥  
 एवंविधानृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः । तस्करप्रतिषेधार्थं  
 चौरैश्चाप्यनुचारयेत् ॥ ६६ ॥

टीका—सभा अर्थात् ग्राम नगर आदिमें नियत जनोके समूहका स्थान तथा  
 ग्याऊ और पूषोंकी शाला जहां पूआ विकते हैं वेइयांका स्थान, और मद्यके त-  
 था अन्नके विकनेका स्थान, चौराहे, तथा प्रासद्ध वृक्षोंके मूल और जनसमूहके  
 स्थान, पुरास्त्री फुलवाडी, वन, कारीगरोंके घर कहिये कारुखाने, शून्यघर, आम  
 आदिके बाग, और बनाये हुए वन, ऐसे स्थानोंको राजा स्थावर जंगम कहिये  
 एक स्थानमें ठहरी हुई और चलती हुई पयादोंकी सेनाको तथा अन्य दूतोंको  
 वोरोंके निवारणके लिये भेजे बहुधा ऐसे स्थानोंमें अन्नपान तथा स्त्री संभोग  
 आदि के दूढनेके लिये चोर वसते है ॥ ६४ ॥ ६५ ६६ ॥

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः । विद्यादुत्सादयेच्चैवं निपुणैः  
 पूर्वतस्करैः ॥ ६७ ॥ भक्ष्यभोज्यांपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।  
 शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समांगमम् ॥ ६८ ॥

टीका—उनकी सहायता करनेवाले और उनके चरित्रोंके समान चरित्र करनेवाले  
 और संधि फोडने आदि कामोंके जाननेवाले चोरों की मायामें निपुण दूतरूप पहले  
 वोरोंसे अन्य चोरोंको जानै और उनके दूरि करनेका प्रबंध करै ६७ दूत हुए वे  
 पहले चोर और चोरोंसे ऐसे कहैं कि आइये हमारे घर चलिये वहां लड्डू खीर  
 आदि खावै ऐसे भक्ष्य भोज्यके वहांसे और हमारे देशमें एक ब्राह्मण है वह चाही  
 हुई अर्थसिद्धिको जानताहै उसको देखैं ऐसे ब्राह्मणोंके दर्शनोंसे और कोई अके-  
 लाही बहुतोंके साथ युद्ध करैगा उसको देखैं इस भांति शौर्य कर्मके वहानेसे उन  
 वोरोंसे राजाके दंड धारण करनेवाले पुरुषसे मेल करैं और उनको प्रकडवा देवै ६८

ये तत्र नोपसर्पयुर्मूलप्रणिहितांश्च ये । तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्स-  
 मित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ ६९ ॥ न होठेन विना चौरं चातयेद्दार्मिकं  
 नृपः । सहोढं सोपकरणं चातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥

टीका—जे चोर वहाँ भक्ष्य भोज्य आदिमें पकड़े जानेकी शंकासे न आवैं और जे मूल कहिये राजकरि नियुक्त पुराने चोरोंके समूहमें सावधान हो उन-के साथ संगति न करै उनको उन्ही पुराने चोरोंके द्वारा जानि उनमें मिले हु-ए मित्र पिता आदि और जाति स्वजन समेत बलसे पकड़ कर मारै ॥ ६९ ॥ धर्मत्मा राजा चुराई हुए द्रव्यके संधि फोड़ने आदिको उपकरण कुदाली आ-दिके बिना चोरपनका निश्चय विना किये न मारै किंतु चुराई हुई द्रव्यसे और चोरीकासामग्रीसे चोरपनका निश्चय करि विना विचारके मारै ॥ २७० ॥

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः। भाण्डार्थकाशदाश्चै  
वसंवास्तानपि घातयेत् ७१ राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्स्वामन्तांश्चैव  
चोदितान् । अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिवं द्रुतम् ७२

टीका—ग्राम आदिकोंमेंभी जे कोई चोरोंका चोरपन जानिके भोजन देते हैं और चोरीके उपयोगी भांड आदिके रखनेको स्थान देते हैं उनकोभी अपरा-धी जानि राजा मरवावै ॥ ७१ ॥ जे देशोंमें रक्षाके लिये रक्खे गये हैं और जे समीपके समीप बसनेवाले क्रूर न होकर चोरीके उपदेश करनेसे मध्यस्थ होय उनको चोरके समान शीघ्र दंड देवै ॥ ७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवर्नः । दण्डितैर्व तं प्योषेत्स्व-  
काद्रमार्द्धि विच्युतम् ॥७३॥ ग्रामघाते हितांभङ्गे पथि मोषाभि-  
दर्शने । शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥७४॥

टीका—यजन कराना तथा दान लेने आदिसे दूसरेके यज्ञ आदि धर्मको उ-त्पन्न करि जो जीवताहै वह धर्मजीवी ब्राह्मण जो धर्मकी मर्यादासे बाहर हो-जाय तौ अपने धर्मसे भ्रष्ट हुए उसकोभी राजा दंडसे पीडा देवै ॥ ७३ ॥ चोर आदि करि ग्रामके लूटने और जलको बांध तोड़नेपर और स्वतंत्र उत्पन्न धा-न्यको नाश करने तथा मार्गमें चोरके देखनेपर—उनके समीपके जे अपने शक्तिके अनुसार रक्षा न करै उनको राजा शय्या और गौ आदि पशुओं समे-त देशसे निकाल देवै ॥ ७४ ॥

राज्ञः कोपापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥ घातयेद्विर्विधैर्द-  
ण्डैररिणां चोपजापकान् ७५ संधि छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्व-  
न्ति तस्कराः। तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ७६

टीका—राजाके भंडारसे धनके चुरानेवालोंको तथा राजाकी आज्ञाके न माननेवालोंको और शत्रुओंका राजासे वैर बढवानेवालोंको अपराधके अनुसार हाथ पांव जीभ काटने आदि नाना प्रकारके दंडोंसे मरवावै ॥ ७९. ॥ जे चोर रातिमें सेंधि फोडकर पराये धनको चुराते हैं राजा उनके दोने हाथ कांटिके उनको सूझीपर चढावै ॥ ७६ ॥

अङ्गुली ग्रंथिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ॥ द्वितीये हस्तचरणौ तृ-  
तीये वधमर्हति ॥ ७७ ॥ अग्निदान्मक्तदांश्चैवं तथा शस्त्रावकाश-  
दान् ॥ संनिधातृंश्च मोर्षस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ ७८ ॥

टीका—वस्त्रके किनारे आदिमें बंधे हुए सुवर्णको जो गांठि खोलकै चुराता है वह ग्रंथिभेदक अर्थात् गंठिकट्ट होताहै उसके पहले द्रव्य लेनेमें अंगुली कहिये अंगुठा और तर्जनी कटावादे और दूसरी बार लेनेमें हाथ पांव दोनो कटवा दे और तीसरी बार लेनेमें वधके योग्य होते हैं ॥ ७७ ॥ ग्रंथिभेदकों कहिये गंठिकट्टोंको जानिकै आगि भोजन और शस्त्र रखनेके लिये स्थान देनेवालोंको तथा चोरीका धन रखनेवालोंको राजा चोरके समान दंड देवै ॥ ७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ॥ यद्वापि प्रतिसंस्कर्त्यादा-  
प्यस्तूत्तमसाहसंम् ॥ ७९ ॥ कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ॥  
हस्त्यश्वरथहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ २८० ॥

टीका—जो स्नान आदिसे मनुष्योंके उपकार करनेवाले तलावको बांध आदिके तोडनेसे विगाहैं उनको जलमें डुबवाकै अथवा और प्रकारसे मारै अथवा जो तडागका फिरि संस्कार करै उसको उत्तम साहस रूप हजार पण दंड देवै ॥ ७९ ॥ राजाके कोठार और धन तथा शस्त्रोंके घरके फोडनेवालोंको और बहुत धनके स्वरचसे बननेयोग्य देवालय आदिके फोडनेवालोंको और हाथी घोडा तथा रथ चुरानेवालोंको शीघ्रही मारै ॥ २८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥ आंगमं वाप्यपां भि-  
द्यात्संदाप्यः पूर्वसाहसंम् ॥ ८१ ॥ समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्तुर्वमेध्य-  
मनापदि ॥ सद्रौ कार्पापणौ दद्यादमेध्यं चांशु शोधयेत् ॥ ८२ ॥

टीका—जो फिरि प्रजाके लिये पहले किसीकारे बनाये हुए तलावके जल-



ही ले ले-तलावके सब जलके नाश करनेमें पहले कहा हुआ व्रथ दंड करना योग्य है और जो बांध बांधि करि जलके मार्गका नाश करता है उसपर प्रथम साहस दंड करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगी न होनेपर राजभार्गमे विष्टां करै वह दो कार्षीपण दंड देवै और अपवित्रको शीघ्रही दूरि करै ॥ ८२ ॥

आपद्रुतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा ॥ परिभार्षणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥ ८३ ॥ चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ॥ अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ ८४ ॥

टीका—रोगी वृद्ध गर्भिणी और बालक ये दंड देनेयोग्य नहीं हैं किंतु उनसे ऐसे कहना चाहिये कि तुमने यह क्या किया और अपवित्र शुद्ध कराने-योग्य हैं यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८३ ॥ सब कायशल्यभिषज अर्थात् चिरीफारी करनेवाले वैद्य जो दुष्ट चिकित्सा करै तो उनको दंड देना चाहिये वहां गौ घोडा आदिकी दुष्ट चिकित्सा में प्रथम साहस दंड है और मनुष्यमें तो मध्यम साहस दंड योग्य है ॥ ८४ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥ प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ ८५ ॥ अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदेने तर्था ॥ मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ ८६ ॥

टीका—संक्रम कहिये जलके ऊपर जानेके लिये काष्ठ अथवा शिलाआदिसे बने हुए छोटे पुलको और ध्वज कहिये चिन्ह राजद्वार आदिमें और यष्टि पुष्करिणी आदिमें और प्रतिमा कहिये छोटी मट्टी आदिकी बनी हुई इन सबोंके नाश करनेवालेपर पांचसौ पण दंड करै और उस बिगाडे हुएको फिर नया बनावै ॥ ८५ ॥ शुद्ध वस्तुओंमें कम दासकी वस्तु मिलाकर दूषित करनेमें और नहीं तोड़नेयोग्य माणिक्य आदि मणियोंके तोड़नेमें और वेधनेयोग्य मोती आदि कोंके कुंठौर वेधनेमें प्रथम साहस दंड करना चाहिये और सबोंमें पराई वस्तुके नाश करनेमें दूसरी वस्तु आदिके देनेसे स्वामीका संतोष करना चाहिये ॥ ८६ ॥

सैमोर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ॥ समानुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ ८७ ॥ बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गं निवेशयेत् ॥ दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पार्षकारिणः ॥ ८८ ॥

प्रार्कारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ॥ द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ८९ ॥

टीका—बराबरि मोल देनेवालोंके साथ बढकी तथा घटकी वस्तु देनेसे जो विषमव्यवहार करताहै और बराबर मोलकी वस्तुको दे करि जो किसीकी बहुत मोलकी किसीकी थोडे मोलकी इस भांति विषम मोलको लेताहै वह अनुबंध विशेषकी अपेक्षासे प्रथम साहस अथवा मध्यम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ८७ ॥ बंधनगृह (जेलखाने) सब मनुष्योंके देखने योग्य राजा मार्गके समीप बनावै जहां बेडी आदि बंधनोंसे बंधे हुए भूखप्याससे दुखी और जिनके नख ढाढी मूछ आदि बाल बढे हुए दुबले पाप करनेवालोंको और पाप करनेवाले पाप न करनेके लिये देखें और राजा घर तथा शहरकेपर कोटेके फोडनेवालेको और उन्हीकी खाईके पूरनेवालेको और उनके द्वारोंके त्नेडनेवालेको शीघ्रही देशसे निकाल देवै ॥ ८८ ॥ ८९

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ॥

मूलकर्मणि चानात्ते कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

टीका—अभिचार होम आदि शास्त्रमें कहे हुए मारनेके उपायोंमें और जड खोदना पैरोकी धूलि लेने आदि लौकिक मारनेके उपायोंके करनेपर जो मरनेका फल न होय तौ दोसो पण दंड करना चाहिये और जो मरजाय तौ मनुष्यके मारनेका दंड करै ऐसे माता पिता स्त्री आदिसे भिन्न झूठी बातोंसे मोहित करि घन लेने आदिके लिये वस करनेमें और कृत्या कहिये नाना प्रकारके उच्चाटन आदिके करनेमें दोसो पण दंड करना चाहिये ॥ २९० ॥

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ॥ मर्यादाभेदकश्चैव विक्रैतं प्राभुयाद्दधम् ॥ ९१ ॥ सर्वकण्टकपापिष्टं हेमकारं तु पार्थिवः ॥ प्रवर्तमानमन्याये छेदयेत्तवर्षः क्षुरैः ॥ ९२ ॥

टीका—अबीजकहिये जलसे नही उगनेयोग्य धान आदिको उगनेके योग्य कहिकै जो बेचै अथवा घटिकी वस्तुको बहुतसी बढिकी वस्तुमें मिलिकै यह सब बढिकी है ऐसे कहिकै जो बेचै और जो ग्राम नगर आदिंकी सीमाका नाश करै वह नाक हाथ पांव कान काटिकै वधके योग्यहै ॥ ९१ ॥ सब कंटको में बहुतही पापी तौलमें छल करनेवाले और कसमे बदलकर घटिकी धातु मिलायके सोने आदिकी चोरि करनेवाले सुनारकी सब देहको छुरोंसे कटवायके खंड खंड करावदे ॥ ९२ ॥

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च  
राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥ स्वांम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं क्रोशद  
ण्डौ सुहृत्तथा ॥ सप्त प्रकृतयो ह्ये ताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जोतीजाती हुई भूमिकी हलकुदाली आदिके चुरानेमें और खड्ग आदि शस्त्रोंके तथा कल्याणघृत आदि औषधके चुरानेपर उपयोगकालसे दूसरे कालकी अपेक्षासे और प्रयोजनकी अपेक्षासे राजा दंड करै ॥ ९३ ॥ स्वामी कहिये राजा और अमात्य कहिये मंत्री आदि और पुर कहिये राजाका किया हुआ दुर्ग वसनेका नगर, और राष्ट्र कहिये देश, और कोश कहिये धनका समूह, और दंड कहिये हाथी रथ पर्यादे, और सातमें अध्यायमें कहे हुए तीनि प्रकारके मित्र, ये सप्त-प्रकृति कहिये. अंगहै इस्से यह राजा सप्तांग कहा जाताहै ॥ ९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं  
जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ ९५ ॥ सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य  
त्रिदण्डवत् ॥ अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते ॥ ९६ ॥

टीका—क्रमसे कहे हुए राज्यके इन सात अंगोंमें अगले २ की अपेक्षा पिछले २ को मारि जानै जैसे मित्रके व्यसनसे अपने बल कहिये सेनाका व्यसन मारि है क्योंकि संपन्न सेनाही की मित्रके अनुग्रहमें सामर्थ्य है ऐसेही सेनासे कोश भारीहै क्योंकि कोशके नाशमें सेनाकाभी नाश होताहै और कोशसे राष्ट्र भारीहै क्योंकि राष्ट्रके नाशमें कोशकी उत्पत्ति कहांसे होय ओर ऐसे राष्ट्र दुर्गका नाश क्योंकि घास ईंधन और रसादिसे भरे हुए दुर्गहीसे राज्यकी रक्षा होती है और दुर्गसे मंत्री भारी है क्योंकि प्रधान मंत्रीके नाशमें सब अंग विगडा जाते हैं और मंत्रीसेभी आत्मा भारी है क्योंकि सब आत्माहीके लिये है तिस्से अगलेकी अपेक्षासे पिछलेकी यत्नसे रक्षा करै ॥ ९५ ॥ त्रिदंडीके त्रिदंडके समान बंधे हुए इस कहे हुए राज्यके सातो अंगोंमें आपसमें विलक्षण उपकरण होनेके कारण कोईभी अंग अधिक नहीं होताहै यद्यपि पहले श्लोकमें पूर्वपूर्व अंगकी अधिकता कही तिसपरभी इन अंगोंमेंसे अन्य अंगका अपकार अन्य अंग नहीं कर सकताहै तिस्से आगे २ के अंगकी अपेक्षा करनी योग्यहै इस लिये यह अधिकताका निषेधहै यहां प्रसिद्ध यतीका त्रिदंडही दृष्टांतहै जैसे वह चार अंगुलके गौके वालोके लपेटनेसे आपसमें बंधे होते हैं और उनमेंसे त्रिदंड धारण शास्त्रार्थमें कोई दंड अधिक नहीं होता है ॥ ९६ ॥

तेषुतेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यतोयेन यत्साध्यते कार्यं तत्त-  
स्मिन्क्षेत्रे धूमुर्च्यते ॥९७॥ चारेणोत्साहयोगेन क्रियैव च कर्म-  
णाम् ॥ स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ ९८ ॥

टीका—जिस्से उन २ करने योग्य कार्योंमें वह वह अंग अधिकता युक्त होताहै  
क्योंकि उसका कार्य दूसरा नहीं करसकताहै ऐसे तौ जिस अंगसे जो काम हो-  
ताहै उसमें वही प्रधान कहा जाताहै तिस्से आपसमें जो गुणोंकी अधिकता आदि  
कही सो इस्से प्रकट की गई ॥ ९७ ॥ सातमें अंध्याग्रमें कहे हुए कापटिक आ-  
दिसे सेनाके उत्साहके योगसे और हस्तिबंध तथा वणिकूपथ आदिके करनेसे  
उत्पन्न हुई अपनी और शत्रुकी शक्तिको राजा सदा जानै ॥ ९८ ॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसंनानि तथैव च ॥ आरंभेत तंतः कार्यं  
संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ ९९ ॥ आरंभेतैव कर्माणि श्रान्तःश्रान्तः  
पुनः पुनः ॥ कर्माण्यारंभमाणं हि पुरुषं श्रीं निषेवते ॥३००॥

टीका—पीडन कहिये मारक आदि अपने तथा पराये चक्रमें उत्पन्न काम  
क्रोधसे उत्पन्न दुःखोको और उनके भारीपन तथा हलकेपनको विचारिके सं-  
धिविग्रह आदि कार्यका आरंभ करै ॥ ९९ ॥ राजा अपने राज्यकी वृद्धि और  
शत्रुकी हानि करनेवाले कर्मोंको जो बड़ी कठिनाईसे भी किये गये होय उन  
किये हुएभी कार्योंका आरंभ करिके आप खेदयुक्त होनेपरभी उनका वारंवार फि-  
रिभी आरंभ करै कारण यह है कि कर्मोंके आरंभ करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी  
बहुतही सेवन करती है ॥ ३०० ॥

कृतं त्रेतायुगं चैवं द्वापरं कलिरैव च ॥ राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि रा-  
जा हि युगमुर्च्यते ॥ १ ॥ कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रद्वार्यं यु-  
गम् ॥ कर्मस्वभ्युद्यतेस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ २ ॥

टीका—सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग ये राजाहीके चेष्टित विशेषहैं उन्ही  
से सत्य आदि विशेषोंकी प्रवृत्ति होती है तिस्से राजाही कृत आदि युग कहा  
जाताहै ॥ १ ॥ कैसा चेष्टित कृतआदि युगहै इसपर कहते हैं अज्ञान और आ-  
लस्य आदिसे जब राजा उद्योग रहित होताहै तब कलियुग है और जानते हु-  
एभी नहीं करताहै तब द्वापर और जब कर्म करनेमें अवास्थित होताहै तब त्रेता और

फिरि जब शास्त्रके अनुसार कभीको करता हुआ विचरताहै तब सतयुगहै तिससे राजाको कर्म करनेमें तत्पर होना चाहिये वहां यह तात्पर्य है वास्तविक कृत आदिका भेटना नहीं है ॥ २ ॥

इन्द्रस्याकस्य वायोश्च यमस्य वरुस्यस्य च ॥ चन्द्रस्याग्नेःपृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥३॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ॥ तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ४ ॥

टीका—इंद्र सूर्य वायु यम वरुण चंद्र अग्नि और पृथिवीके वीर्यके अनुरूप चरित राजा करै और राजा कंटकोंके उखाडनेसे प्रताप अनुराग करिके युक्त होताहै ॥ ३ ॥ कैसे इंद्र आदिका चरित करै इसपर कहते है ॥ ऋतु संवत्सर और पक्षका आश्रय लेकर यह कहा जाताहै ॥ जैसे श्रावण आदि चारि महीने शस्य आदिकी सिद्धिके लिये इंद्र वरसताहै ऐसे इंद्रके चरितको करता हुआ राजा अपने देशमें आये हुए साधुओंको वांछित अर्थसे पूर्ण करै ॥ ४ ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥ तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तर्त ॥ ५ ॥ प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ॥ तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ६ ॥

टीका—जैसे सूर्य अगहन आदि आठ महीने किरणोंसे थोडा २ रस थोडे तापसे ग्रहण करते है ऐसेही राजा शास्त्रमें कहे हुए करोंको पीडाके विना देशसे ग्रहण करै जिस्से यह सूर्यका व्रतहै ॥ ५ ॥ जैसे प्राणनाम पवन सब जीवोंमें भीतर प्रवेश करिके विचरता है, ऐसेही चारके द्वारा अपने पराई राज्यमंडलमें चिकीर्षित अर्थ जाबनेके लिये भीतर प्रवेश करना चाहिये जिस्से यह पवनका चरितहै ॥ ६ ॥

यथा यमः प्रियद्रेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ७ ॥ वरुणेन यथा पार्शैर्वद्ध एवाभिदृश्यते ॥ तथा पर्पापान्निगृह्णीयाद्र्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥ ८ ॥

टीका—यद्यपि यमके शत्रु मित्र नहीं है तिसपरभी उसके निंदक और पूजनोंका शत्रु मित्र कथनहै ॥ जैसे यम शत्रु मित्रके मरनेके समय तुल्यके समान दंड देताहै ऐसेही राजाको भी अपराधके समय रागद्वेषको छोडकर प्रजा शासन

करनेयोग्यहैं जिस्से यह यमका व्रतहैं ॥ ७ ॥ जो वरुणकी रस्सियोंसे बांधनेको इष्टहै वह जैसे पारशोंसे बंधाही हुआ दीखताहै वैसेही पापकरनेवाले जबतक न कुछ करसके तबतक शासन करै जिस्से यह इसका वरुणका व्रतहै ॥ ८ ॥

परिपूर्ण यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः॥ तथा प्रकृतयो यस्मि  
न्स चान्द्रव्रतिको नृपः॥९॥ प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पाप  
कर्मसु ॥ दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्रेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

टीका—जैसे चंद्रमाके देखनेसे मनुष्य हर्षित होते है ऐसेही मंत्रीआदि जिसके देखनेसे संतोषको प्राप्त होय वह चंद्राचारि राजाहै ॥ ९ ॥ पाप करने वालोंको दंड देनेमें सदा प्रचंड होय और प्रतिकूल मंत्रियोंका मारनेवाला होय यह इसका अग्निसंबंधी व्रत कहा गयाहै ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि  
विभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ११ ॥ एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमत्तं  
न्द्रितः ॥ स्तेनान् राजा निर्गृण्णीयात्स्वराष्ट्रे परं एव च ॥ १२

टीका—जैसे पृथिवी सब बडे छोटे स्थावर जंगम ऊंचे नीचेका समान करि-  
के धारण करती है ऐसेही विद्वान् धनवान् गुणवान् जीवोंको तथा इनसे भिन्न  
दीन अनाथ आदि सब जीवोंको रक्षा करने और धन देने आदिसे सामान्यता  
करि धारण करने वाले राजाका पृथिवीसंबंधी व्रत होताहै ॥ ११ ॥ इन कहे हु-  
ए उपायोंसे और अपनी बुद्धिसे उत्पन्न हुए बिना कहे हुएओंसे राजा आलस्य-  
रहित हो अपने देशमें जो चोर बसते होय और पराये देशके बसनेवाले अपने  
देशमें आके चोरि करते होय उन दोनो प्रकारके चोरोंको फकड़े ॥ १२ ॥

परामर्ष्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्नं प्रकोपयेत् ॥ ते ह्ये न कुपितां ह  
न्युः सद्यः सर्वलवाहनम् ॥ १३ ॥ यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरग्नेयश्च  
महोर्दधिः॥ क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् १४

टीका—कोशके क्षीण होने आदिसे बडी आपत्तिको प्राप्तभी राजा ब्राह्मणो-  
को क्रोधित न करै जिस्से क्रोधित हुए वे सेनावाहन समेत इसको शीघ्रही शाप  
तथा अभिचारसे मारिगे ॥ १३ ॥ जिन ब्राह्मणों करि अभिशापसे अग्नि सर्वभक्षी  
किया गया और असुंद्र नदी पिनेयोग्यहै जल जिसका ऐसा किया गया और चं-

द्रमा क्षीप्रता युक्त किया गया पीछे पूर्ण किया गया उनको कुपित करिके कौन नशको न-प्राप्त होय ॥ १४ ॥

लोकान्नन्यान्मृजेयुर्ये लोकपालाश्च कोपिताः ॥ देवान्कुंरुरदेवां  
श्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥ १५ ॥ यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लो  
का देवाश्च सर्वदा ॥ ब्रह्म चैव धनं येषां को हि स्यात्तान् जिजोविषुः

टीका—जे स्वर्ग आदि लोकोंको तथा लोकपालोंको दूसरे उत्पन्न कर सक-  
ते हैं औ देवताओंको शापसे मनुष्य आदि करते हैं उनको पीडा देकर कौन स-  
मृद्धिको प्राप्त होय ॥ १५ ॥ जिन यजन याजन करनेवाले ब्राह्मणोंका आश्रय  
ले करि अग्निमे छोडी हुई आहुति इस न्यायसे पृथिवी आदि लोक और देवता  
स्थितिको प्राप्त होते हैं और वेदही जिनके अभ्युदयका साधन होनेसे और या-  
जन अध्यापन आदिसे जिनके धनका उपायहै उनको जीवनेकी इच्छा करता  
हुआ कौन मारै ॥ १६ ॥

अविद्वांश्च विद्वांश्च ब्राह्मणो देवतं महत् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च य  
थाग्नि देवतं महत् ॥ १७ ॥ श्मशानेष्वपि तेजस्वी पांवको नैर्वदु  
ष्यति ॥ दूर्यमानश्च यज्ञेषु भूर्य एवाभिवर्धते ॥ १८ ॥

टीका—जो ऐसेहै तो विद्वान् ब्राह्मणका सेवन करै इसपर कहते हैं ॥ जैसे  
आहित और अनाहित अग्निवडी देवताहै ऐसेही मूर्ख तथा विद्वान् ब्राह्मण उत्कृ  
ष्ट देवता है ॥ १७ ॥ जैसे बडा तेजस्वी अग्नि श्मशानमें मुर्दोंके जलानेपरभी न-  
ही दूषित होताहै किंतु फिरिभी यज्ञोंमें होम किया गया बढताहै ॥ १८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥ सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परं  
मं देवतं हि तत् ॥ १९ ॥ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः  
ब्रह्मैव संनिर्यन्त स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ २० ॥

टीका—ऐसे ब्राह्मण यद्यपि संपूर्ण कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होताहै तिसपरभी  
सब भान्नि पूज्यहै कारण यह है कि वे उत्कृष्ट अर्थात् सबसे बडे देवताहैं ॥ १९ ॥  
ब्राह्मणोंको सब भान्ती पीडा देनेवाले क्षत्रियोंको शाप अभिचार आदिसे ब्राह्मणही  
दंड देनेवाले हैं जिसेसे क्षत्रिय ब्राह्मणसे हुआहै क्योंकि ब्रह्मकी वाहोसे उत्पन्नहै ३२०

अथोऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजं

स्वासु यो<sup>३</sup> निषु शान्म्यति ॥२१॥ नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म  
वर्धते ॥ ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥ २२ ॥

टीका—जल ब्राह्मण और पशुपाणसे अग्नि क्षत्रिय और शस्त्र उत्पन्न हुए उनका वेज सर्वत्र जलाना तिरस्कारकरना और काटना रूप कर्म करताहै अपने कारण जल ब्राह्मण और पाषाणमें दाहना तिरस्कार और छेदन रूप-कार्य नहीं करता है ॥ २१ ॥ शांति पुष्टता और व्यवहार देखना आदि धर्म न होनेसे ब्राह्मण रहित क्षत्रिय नहीं बढ़ताहै ऐसेही क्षत्रिय रहित ब्राह्मणवी नहीं-बढ़ता है क्योंकि रक्षा विना यज्ञ आदि कर्म नहीं होसकते हैं क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपसमें संबंध रखतेही हैं इस लोक तथा परलोकमें धर्म अर्थ काम तथा मोक्षकी प्राप्तिसे वृद्धिको प्राप्त होताहै दंडके प्रकरणमें तौ यह ब्राह्मणकी स्तुति है-अपराधीभी ब्राह्मणोंके लघु दंडके प्रयोगमें नियमके लिये है ॥ २२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रैभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥ पुत्रे राज्यं समासृज्य  
कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ २३ ॥ एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ॥  
हितेषु चैवं लोकस्य सर्वान् भृत्यान्नियोजयेत् ॥ २४ ॥

टीका—जब अनिष्टके देखनेसे अथवा चिकित्साके योग्य नहीं ऐसे रोगसे जब आसन्नमृत्यु होय तब महा पातकीके धनसे भिन्न विनियोग किये हुए सेवाकी सब दंडका धन ब्राह्मणोंको देकरि पुत्रको राज्य सौपि निकटमृत्यु पुरुष अधिक फलके पानेके लिये संग्राममें प्राण छोडे संग्रामका संभव न होय तौ अनशन कहिये न खाने आदिसेभी छोडै ॥ २३ ॥ ऐसे तीनि अध्यायोंमें कहे हुए राजधर्मोंसे व्यवहार करता हुआ राजा सदा यज्ञसे भृत्योंको प्रजाके हितोंमें लगत्वे २४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिर्भूक्तो राज्ञः सनातनः ॥ इमं कर्मविधिं विद्या  
त्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥२५॥ वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दार  
परिग्रहम् ॥ वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैवं रक्षणे ॥२६॥

टीका—परंपरासे चले आनेसे नित्य यह राजाके कर्मकी विधि सब कही अब वैश्य शूद्रोंके क्रमसे जो आगे कहा जायगा ऐसा कर्मका अनुष्ठान जाँवै ॥२५॥ किया गयाहै यज्ञोपवीत तक संस्कार जिसका ऐसा वैश्य विवाह आदिकों करि-कै जो आगे कही जायगी ऐसी जीविकामें खेती आदि कामके लिये पशुओंके पालनेमें सदा लगा रहै ॥ २६ ॥



प्रजापतिर्ह वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥ ब्राह्मणाय च रंज्ञे च  
सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ २७ ॥ न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षयं पशू  
नि ति ॥ वैश्ये च च्छति नाऽन्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ २८ ॥

टीका—जिस्से ब्रह्माने पशुओंको उत्पन्न करिके रक्षाके लिये वैश्यको दिये प्र-  
संगसे यह कहाहै इस्से वैश्य करि पशुरक्षा करनेयोग्यहै यह पहलेका अनुवादहै  
और संपूर्ण प्रजाको उत्पन्न करिके ब्राह्मणके लिये और राजाके लिये रक्षाके नि-  
मित्त दी यह प्रसंगसे कहा ॥ २७ ॥ पशुओंकी रक्षा न करौं यह इच्छा वैश्यको  
कभी न करनी चाहिये इस्से खेती आदि जीविकाके होनेपरभी वैश्यको पशुओं-  
की रक्षा अवश्य करनी चाहिये वैश्यको पशुकी रक्षा करने पर दूसरेसे पशुकी  
रक्षा न करवानी चाहिये ॥ २८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥ गर्न्धानां च रसा  
नां च विद्यादर्षबलाबलम् ॥ २९ ॥ बीजानामुतिविच्च स्यात्क्षेत्रदो  
षगुणस्य च ॥ मानयोगं च जीनीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३ ॥

टीका—मणि मोती मूगा लोह वस्त्र और कपूर आदि गंधोका और नोन आदि  
रसोंका उत्तमप्रध्यमोंका देशकालकी अपेक्षासे मोलका बढ़ना घटना वैश्य जानै २९  
सब बीजोंके बोनेकी विधिका जाननेवाला होय अर्थात् यह बीज इस कालमें बोया  
हुआ ऊगता है इसमें नही इस भांति वैसेही यह ऊपरहै और यह धान्यका देने-  
वाला है इत्यादि खेतके गुण दोषका जाननेवाला होय और प्रस्थ द्रोण आदि  
मानके तथा तुलाके सब उपायोंको तत्त्वसे जानै जिसमें दूसरा न ठगै ॥ ३३ ॥

सारसारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥ लभालाभं च  
पर्यानां पशूनां परिवर्धनम् ३१ भृत्यानां च भृतिं विद्याद्राषांश्च  
विविधान् नृणाम् ॥ द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३२ ॥

टीका—यह बढ़काहै यह घटकाहै इस भांति एक जातिकेभी द्रव्योंका विशेष  
जानै ऐसेही पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंकाभी अर्थात् कहां क्या थोडा मोलहै क्या-  
बहुत मोल है इत्यादिक देशके गुण दोष जानै और वेचनेकी वस्तुओंकाभी कि  
इतने कालमें इतना घट होगा अथवा नफा होगा यह जानै तथा इस देशमें और  
इस कालमें तृण जल जव आदिसे पशु बढ़ते हैं और इस्से क्षीण होते हैं इसको  
भी जानै ॥ ३१ ॥ गौओंके पालनेवालेको यह और भैसोंके पालनेवालेको यह

देना चाहिये इस भाँति देशकालके अनुरूप घेतन जानै और गौड दक्षिणी आदि मनुष्योंकी नाना प्रकारकी भाषा बेंचनेके लिये जानै वैसेही यह वस्तु ऐसे रक्खी जाती है इसके साथ बहुत कालतक रहती है इसको जानै तैसेही यह वस्तु इस देशमें और इस कालमें इतनेमें बेची जाती है इसकोभी जानै ॥ ३२ ॥

धर्मेषु च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमे-  
वं प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ॥  
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३४ ॥

टीका—धर्मसे दोषसकैरे आदि कहे हुए प्रकारसे धनकी वृद्धिमें बडा यत्न करै और सुवर्ण आदि दानकी अपेक्षा प्राणियोंको अन्नही देवै ॥ ३३ ॥ शूद्रका तौ वेदके जाननेवाले और अपने धर्मके करनेसे, यशकरि युक्त - गृहस्थ ब्राह्मणोंकी जो सेवाहै वही उत्कृष्ट स्वर्ग आदि कल्याणकारक धर्म है ॥ ३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ॥ ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृ-  
ष्टां जातिमश्नुते ॥ ३५ ॥ एषोऽनार्पदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः  
शुभः ॥ आपर्द्यपि हि यंस्तेषां क्रमस्तन्निबोधत ॥ ३६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

टीका—बाहरी और भीतरी शौच करि युक्त और अप्रनी जातिकी अपेक्षासे ऊँचे द्विजातिकी सेवा करनेवाला मधुर बोलनेवाला अहंकार रहित और मुख्यता करि ब्राह्मणका आश्रय लेनेवाला और ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यका आश्रय लेनेवाला शूद्रभी अपनी जातिसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होताहै ३५ आपत्ति रहित समयमें चारो वर्णोंके कर्मकी शुभविधिरूप यह धर्म कहा और आपत्तिमें जो उनका धर्म है उसको संकीर्ण मुंननेके उपरांत क्रमसे सुनिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## अथ दशमोऽध्यायः ।

अधी यीरस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मण-  
स्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वैत्यु-  
पायान्यथाविधि ॥ प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैवं तथा भवेत् ॥ २ ॥

मो नृणाम् ॥ वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे अनुलोमोंको कहिके प्रतिलोमोंको कहते हैं ॥ क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें जातिसे सूननाम पुत्र होता है और वैश्यसे यथाक्रम क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें मागध और वैदेहनाम पुत्र होते हैं इनकी वृत्तिया मनुही करि कही जायगी ॥ ११ शूद्रसे वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें क्रमसे अयोगव क्षत्ता और मनुष्योंमें अध-म चांडाल ये वर्णसंकर होते हैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोयौ यथा स्मृतौ ॥ क्षत्रुवैदेहकौ तद्  
त्प्रतिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥ पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणो  
क्ता द्विजन्मनाम् ॥ ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

टीका—एकांतरभी वर्णमें ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ और क्षत्रियसे शूद्रकी कन्यामें उग्र ये दोनो अनुलोमतासे जैसे स्पर्श आदिके योग्य हैं तैसेही एकांतरमें प्रतिलोम उत्पन्न होनेपरभी शूद्रसे क्षत्रियामें क्षत्ता वैश्यसे ब्राह्मणीमें वैदेह ये दो-नोभी स्पर्शके योग्य जानने योग्यहैं एकांतर उत्पन्नोके स्पर्श आदिकी आज्ञासे अनंतर उत्पन्न सूनत मागध और आयोगवका स्पर्श आदिका योग्यत्व सिद्ध होता है इससे चांडालही एक प्रतिलोमज स्पर्श आदिमें निषेध किया जाता है ॥ १३ ॥ जे द्विजातियोंके अनंतर एकांतर और जातिकी स्त्रियोंमें अनुलोमतासे उत्पन्न पहले कहे गये पुत्र उणको हीन जातिकी माताके दोषसे मातृकी जातिसे व्यप-देश्य कहिये कहनेयोग्य कहते हैं माता पितासे भिन्न संकीर्ण होनेपरभी माताका व्यपदेश कहना माताकी जातिके संस्कार आदि धर्मकी प्राप्तिके लिये है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ॥ आभीरोऽम्बष्ठकन्या  
याम् आयोगव्यां तु धिग्वणः ॥ १५ ॥ आयोगवश्च क्षत्ता च चाण्डाल  
श्चार्धमो नृणाम् ॥ प्रतिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रियः ॥ १६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न उग्र कन्या होती है उसमें ब्राह्मणसे आवृतनाम पुत्र होता है और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न अंबष्ठनाम कन्या ब्राह्मणसे आभीरनाम कन्या पुत्र उत्पन्न होता है शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगवीनाम कन्यामें ब्राह्मणसे धिग्वणनाम पुत्र होता है ॥ १५ ॥ आयोगव क्षत्ता और चांडाल ये मनुष्योंमें अधमहैं ये तीनो व्युत्क्रम कहिये उलटपनमे वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणी स्त्रियोंमें पुत्रके कार्यसे रहित तीनो शूद्रसे उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ॥ प्रतीपमेते जायन्ते पं  
रेष्यपसंदास्त्रियः ॥ १७ ॥ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति  
पुक्कसः ॥ शूद्राजातो निषाद्यां तु सं वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥ १८ ॥

टीका—क्षत्रिया और ब्राह्मणीसें मागध और वैदेह और क्षत्रियसे ब्राह्मणीसे  
सूत इस प्रकार अतिलोभतासे औरभी तीनि पुत्र कार्यसे रहित उत्पन्न होते है  
॥ १७ ॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न जातिसे पुक्कस होता है और निषादीमें शूद्रसे  
जो उत्पन्न हुआ वह कुक्कुटक नाम कहा गया ॥ १८ ॥

क्षत्रुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥ वैदेहेकेन त्वम्बं  
ष्ट्यामुत्पन्नी वेण उच्यते ॥ १९ ॥ द्विजातयः सवर्णासु जर्नयन्त्य  
व्रतांस्तु यान्तात्सावित्रीपरिभ्रष्टान्वात्यानि ति विनि दिशेत् २०

टीका—शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र क्षत्ता होता है और क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न  
पुत्री उग्रा होती है उस क्षत्तासे उग्रामें उत्पन्न पुत्र श्वपाक कहा जाता है और वै-  
देहकसे तौ अवंष्टीमें और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न कन्यामें वेण कहा जाता है ॥  
॥ १९ ॥ द्विजाति सवर्णा स्त्रियोंमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं वे जो यज्ञोपवीत  
कर्मसे हीन होते हैं तौ उन यज्ञोपवीत न किये हुएओंको व्रात्य इस नामसे कहै  
अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते यहभी कहा हुआ व्रात्यका लक्षण है यहभी अतिलोमज पुत्रके समा-  
न अयोग्य पुत्रत्व दिखानेके लिये इस संकीर्ण प्रकरणमें अनुवाद किया गया २०

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ॥ आवन्त्यवाटधा-  
नौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१ ॥ झल्लो मल्लश्च राजन्याद्रात्या-  
न्निच्छिवरेव च ॥ नटश्च करणश्चै वं खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

टीका—व्रात्य ब्राह्मणसे सवर्णा ब्राह्मणीमें पापस्वभाव भूर्जकंटकनाम उत्प-  
न्न होता है तैसेही आवन्त्य; वाटधान, पुष्पध, और शैख, उत्पन्न होते हैं एकही  
के ये देशभेदसे प्रसिद्धनाम हैं ॥ २१ ॥ व्रात्य क्षत्रियसे सवर्णामें झल्ल, मल्ल, निच्छि-  
वि, नट, करण, खस, और द्रविड, नाम उत्पन्न होते है येभी एकहीके नाम हैं ॥ २२ ॥

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुर्धन्वाचार्य एव च । कारुषश्च विजन्मा  
च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥ व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेद-  
नेन च । स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥

टीका—व्रात्य वैश्यसें सवर्णा स्त्रीमें सुधन्वा, आचार्य, कारुण, विजन्म, मैत्र, सात्वत, नाम होते हैं एभी एकहीके नामहै ॥ २३ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर स्त्रीगमन करनेसे और विवाहके योग्य नहीं ऐसी सगोत्र आदिके विवाहसे और उपनयन रूप अपने कर्मके खागसे वर्णसंकर नाम होताहै इस्से इस प्रकारमें व्रात्योका कहना योग्यहै ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमौनुलोमजाः । अन्यान्यव्यतिष्क्ताश्चैतान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२५॥ सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्चैव नराधमः । मागधः क्षत्रजातिश्चैव तथाऽयोगवैव च ॥ २६ ॥

टीका—जे संकीर्णयोनि हैं और प्रतिलोमोंसे आपसमें संबंध होनेसे उत्पन्न होते हैं उनको विशेष करि कहोंगा ॥ २५ ॥ जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे सूत, वैदेहक, और मनुष्योंमें अधम चांडाल, मागध, क्षत्र जातिमें तथा आयोगव ॥२६

एते षट् सप्तै शान्वर्णाऽर्जनयन्ति स्वयोनिषु । मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु चैवोनिषु ॥ २७ ॥ यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरामास्यै जायंते । आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तर्था बाह्येष्वपि क्रमात् ॥२८॥

टीका—ये पहले कहे हुए छः प्रतिलोमज अपनी योनियोंमें पुत्रकी उत्पत्ति कर ते है जैसे शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगव कहाताहै आयोगवीही माताकी जाति वैश्यामें और प्रवर कहिये श्रेष्ठ क्षत्रिया ब्राह्मणी योनियोंमें और चकारसे अपकृष्ट कहिये हीनभी शूद्रजातिमें सर्वत्र सप्तश वर्णोंको उत्पन्न करते हैं पिताकी अपेक्षा सृष्टशता नहीं है किंतु माताकी जातिसे क्योंकि चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोहीमें पितासे अधिक निंदित पुत्रकी उत्पत्ति आगे कही जायगी ॥२७॥ जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्र इव तीनि वर्णोंमेंसे क्षत्रिय वैश्य दो वर्णोंके गमनमें ब्राह्मणकी अनुलोमतासे द्विज उत्पन्न होताहै और सजातीयामें तौ द्विज उत्पन्न होताहै ऐसे बाह्योंमेंभी वैश्य और क्षत्रियसे क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रोंमें उत्कर्षका अपक्रम होताहै शूद्रसे उत्पन्न प्रतिलोमकी अपेक्षासे द्विज आदिकोंसे उत्पन्न प्रतिलोमकी प्रशस्नताके लिये यह कहाहै ॥ २८ ॥

ते चापि बाह्यान्सुवहूर्स्ततोऽप्यधिकदूषितान् । परस्परस्य दांरेषु जैनयन्ति विर्गाहितान् ॥ २९ ॥ यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ॥ तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

टीका—वे तौ अयोगव आदिक छः परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें बहुत अनुलो-  
मतामेंभी अधिक दुष्ट और सत्क्रियासे बहिर्भूत पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे  
आयोगव क्षतजातमें अपनासे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै वैसेही क्षताभी आ-  
योगवीमें आपसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै ऐसेही औरभी प्रतिलोमजोमें दे-  
खना चाहिये ॥ २९ ॥ जैसे ब्राह्मणीमें शूद्र अपकृष्ट चांडालनाम प्राणीको उत्प-  
न्न करताहै, ऐसेही बाह्यचांडाल आदि चारो वर्णोंमें चांडाल आदिकोसेभी नीच  
पुत्र उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमाना, बाह्या बाह्यतरान्पुनः॥हीना हीनान्प्रसूयन्ते॥  
वर्णान्पञ्चदशैव तु॥३१॥ प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासंजीवनम्॥  
सैरिन्ध्रं बाणुरावृत्तिं सूते दुस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

टीका—प्रतिकूल वर्तमान प्रतिलोमज होते हैं और द्विजोंके प्रतिलोमसे उत्प-  
न्नोंसे निकृष्ट होनेके कारण बाह्य शूद्रसे उत्पन्न आयोगव क्षत चांडाल ये तीनि पह-  
ले श्लोकसे अनुवृत्ति किये जानेपर चानुवर्ण्यमें और स्वजातिमें ये छः सदृशान् यहां  
सजातिमें उत्पन्नभी पितासे गार्हित होनेका कथन होनेसे अपनी अपनी अपेक्षासे ब्रा-  
ह्मन्तरोंको प्रत्येक पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं सो जैसे आयोगव चारो वर्णोंकी  
स्त्रियोंमें और आयोगवीमें आपसे निकृष्ट पांच पुत्रोंको उत्पन्न करताहै, ऐसे क्षत चां-  
डालभी प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ऐसे बाह्य तीनि पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न  
करते हैं तैसे अनुलोमजोंसे हीन वैश्य क्षत्रियसे उत्पन्न मागध वैदेह सूत अपनी  
अपेक्षासे हीन पहलेके समान चानुवर्ण्यकी स्त्रियोंमें और सजातिमें प्रत्येक पांच  
पुत्रोंको उत्पन्न करते हुए हीनभी तीनि पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं, इस भां-  
ति ये तीस होते हैं अथवा बाह्य शब्द और हीन शब्द छः प्रतिलोमजोहीको कहताहै  
यहां बाह्य चांडाल क्षत्र आयोगव वैदेह मागध सूत छः यथोत्तर कहिये आगे आगे  
का उत्कर्ष होनेसे प्रतिलोमतासे स्त्रियोंमें वर्तमान बाह्यांतर पंचदशही पुत्रोंको उ-  
त्पन्न करते हैं सो जैसे चांडाल क्षत्र आदि पांच स्त्रियोंमें क्षता आयोगवी आदि  
चारिमें और अयोगव वैदेह आदि तीनिमें वैदेह मागधी सूतीमें और मागध सू-  
तीमें सूत तौ प्रतिलोम न होनेसे प्रतिलोमतासे उत्पन्न करताही है ऐसे ये प्रति-  
लोमतासे पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करताहै औ पुनःशब्दके कहनेसे हीन सूत  
आदि चांडाल तक छः यथोत्तर कहिये आगे आगे अपकर्ष कहिये कम होनेसे और  
आनुलोम्यसेभी प्रतिलोमकी कही हुई रीतिसे अपनी अपेक्षा हीन पंद्रहही पुत्रों-  
को उत्पन्न करते हैं इस भांति ये तीस होते हैं ॥ ३१ ॥ केश चरण आदि प्रसाध-

न कहिये श्लोभित करना उसके उपचारके जाननेवाले और अदास कहिये उच्छिष्ट खाने आदि दासके कर्मसे रहित और देहके दाबने आदि दासकर्मसे जीवेवाले और पाशमें बाधनेसे मृग आदिके वधना न दूसरी वृत्तिके जीनेवाले जिसका सैरिधनामहै ऐसेको मुखबाहूरुपज्जानां इस श्लोकमें जो आगे कहा जायगा ऐसा कस्यु आयोगव स्त्रीकी जातिमें और शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्नास्त्रीमें उत्पन्न करताहै इसका वह मृग आदि मारना देव पितृ और औषधके लिये जानना चाहिये ३२

मैत्रेयकं तु वैदेहो मार्धूकं संप्रसूयते ॥ नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टा  
ताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥ निर्षादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविन  
म् ॥ कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

टीका—वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न वैदेह आयोगकीमें मैत्रेयनाम मीठा बोलने-  
वाले पुत्रको उत्पन्न करताहै जो प्रातःकाल घंटा बजाकर जीविकाके लिये राजा  
आदिकोंकी स्तुति करताहै ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पहले कहा हुआ नि-  
षाद आयोगवीमें जिसका दूसरा नाम दाश ऐसे नौकाके व्यवहारसे जीविका  
करने वाले मार्गवनाम पुत्रको उत्पन्न करताहै जिसको आर्यावर्त्त देशके रहनेवाले  
कैवर्त्तनामसे कहते हैं ॥ ३४ ॥

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हिताश्रानासु च ॥ भवन्त्यायोगवीष्वेते  
जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥ कारावरो निर्षादात्तु चर्मकारः  
प्रसूयते ॥ वैदेहीकादन्ध्रमेदौ बर्हिग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥

टीका—सौरिध, मैत्रेय, मार्गव, हीन जाति ये तीनो मृतकके वस्त्र पहिरनेवा-  
ली, क्रूर, उच्छिष्ट खानेवाली आयोगवियोंमें पिताके भेदसे भिन्न पुत्र होते हैं ॥ ३५ ॥  
निषादसे वैदेहीमें उत्पन्न हुआ कारावर चर्मका काटनेवाला उत्पन्न होताहै औश-  
नसमें कारावरोका चर्मका काटनाही जीविका कही है और वैदेहक सैरिधय मेद  
नामग्रामके बाहर बसनेवाले है ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् । आहिण्डको नि  
र्षादेन वैदेह्यामेवं जायते ॥ ३७ ॥ चण्डालेन तु सोपाको मूर्खव्यस-  
नवृत्तिमान् ॥ मुक्कस्यां जायते पापः सदा संज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

टीका—वैदेहीमें चांडालसे पाण्डुसपाक, नाम बांसोंके व्यवहारसे जीविका

करनेवाला उत्पन्न ह्येताहै और निषादसे वैदेहीमें आहिंडक नाम पुत्र होताहै इसकी सौ बंधनके स्थानोंमें वाहरी रक्षा करनेसे आहिंडकोंकी वृत्ति औशनसमें कही है माता पिताके समान होनेपरभी कारावर और आहिंडककी जीविकाके भेदसे व्यपदेशका भेदहै ॥३७॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न पुष्कसीमें चांडालसे उत्पन्न सोपाक नाम पापात्मा सदा साधुओं करि निंदित मारणके योग्य अपराधका मूल मारनेयोग्यका राजाकी आज्ञासे मारना जिसकी जीविकाहै ऐसा उत्पन्न होताहै ३८

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यार्वसायिनम् ॥ शर्मज्ञानगोचरं सू-  
ते बाह्यानामपि गार्हितम् ॥३९॥ संकरे जातंयस्त्वेताः पितृमातृप्र-  
दर्शिताः ॥ प्रच्छन्ना वाभ्रकांशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥४०॥

टीका—निषादी चांडालसे अत्यावसायी नाम चांडाल आदिकोंसेभी अत्यंत दुष्ट अज्ञानमें बसनेवाले उसीकी जीविका करनेवालेको उत्पन्न करती है ॥३९॥ वर्णसंकरोंके मध्ये ये जातियां इसकी यह माता और यह पिता और इस जा-  
तिका हुआ इस भांति पिता माताके कहिकर दिखाई तेसेही गूढ अथवा प्रकट उनकी जातिके कहे हुए कर्मोंके करनेसे जाननेयोग्यहैं ॥ ४० ॥

सजातिजानन्तरजाः षट्सुता द्विर्जर्धर्मिणः ॥ शूद्राणां तु सधर्मा-  
णः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥४१॥ तपोबीर्जप्रभावेस्तु ते गच्छं-  
न्ति युगेयुगे ॥ उत्कर्ष चापकर्ष च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥४२॥

टीका—द्विजातियोंकी समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न तैसेही अनुलोमसे उ-  
त्पन्न जैसे ब्राह्मणसे क्षत्रिया और वैश्यामें और क्षत्रियसे वैश्यामें ऐसे छः पुत्र  
द्विजधर्मी यज्ञोपवीत करनेयोग्यहैं और द्विजातिसे उत्पन्नभी सूत आदि प्रतिलो-  
मज होते हैं वे शूद्रधर्मी है इनका यज्ञोपवीत नहीं होताहै ॥ ४१ ॥ सजातिसे उ-  
त्पन्न और अनंतर जातिसे उत्पन्न तपके प्रभावसे विश्वामित्रके समान और बी-  
जके प्रभावसे ऋष्यशृंग आदिके सम्मन सतयुग त्रेता आदि युगोंमें मनुष्योंके  
मध्यमें जातिके उत्कर्ष कहिये उन्नतिको प्राप्त होते हैं और आगे कहे हुए कार-  
णसे अपकर्ष कहिये हीनताको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥

शनकैस्तु क्रियालोपादिर्माः क्षत्रियजातयः ॥ वृषलत्वं गता स्त्री-  
के ब्राह्मणादर्शनेन च ॥४३॥ पौण्ड्रकाश्चौद्भ्रविडाः काम्बोजा य-



वर्णाः शूकाः ॥ पारदापल्हवाश्चीना किराता दरदाः शूशाः ॥४४॥

टीका—ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय आदि जातें यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोप-से और ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रायश्चित्त आदिके न होनेके कारण हो-लै होलै लोकमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ पौंड्रक, औड्र, द्रविड, कांबोज, जवन, शक, पारद, अपल्हव, चीन, किरात, दरद, सश, ये सब क्रियाके लो-पसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

मुखंवाहूरुपज्ञानां यां लोके जातयो बहिः ॥ म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः  
सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥ ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंस-  
जाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेवं कर्मभिः ॥ ४६ ॥

टीका—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंकी जो जप्तै हैं वे क्रियाके लोप आदिसे बाह्य होगई और म्लेच्छभाषाके अथवा आर्यभाषाके बोलनेवाले वे सब दस्यु कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥ जे द्विजोंकी अनुलोमतासे उत्पन्न हैं ये छः अपसद कहे गये हैं उनकाभी पितासे नीचताके कारण अपसद शब्द करि पहले कहनेसे जानना चाहिये और जे अपध्वंसज प्रतिलोमज हैं वेभी द्विजातिके उपकार कही आ-गे कहे हुए निन्दित कामोंसे जीवें ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वंसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ॥ वैदेहकानां स्त्रीकार्यं  
मागधानां वाणिज्यथः ॥ ४७ ॥ मत्स्यघातो निर्षादानां तष्टिस्त्वा-  
योगवस्य च ॥ मेदान्घ्रचुञ्चुमद्भूनामारण्यपशुर्हिसनम् ॥ ४८ ॥

टीका—सूतोंको जीविकाके लिये घोडोंका सिखाना जोतना आदि सारथीका कर्म है और अंबष्ठोंका रोगशांति आदि चिकित्सा, और वैदेहकोंका अंतःपुरकी रक्षा करना और मागधोंका स्थलमार्गसे वाणिज्य करना कर्म हैं ॥ ४७ ॥ कहे हुए निर्षादोंका मछली मारना और अयोगवका काष्ठ छीलना और मेद अंध चु-चु, तथा मद्भू, ओंका जंगली पशुओंका मारना चुञ्चु और मद्भू, वैदेहक और बंदी-की स्त्रियोंमें ब्राह्मणसे उत्पन्न बौधायन करि कहे हुए जानने चाहिये क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न बंकीकी स्त्री उसी उक्तिसे ग्रहण करनेयोग्य है ॥ ४८ ॥

क्षत्र्यपुक्कसानां तु विलौकोवधबन्धनम् ॥ धिग्वणानां चर्मकार्यं  
वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥ चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलैर्लूपर्वनेषु  
च ॥ वंस्युरेते विज्ञाना वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥

टीका—क्षत्र आदिकोंका बिलमें बसनेवाले गोह आदिका मारना और बांधना और धिगवणोंका चर्मका बनाना और वेचना और वेणोका कांस्य मुख आदि वाद्य भांडोका बजाना ॥ ४९ ॥ ग्राम आदिके समीपप्रसिद्ध वृक्ष चैत्यद्वयमहै उसके नीचे और श्मशान पर्वत तथा वनके समीप ये प्रकाशक अपने कर्मोंसे जी विका करते हुए वास करै ॥ ५० ॥

चण्डालंश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥ अपपात्रार्थं कर्त्तव्या  
धनमेषां श्वर्गदभम् ॥ ५१ ॥ वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु  
भोजनम् ॥ कर्णाण्यसर्मलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥

टीका—चांडाल तथा श्वपचोंका निवास ग्रामके बाहर होय और ये पात्र रहित कर्त्तव्य हैं और जिस लोह आदिके पात्रमें उन्होंने भोजन किया होय वह पात्र संस्कार करिके भी नहीं ग्रहण करनेयोग्य है और इनका धन कुत्तेगधेहैं बैल आदि नहीं और कपड़े तो इनके मृतकके वस्त्रहैं और फूटे सरवाआदि मट्टीके पात्रमें भोजन और लोहेके कूड़े आदि इनका गहनाहै और सदा भ्रमण करना इनका कामहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

न तैःसमयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥ व्यवहारो मिथ्यस्तेषां  
विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥ अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभा-  
जने ॥ रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

टीका—धर्म करनेके समय चांडाल और श्वपाकोंके साथ दर्शन आदि व्यवहार न करै और उनका तो ऋण देना धनलेना आदि व्यवहार तथा विवाह समान जातिवालोंके साथ आपसमें होय ॥ ५३ ॥ इनका अन्न पराये आधीन करना चाहिये साक्षात् इनको न देवै किंतु फूटे पात्रमें नौकरोसें दिवावै और वे तो रात्रिके समय ग्राम तथा नगरमें न घूमै ॥ ५४ ॥

दिवां चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः। अंबान्धवं चैवं शंवं नि-  
हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥ वर्ध्याश्च हन्युः संतर्त यथाशास्त्रं नृ-  
पाज्ञया ॥ वर्ध्यावासांसि गृहीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

टीका—दिनके समय ग्राम नगर आदिमें खरीदने बेचने आदि कामके लिये राजाकी आज्ञासे चिन्ह करि अंकितहो विचरै और जिसका कोई स्वामी नहीं

है ऐसे मृतकको ग्रामसे लेजाय यह शास्त्रकी मर्यादाहै ॥ ५५ ॥ मारनेयोग्योंको शास्त्रकी आज्ञासे शूली आदिपर चढाने करि सदा राजाकी आज्ञासे मारै और उनके कपडे गहने आदि ले लेंवै ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कर्म-  
भिः स्वैर्विभावंयेत् ॥ ५७ ॥ अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रि-  
यात्मता । पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

टीका—वर्णसे रहित संकरसे उत्पन्न मनुष्यको जिसको लोग वैसा नही जानते हैं इसीसे आर्यके समान और वास्तवमें आर्य नही ऐसेको जातिके अनुरूप निदित चेष्टाऔसे जो आगे कही जायगी निश्चय करै ॥ ५७ ॥ निष्ठुर होना कठोर बोलना हिंसा करना और शास्त्रमें कहे हुएका न करना संकर जातिके मनुष्यको लोकमें प्रकट कर देते हैं ॥ ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ॥ न कथंचन दुर्योनिः  
प्रकृतिं स्वां जियच्छति ५९ ॥ कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्या  
द्योनिंसंकरः ॥ संश्रयत्येवं तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥

टीका—यह संकरसे उत्पन्न दुष्ट योनि पिताके दुष्ट स्वभावको सेवन करता है वा माताके अथवा दोनोंके यह अपने कारणको कभी नहीं छुपी सकताहै ५९ वडकुलमें उत्पन्न हुएभी जिस पुरुषका गुप्त योनि संकर होताहै वह मनुष्य थोडे बहुत पिताके स्वभावका सेवन करताहीहै ॥ ६० ॥

यत्र त्वेते परिव्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ॥ राष्ट्रिकैः संह तद्राष्ट्रं क्षि-  
प्रमेवं विनश्यति ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणार्थं गैवार्थं वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ॥  
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

टीका—जिस देशमें वर्णोंके बिगाडनेवाले ये वर्णसंकर होते हैं वह देश वहाँ के निवासियोंसमेत शीघ्र नाशको प्राप्त होताहै तिससे राजाको वर्ण संकर दूरि करनेयोग्यहै ॥ ६१ ॥ गौ ब्राह्मण स्त्री बालक इनमेंसे किसीकी रक्षाके लिये प्राण न्याय तौ प्रतिजोमसे उत्पन्नोंका स्वर्गकी प्राप्तिका कारणहै ॥ ६२ ॥

अहिंस्र संत्यमंस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं साम्प्रसिकं धर्मं

चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥ शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्  
त्प्रजायते ॥ अश्रेयाश्श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥

टीका—हिंसाका त्याग, यथार्थ कहना, अन्यायसे पराये धनका न लेना, मृत्ति-  
का जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना, इस भांति चारोवर्णों करि करने-  
योग्य धर्म मनुने कहा है प्रकरणकी. सामर्थ्यसे संकीर्णोंकाभी यही धर्म जानने यो-  
ग्य है ॥ ६३ अब तुल्य सवर्णा स्त्रियोंमें यह जो कहा लक्षण है जिसके विनाभी-  
ब्राह्मणत्व आदि दिखानेको कहते हैं ॥ ब्राह्मणसे शूद्रा में उत्पन्न पारशवनाम वर्ण  
उत्पन्न होता है इस सामर्थ्यसे स्त्री रूप होता है वह स्त्री जो ब्राह्मणको व्याही हुई  
कन्याहीको उत्पन्न करै वह कन्याभी अन्य ब्राह्मण करि व्याही हुई हो बेटीही-  
को जनै वह बेटीभी ओरको व्याही जाय ऐसेही सातमें जन्ममें वह पारशवनाम  
वर्ण बीजकी प्रधानतामें ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है अर्थात् सातमें जन्ममें ब्रा-  
ह्मण होजाता है ॥ ६४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ॥ क्षत्रियाज्जातिमेवं  
तु विद्याद्वैश्यात्तथैव चैदं अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणान्तु यदृच्छ-  
या ॥ ब्राह्मण्यामर्ष्यनार्याञ्च श्रेयस्त्वं केति चेद्भवेत् ॥ ६६ ॥

टीका—ऐसे पहले कही हुई रीतिसे शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त होता है और ब्रा-  
ह्मण शूद्रताको प्राप्त होता है ब्राह्मण यहां ब्राह्मणसे शूद्रा में उत्पन्न पारशव जान-  
ना चाहिये वह जो पुरुष केवल शूद्राके व्याहसे और पुत्रषहीको उत्पन्न करै वह  
भी ऐसे सातमें जन्मको प्राप्त केवल शूद्रताको बीजके निकर्षके कारण क्रमसे प्रा-  
प्त होता है ऐसे क्षत्रियसे और वैश्यसे शूद्रा में उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष जानै और  
क्षत्रियसे उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें जानना चाहिये और वैश्यसे उ-  
त्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष तीसरे जन्ममें जानने योग्य है इसी न्यायसे ब्राह्मणसे वै-  
श्यामें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें और क्षत्रियामें उत्पन्नके तीसरेमें  
और क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्नके तीसरेहीमें जानने योग्य हैं ॥ ६५ ॥ एक विना  
व्याही हुईभी शूद्रा में ब्राह्मणसे यहच्छा करि उत्पन्न और दूसरा ब्राह्मणीमें शूद्रसे  
उत्पन्न इन दोनोंमें कौनसा उत्पन्न अच्छा है कभी यह संदेह होय और संशयका  
कारण तो जैसे बीजकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणसे शूद्रा में उत्पन्न साधु शूद्र होता है ऐ-  
सेही क्षेत्रकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणीमेंभी शूद्रसे उत्पन्न यह क्या बात है जो सा-  
धु शूद्र न होय ॥ ६६ ॥

जातो नार्यामनार्यायामार्यार्दार्याो भवेद्दुणैः ॥ जातोऽप्यनार्यार्दा  
र्यायामनार्य ईति निश्चयः ॥ ६७ ॥ तावुं भावप्यसंस्कार्याविति ध  
र्मो व्यवस्थितः ॥ वैगुण्यार्जन्मनः पूर्वं उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥

टीका—वहां निश्चय करते हैं ॥ शूद्रास्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न स्मृतिमें कहे हुए किये गये पाक यज्ञ आदि गुणों करिके युक्त श्रेष्ठ होता है और शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न प्रतिलोमतासे उत्पन्न होनेके कारण शूद्रोंके धर्ममेंभी अधिकारी न होनेसे श्रेष्ठ नहीं है यह निश्चय है ६७ पारशव और चांडाल दोनो यज्ञोपवीत करनेयोग्य नहीं हैं यह शास्त्रकी मर्यादा व्यवस्थित है पहला पारशव शूद्रासे उत्पन्न होनेके कारण जातिकी विगुणतासे उपनयन करनेयोग्य नहीं है प्रतिलोमतासे शूद्र करि ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेसे दूसरा हुआ इस्से उपनयन योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

सुबीजं चैवं सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ॥ तथाऽर्यार्जात आर्यायां  
सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥ बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ॥  
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रे यं तु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥

टीका—जैसे सुंदर बीज सुंदर खेतमें उत्पन्न भरापूरा होता है ऐसेही द्विजा-  
तितसे सवर्णा द्विजातिकी स्त्रीमें अनुलोमतासे क्षत्रिया वैश्यामें उत्पन्न वह वर्णसं-  
स्कार और क्षत्रियवैश्यसंस्कार और सब श्रौत स्मार्त्तसंस्कारके योग्य है और  
पारशव तथा चांडाल संस्कार योग्य नहीं है यह पहले कहे हुएकी दृढताके  
लिये कहा है ॥ ६९ ॥ कोई पंडित बीजकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि हरिणी आ-  
दिमें उत्पन्न ऋष्यशृंग आदिका ब्रह्ममुनित्व देखा जाता है और दूसरे फिरि क्षे-  
त्रकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि क्षेत्रके स्वामीका पुत्रत्व देखा जाता है और अन्य  
फिरि बीज क्षेत्र दोनोकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि सुबीजकी सुक्षेत्रमें समृद्धि  
देखी जाती है इस मतभेदमें वक्ष्यमाण यह व्यवस्था जाननी चाहिये ॥ ७० ॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैवं विनश्यति ॥ अबीजकर्मपि क्षेत्रं केवं  
लं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥ यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋष  
योऽभवन् ॥ पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशंस्यते ॥ ७२ ॥

टीका—ऊपरके प्रदेशमें बोया हुआ बीज फलको न देकर बीचहीमें नष्ट हो-  
जाता है और सुंदरभी खेत बीज रहित केवल स्थण्डिलही होता है ध्यान्य नहीं उत्प-

अ होताहै तिस्से प्रत्येककी निहासे सुबीजं चैवं सुक्षेत्रे यह पहले कहा हुआ है तिस्से दोनोकी मुख्यता अभिमतहै ॥ ७१ ॥ अब बीजकी प्राधान्यताके पक्षमें दृष्टांत कहते हैं जिस्से बीजकी प्रधानता करिके तिर्यक् जाति हरिणी आदिमें उत्पन्नभी ऋष्यशृंग आदि मुनित्वको प्राप्त हुए और पूजित हुए और नमस्कारकी योग्यता आदिसे वेदके ज्ञान आदिसे प्रशस्त वाणी करि स्तुति किये गये तिस्से बीजकी प्रशंसा करते हैं ऐसे बीजकी प्रधानता हुई बीज और योनिके मध्यमें बीजोत्कृष्ट जाति प्रधान होती है यह भली भांति जानना चाहिये ॥७२॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्य चानार्यकर्मिणम् ॥ संप्रधार्याब्रवीद्धाता  
नं समौ नासंभावि ति ॥७३॥ ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्म  
प्यवस्थिताः ॥ ते सम्यगुर्गुणवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ७४ ॥

टीका—द्विजातिके कर्म करनेवाले शूद्रको और शूद्रके कर्म करनेवाले द्विजातिको ब्रह्माने विचार करिके न समहैं न असमहैं यह कहा जिस्से द्विजातिके कर्म करनेवालाभी शूद्र द्विजातिके समान नहीं होताहै क्योंकि उस अनधिकारीका द्विजातिके कर्मोंके करनेमें उनकी समता नहीं है ऐसेही शूद्रके कर्म करनेवालाभी द्विजाति शूद्रके समानही होताहै क्योंकि निषिद्धके सेवनसे जातिके उत्कर्षका नाश नहीं होताहै और न असमहैं क्योंकि निषिद्ध आचरणसे दोनोकी समता होती है तिस्से जिसको जो कर्म गार्हितहै उसको वह नकरना चाहिये यह संकर पर्यंत वर्णोंके धर्मका उपदेशहै ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंके आपद्धर्मका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं ॥ जे ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्तिके कारण ब्रह्मके ध्यानमें निष्ठदैं और अपने कर्मोंके करनेमें लगे हैं, वे आगे कहे जायगे ऐसे अध्यापन आदि षट् कर्मोंको क्रमसे भलीभांति करैं ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं धार्जनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चैवं षट् क  
र्माण्यग्रजन्मनः ॥७५॥ षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि  
जीविका ॥ याजनाध्यापने चैवं विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥७६॥

टीका—उन कर्मोंको कहते हैं ॥ अंगसहित वेदका पढ़ाना तथा पढ़ना, और यजन, याजन, दान, और प्रतिग्रह ये छः कर्म ब्राह्मणके जानने योग्यहैं ॥ ७५ ॥ इस ब्राह्मणके इन अध्यापन आदि छ कर्मोंमेंसे यजन अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह ये तीनि कर्म जीविकाके लिये जानने योग्यहैं ॥ ७६ ॥

त्रयो धर्मा निर्वर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति। अध्यापनं याजनं च तृती  
यश्च प्रतिग्रहः॥७७॥ वैश्यं प्रति तथै वैते निर्वर्तेरत्रिति स्थितिः।  
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७८॥

टीका—ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियके अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, नाम. जीवि-  
काके अर्थ नहीं होते हैं अध्ययन, याग, दान, तौ उसके भी होते हैं॥७७॥ जैसे क्षत्रि-  
यके अध्यापन याजन और प्रतिग्रह निवृत्त होते हैं वैसेही वैश्यके भी यह शास्त्रकी  
व्यवस्था है जिसे मनु और प्रजापति न दोनोने क्षत्रिय वैश्यांप्रति वे जीविका नि-  
मित्त कर्म कर्त्तव्यत्वसे कहे ऐसे वैश्यके भी अध्ययन याग और दान होते हैं॥७८॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वाणिर्कपशुकृषिर्विशः। आजीवनार्यं धर्मस्तु  
दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥ वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च -  
रक्षणम्। वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

टीका—शस्त्र खड्ग आदि और अस्त्र बाण आदि इनका धारण प्रजाकी रक्षा-  
के लिये क्षत्रियका जीविकाके लिये है और वाणिज्य पशुओंकी रक्षा खेती ये  
कर्म वैश्यके जीविकाके लिये हैं और इन दोनोंके धर्मके लिये दान अध्ययन  
और यज्ञ होते हैं॥७९॥ ब्राह्मणका वेद पढाना और क्षत्रियका प्रजाकी रक्षा और  
वैश्यका वाणिज्य तथा मशुओंकी रक्षा ये इनकी जीविकाके लिये कर्मोंमें श्रेष्ठ हैं८०

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा। जीवेत्क्षत्रियं धर्मेण  
सह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥८१॥ उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति  
चेद्भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥

टीका—अब आपद्धर्मोंको कहते हैं॥ ब्राह्मण कहे हुए अध्यापन आदि अपने  
कर्मसे नित्य कर्मोंका करना और कुंडुवके पालन पूर्वक न जीविका करि सकता  
हुआ ग्राम नगरकी रक्षा आदि क्षत्रियके कर्मसे जीविका करै जिसे, क्षत्रियका  
धर्म इसकी निकट वृत्ति है ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण दोनो अपनी और क्षत्रियकी वृत्ति-  
से न जीविका करता हुआ किस प्रकारसे वृत्ति यह जो संदेह होय तौ खेती और  
पशु रक्षाका आश्रय लेकर वैश्य वृत्तिको करै ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा। हिंसाप्रायां प-  
राधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ८३ कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः

सद्विगर्हिता । भूमिं भूमिश्रयांश्चैवं हन्ति काष्ठमयोर्मुखम् ॥ ८४ ॥

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य वृत्तिसेभी जीविका करता हुआ जिसमें बहुतसे जीवोंकी हिंसा अधिक होती होय ऐसी बलीवर्द आदिके परार्थीन खेतीको यत्नसे त्याग करै इसीसे पशुपालन आदिके न होनेमें खेती करनी चाहिये यह देखना चाहिये क्षत्रियोपि इसके कहनेसे यह जाना गया कि क्षत्रियभी अपनी वृत्तिके न होनेपर वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करै ॥ ८३ ॥ यह अच्छी जीविकाहै कोई खेतीको ऐसा मानते हैं परंतु वह जीविका सञ्जनो करि निन्दितहै कारण यह है कि हलकुदाल आदि लोहके लगे हुए काष्ठसे भूमिकी और भूमिमें स्थित जीवोंकी हत्या होती है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् । विद्विष्यमुद्धृतीद्वारं  
विक्रियं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥ सर्वान् रसान् पोहेत कृतान्नं च तिलैः  
सह । अश्मनो लवणं चैवं पशुवाये च मानुषाः ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मण और क्षत्रियको अपनी वृत्तिके न होनेपर धर्ममें कुशलताको छोडि जो वैश्य वेचते हैं उन वस्तुओंको आगे कही हुई वर्जन करने योग्य वस्तुओंको छोड धन बढ़ानेवाली वस्तु बेचनी चाहिये ॥ ८५ ॥ उन वर्जनीय वस्तुओंको कहते हैं। सब रसोंको तथा सिद्ध अन्न कहिये पूरी ज्ञादि तिल पाषाण नोन पशु मनुष्य इन सबोंको न बेचै ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शौण्डीमाविकानि च । अपि चैत्स्युररक्तानि  
फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥ अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च  
सर्वशः । क्षीरं क्षौद्रं दधि धृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

टीका—सब तागोंसे बने वस्त्र कुसुम आदिसे रंगे हुए न बेचै और सन तथा अलसीके तागोंसे बने हुए तथा भेडके रोमोंसे बने हुए चाहै लालभी न होय तिसपरभी न बेचै तैसेही फल मूल और गुडूची आदिको न बेचै ॥ ८७ ॥ जस्त, लोह, विष, मांस, सोम, दूध दही, घी तेल, गुड, डाम, और सुगंध युक्त सब कपूर आदि माक्षिक, ( शहत ) मोम, इन सबोंको न बेचै ॥ ८८ ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ॥ मद्यं नीलिं च लै  
क्षां च सर्वांश्च कर्षांस्तथा ॥ ८९ ॥ काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्व



यमेव कूपीवलः। विक्रिणीत तिलञ्छून्द्वा नर्ममार्थमंचिरस्थितान् ९०

टीका—सब जंगली पशु हाथी घोडा आदि और दंष्ट्री कहिये सिंह अदि और पक्षी, मद्य, लाख, और एक खुरवाले घोडा आदिकोंको न वैचे ॥ ८९ ॥ किसान आप जोतनेसे उत्पन्न करि दूसरी वस्तुके साथ मिले हुए तिलोंको उत्पन्न होतेही लाभके लिये कालांतरको न देखि धर्मके निमित्त इच्छासे वैचे ॥ ९० ॥

भोजनाभ्यजनादानार्थदन्यत्कुरुते तिलैः॥ कृमिभूतः श्वविष्टायां  
पितृभिःसंहर्मज्जति ॥ ९१ ॥ सद्यः पतति मासेन लाक्षया लवणे  
न च ॥ त्र्यहेण शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

टीका—भोजन उवठने तथा दानके सिवाय जू और निषिद्ध विक्रय आदि जो तिलोंका करताहै वह उस पापसे पितरों समेत कृमि होके कुत्तेकी विष्टामें डूबताहै ॥ ९१ ॥ मांस, लाख, और नौनके वेचनेसे ब्राह्मणो उसी क्षण पतित होताहै और दूधके वेचनेसे तीन दिनोमें शूद्र होजाताहै ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः॥ ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्य  
भावं निर्यच्छति ॥ ९३ ॥ रसा रसे निर्मातव्या न त्वेव लवणं रसेः॥  
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिलं धान्येन तत्समाः ॥ ९४ ॥

टीका—ब्राह्मण कहे हुए मांस आदिकोंसे अन्य निषिद्ध वेचनेकी वस्तुओंको इच्छासे प्रमादके विना दूसरी वस्तुके साथ सात रात्रि तक वेचनेसे वैश्य होजाताहै ॥ ९३ ॥ रस कहिये गुड आदि घी आदि रसोंसे बदला करने योग्यहै और न नौनका दूसरे रससे बदला न करै औसिद्ध अन्नका कच्चे अन्नसे बदला करै और तिलोंका धान्यसे बदला करै और धान्यका धान्यसे अर्थात् प्रस्थ प्रमाणसे प्रस्थ इस प्रकार उनके समान बदला करै ॥ ९४ ॥

जीवेदेते न राजन्यः सर्वेणाध्यनयं गतः ॥ न त्वेव ज्यायसीं वृत्ति  
मभिर्मन्येत कर्हिचित् ॥ ९५ ॥ यो लोभाद्धर्मो ज्ञात्या जीवेदुत्कृ  
ष्टकर्मभिः ॥ तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—आपत्तिकी प्राप्त क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये निषिद्धभी रस आदिके वेचनेसे वैश्यके समान जीविका करै और फिर ब्राह्मणकी जीविका कभी न करै के-

वल क्षत्रियही नहीं वैश्य आदिभी अन्य न करें ॥ ९६ ॥ जो निकृष्ट जाति लोभसे उत्कृष्ट जातिके लिये कहे हुए कर्मोंसे जीविका करे उसका सर्वस्व लेकर राजा उसी समय देशसे निकाल देवै ॥ ९६ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारिक्यः स्वनुष्ठितः ॥ परधर्मेण जीवन्दि स  
द्यः पतति जातितः ॥ ९७ ॥ वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि  
वर्त्तयेत् ॥ अनाचरन्नकार्याणि निर्वर्त्तेत च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

टीका—विगुण कहिये विगडा हुआभी अपना कर्म करनेको योग्यहै और संपूर्णभी पराया कर्म करना उचित नहीं है जिस्से दूसरी जातिके लिये कहे हुए कर्मसे जीविका करता हुआ उसी क्षणसेही अपनी जातिसे पतित होताहै ॥ ९७ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविका करनेको असमर्थ वैश्य द्विजातिकी सेवारूप शूद्रकी और वृत्तिसे उच्छिष्ट भोजन आदिको न करता हुआ वरतै और आपत्तिके दूर होनेपर शूद्रकी वृत्तिसे निवृत्त होय ॥ ९८ ॥

अर्शकुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ॥ पुत्रद्वारात्ययं प्रां  
प्तो जीवित्कारुकर्मभिः ॥ ९९ ॥ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यं  
न्ते द्विजातयः ॥ तानि कारुकर्माणि शिल्पानि विविधानि च १००

टीका—द्विजातिकी सेवा करनेको असमर्थ और क्षुधासे नष्ट होगये हैं पुत्र कलत्र जिसके ऐसा शूद्र सूपकार आदिकोंके कर्मोंसे जीवै ॥ ९९ ॥ जिन कर्मोंके करनेसे द्विजातिकी सेवा होय उन काष्ठतक्षणा आदि कामोंको और शिल्पों और चित्रवना आदि नाना प्रकारके शिल्पोंके कामोंको करै ॥ १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वेषु पथि स्थितः ॥ अवृत्तिकर्षितः सी  
दन्नमं धर्मं समाचरेत् ॥ १ ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वैनयं  
गतेः ॥ पवित्रं दुर्ष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ २ ॥

टीका—जीविका न होनेसे पीडित दुर्बलताको प्राप्त हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय तथ्य वैश्यकी वृत्तिको न करता हुआ विगडाभी अपना धर्म श्रेष्ठ है यह कहनेके कारण अपनीही वृत्तिमें स्थित इस आगे कही हुई वृत्तिकों करै इस्से विगडा प्रतिग्रह आदि अपनी वृत्तिके न होनेपर पराई वृत्तिका आश्रय लेना जानिये ॥ १ ॥ आपत्तिमें प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब निदित निदिततर और निदिततम मनु-

प्रायसे क्रमसे दान लेवै जिस्से पवित्र गंगा आदि गलीके जल आदिसे दूषित होते हैं यह शास्त्रकी मर्यादासे नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

नार्ध्यापनाद्याजनाद्वा गृहिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥ दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥३॥ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमृत्तिर्यतस्ततः ॥ आंकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ ४ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको आपत्ति समयमें निदित अर्ध्यापन याजन और प्रतिग्रह से अधर्म नहीं होता है कारण यह है कि वे स्वभावसे पवित्र होनेके कारण अग्नि और जलके तुल्य हैं ॥३॥ प्राणके नाशको प्राप्त जो प्रतिलोमजसे लेकर अन्न खाता है वह कीचसे आकाशके समान पापसे लिप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासपदुभुक्षितः ॥ न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥५॥ श्वमांसमिच्छन्नातोऽर्त्तुं धर्माधर्मविचक्षणः । प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ ६ ॥

टीका—अजीगर्तनाम ऋषि भूखाहो शुनःशेफनाम पुत्रको आप वेचता भया यज्ञमें सौ गौओंके लाभके लिये यज्ञस्तंभमें बांधिके मारी हुई हो मारनेका आरंभ किया क्षुधा दूर करनेके लिये न वैसे करता हुआ पापसे लिप्त हुआ यह तो शुनःशेफके आख्यानामें बहूच ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है ॥ ५ ॥ धर्म अधर्मका जाननेवाला वामदेवनाम ऋषि क्षुधासे पीडित हो प्राणत्राणके लिये कुत्तेके मांसकी खानेकी इच्छा करता हुआ दोषसे लिप्त न हुआ ॥ ६ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विर्जने वने।वह्नीर्गोः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥ ७ ॥ क्षुधार्त्तश्चात्तुमभ्यागाद्रिश्वामित्रः श्वजाघनीम् । चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ ८ ॥

टीका—बड़े तपस्वी भरद्वाज मुनिने पुत्रसमेत निर्जिन वनमें वसिके क्षुधासे पीडित हो वृधुनाम बढईसे बहुतसो गौए दानमें लीं ॥७॥ धर्म अधर्मके जाननेवाले विश्वामित्र ऋषिने क्षुधासे पीडित हो चाण्डालके हाथसे लेकर कुत्तेकी जांधके मांसकी खानेकी इच्छा की ॥८॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्यं

विप्रस्य गृहितः ॥ ९ ॥ प्राजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्म-  
नाम् । प्रतिग्रहस्तु क्रियेते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

टीका—निन्दितभी अध्यापन याजन प्रतिग्रहोंमेंसे ब्राह्मणको निषिद्ध दान लेना निकृष्ट है और परलोकमें नरकका कारण है तिससे आपत्तिमें पहले निन्दित अध्यापन और याजनमें प्रवृत्त होना चाहिये उनके असंभवमें तौ असत्प्रतिग्रह लेना चाहिये इस लिये यह कहा है ॥ ९ ॥ इसमें कारण कहते हैं ॥ याजन और अध्यापन आपत्तिमें और अनापत्तिमें उपनयनसे संस्कार किये हुए द्विजातियोंहीको कराये जाते हैं और प्रतिग्रह तौ निकृष्ट जाति शूद्रसेभी किया जाता है इससे यह उनसे दोनो निन्दित है ॥ ११० ॥

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्या-  
गेन तपसैव च ॥ ११ ॥ शिलोच्छर्मप्याददीत विप्रोऽजीवन्यैतस्त-  
तः । प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयास्ततोऽप्युच्छः प्रशंस्यते ॥ १२ ॥

टीका—पापके ग्रहणसे असत्प्रतिग्रह याजन और अध्यापनसे जो उत्पन्न पा-  
प है वह प्रायश्चित्तके प्रकरणमें आगे कहे हुए क्रमसे जप और होमसे नाश होता है  
और असत्प्रतिग्रहसे उत्पन्न तौली हुई द्रव्य करिके महीने-भरतक गौओंके स्था-  
नमें दूध पीकर रहै इत्यादिक आगे कहे हुए तपसे दूर होता है ॥ ११ ॥ अपनी  
वृत्तिसे जीविकाको न करता हुआ ब्राह्मण जहां तहांसे अर्थात् उपपातकी आदि  
कोसेभी शिलोच्छ ग्रहण करै और उसके संभव होनेपर असत्प्रतिग्रह न करै जिससे  
असत्प्रतिग्रहसे शिल उन्नम है धान्यकी वालोंके बीननेको शिल कहते हैं उच्छ उ-  
स्सेभी श्रेष्ठ है एक एक धान्यबीनकर इकट्ठे करनेको उच्छ कहते हैं ॥ १२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः । याच्यः स्यात्स्नात  
कैर्विप्रैर्दत्तसंस्त्यागमर्हति ॥ १३ ॥ अकृतं च कृताक्षेत्राद्भौरर्जा-  
विक्रमेव च । हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वपूर्वमदोषवत् ॥ १४ ॥

टीका—धन न होनेके कारण धर्मके लिये अथवा कुटुंबके लिये दुःख पाते  
हुए स्नातक ब्राह्मणों करि सुवर्ण चांदीसे भिन्न धान्य वस्त्र आदि कुप्य धन और  
वस्त्र आदिके उपयोगी सुवर्ण आदिभी आपत्तिके प्रकरणसे शास्त्रसे बाहर चल-  
नेवाला क्षत्रियभी माग्नेयोग्य होता है और जो देनेकी इच्छा न करै कृपणतासे

निश्चय किया हुआ वह त्यागनेयोग्य है अर्थात् नहीं मागनेयोग्य है और मेघातिथि-गोविंदराज दोनों टीकाकार लिखते हैं कि वह त्यागके योग्य है अर्थात् उसके देशमें न बसना चाहिये ॥ १३ ॥ अकृत कहिये विना बोया हुआ खेत कृत कहिये बोये हुएसे प्रतिग्रह कहिये दान लेनेमें दोषरहित है तैसेही गो, बकरा, भेडा, सोना, धान, और सिद्धान्न कहिये परिपक्व अन्न, इनमेंसे पहिला-पहिल दोष रहित है तिससे तौ इनमें पहले पहलेके न होनेमें परपर जानिये ॥ १४ ॥

संत वित्तौगमा धर्म्या दायो लाभः ऋयो जयः । प्रयोगः कर्मयोग-  
श्च संत्प्रतिग्रह एव च ॥ १५ ॥ विद्या शिल्पं भूतिः सेवां गारेक्ष्यं वि-  
पणिः कूपिः । धृतिभैक्ष्यं कुसीदं च दशं जीवनहेतवः ॥ १६ ॥

टीका—दाय जो भाग है तिसको आदि ले करि सात प्रकारके धनके आगम ( आमदनी ) धनके अधिकारके अनुसार धर्मयुक्त हैं उनमें दाय वंशके क्रमसे आये हुए धनको कहते हैं और लाभ निधिआदिकी प्राप्तिको अथवा मित्रता आदिसे प्राप्त धनको कहते हैं और ऋय प्रसिद्ध है ये तीनि चारो वर्णोंके धर्मसंबंधी हैं और जय धन कहिये विजय करनेसे प्राप्त क्षत्रियका धन धर्मसंबंधी है और प्रयोग वृद्धि आदिके धनका और कर्मयोग कहिये खेती और वणिज ये प्रयोग वैश्यके धर्मसंबंधी हैं और संत्प्रतिग्रह ब्राह्मणका धर्मसंबंधी है ऐसे इन्होंका धर्म्यत्व वचनसे इनके अभावमें आपत्ति रहित समयमें कहे हुए अन्य जीविकके कामोंमें प्रवृत्त होना चाहिये और उनके अभावमें आपत्तिमें कहे हुए ओंमें प्रवृत्त होना चाहिये इस लिये यह यहां कहा है ॥ १५ ॥ आपत्तिके प्रकरणमें जीवनहेतवः अर्थात् जीवनेके कारण इस कहनेसे इनके मध्यमें जिस वृत्तिसे जिसका जीवन आपत्तिरहित समयमें निषिद्ध है उस वृत्तिसे उसको आपत्तिकालमें जीवनेकी आज्ञा दी जाती है जैसे ब्राह्मणको भृत्ति सेवा आदि ऐसेही शिल्प आदिमेंभी जानिये और विद्या कहिये वेद विद्याको छोडके वैद्य, तर्क, विषका दूरिकरना आदि विद्या सबोंको आपत्ति कालमें जीवनेके लिये दोष नहीं है शिल्प कहिये लिखना आदि करना और भृत्ति कहिये प्रेष्य भावसे नौकरिका द्रव्य लेना और सेवा कहिये पराई आज्ञाका करना और गौओंकी रक्षा कहिये पशुओंका पालना और विपणि कहिये दुकान करना और खेती अपने हाथसे की हुई और धृति कहिये संतोष उसके होनेपर थोडेसेभी जीवन होता है और भैक्ष्य कहिये भिक्षाका समूह और कुसीद कहिये व्याजके लिये धन देना इन दश जीवनेके उपायोंसे आपत्तिमें जीवना चाहिये ॥ १६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिर्नैव प्रयोजयेत् ॥ कामं तु खलु धर्मार्थं द्रव्यात्प्राप्यसेऽल्पिकाम् ॥ १७ ॥ चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि । प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किं लिषात्प्रतिमुच्यते १८

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय व्याज आदिके धनको आपत्तिकालमें भी न लगावै किन्तु निरुद्ध कर्म करनेवालेके लिये धर्मके निमित्त थोड़ेसेभी व्याजपर देवै ॥ १७ ॥ अब राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं ॥ राजाका धान्योंमें आठवां भाग होताहै इत्यादि कह चुके हैं वह आपत्तिकालमें धान्य आदिका चौथाभी भाग, करके लिये लेता हुआ और परमशक्तिसे प्रजाकी रक्षा करता हुआ अधिक कर लेनेके पापसे युक्त नहीं होताहै ॥ १८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य नार्हवे स्यात्पराद्धमुखः । शस्त्रेण वैश्यान्-  
क्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्भलिम् ॥ १९ ॥ धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विशां  
कार्पापणावरम् । कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिं लिपनस्तथा १२०

टीका—राजाका शत्रुको विजय करना स्वकाहिये अपना धर्म है और युद्धका फल विजयहै प्रजाकी रक्षामें लगे हुए राजाको जो कहींसे भय होय तो युद्धसे न हटै ऐसे वैश्योंकी चोर तथा डाकुओंसे रक्षा करके उनसे धर्मयुक्त आत्मपुरुषोंके द्वारा कर लेवै ॥ १९ ॥ कौनसा करलेवै सो कहते हैं ॥ धान्यमें वृद्धि होनेपर वैश्योंसे आठवां भाग कर लेवै धान्योंका बारहवां भाग कहाहै आपत्तिकालमें यह आठवां कहा जाताहै और बड़ीही आपत्तिमें पहले कहा हुआ चौथा भाग जानना चाहिये तैसेही कार्पापणतक सुवर्णोंका वीसवा भाग कर लेवै वहांभी पंचाशद्भाग आदेयोरान्ना पशुहिरण्ययोः अर्थात् राजा करि पशु और सुवर्णमें पचासवा भाग लेना चाहिये इत्यादिसे पचासवा भाग कहाहै आपत्तिमें यह वीसवा कहा जाताहै तैसेही शूद्र, कारु, सूपकार, आदि शिल्पी बर्द्ध आदि ये कामहीसे उपकार करते हैं इनसे आपत्तिमेंभी कर न लेना चाहिये ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिर्माकांक्षन्क्षत्रमारोधयेद्यदि ॥ धनिनं वाप्युपारोधयै  
वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥ २१ ॥ स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सं ॥ जातंब्राह्मणशब्दस्य सर्वा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ २२ ॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवासे जीविकाको न करता हुआ शूद्र जो वृत्तिकी चाहना करे तो क्षत्रियकी सेवा करिके और उसके न होनेमें धनवान वैश्यकी से-

वा करिकैः जीवनेकी इच्छा करै द्विजातिकी सेवामें समर्थ, न होनेपर तौ पहिले कहे हुए कर्मोंको करै ॥२१॥ स्वर्गकी प्राप्तिके लिये अथवा स्वर्गमें अपनी वृत्तिकी प्राप्तिके लिये शूद्र ब्राह्मणोंहीकी सेवा करै कारण यह है कि यह ब्राह्मणों-हीका आश्रित उत्पन्न हुआहै और यही इसकी कृतार्थताहै ॥ २२ ॥

विप्रैसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ॥ यदतोऽन्यं कुरुते  
तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥२३॥ प्रकल्प्या तस्य ते वृत्तिः स्वकुटु-  
म्बाद्यर्थाहेतः ॥ शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥२४॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवाही शूद्रको और सब कर्मोंसे शास्त्रमें श्रेष्ठ कर्म कहाहै जिसे इसको छोडकर जिस कर्मको यह करताहै वह इसका निष्फल होताहै ॥ ॥ २३ ॥ उस सेवा करनेवाले शूद्रकी सेवामें सामर्थ्य और कर्ममें उत्साह तथा पालनेयोग्य पुत्र स्त्री आदिके परिमाणको देखि उन ब्राह्मणोंको अपने घरसे उसकी जीविका कल्पना करनी चाहिये ॥ २४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वर्सनानि च ॥ पुलंकाश्चैव धान्या-  
नां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥२५॥ न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च सं-  
स्कारमर्हति ॥ नास्याधिकारो धर्मोऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् २६॥

टीका—उस शूद्रके लिये भोजनसे वचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको देना चाहिये और जो न शूद्रायमतिदद्यान्नोच्छिष्टं अर्थात् शूद्रको मति न दे और न उच्छिष्ट दे यह निषेध, जो शूद्र, आश्रित नहीं है उसके मध्ये जानिये तथा पुराने वस्त्र और और असार धान्य पुरानी शय्या तथा औरभी सब पुराने इसको देने चाहिये ॥ २५ ॥ लसुन आदिके खानेमें शूद्रको कुछ पातक नहीं होताहै और ब्रह्म वध आदिमें तौ होताहीहै । क्योंकि अहिंसा सत्यमस्तेयं अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी न करना यह चारो वर्णोंको साधारणतासे कहाहै और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके योग्य नहीं है और इसका अभिहोत्र आदि कर्मोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि विहित नहीं है और शूद्रको कहे हुए पाकयज्ञ आदि धर्मसे इसका निषेध नहीं है अर्थात् पाकयज्ञ आदि करै ॥ २६ ॥

धर्मेष्वस्तु धर्मज्ञाः सर्तावृत्तमनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति  
प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥२७॥ यथायथा हि सर्व्वत्तमातिष्ठत्यनसूर्य-

कः ॥ तथैतथैमं चार्मुं चै लोकं प्रामोत्यनिन्दितः ॥ २८ ॥

टीका—अपने धर्मके जाननेवाले जे शूद्र धर्म प्राप्तिकी कामनासे जो निषिद्ध नहीं ऐसे तीनो वर्णोंके आचारका आश्रय लेते हैं वे नमस्का मंत्रसे पंचयज्ञोंको करें और दूसरे मंत्रके विना नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञ आदि धर्मको करते हुए शूद्र दोषयुक्त नहीं होते हैं और लोकमें ख्यातिको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पराये गुणोंकी निंदा न करनेवाला शूद्र जैसे जैसे द्विजातिके निषिद्ध नहीं ऐसे आचारोंको करताहै वैसा वैसा जनों करि निन्दित न हो इस लोकमें उत्कृष्ट कहा गया है और स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण नै कार्यो धनसंचयः ॥ शूद्रो हि धनमासाद्य  
ब्राह्मणानेव बाधते ॥ २९ ॥ एते चतुर्णां वर्णानामापेक्षार्थाः प्रकी-  
र्तिताः ॥ यान्सम्यग्नुतिष्ठन्तो ब्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥

टीका—धनके जोडनेमें समर्थभी शूद्रको कुटुंबके पालने और पंचयज्ञ आदि-के योग्य धनसे अधिक बहुतसे धनका संचय न करना चाहिये कारण यह है कि शूद्र धनको पाके शास्त्र न जाननेके कारण धनके मदसे, सेवा न करनेसे ब्राह्मणोंकी बाधा देताहै ॥ २९ ॥ आपत्तिकालमें करनेयोग्य चारो वर्णोंके धर्म ये कहे उनको भलीभांतिसे करते हुए विहितके करनेसे और निषिद्धके न करनेसे पापरहित होनेके कारण ब्रह्मज्ञानके लाभसे मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त होते हैं ३०

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ ३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः १०

टीका—यह चारो वर्णोंका संपूर्ण आचार कहा इसके उपरान्त शुभप्रायश्चित्तका अनुष्ठान कहोंगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



## अथ एकादशीऽध्यायः ॥ ११ ॥

सांन्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ॥ गुर्वर्थं पितृमात्रं स्था  
ध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥१॥ नवैतान्स्नातिकां विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभि  
क्षुकान् ॥ निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

टीका—विवाहका प्रयोजन संतानहै इस लिये सांन्तानिक कहिये विवाह करणे की इच्छा वाला १ और आगे कहा हुआ अवश्य करनेयोग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करनेकी इच्छावाला २ और अध्वग कहिये बढोही ३ औ सर्ववेदस कहिये जिसने सर्वस्व दक्षिणयुक्त विश्वजितयज्ञ किया है ४ और विद्या गुरुके भोजन वस्त्रके लिये जिसका प्रयोजन है ५ एसेही पिता माताके लियेभी ६ ७ और वेद पढनेके समय भोजन वस्त्र आदिका चाहनेवाला ब्रह्मचारी ८ और उपतापी कहिये रोगी ९ इन नव ब्रह्मणोंको धर्मभिक्षाशीलस्नातक जातै इन निर्दनेको जो गौ सुवर्ण आदि दिया जाय उस दानको विद्या विशेषके अनुरूप देवै ॥ १ ॥ २ ॥

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदैक्षिणम् ॥ इतरेभ्यो बहिर्वेदि  
कृतान्नं देयमुच्यते ॥३॥ सर्वरत्नानि राजा तु यथाहंप्रतिपादयेत् ॥  
ब्राह्मणान्चेदविदुषो यज्ञार्थं चैवं दक्षिणाम् ॥४॥

टीका—इन नवश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेदीके मध्यमें दक्षिणा समेत अन्न देना चाहिये और इनसे जो भिन्न होय उनको वेदीके बाहर सिद्ध अन्न देना चाहिये यह उपदेश किया जाता है और धनके देनेमें तौ नियम नहीं है ॥ ३ ॥ राजा मणि मोती आदि सब रत्नोंको और यज्ञके उपयोगी दक्षिणाके लिये धन विद्याके अनुरूप वेदके ज्ञाननेवाले ब्राह्मणोंकी देवै ॥ ४ ॥

कृतदासोऽपैरान्दासोन्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ॥ रतिमात्रं फलं  
तस्य द्रव्यंदातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥ धनानितुं यथाशक्ति विप्रेषु प्रति  
पादयेत् ॥ वेदवित्सु वि वित्केषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

टीका—स्त्रीयुक्त जो संतति आदि काष्णके विना औरोंसे मागकर विवाह करता है उसको रतिमात्रही फल होता है, और उससे उत्पन्न संतान धन देनेवालेके होते है तिस्से इस प्रकार धन यागिके दूसरा विवाह न करना चाहिये और ऐसे के लिये धन न देना चाहिये यह तात्पर्य है ॥ ५ ॥ गौ भूमि हिरण्य आदि ध-

न शक्तिके अनुसारं वेदके जन्मनेवाले पवित्रं और पुत्र स्त्री आदि करि युक्तब्राह्मणोंको दान करै उसके वशसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥ अर्धिकं वापि विद्येत संसोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥ अतः स्वल्पीयसि द्रव्यैः सोमं पिबति द्विजैः ॥ सपीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

टीका—जिसके अवश्य पोष्य वर्गके भरणके लिये तीन वर्षके स्वरचका पूरा अथवा उससे कुछ अधिक भोजन आदि होय वह काम्य सोमयाग करनेके योग्य है ॥ ७ ॥ तीन वर्षके व्यर्थ योग्य धनसे थोडा धन होनेपर जो सोमयागको करताहै उसका प्रथम सोमयाग नित्यभी संपन्न नही होताहै और द्वितीय काम्य सोमयाग तो कैसे हू नही ॥ ८ ॥

शक्तः परंजने दाता स्वर्जने दुःखजीविनि ॥ मध्वार्पातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥ भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ तद्भवत्यसुखोदकं जीवितंश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

टीका—जो बहुत धन होनेके कारण दानमें समर्थ होता हुआ अवश्य भरण करनेयोग्य पिता माता आदि ज्ञातिके जनोंको दुर्गतिसे दुःख युक्त होनेपर यशके लिये औरोंको देताहै वह उसका दान विशेष धर्मका प्रतिरूप कहै धर्म नहीं है पहले यशस्कर होनेसे मधुर तो उसका आरंभहै और अंतमें नरक फल होनेसे विषका आस्वादहै तिस्से यह न करना चाहिये ॥९॥ अवश्य भरण करने योग्य पुत्र स्त्री आदिको पीडा देकर जो परलोककी धर्मबुद्धिसे दान आदि करताहै इस दाताके जीवतेको तथा मरेको वह दान दुःखरूप फलका देनेवाला होताहै ॥ १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ॥ ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥ यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनः कुतुरसोमपः कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहेर्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

टीका—क्षत्रिय आदि यजमानका और विशेष करि ब्राह्मणका यज्ञ जो और अंगोंके पूर्ण होनेपर एक अंगसे पूरा न होय तो जिस वैश्यके बहुत पशु आदि धन होय और वह पाकयज्ञ आदि तथा सोमयजन आदि न करता होय उसके घरसे उस अंगके योग्य द्रव्य बलसे अथवा चोरीसे लेले यह तो राजाके धर्म

प्रधान होनेपर करना चाहिये वह श्राद्धके अर्थ करनेवालेको दंड नहीं देताहै ११

आहरे त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वैश्मनः ॥ नहि शूद्रस्य यज्ञेषु  
कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥ योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च  
सहस्रगुः ॥ तयोरपि कुटुम्बाभ्यां माहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—यज्ञके दो तीन अंगोंके विकल होनेपर उन तीन अंगोंको अथवा दो अंगोंको वैश्यसे न मिलनेपर ब्रह्मण्डक शूद्रके घरसे बल करिके अथवा चोरीसे लेवै जिसे शूद्रका कोईभी यज्ञसे संबंध नहीं है और न ब्राह्मण यज्ञके लिये धन शूद्रसे मागे यह अंगे कहा-हुआ-निषेध शूद्र आदिकोंसे मागनेका है बलसे लेने आदिका नहीं ॥ १३ ॥ जिस अग्निहोत्र न करनेवालेके सौ गौ प्रमाण धन होय अथवा ऋग्निहोत्री होय और सोमयाग न करता होय उसके जो हजार गौ प्रमाण धन होय तो दोनोंके घरोंसे दोनो अथवा तीनों अंगोंके शीघ्र पूरे करनेको ब्राह्मण करि दोनोसे लेना चाहिये और ब्राह्मण क्षत्रियोंसेभी लेवै ॥ १४ ॥

आदानं नित्याच्चोर्दातुरीहरेदप्रयच्छतः ॥ तथा यज्ञोऽस्य प्रथते  
धर्मश्चैवं प्रवर्धते ॥ १५ ॥ तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडैनश्नता ॥  
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

टीका—आदान नित्य कहिये जिसके प्रतिग्रह आदिसे नित्य धन आवै वह जो इष्टापूर्त तथा दानसे रहित होय उससे यज्ञके दो अथवा तीन अंगोंके लिये याचना करनेपर न दे तो बलसे अथवा चोरीसे लेवै ऐसा करनेपर लेनेवालेकी ख्याति प्रकाशित होती है और धर्म बढताहै ॥ १५ ॥ सायंकाल और प्रातःकालके भोजनके उपदेशसे तीन दिनका उपवास होनेपर चौथे दिन प्रातःकाल सातमें भोजनकी प्राप्ति होनेपर दान आदि धर्मसे रहित एकदिनका पूर्ण भोजनके योग्य धन चोरीसे लेना चाहिये ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्राद्गौराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते ॥ आख्यातव्यं तु तत्तं  
स्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणं स्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण  
कदाचन ॥ दस्युनिष्क्रियोस्तु स्वमजीर्वहर्तु महति ॥ १८ ॥

टीका—खलिहानसे अथवा खेतसे अथवा घरसे अथवा और किसी स्थानसेही न धर्मसंबंधी भ्रान्त्य मिलै वहांसे लेना चाहिये जो यह धनका स्वामी पूछै कि तुमने

किस लिये किया तौ उससे कारण समेत चोरी आदि कहनी चाहिये ॥ १७ ॥  
कहे हुए कारणोंके होनेपरभी क्षत्रियको ब्राह्मणका धन उससेही न होनेके कारण  
न लेना चाहिये समान न्याय होनेके कारण वैश्यों तथा शूद्रोंको जूंची जातिसे  
न लेना चाहिये और निषिद्धके करनेवाले और विहितके न करनेवाले ब्राह्मण  
तथा क्षत्रियसे अत्यंत आपत्तिमें क्षत्रिय लेनेके योग्यहै ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ॥ सँ कृत्वा पूर्वमा.  
त्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १९ ॥ बद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं  
तद्विदुर्बुधाः ॥ अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

टीका—जबे हीन कर्म आदि उत्कृष्टोंसे कहे हुएभी कारणोंमें कहेके अनुरूप  
यज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये धनको लेकर साधुओंको और उत्कृष्टजी ऋत्विक्  
आदि है तिनको देताहै वह जिसका धन लेताहै उसके पापका नाश करता है  
और जिसको देताहै उसको दुर्गतिसे वचाताहै इस भांति आपको नाव बनाके  
दोनोंको दुःखसे छुडाताहै ॥ १९ ॥ यज्ञ करनेवालोंका जो धनहै उसको यज्ञमें लग  
नेके कारण विद्वान् देवताओंका धन मानते हैं और यज्ञ आदिसे शून्य पुरुषोंके  
धनको यज्ञ आदिमें न लगनेके कारण आसुर कहिये असुरोंका कहते हैं इससे  
उसकोभी हरण करिके यज्ञ आदिसे देवस्वकरना चाहिये ॥ २० ॥

नैतस्मिन्धारयेद्वदं धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ क्षत्रियस्य हि बालि  
श्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥ २१ ॥ तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्व  
कुटुम्बान्महीपातिः श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्या प्रकल्पयेत् २२

टीका—उस कहे कारणमें चोरी तथा बलात्कार करनेवालेको धर्म प्रधान रा  
जा दंड न करै कारण यह है कि राजाकी मूढतासे ब्राह्मण क्षुधासे दुखी  
होता है ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मणके अवश्य भरण करनेयोग्य पुत्र आदि वर्ग-  
को जानि तथा शास्त्र और आचारको जानि उनके अनुरूप जीविका राजा  
अपने घरसे नियत करै ॥ २२ ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ॥ राजा हि धर्मवद्भागं  
तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥ २३ ॥ नयज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत  
कहिचित् ॥ यजमानो हि भिक्षित्वां चण्डालः प्रेत्य जायते ॥ २४ ॥

टीका—इस ब्राह्मणकी जीविको नियत करि सब शत्रु चौर आदिकोंसे रक्षा

करै कारण यह है कि रक्षा किये हुए ब्राह्मणसे उसके धर्मका छठा भाग पाता है ॥ २३ ॥ ब्राह्मण यज्ञको सिद्धिके लिये शूद्रसे कभी धन न मागे कारण यह है कि शूद्रसे मागिके यज्ञको करता हुआ मरिके चांडाल होता है इस्से मागनेका निषेध करनेसे शूद्रसे विना मागे हुएभी प्राप्त हुआ धन यज्ञके लियेभी विरुद्ध नहीं है ॥ २४ ॥

यज्ञार्थं मर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ॥ संयाति भ्रासतां वि  
प्रःकाकतां वा शतं समां ॥ २५ ॥ देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोप  
हिनस्ति यः ॥ संपार्पात्मां परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥

टीका—यज्ञकी सिद्धिके लिये धनको मागिके जो यज्ञमें सब गद्दी लगाता है वह सौवर्षतके भास कहिये नीलकंठ अथवा कौआ होता है ॥ २५ ॥ देवस्व कस्हि ये प्रतिमा आदि देवताओंके लिये दिये हुए धनको और ब्राह्मणके धनको जो लोभसे ले लेता है वह पापस्वभाव दूसरे जन्ममें गीधकी जूठनिसे जीवता है ॥ २६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदुदपर्ययो ॥ कूर्तानां पशुसोमानां निष्कृ  
त्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥ आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्वि  
जः ॥ स नोप्राप्ति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥

टीका—वर्षके समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके आरंभ होनेको अर्थात् चैत्रशुक्ल आदि वर्षकी प्रवृत्तिको वर्षपर्यंत कहते हैं उस वर्षांतरमें वैश्वानरी इष्टिको कहे हुए पशु सोमयागके न होनेमें उसके न करनेका दोष दूर करनेके लिये सदा शूद्र आदिसे कहे हुए धनके ग्रहणरूप इष्टिको करै ॥ २७ ॥ जो द्विज आपत्तिमें कही हुई विधिसे आपत्तिके विना धर्मको करता है उसका वह परलोकमें निष्फल होता है यह मनु आदिकोंने विचार किया है ॥ २८ ॥

विश्वैश्वदेवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महाषिभिः ॥ आपत्सु मरणाद्भी  
तैर्विधेः प्रतिनिधिः कूर्तः ॥ २९ ॥ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुक  
ल्पेन वर्तते ॥ न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

टीका—विश्वदेवनाम देवोंसे और साध्योंसे तैसेही मरनेसे डरे हुए महाषि ब्राह्मणों करि आपत्तिमें मुख्य विधि सोम आदिके वैश्वानरीं आदि प्रति प्रतिनिधि किया हुआ यह मुख्यके न होनेमें करना चाहिये मुख्यके संभवमें नहीं ॥ २९ ॥

मुख्यके करनेमें समर्थ जो आपत्तिमें कहे हुए प्रतिनिधिसे अनुष्ठान करताहै उस दुर्बुद्धिका परलोकसंबन्धी अभ्युदयरूप और प्रत्यवायका दूरि होनारूप फल नहीं होता है ॥ ३० ॥

न ब्राह्मणोऽवेदयत् किञ्चिद्राजनि धर्मवित् ॥ स्ववीर्येणैव तांश्छि-  
प्यान्मानवानपकारिणः ॥ ३१ ॥ स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं ब-  
लवत्तरम् ॥ तस्मात्स्वे नैव वीर्येण निर्गूणहीयादरीन्द्रिजः ॥ ३२ ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण कुछभी अपकार राजासे न कहे अपितु अपनीही शक्तिसे आगे कहे हुए अभिचार आदिसे अपकार करनेवाले मनुष्योंको दंड देवै तिससे तौ अपने धर्मके विरोध आदि प्रकृष्ट अपराध करनेपर अभिचार आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस लिये यह कहाहै कुछ अभिचारका विधान नहीं करते है अथवा न राजासे कहनेका निषेध करते हैं ॥ ३१ ॥ जिससे अपनी सामर्थ्य और राजाकी सामर्थ्य इन दोनोमेंसे पराधीन राजाकी सामर्थ्य की अपेक्षा अपने आधीन होनेसे अपनाही सामर्थ्य बलवान है तिससे ब्राह्मण अपनेही पराक्रमसे शत्रुओंको दंड देवै ॥ ३२ ॥

श्रुतीरथवांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥ वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मण-  
स्य तेन हन्यादरीन्द्रिजः ॥ ३३ ॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापादमा-  
त्मनः ॥ धने न वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्रिजोत्तमः ॥ ३४ ॥

टीका—वह कौनसा अपना पराक्रमहै सो कहते हैं ॥ अथर्ववेदमें देखा गया है अभिचार जिनका ऐसी आंगिरसीश्रुतियोंको विना विचारके करै जिससे अभिचारमंत्रके उच्चारणरूप ब्राह्मणकी वाणीही शस्त्रका काम करनेसे शस्त्रहै उससे ब्राह्मण शत्रुओंको मारै शत्रुके दंड देनेके लिये राजासे न कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ क्षत्रिय अपने बलसे शत्रुसे तिरस्काररूप अपनी आपत्तिके पार होय और वैश्य तथा शूद्र धनके देनेसे और ब्राह्मण अभिचार कहिये कारणरूप जप होमोंसे आपत्तिके पार होय ॥ ३४ ॥

विधाता शासितावक्तो मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ तस्मै नाकुशलं ब्रूया-  
न्नं शुष्कां गिरमी रयेत् ॥ ३५ ॥ न वै कन्या न युवतिर्नाल्पवि-  
द्यो न बालिशः ॥ होता स्यादग्निहोत्रस्य नातो नासंस्कृतस्तथा ३६

टीका—कहे हुए कर्मोंका करनेवाला और पुत्र शिष्य आदिकोंका सिखानेवाला और

प्रायश्चित्त आदि धर्मोंका कहनेवाला और सब भूतोंकी मित्रतामें प्रधान ब्राह्मण कहा जाताहै उसके लिये दंड दो ऐसा अनिष्ट वचन न कहै और गाली आदि वाक्दंड तथा धिक्दंडरूप वाणीका उच्चारण उसके लिये न करै ॥ ३९ ॥ कन्या विना व्याही और व्याहीभी तरुणी और थोडा पण हुआ मूर्ख रोग आदिसे पीडित और उपनयन कर्म रहित ये सब श्रुतिमें कहे हुए सायं प्रातः होम आदिको न करै ॥ ३६ ॥

नरकै हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ॥ तस्माद्द्वैतानकुशलो  
होती स्याद्वेदपारंगः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यमर्दत्वाऽश्वमग्न्याधेय  
स्य दक्षिणाम् ॥ अनाहिताग्निर्भवंति ब्राह्मणो विभवे संति ॥ ३८ ॥

टीका—होमको करते हुए ये कन्याआदि नरकको जाते हैं और जिसकी औरसे ये अग्निहोत्र करते हैं वहभी नरकको जाताहै तिस्से श्रौतकर्ममें चतुर सब वेदोंका पढनेवाला, होता करना चाहिये ॥ ३७ ॥ अग्निके आधानमें ब्राह्मण संपत्तिके होनेपर प्रजापति जिसका देवताहै ऐसा अश्व दक्षिणामें दिये विना अग्निकाआधा न करनेपर आहिताग्नि नहीं होताहै और आधानके फलको नहीं पाताहै तिस्से आधानमें अश्व दक्षिणा देवै ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ॥ न त्वल्पदक्षिणैर्य  
ज्ञैर्यजन्ते हं कथंचन ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि यज्ञः स्वर्गमायुः कीर्ति  
प्रजाः पशून् ॥ हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो र्यजेत् ४० ॥

टीका—श्रद्धावान् पुरुष इंद्रियोंको वशमें करिके यज्ञसे भिन्न तीर्थयात्रा आदि पुण्य कर्मोंको करै और शास्त्रमें कही हुई दक्षिणासे थोडी दक्षिणावाले यज्ञोंसे कैसेहू यजन न करै ॥ ३९ ॥ नेत्र आदि इंद्रियोंको और जीवते हुएके ख्यातिरूप यज्ञ कीर्तिको और संततिको तथा पशुओंको थोडी दक्षिणाका यज्ञनाश करताहै तिस्से थोडी दक्षिणा देके यज्ञ न करै ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यपि ध्याग्नीन्द्राह्वणः कामकारतः ॥ चांद्रायणं चरेन्मा  
सं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥ ये शूद्रादधिर्गम्यार्थमग्निहोत्रमु  
पासते ॥ ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गार्हताः ॥ ४२ ॥

टीका—अग्निहोत्री, ब्राह्मण इच्छासे अग्नियोंमें सायंकाल तथा प्रातःकालके

होमोंको न करके एक महीनेभर चांद्रायण व्रत करे जिस्से यह वीरपुत्रकी हत्याके समान है ॥४१॥ जे शूद्रसे धनको पाके अथवा साधारण मागनेसे धनको लेकर आधान पूर्वक अग्निहोत्र करते हैं वे शूद्रोंहीके याजकहैं उनको उसका फल नहीं होताहै इसीसे वे वेदवादियोंमें निन्दितहैं ॥ ४२ ॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ॥ पदा मस्तकमाक्रम्यं  
दांता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥ अकुर्वन्निहितं कर्म निन्दितं च स.  
माचरन् ॥ प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रार्थयश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥

टीका—शूद्रके धनसे आहिताग्नि होनेजाले उन मूर्खोंके मस्तकपर पांव रखिके देनेवाला शूद्र उस दानसे सदा परलोकमें दुःखोंसे निस्तर जाताहै यजमानोंका फल नहीं होताहै ॥ ४३ ॥ नित्य कहे हुए संध्योपासन आदिको और नैमित्तिक जैसे घृतकके झूनेमें स्नान आदिको न करता हुआ और निषेध किये हुए हिंसा आदिको करता हुआ नहीं कहे हुए निषिद्ध कर्मोंमें अत्यंत आसक्तिको करता हुआ नर प्रायश्चित्ती होताहै ॥ ४४ ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः । कामकारकृतेऽप्याहुं  
रेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥ अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन  
शुद्ध्यति । कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः बृथंगिवधैः ॥ ४६ ॥

टीका—बिना जाने किये हुए पापका प्रायश्चित्त होताहै यह पंडित कहते हैं और कोई आचार्य कहते हैं कि जानके किये हुएका प्रायश्चित्त होताहै यह तौ पृथक् करिके कहना प्रायश्चित्त गौरवके लिये है श्रुतिनिदर्शनात् वेदके दृष्टान्तसे जैसे इंद्रोयतीन्शालावृकेभ्यः प्रायच्छततमश्चीलावागित्यवदत्सप्रजापतिमुपाधावत्तस्मात्तमुपहव्यंप्रायच्छत् इति इसका अर्थ यह है कि इंद्रयतियोंको बुद्धिपूर्व कुत्तोंसे खानेको देता हुआ वह प्रायश्चित्तके लिये प्रजापतिके समीप गया उसके लिये प्रजापतिने उपहव्य नाम कर्म प्रायश्चित्त दिया इसीसे जानके किये हुएमेंभी प्रायश्चित्तहै ॥४५॥ इच्छाके बिना किया हुआ पाप वेदके अभ्याससे शुद्ध होताहै अर्थात् नाशको प्राप्त होताहै और रागद्वेष आदिकी व्यामूढतासें जानकर किया हुआ पाप नाना प्रकारके प्रायश्चित्त अर्थात् विद्या धन तथा तपसे शुद्ध होताहै ४६

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य देवात्पूर्वकृतेन वा । न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रा-



यश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥ इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतै-  
स्तथा । प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

टीका—दैवात् कहिये प्रमादसे इस शरीर करि किये हुए अथवा पूर्वजन्ममें संचय किये हुए पापसे क्षयरोग आदि करि सूचितसे प्रायश्चित्ती होकर प्रायश्चित्त के विना किये साधुओंके साथ याजन आदिसे संसर्गको नही प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ इस जन्ममें निषिद्ध काम करनेसे और कोई पूर्वजन्ममें किये हुए ओसे दुष्टस्वभाव मनुष्य कुनखी आदि होना रूपके विपर्यय कहिये अन्यथा भावको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् । ब्रह्महा क्षयरोगित्वं  
दोश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥ पिशुनः पौस्तिसिक्यं सूचकः पू-  
तिवक्त्रताम् । धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥ ५० ॥  
अन्नहर्ताभयावित्वं मौक्यं वांगपहारकः । वस्त्रापहारकः श्वेद्यं  
पर्दुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥ दीपहर्ताभवेदन्धः काणो निर्वापको  
भवेत् ॥ हिंसया व्याघ्रभूतस्तुस्फीतोऽन्यंस्त्वभिर्मशकः ॥ ५२ ॥  
एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः । जडमूकान्धबधिरा वि-  
कृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

टीका—सुवर्ण चुरानेवालेके नख कुत्सित होजातेहै और निषिद्ध मद्य पी-  
नेवालेके दांत कालेजाते हैं और ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होताहै गुरूकी भार्यामें गमन  
करनेवालेका लिंग बंद नहीं होताहै खुला रहताहै और पिशुन कहिये विद्यमान दो-  
षोंके कहनेवालेकी नाकमें दुर्गंध आती है और नही विद्यमान दोषोंके कहनेवा-  
लेके मुखमें दुर्गंध आती है और धान्यका चोर अंगहीन होताहै और धान्य आ-  
दिकोंमें कुछ और मिलानेसे अधिक अंग होजाते हैं और अन्न चुरानेवालेकी अ-  
ग्नि मंद होजातीहै और विना आज्ञाके पढनेवाला मूक होताहै और वस्त्रोंका चु-  
रानेवाला श्वेतकुशी होताहै और घोडेका चुरानेवाला पंगा होताहै दीपकको चुरा-  
नेवाला नेत्र इंद्रियसँ रहत अर्थात् अंध होताहै और दीपकको बुझावनेवाला का-  
ना अर्थात् एक आंखीवाला होताहै यज्ञदेवता आदिकोंके उद्देश विना केवल जि-  
हाके स्वादसे जो पशुओंकी हिंसा करताहै उसको रोग बहोत होतेहैं और जो  
दूसरेके स्त्रीको दूषण करनेवाला अर्थात् संभोग आदिक करानेवाला वातसंबंधी

रोगों करिके स्थूल देहवान् होताहै ऐसे बुद्धि, वाणी नेत्र, कानोंसे विकल विकृत रूप साधुओं करि निदित पूर्वजन्ममें संचय किये हुए भोगनेसे शेष रहे हुए पापोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥  
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्तां जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥५४॥

टीका—अनिष्कृतैनसः कहिये जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये हैं वे परलोकमें भोगे हुए पापके शेषसे कुनखीपन आदि निन्द्य लक्षणों करि युक्त उत्पन्न होते हैं तिस्से शुद्धिके लिये अर्थात् पाप-दूरि करनेके लिये प्रायश्चित्त सदा करना चाहिये ॥५४॥

ब्रह्महत्यां सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥  
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥५५॥

टीका—ब्राह्मणके भ्राणवियोगरूप जिसका फल है ऐसे व्यापारको ब्रह्महत्या कहते हैं वह तौ साक्षात् अश्रवा दूसरेको नियुक्त करिके तैसेही गौ भूमि और सुवर्णका लेना आदि जिसका कार्य है उसके लिये ब्राह्मणके मरनेमें ब्रह्महत्या होती है ऐसी ब्रह्महत्या और निषिद्ध सुराका पीना औरस्तेय कहिये ब्राह्मणका सुवर्ण ले लेना और गुरुकी स्त्रीमें गमन करना और इनके साथ संसर्ग करना इनको महापातक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥ गुरोश्चालीकनिर्वधः  
सर्मानि ब्रह्महत्याया ॥५६॥ ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुह  
द्वधः ॥ गर्हितानार्थयोर्जग्धिः सुरापानसर्मानि षट् ॥५७॥

टीका—जातिकी बढाईके लिये बढकै बोलना जैसे जो ब्राह्मण नहीं है वह आपको ब्राह्मण कहै और जिसमें-उनका मरण होय ऐसा चोर आदिकोंका दोष राजासे कहना और गुरुको झूठा दोष लगाना ये सब ब्रह्महत्याके समान हैं ५६ पढे हुए वेदका अभ्यास न करनेसे भूलना और असत् शास्त्रके आश्रयसे वेदकी निन्दा करना और साक्ष्य ( गवाही ) में झूठ बोलना और ब्राह्मणसे अन्यभिन्नका वध और निषिद्ध लशुन आदिका खाना और अभक्ष्य विद्या आदिका भक्षण ये सब सुरापानके समान हैं ॥ ५७ ॥

निक्षेपस्याप्रहरणं नस श्वरजतस्य च ॥ भूमिवज्रमणीनां च रुक्म

स्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥ रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारी ष्वन्त्य  
जासु च ॥ सरुण्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥ ५९ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न धरोहडका ले लेना तैसेही मनुष्य, घोडा, चांदी, भूमि, हीरा, और मणियोंका ले लेना ये सब सुवर्णकी चोरीके तुल्यहैं ॥ ५८ ॥ सगी बहानि, कुमारी, चांडाली, और मित्र तथा पुत्रकी स्त्रीमें वीर्यका सींचना गुरुपत्नीमें गमन करनेके समानहैं ॥ ५९ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥ गुरुमातृपितृत्या  
गः स्वाध्यायाभ्युः सुतस्य च ॥ ६० ॥ परिव्रित्तितानुजेऽनू  
ढे परिवेदनमेव च ॥ तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च या  
ज्जनम् ॥ ६१ ॥ कन्याया दूषणं चैवं वांधुष्यं व्रतलोपन  
म् ॥ तडांगारामदारानामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥ वा  
त्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च । भृत्यार्चाध्ययर्नादान  
मपण्यनां च विक्रयः ॥ ६३ ॥ सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्त  
नम् । हिंस्रौषधीनां स्व्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६४ ॥ इन्ध  
नार्थमशुष्काणां दुर्माणामवर्षातनम् । आत्मार्थं च क्रियारम्भो  
निन्दितांनदानं तथा ॥ ६५ ॥ अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनप  
क्रिया । असच्छास्त्राधिगमनं कौशील्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥ धा  
न्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधो ना  
स्तिवैयं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

टीका—अब उपपातकोंको कहते हैं ॥ गौका मारना जाति तथा कर्मसे दु  
ष्टोंको यजन कराना पराई स्त्रीमें गमन करना अपना वेचना माता पिता गुरु  
आदिकी सेवा न करना सदा ब्रह्मयज्ञका त्याग स्मार्त्त अग्निका त्याग और पु  
त्रका संस्कार, भ्रूण आदि न करना पहले छोटका ब्रिवाह करनेसे ज्येष्ठ परि  
व्रित्ति होता है और छोटा परिवेत्ता होता है उन दोनोको कन्या देना और  
उन्हीका विवाह होम आदिमें ऋत्विज होना मैथुनके बिना अंगुली आदिके  
डालनेसे कन्याको दूषित करना वृद्धि कहिये व्याजसे जीविका करना  
व्रतलोपन कहिये ब्रह्मचारीका मैथुन करना तलाव बाग भार्या और संतानका

बेचना कालमें यज्ञोपवीत न होना व्रात्यता है पितृव्य आदि बांधवोंकी अनुवृत्ति न करना नियत वेतन लेकर पढाना नियत वेतन देकर पढना नहीं बेचनेयोग्य तिल आदिका बेचना सुवर्ण आदिकी खानिमें राजाकी आज्ञासे अधिकार लेना बडे जलके प्रवाह रोकनेके कारण पुल आदि प्रवृत्त करना औषधियोंकी हिंसा भार्या अदि स्त्रियोंको वेश्या बनाकै जीविका करना श्येन आदि यज्ञसे अमरसध रहितका मारना मंत्र औषध आदिसे वशीकरण करना ईधनके लिये हरित वृक्षका काटना रोगरहितका देवता पितृ आदिके उद्देश विना पाक आदिका करना निन्दित अन्न लशुन आदिका एकवार इच्छाके विना खाना अधिकार होनेपर अग्निहोत्र न करना सुवर्णसे अन्यसार द्रव्यका हरण करना तीन प्रकारके ऋणोंका न दूर करना श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध शास्त्रका सिखाना नाचने गाने बजानेका सेवन करना धान्नकी तांबे ल्हेहे आदिकी और पशुओंकी चोरी करना द्विजातियोंका मद्य पीनेवाली स्त्रीमें गमन करना स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियका मारना और नास्तिक्य कहिये अदृष्टार्थ कर्ममें अभावकी बुद्धि होना ये प्रत्येक उपपातक हैं ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्यां प्रातिरघ्रे यमद्ययोः ॥ जैह्वयं च मैथुनं पुं  
सिं जातिभ्रंशंकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥ खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजावि  
कवधस्तथा ॥ संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

टीका—ब्राह्मणको दंड कहिये दंडा और हाथ आदिसे पीडा देना और अत्यंत दुर्गंध होनेके कारण न सूघनेयोग्य लशुन पुरीष आदिकी तथा मद्यकी गंधका सूघना और कुटिलता और पुरुषकी गुदा आदिमें मैथुन ये एक एक जातिके भ्रंश करनेवाले हैं ॥ ६८ ॥ गधा, घोडा, ऊंट, मृग, हाथी, बकरा, मेढा, मछली, सांप, भैसा, इनमेंसे प्रत्येकका मारना संकरी करण जानिये ॥ ६९ ॥

निन्दितेभ्यो धनोदानं वाणिज्यं शूद्रसेर्वनम् ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेयं  
मसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥ कृषिकीटवयोहत्या मद्भानुगतभो  
जनम् ॥ फलैथःकुसुमस्तेयमथैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्योसे धनका दानं लेना, वाणिज्य, शूद्रकी टहल, और शूद्र बोलना, ये प्रत्येक अपात्र करनेवाले हैं ॥ ७० ॥ कृषि कहिये क्षुद्र जीव तिनसे

कुछस्थूल कीट तिनका और पक्षियोंका वध और मद्यके साथ एक पिटारीमें धारि कै लाये हुए शाक आदि भोज्य वस्तुका भोजन और फलकाष्ठ तथा फूलोंकी चोरी करना और थोड़ीभी हानिमें बहु व्याकुल होना ये प्रत्येक मलिनकरनेवाले हैं ७१

एतान्येनासि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥ यैर्व्रतैरपोद्धन्ते  
तानि संभ्यद्भिर्बोधत ॥ ७२ ॥ ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा  
वने वसेत् । भैक्षाश्यात्मत्रिशुद्धयर्थं कृत्वा शर्वशिरोध्वजम् ७३

टीका—भेदसे कहे हुए ये सब ब्रह्महत्या आदि पापोंका जिन जिन प्रायश्चित्त रूप व्रतोंसे नाश होताहै उनको यथावत् सुनिये ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला वनमें कुटी बनायकै मारे हुएके शिरके कपालको अथवा उसके न होनेमें और किसीका पिन्हकरिकै भिक्षा खाता हुआ अपने पापके दूर करनेके लिये बारह वर्ष वनमें बसे और व्रत करै ॥ ७३ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः । प्रस्येदार्त्मानमं  
ग्नौ वा समिद्धे त्रिर्वाविच्छराः ॥ ७४ ॥ यजेत वा श्वमेधेन स्वर्जिता  
गोसवेन वा । अभिर्जिद्विश्वजिद्धां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥ ७५ ॥

टीका—धनुषबाण आदि शस्त्रके धारण करनेवाले युद्ध करनेवालोंका ब्राह्मण वधके पापकी क्षीणताके लिये यह प्रायश्चित्तहै कि अपनी इच्छासे विद्वान् शस्त्रधारियोंके बाणका लक्ष्य ( निशाना ) होकै स्थित होय जबतक मरजाय अथवा मरेके समान होजाय तौ शुद्ध होय सोई यज्ञवल्क्यने कहाहै जैसे संग्रामेवाहतो-लक्षीभूतः शुद्धिमुवाप्नुयात् । मृतकल्पः प्रहारतो जीवन्नपिविशुद्ध्यति ॥ अर्थात् संग्राममें लक्ष्य होकै मारा जाय तौ शुद्धिको प्राप्त होय अथवा प्रहारोसे पीडित हो मरेके समाहोकै जीवता हुआभी शुद्ध होताहै अथवा जलती हुई अग्निमें नीचेको मुख करिकै तीनिवार शरीरको डारै तौ शुद्ध होय ॥ ७४ ॥ अश्वमेधसे अथवा स्वर्जिता नाम याग विशेषसे अथवा गोमेधसे अथवा अभिर्जितयज्ञसे अथवा विश्वजितसे त्रिवृतासे अथवा अग्निष्टुतसे यजन करै ये अज्ञानसे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त हैं ॥ ७५ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् । ब्रह्महृत्यापनोदाय मि-  
तभुद्भिर्यतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥ सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोषपादये

त् ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥

टीका—वेदोंमेंसे एक वेदको जपता हुआ स्वल्प आहार और जितेंद्रिय हो-  
ब्रह्महत्याके पापके दूरि करनेके लिये सौ योजन अर्थात् चारसौ कौंस चला जा-  
य यद्ग भी अज्ञानसे किये हुए जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें तीनोवर्णोंका प्रायश्चित्त  
है ॥ ७६ ॥ अथवा वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर देवै जितना ध-  
न उसके जीवनेके लिये समर्थ होय अथवा गृह और घरकी उपयोगी सब धन-  
धान्य आदि वस्तुओं समेत इसीसे सर्वस्व अथवा सब सामान समेत घर देवै जी-  
वनाय अलं इस वचनसे जीवनेके लिये पूर्ण सर्वस्व अथवा घर देवै उस्से थोडा न  
होय यह तौ अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणका प्रायश्चित्तहै सोई भ-  
विष्य पुराणमें लिखाहै जैसे जातिमात्रं यदा हन्यात् ब्राह्मणं ब्राह्मणो गृह ॥ वेदा-  
भ्यासविहीनो वै धनवानग्निर्वाजितः ॥ प्रायश्चित्तं तदा कुर्यादिदं पापविशुद्धये ॥ धनं  
वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ अर्थ ॥ हेकार्तिकेय जो ब्राह्मण जातिमात्र  
ब्राह्मणको मारै वेदाभ्याससे हीन होय धनवान होय अग्नि करि वाजित होय तौ  
वह शुद्धिके लिये इस प्रायश्चित्तको करै अर्थात् जीवनेके लिये पूर्ण धन अथवा  
धान्य आदि सामग्री समेत घर देवै ॥ ७७ ॥

हविष्यं भुग्वाऽर्चुसरेत्प्रतिस्त्रोतः सरस्वतीम् ॥ जपेद्वा नियताहार  
स्त्रिं वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७८ ॥ कृतवापनो निर्वसेद्भामान्ते गो  
ब्रजेऽपि वा ॥ आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७९ ॥

टीका—नीवार आदि हविष्य अन्नका भोजन करनेवाला विख्यात भुक्षस्व-  
णसे लगाकै पश्चिम समुद्रके स्रोताके प्रति सरस्वतीकों जाय यह तौ प्रायश्चित्त  
जातिमात्र ब्राह्मणके ज्ञानपूर्वक वधमें ब्राह्मणके लिये कहा है अथवा परिमित  
कहिये थोडासा आहार करिकै तीनि वार वेदकी संहिताको जपै संहिता शब्द-  
से पदक्रमका व्युदास हुआ ॥ ७८ ॥ अथवा वारहैं वर्षके सम्पन्न होनेपर इसकी  
उपस्थित होनेपर द्वादशवार्षिकका विशेष कहते हैं कटे हैं केश नख ढाढी  
मूच्छ जिसके ऐसा तथा गौ ब्राह्मणके हितमें लगा हुआ अर्थात् गौ ब्राह्मणका  
हित करता हुआ ग्रामके समीप गौओंके स्थानमें वृक्षके नीचे इनमेंसे कही रहै  
बुनेकुटीकृत्य इसका यह विकल्पहै ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणार्थे गैवार्थे वा सर्वैः प्राणान्परित्यजेत् ॥ मुच्यते ब्रह्महत्यां

या गोप्तं गोब्राह्मणस्य च ॥८०॥ त्रिवारं प्रतिरोद्धो वा सर्वस्वमव  
जित्य वा ॥ विप्रस्य तन्निमित्ति वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

टीका—बारह वर्षके आरंभ होनेपर बीचमें अग्नि जल तथा हिंसक आदि-  
कों करि दवाये हुए ब्राह्मणकी अथवा गौकी रक्षाके लिये प्राणोंको छोड़ता हुआ  
ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै गौ अथवा ब्राह्मणको उनसे बचाकै जीवता हुआ  
भी बारह वर्षोंके न समाप्त होनेपरभी ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै ॥८०॥ चोर आ-  
दिकों करि ब्राह्मणका सर्वस्व हरि लेनेपर उसके लानेके लिये कपटको छोड़िकै  
ग्रथाशक्ति यत्नकरै वहां तीर्नवार युद्धमें प्रवृत्तहो सर्वस्वके न लानेपरभी ब्रह्मह-  
त्याके पापसे छूटि जाताहै अथवा पहलीवार हरे हुए ब्राह्मणके सर्वस्वको जीतिकै  
जो देताहै वह ब्रह्महत्यासे छूटि जाताहै अथवा धनके हरि जानेके कष्टसे ब्राह्मण  
आपही युद्धसे मरनेमें प्रवृत्त होय तब यद्यपि हरे हुए धनके बराबर देनेसे  
उसको जिवाता है तबभी उसके निमित्त उसका प्राणालाभ होनेपर ब्रह्महत्याके  
पापसे छूटि जाता है ॥ ८१ ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्म  
हत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥ शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमांगमे ॥  
स्वमेनोऽदभृथस्नातो ह्यमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे सदा नियमयुक्त स्त्रीसंयोग आदिसे रहित म-  
नको राँके हुए बारह वर्षके समाप्त होनेपर ब्रह्महत्याके पापको नाश करताहै  
॥ ८२ ॥ अश्वमेध यज्ञमें ऋत्विज ब्राह्मणोंके और यजमान क्षत्रियके समागम  
होनेपर ब्रह्महत्याके पापको निवेदन करिकै यज्ञांतरुनानमें नहाया हुआ ब्रह्मह-  
त्याके पापसे छूटि जाताहै ॥ ८३ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राज्ञ्य उच्यते ॥ तस्मात्समांगमे तेषां  
मेनो विख्याप्य शुध्यति ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि  
दैवतम् ॥ प्रमार्णं चैव लोकस्य ब्रह्मत्रैव हि कारणम् ॥ ८५ ॥

टीका—जिस्से ब्राह्मण धर्मका कारणहै ब्राह्मण करि धर्मका उपदेश करनेपर  
र धर्मके करनेसे राजा उस धर्मका आगेका भाग मनु आदिकों करि कहा ग-  
याहै उन दोनो ब्राह्मण क्षत्रियों करि मूलसहित धर्मरूप वृक्षकी सिद्धि होती है  
जिस्से उनके समागमरूप अश्वमेधमें पापका निवेदन करि अर्धभूममें नहाया

हुवा शुद्ध होतहै ॥८४॥ ब्राह्मण उत्पत्तिमात्रहीसे देवताओंकाभी पूज्यहै और श्रु-  
त आदि करि संपन्न होय तौ फिरि क्या कहनाहै मनुष्योंका और लोकका तौ  
बहुतही पूज्यहै क्योंकि उसके उपदेशकी प्रामाण्यताहै जिस्से उसमें वेदही का-  
रणहै और उपदेशका मूल वेदहै ॥८५॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसुनिष्कृतिम् ॥ सां तेषां पावनाय  
स्यात्पवित्रां विदुषां हि वाक् ॥८६॥ अतोऽन्यतममास्थाय विधिं  
विप्रः समाहितः । ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥८७॥

टीका—उन विद्वान् ब्राह्मणोंमेंसे वेदके जाननेवाले तीनभी अधिक होय तौ  
फिरि क्या कहनाहै पाप दूरि करनेके लिये जिस प्रायश्चित्तको कहै वह पापियों-  
की शुद्धिके लिये होताहै कारण यह है कि विद्वानोकी वाणी प्रविभ्र करनेवाली  
होती है तिससे प्रकाश प्रायश्चित्तके लिये पंडितोंकीभी सभा अवश्य करनी च  
हिये और रहस्य कहिये गुप्त प्रायश्चित्तमें तौ यह नही है ॥ ८६ ॥ इस प्रायश्चि-  
त्तके समूहसे किसी एक प्रायश्चित्तका आश्रय लेकर सावधानमन ब्राह्मण आदि  
प्रशस्ततासे ब्रह्महत्यासे किये हुए पापको दूरि करताहै ॥ ८७ ॥

हृत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेवं व्रतं चरेत् ॥ राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रे  
यमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥ उर्वत्वा चैवोनृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं  
तथा ॥ अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्बधम् ॥ ८९ ॥

टीका—स्त्री पुरुष तथा नपुंसकपनसे न जाने हुए ब्राह्मणके गर्भको मारिकै  
और यज्ञ करनेमें लगे हुए क्षत्रिय तथा वैश्यको और आत्रेयी कहिये रजस्वला  
ब्राह्मणी स्त्रीको मारिकै इसी ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८८ ॥ हिरण्य भूमि  
आदि युक्त साक्षमें झूठ बोलकै और गुरुको मिथ्या दूषण देकै और धरोहडका  
ब्राह्मणके सुवर्णको छोडि अन्य रजत आदि द्रव्यका और क्षत्रिय आदिके सुव-  
र्णकाभी अपहरण करिकै और कहे हुए स्त्री वधको करिकै और ब्राह्मण नही ऐसे  
मित्रको मारिकै ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विर्जम् ॥ कामतो ब्राह्मणवधे  
निष्कृतिं न विधीयते ॥ ९० ॥ सुरां पीत्वा द्विजो मोहाद् भिर्वर्णा  
सुरां पिबेत् ॥ तथा सर्काये निदग्धे मुच्यते किं लिषात्ततः ॥ ९१ ॥

टीका—यह प्रायश्चित्त अकामसे ब्राह्मणके वधमें कहाहै और कामसे ब्राह्मण-



के वधमें यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इस्से द्विगुण करनारूपहै यह प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है कुछ प्रायश्चित्तके अभावके लिये नहीं है ॥ ९० ॥ द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अज्ञानसे सुराका पान करिकै अश्रिवर्ण सुराका पान करै उस सुरासे शरीरके दग्ध होनेपर द्विज उस पापसे छूटि जाताहै यह प्रायश्चित्त गुरुत्वके कारण कामसे किये हुए सुरापानमें जानना चाहिये सोई बृहस्पतिने कहाहै जैसे॥सुरापाने कामकृते ज्वलंती तां विद्विषिपेत॥मुखेतयासनिर्दग्धो मृतःशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अर्थ ॥ कामसे सुराका पान करनेपर जलती हुई सुराको मुखमें डारै उस्से जलकर मरा हुआ वह शुद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ९१ ॥

गोमूत्रमश्रिवर्णं वां पिं वेदुदकमेवं वां॥पयो घृतं वां॥मूत्रणाद्गोशं कृद्रसमेवं वां ॥ ९२ ॥ कृणांर्वा भक्षयेद्वदं पिण्याकं वां सकृन्निशि ॥ सुरापानापनुत्त्यर्थं वालंवासा जटी ध्वजी ॥ ९३ ॥

टीका—गौका मूत्र जल गौका दूध गौका घृत और गोवरका रस इनमेंसे किसी एकको अग्निसम तपाकै जबतक मरै तबतक पीवै ॥ ९२ ॥ अथवा गौके रोम आदिसे बने हुए वस्त्र धारण किये हुए और जटाओंको रखाये हुए सुराके पात्रका चिन्ह लिये हुए चावलोंके किनकोंको अथवा तिलोंकी खलीको रातिमें एकवार एक वर्षतक सुरापानके पापके नाशके लिये भक्षण करै यह अशुद्धिपूर्वक अमूल्य सुरापानमें देखनह चाहिये ॥ ९३ ॥

सुरा वै मलमन्त्रानां पार्ष्णा च मलमुच्यते ॥ तस्माद्ब्राह्मणराजन्या वैश्यैश्च न सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥ गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ यथै वैका तथा सर्वा न पारिव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९५ ॥

टीका—चावलोंके पिष्टकी बनती है इस कारण सुरा अन्नका मलहै और मलशब्दसे पल्ल कहा जाताहै तिससे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पैष्टी सुराको न पीवै इस्से निषेध होनेपर इस्के अतिक्रमसे सुरापीत्वा इस प्रायश्चित्तके विधानसे पैष्टीका निषेध तीनोवर्णोंके लिये मनुने स्फुट कहाहै ॥ ९४ ॥ जी गुडसे की गई होय सो गौडी और जी पिष्टसे की गई होय सो पैष्टी और महुआके वृक्षको मधु कहते हैं उसके फूलोंसे की गई होय सो माध्वी ऐसे तीन प्रकारकी सुरा जाननी चाहिये जैसे एक पैष्टी मुख्यहै तैसेही गौडी माध्वीभी द्विजोत्तमोंको न पीनी चाहिये ॥ ९५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचात्रं मद्यं मांसं सुरासर्वम् ॥ तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं  
देवानामश्रता हविः ॥ ९६ ॥ अन्मध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाण्यु  
दाहरेत् ॥ अकार्यमन्यत्कुर्याद्ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९७ ॥

टीका—ग्यारह प्रकारका मद्य मांस और तीन प्रकारकी सुरा तथा आंसव  
ये मद्य चरो. यक्ष राक्षस तथा पिशाचोंको अन्नहै सो ये देवताओंकी हवि खाने-  
वाले ब्राह्मणको न खाने चाहिये यहा कोई कहते है कि देवानामश्रताहविः वह  
जो पुंल्लिगका लिखनाहै तिस्से पुरुषही ब्राह्मणको मद्यपानका निषेधहै स्त्रीको  
नहीं सो अच्छा नहीं है क्योंकि ब्राह्मणवल्क्य आदि स्मृतियोंमें लिखाहै जैसे पति-  
लोकंनसायाति ब्राह्मणीयासुरारिपिबेत् ॥ इहैवसाशुनीगृध्रांशुकरीचोपजायते ॥ अ-  
र्थ ॥ जो ब्राह्मणी सुराको पीती है वह पतिके लोकको नहीं जाती यही वह कु-  
तिया गीधनी तथा सुअरिया होती है ॥ ९६ ॥ ब्राह्मण मद्यपान करिके मदसे  
मूढबुद्धि हो अशुद्ध स्थानमें गिरै अथवा वेदके वाक्योंका उच्चारण करै अथवा  
नहीं करनेयोग्य ब्रह्महत्या आदिको करै इस्से उसको मद्यपान न करना चाहिये ९७

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ॥ तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं  
शूद्रत्वं च सं गच्छति ॥ ९८ ॥ एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य  
निष्कृतिः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९९ ॥

टीका—जिस ब्राह्मणके शरीरमें स्थित वेद अर्थात् संस्काररूपसे स्थित एक-  
वारभी मद्यसे डुवाये जाय अर्थात् एकवारभी जो ब्राह्मण मद्यको पीताहै उसका  
ब्राह्मणत्व चला जाताहै और वह शूद्रताको प्राप्त होताहै तिस्से सर्वथा मद्य न पी-  
ना चाहिये ॥ ९८ ॥ यह सुरापानसे उत्पन्न पापका नाना प्रकारका प्रायश्चित्त  
कहा तिस्से परे अब सुवर्णका चुरानेके पापका प्रायश्चित्त कहौंगा ॥ ९९ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्भिप्रोः राजानमभिगम्य तु ॥ स्वकर्म ख्यापयन्भूयान्मां  
भवाननुशास्तिवति ॥ १०० ॥ गृहीत्वा मूसलं राजा सकृद्धन्यात्तु  
तं स्वयम् ॥ वधेन शूद्रयति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाके ब्राह्म-  
णके सुवर्ण चुरानेरूप अपने कर्मको कहता हुआ मुझे दंड दीजिये ऐसे कहे ॥  
॥ १०० ॥ चोर कंधेपर मूसल रखके राजाके समीप जाय तब राजा उसके दिये

हुए मूसलसे चोरको एकवार आप मारै वह चोर मूसलकी चोटसे मारा हुआ मं  
अथवा न मारै मरेके समान होजीवै तौभी शुद्ध होय अर्थात् उस पापसे छूटि जा  
और ब्राह्मण तौ तपहीसे शुद्ध होता है सोई कहा है जैसे। न जातु ब्राह्मण हन्यात्  
सर्व पापेष्ववस्थितम् इति॥ अर्थ सब पापोंमें स्थितभी ब्राह्मणको कभी न मारै॥१॥

तपसाऽपनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ॥ चरिवासा द्विजोऽरण्ये  
चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥२॥ एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ॥  
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ३ ॥

टीका—उसी तपको कहते हैं ॥ तपसे सुवर्णकी चोरीके पापको दूर किया  
चाहता द्विज बल्कलवस्त्रोंको धारण करि वनमें वसिके ब्रह्महत्यारेके लिये कहे हुये  
व्रतको करै ॥ २ ॥ ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको इन व्रतोंसे द्विज  
दूर करै और गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेके पापको तौ इन आगे कहे हुए  
प्रायश्चित्तोंसे दूर करै ॥ ३ ॥

गुरुतल्पभिर्भाष्यैर्नस्तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ सूमीं ज्वलन्तीं स्वा  
श्लिष्येन्मृत्युना सं विशुद्धयति ॥ ४ ॥ स्वयं वा शिश्रवृषणावुत्कृ  
त्याधायचाञ्जलौ नैर्ऋतीं दिशमार्तिं ष्टेदानिपातादजिह्वगः ॥५॥

टीका—गुरुतल्पजो गुरुकी भार्या है तिसमें गमन करनेवाला गुरुभार्यामें ग-  
मन करनेसे उत्पन्न पापको विख्यात करिके लोहेकी तत्ती सेजपर सोवै और  
लोहेकी वृत्ती हुई जलती स्त्रीकी प्रातिमाका आलिंगन करि वह मरनेसे शुद्ध हो-  
तहै ॥ ४ ॥ अथवा आपही अपने लिंग और वृषणो काटिके अंजलीमें रखि ज-  
वतक शरीर न गिरै तब तक सीधा दक्षिण पश्चिम दिशाको चला जायये कहे हुए  
दोनो प्रायश्चित्त भारी होनेके कारण सुवर्ण, गुरुकी भार्यामें ज्ञानसे वीर्यके त्याग-  
पर्यंत मैथुनके मध्ये जानने चाहिये ॥ ५ ॥

खट्वाङ्गी चरिवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ॥ प्राञ्जापत्यं चरेत्कृच्छ्र  
मन्दमेकं सम्प्रहितः ॥ ६ ॥ चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येत्रियं  
तेन्द्रियः ॥ हविष्येण यवाग्वावां गुरुतल्पापनुत्तये ॥ ७ ॥

टीका—खट्वाङ्गीको धारण किये हुए कपड़ोंके चीथरोंको पहिरे हुए केश नख लो-  
म और डाढी मूँछोंको रखाये हुए सावधान मन निर्जन वनमें एकवर्षतक प्राञ्ज-

पत्य व्रतको करै यह तौ आगे कहे हुए प्रायश्चित्तकी लघुतासे अपनी भार्याके भ्रमसे अज्ञान विषयक जानना चाहिये ॥६॥ अथवा गुरु भार्यामें गमन करनेसे उत्पन्न पापको दूर करनेके लिये इंद्रियोंको वशमें करि फल मूल आदिसे अथवा हविष्य नीवार आदिसे की हुई न्यवाणूसे तीनि महीने चांद्रायणोंको करै यह तौ पहले कहे हुएसेभी लघु होनेसे असाध्वी वा असवर्णामें गमन करनेसे जानना चाहिये ॥ ७ ॥

एतैर्व्रतैरपो हेयुर्महापातकिनो मलम् ॥ उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्ना  
 नाविधैर्व्रतैः ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मांसं यवान्पिबेत् ॥  
 कूर्तवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ९ ॥ चतुर्थकालमंश्री-  
 यादक्षारंलवणं मितम् ॥ गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मांसौ नियतेन्द्रि-  
 यः ॥ १० ॥ दिवानुर्गच्छेद्गोस्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ॥  
 शुष्पित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरसं वसेत् ॥ ११ ॥ तिष्ठन्ती-  
 ष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजेन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ॥ आसीनासु तथासीनो नियं-  
 तो वीरमत्सरः ॥ १२ ॥ आतुरामभिश्चस्तां वा चौरव्याघ्रादिभि-  
 र्भयैः ॥ पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ १३ ॥ उष्णे  
 वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मनस्त्राणं  
 गोरकुर्त्वा तु शक्तितः ॥ १४ ॥ आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षे-  
 त्रेऽथवा खले ॥ भक्षयन्ती न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम्  
 ॥ १५ ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ॥ स गोह-  
 त्याकृतं प्रापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ १६ ॥

टीका—इन कहे हुए व्रतोंसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले पाप-  
 को दूर करै और गोवध आदि उपपातकोंके करनेवाले तौ आगे कहे हुए प्रका-  
 रसे अनेकरूप व्रतों करिके पापको दूर करै ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तः यहाँसे  
 अनेनविधिनायस्तु यहाँ तक कुलकहै ॥ उपपातक युक्त गौका मारनेवाला जव-  
 की पतली दलिया पहले महीनेमें पीवै और शिखासमेत मूड मुडवा और डाढी  
 मूछोंको मुडवा उस मारी हुई गौके चर्मसे शरीरको ढके हुये तीनि महीनेतक  
 गोष्ठ कहिये गौओंके रहनेके स्थानमें वसै और गोमूत्रसे स्नान करै जितेंद्रिय हो

बनाये हुए नोनके बिना हविष्य अन्नको एक दिन स्वायकै दूसरे दिन सायंकाल थोडा दूसरे तीसरे महीनोंमें स्वाय ऐसे तीनि महीनि करै और दिनमें सबेरे उँन गौओंके साथ जाय उन गौओंके खुँरोसे उठी हुई धूलिको खडे होकै स्वाय और खुजाने आदिसे उनकी सेवा करिकै और प्रणाम करिकै रातिमें भीति आदिका सहारा लेकर बैठा रहै तथा शुद्ध और क्रोध रहित हो गौओंके उठनेपर चीछे उठै और वनमें घूमतियोंके पीछे घूमै और गौओंके बैठनेपर बैठे और रोगिणीको तथा चोर व्याघ्र आदिके भयके कारणोंसे दवाई हुईको गिरी हुईको अथवा कीचसे लिसी हुईको शक्तिके अनुसार छुड़ावै तथा उदय सूर्यके तपनेपर मेघके वस्सनेपर और शीतके उपस्थित होनेपर और फवनके बहुत चलनेपर गौकी यथाशक्ति रक्षा न करकै अपनी रक्षा न करै तैसेही अपने तथा औरोंके घरमें खेतमें और खलिहानमें अन्न आदि खाती हुई गौको और दूध पीते हुए बछड़ेको न कहै इस कहे हुए विधानसे जो गौका मारनेवाला गौओंकी सेवा करताहै वह गौके मारनेसे उत्पन्न पापको तीनि महीनोंमें दूरि करताहै ॥९॥११०॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

वृषभैकादशा गाँश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ॥

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो नि वेदयेत् ॥१७॥

टीका—सम्यक् प्रकारसे व्रत करनेवाला ग्यारहवां है बैल जिनमें ऐसी दश गौओंका दान करै जो इतना धन न होय तो वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्वका दान करै ॥ १७ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजः ॥ अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्धं चर्यं  
चांद्रायणमर्थापि वा ॥ १८ ॥ अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतु  
ष्पथे ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निर्ऋतिं ॥ १९ ॥

टीका—और तो उपपातकी आगे जो कहा जायगा ऐसे अवकीर्णीको छोडकर पापके दूरि करनेके लिये इसी गोवधके प्रायश्चित्तको अथवा चांद्रायण व्रतको कहै चांद्रायण तो बलु है इस लिये छोटे उपपातकमें करना चाहिये अथवा जाति शक्ती गुण आदिकी अपेक्षासे योजित करने योग्यहै ॥ १८ ॥ आगे कहा हुआ अवकीर्णी तो काने गंधेसे रातिमें चौराहिमें पाकयज्ञके मंत्रसे निर्ऋतिनाम देवताका यजन करै ॥ १९ ॥

हुत्वाभौ विधिवद्भोमानन्ततश्च समेत्युचा ॥ वातेन्द्रगुरुवह्नीनां

जुहुंयात्संपिषाहुतीः ॥ १२० ॥ कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजं  
न्मचः ॥ अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ २१ ॥

टीका—तिसपीछि निर्ऋतिके लिये चौराहेमें गर्दभरूप आदि होमोंको यथावत् करिके उसके अंतमें समासिञ्चन्तुमरुतः इस ऋचासे मरुत, इंद्र, बृहस्पति, तथा अग्निके लिये घीसे आहुती होमे ॥ १२० ॥ प्रसिद्ध न होनेके कारण अवकीर्णिका लक्षण कहते हैं ॥ इच्छासे ब्रह्मचारी द्विजस्त्रीमें वीर्यको सींचिके अवकीर्णी होता है इस बचनसे स्त्रीकी मोनिमें शुक्रको त्याग करिके ब्रह्मचर्यका अतिक्रम अवकीर्ण रूप सर्वज्ञ वेदके वेत्ता कहते हैं ॥ २१ ॥

मांसुतं पुरुहूतं चं गुरुं पावकमेव चं ॥ चतुरो व्रतिनोऽभ्येति  
ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णनः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते कसित्वा गर्द  
भजिनम् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ २३ ॥

टीका—ब्रह्मचारीका वेद पढ़नेके नियमके करनेसे उत्पन्न हुआ तेज अवकीर्णी होनेपर मरुत, इंद्र, बृहस्पति, और अग्नि, इन चारोंमें चंला जाता है—इस्से उनके लिये घीकी आहुतियां होमे ॥ २२ ॥ इस अवकीर्णनाम पापके उत्पन्न होनेपर पहले कहे हुए गर्दभ माग आदिकों करिके गर्दभकर्मको ओढ़े हुए में अवकीर्णी हों ऐसे अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंमें भीख मांगे उनसे पाये हुए भीखके अन्नसे एकवार स्वायकै रहै ॥ २३ ॥

तेभ्यो लब्धेन भिक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥ उपस्पृशं स्त्रिष्ववणं  
त्वन्देनं स विशुद्धयति ॥ २४ ॥ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममि  
च्छया ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ २५ ॥

टीका—उन सात घरोंसे मिले हुए भिक्षाके अन्नसे एककाल आहार करता हुआ संध्या सवेरे और दुपहरमें स्नान करता हुआ वह अवकीर्णी एक वर्षमें शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ ब्राह्मणस्यरुजःकृत्वा इत्यादिसे जातिके भ्रंश करनेवाले कर्म कह आये है उनमेंसे किसीको इच्छासे करिके सात दिनतक करनेयोग्य स्तूपनं व्रतको करै और इच्छाके विना करिके आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करै ॥ २५ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मांसं शोधनमैन्दवम् ॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तः  
स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ २६ ॥ तुरियो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वर्षे

स्मृतः ॥ वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे त्रैयस्तु षोडशः ॥२७॥

टीका—खराश्वोष्ट इत्यादि करिके संकरी करण कहे हैं उनमेंसे एकको इच्छासे करिके शुद्धके लिये एक महीनेतक चांद्रायण करै और कृमिकीटवयोहत्या इत्यादिसे मूलिनीकरण कहे हैं उनमेंसे एककोभी इच्छासे करिके तीनि रात्रितक कथिता यवागूको स्वाय ॥ २६॥ ब्रह्महत्याका चौथा भाग अर्थात् बारह वर्षकी चौथाई तीनिवर्षरूप प्रायश्चित्त स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियके वधमें कहाहै उपपातकत्व करिके कहे हुए त्रैमासिककी अपेक्षा गुरुत्व होनेसे वृत्तमें स्थित क्षत्रियके कामसे किये हुए वधमें देखना चाहिये और साधु आचारवाले वैश्यके कामसे वधमें आठवां भाग अर्थात् षेड वर्षका व्रत और व्रतस्थ शूद्रके कामनासे मारनेपर सोलहवां भाग अर्थात् नव महीनेका देखना चाहिये ॥ २७ ॥

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ॥

वृषभैकसहस्रा गां दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ २८ ॥

टीका—अबुद्धिपूर्वक कहिये विना जाने हुए क्षत्रियको मारकै एक बैल करि अधिक गौओंका सहस्र अर्थात् एक हजार गौ और एक बैल अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणोंको दान करै ॥ २८ ॥

त्र्यब्दं चरेद्गौं नियंतो जटी ब्रह्महृणो व्रतंम् ॥ वसन्दूरतरे ग्रामादृक्ष-  
मूलनिकेतनः ॥२९॥ एतदेवं चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ॥  
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकं शतं गवाम् ॥ १३० ॥

टीका—अथवा नियमयुक्तहो जटाओंको धारण किये हुए ग्रामसे दूर वृक्षके नीचे निवास करता हुआ ब्रह्महत्याके लिये जो व्रत कहाहै ब्रह्महादादशसमा इत्यादि वह तीनि वर्ष तुरीयोब्रह्महत्याया इससे पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि जटीदूरतरे ग्रामादृक्षमूलनिकेतनः इस वचनमें कहे हुएसे ज्यतिरिक्त शवके शिरका ध्वजाको धारण आदि सब धर्मोंकी निवृत्तिके लिये होनेसे और अकारसे यह अकाममें जानना चाहिये ॥ २९॥ इसी बारह वर्षके व्रतको विना कामनाके साधु आचारवाले वैश्यको मारिके एकवर्ष ब्राह्मण आदि करै अथवा एक सौ एक गौओंका दान करै ॥ १३० ॥

एतदेवं व्रतं कृत्स्नं षण्मासाच्छूद्रहा चरेत् ॥ वृषभैकादशा वार्षि द-  
द्याद्विप्रैर्गोःसिताः ॥३१॥ मांजारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूक-

मेर्वं चं ॥ श्वंगोधोळूकक्राकांश्चं शूद्रंहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३२ ॥

टीका—कामनाके विना शूद्रको मारनेवाला इसी व्रतको छ महीने करै और दश सपेद गौएँ और एक बैल ब्राह्मणको दान करै ॥ ३१ ॥ बिलाव नौल्ल चाफ मेढक कुत्ता गोह उल्लू कौआ इनमेंसे किसीएकको मारिकै शूद्रकी हत्याके व्रतकौ करै ॥ ३२ ॥

पयः पिं बेत्रिरांश्चं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ॥

उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा मूक्तं वांद्देवतं जपेत् ॥ ३३ ॥

टीका—त्रिना जाने मार्जार आदिके बधमें तीनि रातितक दूध पीवै जो मंदाग्नि आदिसे समर्थ न होय तौ तीनि रातितक एक-योजन अर्थात् चारकोश मार्ग चलै इसमें अशक्त होय तौ तीनि राति नदीमें स्नान करै उसमेंभी अशक्त होय तौ आपोहिष्ठा इत्यादि सूक्तको जपै यथोत्तर लघु होनेसे पूर्व पूर्वके असंभवमें आगे आगेका परिग्रहहै विकल्प नहीं है ॥ ३३ ॥

अग्निं कौष्ण्यासीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ॥ पल्लभारकं  
षण्ठे सैसकं चैकमांषकम् ॥ ३४ ॥ धृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं  
तु तित्तिरौ ॥ शुके द्विहायनं वर्त्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायणम् ॥ ३५ ॥

टीका—सर्पको मारिकै ब्राह्मणके लिये तीक्ष्णहै अग्र जिसका ऐसा लोहका दंड देवै और नपुंसकको मारिकै पयारका भार और एकमासे सीसा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३४ ॥ शूकरके मारनेपर घीका भरा घट ब्राह्मणीको देवै तीतरके मारनेपर चारि आढक प्रमाण तिलोकौ दान करै शुकके मारनेमें दोवर्षका वछरा और क्रौंच पक्षीको मारिकै तीनिवर्षका वछरा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३५ ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेर्वं च ॥ वानरं श्येनं भासौ च रूपं  
श्येब्राह्मणाय गौम् ॥ ३६ ॥ वासो दद्याद्द्वयं हत्वा पञ्च नीलान्वृ  
षान्गर्जम् ॥ अजमेषावनं द्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ ३७ ॥

टीका—हंस, बलाका, बक, भयूर, वान, श्येन, और भास, इन पक्षियोंमेंसे किसीको मारै तौ ब्राह्मणको गोदान करै ॥ ३६ ॥ घोडेको मारिकै बल्लका दान करै हाथीको मारिकै पांच नीले बैल दान करै बकरे तथा मेढे मारै तौ एक बैल दान करै गधेको मारिकै एक वर्षका वछरा दान करै ॥ ३७ ॥



ऋव्यादास्तु मृगान्हेत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ अऋव्यादान्वं  
त्सतरीमुष्टं हत्वा तु कृष्णलम् ॥३८॥ जीर्णकार्मुकवस्तावीन्पृथक्  
गृह्याद्विशुद्धये ॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽर्नवस्थिताः ॥३९॥

टीका—कच्चे मांसके खानेवाले मृगों अर्थात् व्याघ्र आदिको मारिके बर्हुत दू-  
धकी गौ देवे और मांसके न खानेवाले हरिण आदिकोंको मारिके जर्मानवछिया  
देवे और ऊंटको मारिके सुवर्णकी रत्तीका दान करै ॥३७॥ लोभसे उत्कृष्ट अ-  
पकृष्ट पुरुषोंमें व्यभिचार कहनेवाली ब्राह्मण आदि वर्णोंकी स्त्रियोंको मारिके ब्रा-  
ह्मण आदिके क्रमसे चर्मपुट, धनुष, छाग, मेढा, इनका शुद्धिकेलिये दान करै ३८

दानेन बंधनिर्णेकं सर्पादीनामशुक्लवन् ॥

एकैकशश्चैरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥१४०॥

टीका—अग्नि आदिकोंके न होनेसे दान करि संपूर्ण पाप दूर करनेको अ-  
समर्थ ब्राह्मण आदि प्रत्येकके वधमें कृच्छ्रकी प्रथमतासे द्विज पाप दूर करनेके  
लिये प्राजापत्यकी करै और सर्प आदिक तौ अग्निकाष्णायसीदद्यात् इस्से ल-  
गाकै यहांतक ग्रहण किये जाते है ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ॥ पूर्णे चार्नस्यनस्स्थां  
तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादास्थिमतां व-  
धे ॥ अर्नस्स्थां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति ॥ ४२ ॥

टीका—हड्डीवाले ककलास ( गिर्गट ) आदि हजार जीवोंके वधमें शूद्रके व-  
धका प्रायश्चित्त करै और अस्थि रहित खटमल आदिकोंके छकडे प्रमाण मारने  
में उसी प्रायश्चित्तको करै ॥४१॥ हड्डीवाले ककलास आदि क्षुद्र जीवोंके प्रत्येकके  
वधमें कुछ थोडासा दे देवे अस्थिमतांवधेपणोदेयः अर्थात् हड्डीवालोंके वधमें प-  
णदेना चाहिये इस सुमंतुके वचनसे किंचिदेवसे पण जानना चाहिये और विना  
हड्डीके जं खटमल आदिकोंमें प्रत्येकके वधमें प्राणायामसे शुद्ध होताहै और प्रा-  
णायाम तौ व्याहृतियोंसमेत प्रणवसंहित सावित्रीका शिरसमेत तीनिवार  
जपहै जैसे त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामेस्स उच्यते अर्थात् प्राणोंको चढाकै  
तीनिवार पढै उसकरे प्राणायाम कहते-हैं यह वशिष्ठ करि कहे हुए लक्षणोंका  
जानना चाहिये ॥ १४२ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृकशतम् ॥ गुल्मवच्छीलतानां

च पुष्पिनानां च वीरुधुम् ॥४३॥ अत्राद्यजानां सत्वानां रसजानां  
च सर्वशः ॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ४४ ॥

टीका—फलोंके देनेवाले आम्र आदि वृक्षोंके और कुञ्जक आदि गुल्मोंके और बल्लियोंके तथा गुडूची आदि लताओंके और वृक्षोंकी शाखाओंमें लिपटी हुई पुष्पित वीरुधोंके कूष्मांड आदिकोंमें प्रत्येकके काटनेमें पाप दूरि करनेके लिये सावित्री आदि सो ऋचा जपनी चाहिये इंधनार्थमशुष्काणां हुमाणामवपातनं इत्यादि उपपातकोंके मध्यमें पढे हुएका गुरू प्रायश्चित्तके कहनेसे यह फलवाले वृक्षोंके काटनेमें लघुप्रायश्चित्त एकवारके अबुद्धि पूर्वक करनेमें जानना चाहिये ॥४३॥ अन्न आदिकोंमें उत्पन्न और गुड आदिके रसोंमें उत्पन्न और गूलर आदिके फलोंमें उत्पन्न और महुआदिके फूलोंमें उत्पन्न हुए सब प्राणियोंके वधमें धीका खाना पापका शोधनेवाला है ॥ ४४ ॥

कृष्टज्ञानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने । वृथालम्भेऽनुगच्छेद्वा ।  
दिनमेकं प्रयोवतः ॥४५॥ एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भव-  
म् ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥ ४६ ॥

टीका—जोतनेसे उत्पन्न हुई औषधी साठी आदिके और वनमें आपसे उत्पन्न हुए नीवार आदिके विना प्रयोजन काटनेमें एकदिन दूधका आहार गौओंका अनुगमन करै ॥ ४५ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे हिंसासे उत्पन्न ज्ञान तथा अज्ञानसे किये हुये पाप दूरि करने चाहिये अब अभक्ष्यभक्षणका प्रायश्चित्त जो आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ४६ ॥

अज्ञानाद्गारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ॥ मतिपूर्वमनिदे-  
इयं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ४७ अर्पः सुराभाजनस्था मद्यभा-  
ण्डस्थितास्तथा ॥ प्रश्चरात्रं पिवेत्पीत्वा शङ्खपुष्पश्रितं पर्यः ४८

टीका—अज्ञानसे गौडी तथा माध्वीको पीकर गोतमका कंहा हुआ तप्तकृच्छ्र सांतपन व्रत करके फिरि पुनसंस्कारसेही शुद्ध होता है सोई गोतमने कहा है ॥ जै से अमत्यामद्यपाने पयोघृतमुदकंवायुं प्रतिष्यहं तप्तकृच्छ्रः तबोऽस्यसंस्कारः ॥ अर्थ । विना जाने मद्य पीनेमें दूध घी पानी और पवन प्रतिष्यहं अर्थात् तीनी दिन बराबरि एक एक पीवै फिरि तप्तकृच्छ्र करै तिस पीछे इसका संस्कार कराना चाहिये

भविष्य पुराणमें भी ऐसा ही व्याख्यान किया है जैसे ॥ अकार्मतःकृतेपाने गौडी-  
माध्व्योनरारिषिप॥तप्तकृच्छ्रविधानं स्याद्द्वीतमेन यथोदितम् इति ॥ अर्थ हैंनराधिपु-  
कामनाके विना गौडीमाध्वीका पान करनेपर तप्तकृच्छ्रका विधान होता है जैसा गौ-  
तमने कहा है इति । और बुद्धिपूर्वकतौ पैष्टीसे भिन्न मद्य पीनेमें प्राणांतिक अनिर्देश्य  
दंड चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है तैसेही ज्ञानसे गौडी माध्वीके पीनेपर मरणके  
निषेधसे और अन्यमद्योंकी अपेक्षासे और गुरुत्वसे मनुकाही कही कणान्वाभक्षये-  
दब्द अर्थात् अथवा वर्षभर कणोंका भक्षण करै यह प्रायश्चित्त कहा है इसीसे गौ-  
डी तथा माध्वीके, ज्ञानसे पीनेमें भविष्य पुराणका वचन है अथवा इसी विषय-  
में मनुसंबंधी करै जैसे कणान्वा भक्षयेदब्द पिण्याकंवासकृन्निशि॥ सुरापानापनु-  
त्यर्थं ताल्वासाजटीध्वजी इति ॥ अर्थ एकवर्षतक कणोंका भक्षण करै अथवा  
रातिमें एकवार तिलकी खली खीय सुरापानके पाद दूरि करनेके लिये तालके  
वस्त्र पहिरै जटा रखाये रहै और मद्यका ध्वजा लिये रहै इति॥४७॥ पैष्टी सुराके  
पात्रमें अथवा उस्से अन्यसुराके पात्रमें रक्खे हुए सुराके रस तथा गंधसे रहित  
जलको पीके शंखाहूली नाम औषधिको डाल औटायके पांचसातितक दूध पीवै४८

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मंदिरां वि धिवत्प्रतिगृह्य च ॥ शूद्रोच्छिष्टार्थं पी-  
त्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥४९॥ ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमा-  
घ्राय सोमपः ॥ प्राणानप्सु त्रिरायंम्य धृतं प्रांश्य विशुद्धयति १५० ॥

टीका—सुराको झूके देकै और स्वस्तिवचन पूर्वक दान लेकै और शूद्रका उ-  
च्छिष्ट जल पीके ब्राह्मण दर्भ डालके औटाए हुए जलको तीन दिन पीवै ४९  
सोमयाग करनेवाला ब्राह्मण सुरा पीनेवालेके मुखके गंधको सांघि और जलके  
मध्य तीन प्राणायाम करि घी खायके शुद्ध होता है ॥ १५० ॥

अज्ञानात्प्रांश्य विण्मूत्रं सुरासंपृष्टमेव च ॥ पुंनः संस्कारमर्हन्ति  
त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥५१॥ वर्षेन मेखलादण्डो भैक्षं चर्या व्रतानि  
च ॥ निर्वर्तन्ते द्विजातीनां पुंनः संस्कारकर्मणि ॥ ५२ ॥

टीका—विना ज्ञाने मनुष्यके मूत्र तथा पुरीष खायकै और सुरा करि स्पर्श  
केये हुए भक्त आदिके रसको खायकै द्विजाति तीनो वर्ण फिरि यज्ञोपवीत क-  
नेयोग्य होते हैं ॥ ५१ ॥ शिरका मुडना मेखलाका धारण दंडधारण और भै-  
यचर्याव्रत प्रधु मांस स्त्रीवर्जनकरि युक्त ये सब प्रायश्चित्तके लिये दूसरीवा-  
यज्ञोपवीत करनेमें द्विजातियोंके नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेवं च ॥ जग्ध्वा मांसम-  
भक्ष्यं च सतरात्रं यवान्पि वेत् ॥५३॥ शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा  
मेध्यान्यपि द्विजः ॥ तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्नं व्रजत्यधः ॥५४॥

टीका—अश्रोत्रियकृतेयज्ञे इत्यादि करि कहे हुए अभोज्य जिनका अन्न है ऐ-  
सोंका अन्न खाकर जलसे मिले हुए सतुओंके रूपसे अथवा गूजोदलिया है  
तिसके रूपसे यवोंको प्रीनेयोग्य करिके सातरात्रि पीवे इसी विषयमें मत्या  
भुक्त्वाचरेत्कच्छं अर्थात् जानिके खायके कृच्छ्र करे यह चौथे अध्यायमें क-  
हाहै उसके साथ विकल्पितहै विकल्प तौ कर्त्ताकौ शक्तिकी अपेक्षासे होताहै तै-  
सेही द्विजातिकी स्त्रियोंका उच्छिष्ट अथवा शूद्रका उच्छिष्ट खायके इसी व्रत-  
को करे तैसेही क्रव्यादशूकरघोषाणां इत्यादिसे जो विशेष प्रायश्चित्त कहाहै सौ  
निषिद्ध मांसको खायके इसी प्रायश्चित्तको करे ॥ ५३ ॥ जे स्वभावसे मधुर आ-  
दि रसहैं और कालके योगसे जलमें वास आदिसे खटे होजाते हैं वे शुक्तहैं और  
कषाय कहिये बहेडा आदिको और नही निषेध किये हुएभी कथितोंको पीकर  
जबतक न पचिजाय तबतक पुरुष अशुद्ध होताहै ॥ ५४ ॥

विद्वराहखरोष्ट्राणां गोमांसोः कपिकाकयोः ॥ प्राश्य मूत्रपुरीषाणि  
द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥५५॥ शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमा  
नि कवकांनि च ॥ अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेवं व्रतं चरेत् ॥५६॥

टीका—गांवका सुअर, गधा, ऊंट, स्यार, वानर, कौवा, इनके मूत्र अथ-  
वा विष्टाको द्विजाति खायके चांद्रायण व्रत करे ॥ ५५ ॥ पवन आदि करि सु-  
खाये गये मांसोंको खायके और भूमि आदिमें अथवा वृक्षमें उत्पन्न हुए छत्रा-  
कोंको जो खाते हैं उनको ब्रह्मघाती जानै इस्से यमने वृक्षमें उत्पन्नकाभी निषेध  
कियाहै । हरिणका मांसहै अथवा भैंसेका मांसहै इस प्रकार भक्ष्य अभक्ष्यके वि-  
ना जाने हिंसाके स्थानसे लाये हुए मांसको खायके चांद्रायणही करे ॥ ५६ ॥

क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ॥ नरकाकखराणां च त-  
प्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥५७॥ मांसिकान्नं तु योऽश्रीयादसंमावर्तको  
द्विजः ॥ स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ ५८ ॥

टीका—कच्चे मांसके खानेवालोंका और गांवके शूकर, ऊंट, और गांवके मुरगे-  
का तथा मनुष्य, कौवा, गधा इनमेंसे जानके किसीका मांस खानेसे आगे कहा

हुआ तप्त कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहा है और ग्राम्य शूकर तथा कुकुरके ज्ञानके खानेमें पांचमें अध्यायमें पतित होना कहा है सौ तो अभ्यासमें व्याख्यान किया गया है वह तौ अभ्यासमें तप्तकृच्छ्र कहा है यह अविरोध हुआ ॥ ५७ ॥ जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण मासिकश्राद्धके अन्नको खाता है यह तौ सपिंडी करनेसे पहले एको-द्विष्ट श्राद्धके अन्नका उपलक्षण है वह तीनिराति उपवासकरै तीनिरातिके मध्यमें एकदिन जलमें वसै ॥ ५८ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्रीयान्मर्धु मांसं कथंचन ॥ स कृत्वा प्राकृतं कृ-  
च्छ्रं व्रतशेषं मर्मापयेत् ॥ ५९ ॥ विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा  
श्वनकुलस्य च ॥ केशकीटावपत्रं च पिबेद्ब्रह्मसुवचलाम् ॥ १६० ॥

टीका—जो ब्रह्मचारी शहत अथवा मांसको अनिच्छासे अथवा आपत्तिमें स्वा-  
य वह प्राजापत्यको करिके आरंभ किये हुए ब्रह्मचर्य व्रतके शेषको समाप्त करै  
॥ ५९ ॥ बिलाव, कौवा, मूसा, कुत्ता, और नौला, इनके उच्छिष्टको अथवा केश  
कीटरूप संसर्गसे दूषितको एकवार मिट्टी डालनेसे शुद्ध ज्ञानि सायके ब्रह्मसुव-  
चलासंज्ञक कथित जलको पीवै ॥ १६० ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥ अज्ञानभुक्तं तू-  
त्तार्य शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥ ६१ ॥ एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रता  
नां विविधो विधिः ॥ स्तेयदोषापहर्तृणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ६२

टीका—अपनी शुद्धि चाहनेवाले पुरुषको निषिद्ध अन्न न खाना चाहिये  
और प्रमादसे खाया हुआ वमन कर देना चाहिये उसके असंभवमें प्रायश्चित्तसे  
शुद्धि शोधन करना चाहिये वमनके पक्षमें तौ लघु प्रायश्चित्त होता ही है और  
ज्ञानसे पहले कहा हुआ प्रायश्चित्त है ॥ ६१ ॥ अभक्ष्यके भक्षणमें जो प्रायश्चित्त है  
तिनका यह नाना प्रकारका विधान कहा अब चोरीके पापोंके दूर करनेवालों-  
का विधान सुनिये ॥ ६२ ॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्विजोत्तमः ॥ स्वजातीयगृहादेव  
कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥ ६३ ॥ मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृह-  
स्य च ॥ कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

टीका—ब्राह्मण ब्राह्मणके घरसे धान्य भोजन आदिकी चोरीको इच्छासे करिके  
अपनेके भ्रमसे नही लेकर एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ६३

पुरुष स्त्रीं खेत घरं इनमेसे किंसीके हरनेमें और कुआके जलके तथा बावडीके सब जलके हरि लेनेमें चांद्रायण व्रत मनु आदिकोने प्रायश्चित्त कहा है ॥ ६४ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेऽमतः ॥ चरेत्सान्तपनं  
कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ ६५ ॥ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्या  
सनस्य च ॥ पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ६६ ॥

टीका—जिनका मूल्य थोडा है और जिनका प्रयोजनभी कम पढत है और जिनका प्रायश्चित्त विशेषभी नहीं कहा है ऐसी रांगर सीसा आदि वस्तुओंके पराये घरसे चुराके वह चुराया हुआ द्रव्य उसके स्वामीको दे करि सांतपन कृच्छ्र जो आगे कहा जायगा उसको अपनी शुद्धिके लिये करै ॥ ६५ ॥ लड्डू आदि भक्ष्यके और स्त्री आदि भोज्यके और शकट आदि यानके और शय्या तथा आसनके और पुष्प मूल फल इनमेसे प्रत्येकके चुरानेमें पंचगव्यका पीना शोधन है ॥ ६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुभ्रकान्नस्य गुडस्य च ॥ चेलचर्मामिषाणां च  
त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ६७ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रज  
तस्य च ॥ अर्थः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कर्णात्रता ॥ ६८ ॥

टीका—तृणकाष्ठ तथा वृक्षोंके और चामल आदि सूखे अन्नके चुरानेमें और भारी वस्त्र चर्म तथा मांस इनमेसे एककेभी चुरानेमें तीन रात्रि उपवास करै ॥ ६७ ॥ मणि, मोती, मृगा, तामा, रूपा, लोह, कांसा और उपल इनमेसे एककेभी चुरानेमें बारह दिन तक चामलोंके कनोंका खाना करै ॥ ६८ ॥

कपासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥ पक्षिगन्धौषधीनां च  
रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ ६९ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेर्त पापं स्तेर्यकृते द्वि-  
जः ॥ अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिर्पानुदेत् ॥ १७० ॥

टीका—कपास रेशम तथा ऊनके वस्त्रोंके और दो खुरके तथा एक खुरके गौ घोडा आदिके और तोता आदि पक्षियोंके और चंदन आदि गंधोंके और रस्सीके इनमें प्रत्येकके चुरानेमें तीन दिन दूधका आहार करै ॥ ६९ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे द्विजाति चोरीसे उत्पन्न पापको दूर करै और नहीं गमन करने योग्यमें गमन करनेसे उत्पन्नको तौ इन आगे कहे हुए व्रतोंसे दूर करै ॥ १७० ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रितः सिक्त्वा स्वयोनिषासरव्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु  
कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥७१॥ पतृष्वसेर्या भगिनी स्वस्त्रीयां मातु  
रेव च ॥ मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥७२॥

टीका—सगी बहिनीमें तैसेही मित्रकी भार्याओंमें और गुरुकी पत्नियोंमें कुमा-  
रियोंमें और चांडालियोंमें इन सबोंमेंसे प्रत्येकमें वीर्यको सींचिकै गुरुभार्याके  
गमनका प्रायश्चित्त करै ॥ ७१ ॥ पिताके बहिनिकी तथा माताकी बहिनकी पु-  
त्रीबहिनमें और माताके सगे भाईकी पुत्रीमें जिनका गमन सगी बहिनिके स-  
मान निषिद्धहै उनमें गमन करिकै चांद्रायण व्रत करै एकवार अज्ञानसे करने-  
में यह प्रायश्चित्तहै ॥ ७२ ॥

एतास्त्रिंशस्तु भार्याथे नोपर्यच्छेत्तु बुद्धिमान् ॥ ज्ञातिवर्तनानुपे-  
यास्ताः पतति ह्युपर्यन्नर्धः ॥७३॥ अमानुषीषु पुरुष उदक्याया-  
मयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥७४॥

टीका—तीनि ये पिताकी बहिनिकी पुत्री आदिकोंको भार्याके निमित्त पंडित  
न व्याहै ज्ञातिगमनसे और बाधवपनसे ये गमन करनेयोग्य नहीं हैं जिसे इनको  
व्याहै गमन करता हुआ नरकको जाताहै ॥ ७३ ॥ अमानुषी कहिये गौको छो-  
डिकै घोड़ी आदिमें गौओंमें अबकीर्णी एकवर्ष प्रजापत्य करै यह शंखलिखित  
आदिकोंने भारी प्रायश्चित्त कहाहै तथा रजस्वलमें और योनिसे अन्यत्र स्त्रीमें औ-  
र जलमें वीर्यसेचन करिकै पुरुष सांतपन कृच्छ्र करै ॥ ७४ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः। गोयानेऽप्सु दिवा चैव  
सर्वासाः स्नानमाचरेत् ॥७५॥ चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च  
प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥७६॥

टीका—जिस किसी स्थानमें पुरुषमें अथवा स्त्रीमें मैथुनका सेवन करि अथ-  
वा बैलोंकी सवारी डेकडे आदिमें जलमें और दिनमें मैथुनका सेवन करि सचै-  
ल स्नान करै ॥७५॥ चांडालकी और अंत्यजोंकी और म्लेच्छ शबर आदि-  
कोंकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण अज्ञानसे गमन करिकै और उनका अन्न स्वायकै और उ-  
नसे दान ले करि पतित होताहै वह पतितका प्रायश्चित्त करै यह तौ गुरुत्वसे और  
अभ्याससे भोजन और प्रतिग्रहविषयक है और ज्ञानसे तौ उनकी स्त्रीमें गम-

न करिकै समाजतांको प्राप्त होताहै यह तौ प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है ॥ ७६ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरून्ध्यादेकैवमनि ॥ यत्पुंसः परंदारेषु त-  
च्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ ७७ ॥ सां चेतुंनः प्रदुष्येत्तु सद्देशेनोपय-  
न्त्रिता ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं चैवं तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

टीका—विशेष करि प्रदुष्ट अर्थात् इच्छासे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको भ-  
र्तारोके अर्थात् पत्नीके कामोंसे निवृत्त करिके बेरियोमे बंधीके समान एक घरमें  
रखै जो तौ पुरुषके सजातीय पराईदाराके गमनमें प्रायश्चित्तहै वही इस्से करावै  
तिस पीछे तौ स्त्रीणामर्द्धप्रदातव्यं अर्थात् स्त्रियोंको आधा-देना चाहिये यह वसि-  
ष्ठ आदिकोंने कहाहै सो अनिच्छासे व्यभिचारमें करना चाहिये ॥ ७७ ॥ मृजाती  
यके गमनसे एकवार दूषित और कियाहै प्रायश्चित्त जिसने ऐसी वह स्त्री, जो फि-  
रि सजातीय करि प्रार्थित हुई उस्से गमन करै तौ इसका प्रायश्चित्त प्राजापत्य  
और कृच्छ्र चांद्रायण शोधनेवाला मनु आदिकोंने कहाहै ॥ ७८ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्विजः ॥ तद्रैक्षभुगर्जपत्रित्यं त्रिं  
भिवं षैर्व्यपोहति ॥ ७९ ॥ एषा पापकृतमुक्तां चतुर्णामपि नि  
ष्कृतिः ॥ पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥ १८० ॥

टीका—चांडालीमें गमनसे ब्राह्मण जिस पापका एक रात्रिमें संचय करताहै  
उसको भिक्षाका खानेवाला और नित्य सावित्री आदिका जप करता हुआ ती-  
निवर्षमें दूरि करताहै ॥ ७९ ॥ हिंसा अभक्ष्य भक्षण चोरी अगम्यागमन करनेवा-  
ले इन चारो पाप करनेवालोंकी यह विशुद्धि कही अब साक्षात्पाप करनेवालोंके  
साथ संसर्ग करनेवालोंके लिये इन आंगे कही हुई शुद्धियोंको सुनिये ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतित पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौनां त्रुं तु  
यानासनाशनात् ॥ ८१ ॥ यो येन पतितेनैषां संसर्ग याति मानवः ॥  
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ८२ ॥

टीका—पतितके साथ संसर्ग करता हुआ मनुष्य अर्थात् एक स्वारीमें जाना  
एक आसनपर बैठना और एक पंक्तिमें भोजनरूप संसर्गोंको करता हुआ एक  
संवत्सरमें पतित होताहै और याजन अध्यापन तथा यौनसंबंधसे संवत्सरमें नहीं  
पतित होता है किंतु शीघ्रही पतित होताहै अध्यापन यहां उपनयन पूर्वक सा-



वित्री मंत्रका सुनानाहे ॥ ८१ ॥ इन् पतितोमें जो जिस पाप करनेवालेके साथ पहले कहे हुए संसर्गको करताहै वह उस संसर्गकी शुद्धिके लिये उसीके व्रतरूप प्रायश्चित्तको करै मरणांतिक न करै यह कहा गया ॥ ८२ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ॥ निन्दितेऽहनि साया  
हे ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ ८३ दासी घटमपां पूर्ण पर्यस्येत्प्रेतव  
त्पदा ॥ अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥ ८४ ॥

टीका—सपिण्ड और समानोदकोंको जीवतेही महा पातकी प्रेतक्रिया आगे कही हुई रीतिसे ग्रामके बाहर जाके ऋत्विक् और गुरुके निकट रिक्ता नवभी-  
तिथिमें संध्या समय करनी चाहिये ॥ ८३ ॥ सपिण्ड समानोदकों करि प्रेरणाकी  
हुई दासी जलसे भरे हुए घटको प्रेतवत् ऐसे कहिके दक्षिणको मुख करि लातसे  
मारै जैसे वह निरुदकहोजाय अर्थात् तर्पणके योग्य न रहै तिस पीछे वे सपिण्ड  
समानोदकों समेत एक रातिदिनका आशौच करै ॥ ८४ ॥

निर्वृत्तैश्च तस्मान्तु संभाषणसहासने ॥ दास्यद्यस्य प्रदानं च यात्रा  
चैव हि लौकिकी ॥ ८५ ॥ ज्येष्ठता च निर्वृत्तैश्च ज्येष्ठावाप्यं च यं  
द्धनम् ॥ ज्येष्ठांशं प्राभुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ ८६ ॥

टीका—उस पतितसे सपिण्ड आदिकोंका बोलना एक आसनपर बैठना और  
उसके लिये हिस्सा देना और सांवत्सरिक आदिमें निमंत्रण आदि लोकव्यवहा-  
र से सब दूर होजाते हैं ॥ ८५ ॥ जेठका जो प्रत्युत्थान आदि किया जाताहै  
सो इस पतितका न करना चाहिये और जेठके मिलने योग्य जो उसका वीस  
उद्धार आदिका धनहै सोभी उसको न देना चाहिये यद्यपि भाग देनेके निषेध  
हीसे उद्धारका निषेध सिद्धहै तिसपरभी छोटेको उसके पानेके लिये कहा जाताहै  
उसी जेठके धनको उद्धार समेत गुणमें अधिक उसका छोटा भाई पाताहै ॥ ८६ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । ते नैत्रं सार्धं प्रांस्येयुः  
स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ ८७ ॥ स त्वप्सु तं घटं प्रांस्य प्रविश्य भं  
वनं स्वकम् । सर्वाणि ज्ञातिकायाणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—पतितके प्रायश्चित्त करनेपर सपिण्ड और समानोदक उसी प्रायश्चित्त  
किये हुएके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करिके जलसे भरे हुए नवीन घटको

ढाल देंवें ॥८७॥ जिसने प्रायश्चित्त किया है वह उस पहले कहे हुए घटको जलमें डरलके तिसमीछे अपने घरमें आके पहलेके समान सब ज्ञातिके कर्मोंको करै ॥८८॥

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥ वस्त्रान्नपानं देयं तु  
वस्येयुश्च गृहान्तिके ॥८९॥ एतस्विभिरनिर्णितैर्नार्थं किञ्चित्संहा  
चरेत् ॥ कृतनिर्णयानां श्रैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ १९० ॥ —

टीका—पतित स्त्रियोंमेंभी ऐसेही पतितस्योदककार्य इत्यादि विधिको भर्त्ता आदि संपिढ और समानोदक समूह करै और इनको भोजन वस्त्र देने चाहिये और घरके समीप इनको रहनेके लिये कुटी देनी चाहिये ॥ ८९ ॥ जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये है ऐसे पाप करनेवालोंके साथ दान प्रतिग्रह आदि अर्थ-कुछभी न करै और जिन्होंने प्रामश्चित्त किया है उनकी पहले किये हुए पापसे कभी निंदा न करै पहलेके समान व्यवहार करै ॥ १९० ॥

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ॥ शरणागतहतंश्च स्त्री  
हन्तुंश्च न संवसेत् ॥ ९१ ॥ येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथा  
विधि ॥ तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥ ९२ ॥

टीका—जिसने बालकको मारा और जिसने किये हुए उपकारको अपकार करनेसे नाश किया और प्राणोंकी रक्षाके लिये आये हुएको और स्त्रीको जिसने मारा होय इनको यथायोग्य प्रायश्चित्त करनेपरभी संसर्गा करिके समीप न वसावै ॥ ९१ ॥ जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गौणकालमेंभी शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत न किया गया उनको तीनि प्राजापत्य करवाके शास्त्रके अनुसार यज्ञोपवीत करै ॥ ९२ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ॥ ब्रह्मणा च परि  
त्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ ९३ ॥ यद्ब्रहितेनार्जयन्ति कर्मणा  
ब्राह्मणां धनम् ॥ तस्योत्सर्गेण शुद्धयन्ति जप्येन तपसै च ॥ ९४ ॥

टीका—जे निषिद्ध शूद्रकी सेवा करनेवाले द्विजहै वे यज्ञोपवीत हानेपरभी वेदको न पढे हुए जो प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करै तौ उनकोभी यह तीनि प्राजापत्य करनेका उपदेश करै ॥ ९३ ॥ निंदित कर्मसे अर्थात् निषिद्ध बुरे प्रतिग्रह आदिसे ब्राह्मण जिस धनको जोडते हैं उस धनके त्यागसे और आगे कहे हुए

जप और रूपसे शुद्ध होतेहैं क्योंकि धनकात्यागही प्रायश्चित्तका विधानहै ॥९४॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ॥ मांसं गोष्ठे प्रयः  
पित्वा मुच्यतेऽसंप्रतिग्रहात् ॥९५॥ उपवासकृशं तं तु गोव्रजा  
त्पुनरागतम् प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किमु ॥९६॥

टीका—सावित्रीका तीनि हजार जप करिके गौओंके स्थानमें वास करि दु-  
ग्धका आहार करनेवाला बुरे दानके लेनेसे उत्पन्न पापसे छूटि जाताहै शुद्धकेम-  
तिग्रह आदिमेंभी यही पायश्चित्तहै ॥९५॥ केवल दूधके आहारसे और अन्यभो-  
जन न करनेसे दुर्बल ज़िसका देह गौओंके स्थानसे लौटे हुए नमस्कार करते न-  
भ्र उस मनुष्यसे पूछै कि हमारे साथ बराबरी चाहना है फिर बुरा दान लेगा ऐ-  
से धर्मको ब्राह्मण पूछै ॥ ९६ ॥

संत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यर्वसं गवाम्। गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे  
कुयुस्तस्य परिग्रहम् ॥९७॥ व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्य  
कर्म च ॥ अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपो हति ॥ ९८ ॥

टीका—यह सत्यहै फिरि बुरे दानको न लेउगा ऐसे ब्राह्मणोंमें कहिके गौओंको  
घास डारै उस घास खा हुए पवित्रीभूतस्थानमें ब्राह्मण उसको व्यवहारमें अंगीकार  
करै ॥ ९७ ॥ व्रात्यस्तोम आदि याजन कराकै और पिता गुरु आदिसे भिन्नो-  
का निषिद्ध और्ध्वदेहिक दाह श्राद्ध आदि करिके और अभिचार तथा अहीनया-  
गन्नशेष करिके तीनि कृच्छ्रोंसे शुद्ध होताहै ॥ ९८ ॥

शरणगतं परित्यज्य वेदं विष्ठाव्य च द्विजः। संवत्सरं र्यवाहारस्तं  
त्पापमपसेधति ॥९९॥ श्वसृगालखरैर्दृष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्विरेव च ॥  
नराश्वोष्ट्वराहैश्च प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २०० ॥

टीका—रक्षाके लिये शरणमें आये हुएको जो समर्थ होनेपर त्याग करताहै  
और द्विजाति नहीं पढानेयोग्यको वेद पढाकै उससे उत्पन्न हुए पापको एक वर्ष  
तर्क जवकफ आहार दूरि करताहै ॥ ९९॥ कुत्ता, स्यार, गधा, नर, अश्व, वारा-  
ह आदि ग्रामके और कच्चे मांसके खानेवाले विलाव आदि करि काटा हुआ पु-  
रुष प्राणायामसे शुद्ध होताहै ॥ २०० ॥

षष्ठान्नकालता मांसं संहिताजप एवं वा। होमांश्च सर्कला नित्यम्

पांडुचानां विशेषधनम् ॥ १ ॥ उप्रयानं समारुह्य खरयानं तु काम  
द्रः ॥ स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २ ॥

टीका—विशेष करि जिनका प्रायश्चित्त नही कहाहै ऐसे पंक्तिसे बारह जो  
स्तेन, पतित्, छीब आदिकोंका १ मासतक दो दिन न खाके तीसरे दिन, सायंका  
लके समय भोजन करना और वेदकी संहिताका जुप और देवकृतस्यैनसोऽव-  
यजनमासि इत्यादिक आठ मंत्रोंसे आठ होम प्रत्येक करै यह समुदित पापका  
शोधनहै ॥१॥ ऊंट जिसमें जुते हैं ऐसा छकडा आदि यान, ( सवारी ) में और  
र गधेके यानमें इच्छासे न्बढिकै और ऊंट तथा गधेपर चढिकै चलनेमें बहुतसे प्रा-  
णायामोंके करने और नंगे होकै स्नान करि प्राणायामसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥

विनाद्भिरप्सु वाप्यातः शरीरं सन्निवेद्य च ॥ सचै लो बहिराप्त्य  
गामालभ्य विशुद्धयति ॥ ३ ॥ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां सम  
तिक्रमे ॥ स्नातकं व्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ ४ ॥

टीका—जलके समीप न होनेपर अथवा जलमें वेगसे पीडित हो मूत्र अथवा  
पुरीषको करके गांवके बाहर नदी आदिमें सचैल स्नान करि गौको छूके शुद्ध हो-  
ताहै ॥३॥ वेदमें कहे हुए और जिनके न करनेका प्रायश्चित्त विशेष नही कहाहै  
ऐसे अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मोंके लोप होनेपर और चौथे अध्यायमें कहे हुए  
स्नातक व्रतोंके अतिक्रम होनेपर एक रातिदिनका उपवास प्रायश्चित्त कहाहै ॥४॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ॥ स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषम  
भिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाबध्यवा  
ससा ॥ विवादे वा विनिजिस्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—हूं चुप बैठिये ऐसे ब्राह्मणका आक्षेप करिकै और विद्या आदिमें अ-  
धिकको तु ऐसे कहिकै उस कहनेके समयसे लगाके जितना दिन बाकी होय उस-  
में भोजन न करै और पावोंमें पडके उसको कोपरहित करै ॥५॥ ब्राह्मणको ति-  
नकेसे मारिकै अथवा गलेमें कपडेसे बाधिकै अथवा बातोंके कलहमें जीतिकै  
प्रणाम करिकै प्रसन्न करै ॥ ६ ॥

अवगूर्य त्वद्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥ जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं  
प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ॥ तां  
वन्त्यर्द्धसहस्राणि तर्कता नरके वसेत् ॥ ८ ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे डंडेको उठाके सौ वर्षतक नरकमें रहता है और दंड आदिसे ताडन करिके हजार वर्षतक नरकमें रहता है ॥ ७ ॥ गृह्यार किये हुए ब्राह्मणका रुधिर जितने घूलिके कर्णोंको भूमिमें भिगोयके पिंड करता है उतनीही वर्षोंतक वह रुधिर निकालनेवाला नरकमें बसता है ॥ ८ ॥

अवगूर्यं चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ ९ ॥ अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामर्षं नुत्तये ॥ शक्तिं च वैक्ष्यं पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंड आदिके उठानेमें कृच्छ्र करै और दंड आदिके मार देनेमें आंगे कहे हुए अतिकृच्छ्रको करै और रुधिरको उत्पन्न करिके कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करै ॥ ९ ॥ जिनका प्रायश्चित्त नही कहा है ऐसे प्रतिलो मज आदिके बधसे किये हुए पापोंके दूर करनेके लिये करनेवाले शरीर और घन आदिकी सामर्थ्यको देखिके और पापको ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे अथवा एकवारका किया हुआ जानकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करै ॥ २१० ॥

यैरेभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ॥ तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ ११ ॥ त्र्यहं प्रातरुह्यहं सायं त्र्यहमद्यांदायाचितम् ॥ त्र्यहं परं च नान्श्रीयात्प्राजापत्यं चरन्द्भिजः ॥ १२ ॥

टीका—जिन कारणोंसे मनुष्य पापको दूर करता है उन पापके नाश करनेवाले और देवता ऋषि तथा पितरों करि किये हुये कारणोंको तुमसे कहोंगा ॥ ११ ॥ प्राजापत्य व्रतको करता हुआ द्विजाति पहले तीनि दिन प्रातःकाल भोजन करै प्रातःशब्द यहां भोजनोंकी उचिततासे प्राप्त दिनके कालका सूचकहै इसीसे वसिष्ठने कहा है ॥ जैसे त्र्यहं दिवाभुंक्ते नक्तमन्ति च त्र्यहं त्र्यहं अयाचितव्रतं त्र्यहं नभुंक्ते इति कृच्छ्रः ॥ अर्थ ॥ तीनि दिन दिनमें खाता है और तीनि दिन रातिमें और तीनिदिन अयाचित खाता है और तीनि दिन नही खाता है यह कृच्छ्र है ॥ आपस्तंबनेभी कहा है ॥ त्र्यहं नक्ताशी दिवाशी च तत्र त्र्यहं त्र्यहं भयाचितव्रतं त्र्यहं नाश्नाति किञ्चन इति ॥ अर्थ ॥ तीनि दिन रातिमें न खाय और तीनि दिनमें न खाय और तीनि दिन अयाचित खाय और तीनि दिन कुछ न खाय इस भांति कृच्छ्रकी बारह रात्रिकी विधि है ॥ अपरंच दिनत्रयं सायं संध्यामतीतायां भुंजीत अन्यद्दिनत्रयमयाचितं तावद्व्रं भुंजीत शेषंच दिनत्रयं न किंचिदश्रीयात् इसका वही अभिप्राय है यहां ग्रासकी संख्या और परि-

माणकी अपेक्षामें पराशरने कहा है जैसे ॥ सायंद्वात्रिंशतिग्रासाः प्रातःषड्विंशति  
स्तथा ॥ अयाचितेचतुर्विंशं परंशानशनंस्मृतम् ॥ कुक्कुटांडप्रमाणंचयावांश्रप्रविशे-  
न्मुखं ॥ एतंग्रासंविजानीयात्शुद्धचर्थकायशोधनम् ॥ हविष्यंचान्नमश्रीयाद्यथारा-  
त्रौतथादिवा ॥ त्रींस्त्रीण्यहानिशास्त्रीयात्प्रासान्संख्याकृतान्यथा ॥ अयाचितंतथैवा-  
द्यादुपवासरुग्रहंभवेत् ॥ अर्थ ॥ संध्याको बत्तीस ग्रास और सवेरे छवीस  
और अयाचितमें चौबीस तिसके पीछे न खाना कहा है कुक्कुटके अंडके बराबरी  
और जितना मुखमें समाय शुद्धिके लिये शरीरका शोधनेवाला यह ग्रास जानि-  
ये । हविष्य अन्न खाय जैसे रात्रिमें वैसेही दिनमें तीनि तीनि दिन शास्त्रमें कहे  
हुए ग्रासोंको संख्याके समान खावे तैसेही तीनि दिन अयाचित खावे और ती-  
नि दिन उपवास करै ॥ १२ ॥

गोमूत्रं गोमेयं क्षीरं दधि सर्पिः कुंशोदकम् ॥ एकं रात्रौ प्रवासं च कृ-  
च्छं सान्तपनं स्मृतम् ॥ १३ ॥ एकैकं ग्रासं मश्रीयात्त्र्यहानि त्रीणि  
पूर्ववत् ॥ अथ चोपवासेदन्त्यमतिकृच्छं चरेन्दिजः ॥ १४ ॥

टीका—गोमूत्र गोवर गौका दूध तथा दही घी और कुशोंका जल इन स-  
बोंको मिलकै एकदिन भक्षण करै और कुछ न खास और दूसरे दिन उपवास  
यह सांतपन कृच्छ्रहै जब तौ गोमूत्र आदि छः प्रत्येक छः दिन स्वायकै सातमें दिन  
तौ उपवास करै तौ महासांतपन होताहै सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै जैसे । कुंशोद-  
कंचगोक्षीरं दधिमूत्रं शकृद्घृतम् जग्ध्वापरे ह्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ पृथक्-  
सान्तपनद्रव्यैः षडहस्तोपवासिकः ॥ सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ॥  
इति ॥ अर्थ ॥ कुशोंका जल गौका दूध तथा दही मूत्र गोवर और घी इनको स्वाय-  
कै कृच्छ्र सांतपनको करता हुआ पुरुष दूसरेदिन उपवास करै और जुदी-जुदी  
सांतपनकी वस्तुओंको छ दिन स्वायकै सातमें दिन उपवास करै तौ सातदिनमें  
यह कृच्छ्र महासांतपन होताहै इति ॥ १३ ॥ अतिकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति  
प्रातःकाल सायंकाल अयाचित आदिके रूपसे एक एक ग्रास ऐसे तीनि, तीनि  
दिन पहलेके समान खाय और पिछले तीनि दिन कुछ न खाय ॥ १४ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरेन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतिच्यं हं प्रिवेदुष्णा  
न्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ १५ ॥ यत्तात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहम  
भोजनम् ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ १६ ॥

टीका—तप्तकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति तीनि दिन उष्णजल और तीनि

दिनं गौकल उष्ण दूध और तीनि दिन उष्ण घी और तीनि दिन उष्ण पवन और एकवार स्नान करिके नियमवान् हाँके पीवै यह पराशरका कहा हुआ विशेष है ॥ जैसे ॥ षट्पलंतुपिबेदम्भस्त्रिपलंतुपयः पिबेत् ॥ पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ इति ॥ अर्थ ॥ जल तौ छ पल पीवै और दूध तीनिपल पीवै और घी एक पल पीवै यह तप्त कृच्छ्रका विधानहै ॥ १५ ॥ स्वस्थचित्त और संयुतेन्द्रिय पुरुषका बारह दिनोंतक न भोजन करनाही पराकनाम कृच्छ्रहै एकवार अथवा आवृत्ति करनेसे भारी तथा हलके पापका दूर करनेवालाहै ॥ १६ ॥

एकैकं हांसयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणमे तंचान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १७ ॥ एतमेवं विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ॥ शुक्लपक्षादित्रियतश्चरंश्चान्द्रायणं वर्तम् ॥ १८ ॥

टीका—सायंकाल प्रातःकाल और मध्यान्हमें स्नान करता हुआ पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको सायकै तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके क्रमसे एक एक ग्रास घटावै ऐसे चतुर्दशीको एकग्रास साय तिस पीछे अमावास्याको व्रत करिके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लगाकै एक एक ग्रास बढ़ाता जाय ऐसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं यह पिथीलिकामध्यनाम चांद्रायण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ इसीको पिंडके घटाने और बढ़ाने तथा तीनिवार स्नानरूप विधानको यवमध्यनाम चांद्रायणमें शुक्लपक्षकी आदिसे करिके जितेंद्रिय चांद्रायणको करता हुआ आचरण करै तिस पीछे तौ शुक्ल प्रतिपदाका आरंभ करिके एक एक पिंडको बढ़ावै जैसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका आरंभ करिके एक एक पिंड घटावै जैसे अमावास्याको उपवास होय ॥ १८ ॥

अष्टावष्टौ समश्रीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियंतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ १९ ॥ चतुरः प्रातरश्रीयात्पिण्डान्विभ्रः समाहितः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुंचान्द्रायणं स्मृतं २० ॥

टीका—यतिचांद्रायणको करता हुआ शुक्लपक्षसे अथवा कृष्णपक्षसे लगाकै एक महीनेतक जितेंद्रिय हो मध्यान्हके समय प्रतिदिन आठ ग्रास साय मध्यदिनका कहना गृहस्थ और ब्रह्मचारीकी सायंकालमें भोजनकी निवृत्तिके लिये है १९ प्रातःकाल चारिग्रास साय और सूर्यके अस्त होनेपर चारि ग्रासोंका भोजन करै यह शिशुचांद्रायण मुनियोंने कहाहै ॥ २० ॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतिः समाहितः ॥ मासेर्नाश्रन्ह  
विष्णस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् २१ एतद्द्रुद्रास्तथादित्या व  
सर्वश्चाचरेन्नतम् ॥ सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥ २२ ॥

टीका—नीवार आदि हविष्यके ग्रासोंको दोसोचालीस कभी दश कभी पंच  
च और कभी सोलह और कभी उपवास इत्यादि, नियमसे जैसे कैसेहू पिण्डों  
को एक महीनेमें जितेंद्रियहो खाता हुआ चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होताहै व्  
सेही पापके क्षयके लिये और अभ्युदयके लिये यह कहाहै इसीसे याज्ञवल्क्यने  
कहाहै । जैसे ॥ धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥ कृच्छ्रकृतशर्मकामस्तुः  
महतीश्रियमाप्नुयात् ॥ अर्थ ॥ जो इस व्रतको धर्मके लिये करताहै वह चंद्रकी स-  
लोकताको प्राप्त होताहै और जो कृच्छ्रका करनेवाला सुख चाहताहै वह बड़ी  
लक्ष्मीको प्राप्त होताहै इति ॥ इससे प्राजापत्य आदि कृच्छ्रभी अभ्युदयप फ-  
लका देनेवाला है यह याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ २१ ॥ इस चांद्रायणनाम व्रतको  
ऋषियोंसमेत रुद्र आदित्य वसु और मरुतोंने सब पापोंके नाशके लिये गुरु ल-  
घु पापोंकी अपेक्षासे एकवार आवृत्तिके प्रकारसे किया ॥ २२ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् ॥ अहिंसा सत्यमक्रो  
धमार्जवं च समाचरेत् ॥ २३ ॥ त्रिहस्त्रिर्निशायां च सर्वासा जलमा  
विशेत् ॥ स्त्रीशूद्रपतितांश्चैवं नाभिर्भाषेत कर्हिचित् ॥ २४ ॥

टीका—भूर्भुवःस्वः इन महाव्याहृतियोंसे आज्य जो घी है तिस्से प्रतिदिन  
होमकरै ओर अहिंसा सत्य अक्रोध और कुटिलता न करना इन सर्वोंको करै ध-  
द्यपि ये पुरुषार्थतासे विहितहैं तिसपरभी व्रतके अंगपनसे कहे गये है ॥ २३ ॥ दि-  
नमें अथवा रातिमें आदि मध्य तथा अंतमें स्नानके लिये वस्त्रोंसमेत नदी आदि-  
के जलमें प्रवेश करै यह तौ पिपीलिकामध्य और यवमध्य चांद्रायणसे अन्य  
चांद्रायणके मध्ये है क्योंकि उनमें आचमन और तीनिवार स्नान कहाहै और स्त्री  
शूद्र तथा पतितोंके साथ जबतक व्रत करै तबतक संभाषण न करै ॥ २४ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदर्शकोऽर्धः शयीत वा ॥ ब्रह्मचारी व्रती च  
स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २५ ॥ सांवित्री च जपेन्नित्यं पवित्राणि च  
शक्तितः ॥ सर्वेष्वेवं व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमाहृतः ॥ २६ ॥

टीका—दिनमें और रातिमें उठा हुआतथा बैठा हुआरहै सोवै नक्षी असमर्थ



होनेपर तौ भूमिमें सोवै खट्वा आदिमें न सोवै ब्रह्मचारी स्त्रीके संयोगसे रहित व्रती मौजी दंड आदि करि युक्त गुरुदेवता और ब्राह्मणोंका पूजक होय ॥ २६ ॥ सावित्रीको सदा जपै और पवित्र अघमर्षण आदिकोंको शक्तिके अनुसार जपै यह तौ जैसे चांद्रायण आदिमें है वैसेही प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमेंभी यत्नवाला प्रायश्चित्तके लिये करै ॥ २६ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैः सः अनारविष्कृतपापास्तुर्म  
न्वैहो मैश्वं शोधयेत् ॥ २७ ॥ ख्यापनेनानुत्तौपेन तर्पसाध्ययनेन  
च ॥ पापकृन्मुच्यते पापात्तर्पणं दानेन चार्पादि ॥ २८ ॥

टीका—लोकमें विदित पापोंसे द्विजाति इन कहे हुए प्रायश्चित्तों करि आगे कही हुई परिषद् कहिये सभाकरि शोधनेयोग्यहैं और अप्रकाशित पापोंको तौ मंत्रोत्तम होयोंसे सभाही शोधन करै यद्यपि परिषद्में निवेदन करनेसे रहस्य पनका नाश होताहै तिसपरभी लोकमें नहीं विदित ऐसे इस पापके किसीके करनेपर क्या प्रायश्चित्त होताहै इस भांति सामान्यतासे मूछनेमें कुछ विरोध नहीं है ॥ २७ ॥ पाप करनेवाला श्रेष्ठ लोकमें अपना पाप कहनेसे और मुझ पाप करनेवालेको धिक्कारहै इस भांति पश्चात्ताप करनेसे शुद्ध होताहै और उग्ररूप तपसे तथा सावित्रीके जप आदि करि पापसे शुद्ध होताहै और तपमें असमर्थ होय तौ आपत्तिमें दान करनेसेभी पापसे मुक्त होताहै ॥ २८ ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते ॥ तथा तथा त्वचेर्वाहि<sup>१३</sup>  
स्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २९ ॥ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्ह  
ति ॥ तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ३० ॥

टीका—मनुष्य पापको करिकै जैसे जैसे पापको लोकमें कहताहै वैसे वैसे उस पापसे जीर्ण त्वचा करि सापके समान मुक्त होताहै ॥ २९ ॥ उस पाप करनेवालेका मन जैसे जैसे बुरे कर्मकी निंदा करताहै वैसे वैसे उसका शरीर जीवात्मा उस अधर्मसे मुक्त होताहै ॥ ३० ॥

कृत्वा प्रापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते । नैव कुर्यात्पुनरि  
ति निवृत्त्या पूयते तु सं ॥ ३१ ॥ एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफ  
लोदयम् ॥ मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ ३२ ॥

टीका—पापको करिकै पीछे संतापयुक्त होनेसे उस पापसे छूटि जाताहै जब

पश्चात्ताप युक्तहो ऐसे कहता है कि मैं फिर कभी ऐसा न करौंगा तब तौ बहुत ही उस पापसे पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शुभ अशुभ कर्मोंका परलोकमें दृष्ट अनिष्ट फलको मनसे विचारिके मन वाणी और शरीरसे सब शुभही करै क्योंकि उसका फल दृष्ट है और नरक आदि दुःखका कारण होनेसे अशुभ कर्म न करै ॥ ३२ ॥

अज्ञानार्थदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ॥ तस्माद्रिमुक्तिम्  
निच्छन्दिती यं न समाचरेत् ३३ यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः  
स्यादलार्थवम् ॥ तस्मिन्स्तावत्तपः कुर्याद्वावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ ३४ ॥

टीका—भूलसे अथवा इच्छासे निषिद्ध कर्म करिके उस पापसे मुक्तिके चाहता हुआ फिर उसको न करै यह तौ फिर करनेमें प्रायश्चित्तकी गुरुताके लिये है ॥ ३३ ॥ जिस प्रायश्चित्त नाम कर्मके करनेपर इस पाप करनेवालेको संतोष न होय तौ उसमें उसी प्रायश्चित्तको तबतक लौटावै जबतक मनका संतोष और प्रसन्नता होय ॥ ३४ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं देवं मानुषकं सुखम् ॥ तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं त  
पोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्ष  
णम् ॥ वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ ३६ ॥

टीका—इस सब देवताओं और मनुष्योंके सुखका कारण तपही है और तपहीसे उसकी स्थिति है और तपही मध्यहै यह पंडितोंने कहा है और तपही अंत है यह वेदका अर्थ जाननेवाले कहते हैं ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणका ब्रह्मचर्यरूप जो वेदांतका ज्ञानहै वही तपहै और क्षत्रियका रक्षा करना तपहै और वैश्यका खेती वाणिज्य और पशुओं पालना आदि तपहै और शूद्रका ब्राह्मणकी सेवा तपहै यह वर्णविशेषसे उत्कर्ष सूचनके लिये है ॥ ३६ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः । तपसैव प्रपद्यन्ति त्रै  
लोक्यं सचरचरम् ॥ ३७ ॥ औषधान्यगदो विद्या देवी च विविधा  
स्थितिः । तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ ३८ ॥

टीका—वाणी मन और कायके नियमों करि युक्त फल मूल तथा वायुके खानेवाले ऋषि तपहीसे जंगम स्थावर संहित पृथिवी आकाश स्वर्गरूप तीनों लोकोंको एकस्थानमें बैठे हुए पापरहित अंतःकरणसे प्रकर्ष करि देखते हैं ॥

॥ ३७ ॥ रोगकी शांतिके कारणरूप औषध और नीरोग होना तथा ब्रह्मकर्मरूप वेदके अर्थका जानना और वेदसंबंधी विद्या और नाना रूप स्वर्ग आदि स्थिति ये सब तपहीसे प्राप्त होते हैं जिस्से तपही इनकी प्राप्तिका कारणहै ॥ ३८

ग्रहस्तूरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् । सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुस्तिर्कृतम् ॥ ३९ ॥ महापातकिनश्चैवं शेषांश्चाकार्यकारिणः । तपसैवं सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषाक्षतः ॥ ४० ॥

टीका—जो दुःखसे पार होनेयोग्यहै जैसे ग्रहोंके दोषसे सूचित आपत्ति आदि, और जो दुःखसे क्षत्रिय आदिकों करि प्राप्त होनेयोग्यहै जैसे विश्वामित्रक उसी शरीरसे ब्राह्मणत्वका पाना और जो दुःखसे ज्ञानने योग्यहै जैसे सुमेरुका शिखर और जो दुःखसे करनेयोग्यहै जैसे गौओंका बहुतसा दान आदि सो सब तपसे सोप्य करि सकते हैं जिस्से अतिकठिण कार्यके करनेमें तपकी शक्ति का कोई उल्लंघन नहीं करि सकताहै ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्या आदि पातकोंके करनेवाले तथा उपपातक आदि नहीं करनेयोग्यके करनेवाले उक्तरूपहीके करनेसे उस पापसे छूटि जातेहैं कहे हुएका फिर कहना प्रायश्चित्तकी प्रशंसाके लियेहै ४०

कीटांश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयंसि च । स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥ ४१ ॥ यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्जनाः ॥ तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैवं तपोधनाः ॥ ४२ ॥

टीका—कीडे, साँप, पतंगे, पशु, पक्षी, और वृक्ष, गुल्म, आदि स्थावर आदि सबभूत तपके माहात्म्यसे स्वर्गको जाते है इतिहास आदिकोंमें कपोतोंके उपाख्यान आदिमें पक्षी अग्निमें प्रवेश आदि तपको करिके और कीटोका उनकी जातिका स्वाभाविक दुःखका सहनातपहै उस्से क्षीणपापहो विकार रहित जन्मंतरमें किये हुए सुकृतसे स्वर्गको जाते हैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य मन वाणी और देहसे जो कुछ पाप करते हैं उस सब पापको तपोधन तपहीसे जलादेते है ॥ ४२ ॥

तपसैवं विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवोकंसः ॥ इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ४३ प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवामृजत्प्रभुः ॥ तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ ४४ ॥

टीका—प्रायश्चित्तरूप तपसे क्षीणपाप ब्राह्मणके यज्ञमें देवता हविको ग्रहण करते हैं और वाञ्छित अर्थको देते है ॥ ४३ ॥ संपूर्ण लोककी उत्पत्तिस्थिति औ-

र प्रलयमें समर्थ हिरण्यगर्भ पहले तपको करिकै ही इस ग्रंथको बनाते भये तैसे वसिष्ठ आदि ऋषि तपहीसे मंत्र ब्राह्मणरूप वेदोंको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

इत्येतत्तपसो देवां महाभाग्यं पचक्षते ॥ सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्त-  
पसः पुण्यमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्यता महार्यज्ञक्रि-  
या क्षमा ॥ नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ४६ ॥

टीका—इस सब संसारके जीवोंका जो दुर्लभ जन्महै सो तपहीसे होताहै इ-  
सको देखते हुए देवता तपोमूलमिदंसर्व इत्यदि तपके माहात्म्यको कहते हैं ॥  
॥ ४५ ॥ शक्तिके अनुसार प्रतिदिन वेदका पठनां और पंचयज्ञोंका करना औ-  
र अपराधका सहनशील होना ये महापातकसे उत्पन्न पापोंको शीघ्रही नाश कर  
देते है और पापोंकी तौ क्या चलाई है ॥ ४६ ॥

यथैर्धस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ॥ तथा ज्ञानाग्निना पां-  
पं सर्वं दहति वेदवित् ॥ ४७ ॥ इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथावि-  
धि ॥ अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका—जैसे अग्निसमीपके काष्ठोंको तेजसे निःशेष करि देती है तैसेही वेदके  
अर्थका जाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानरूपी अग्निसे सब पापोंको नाश करि देताहै ॥  
॥ ४७ ॥ यह ब्रह्महत्या आदि प्रकाश पापोंका प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा इस-  
के उपरान्त अप्रकाश कहिये गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त मूनिषे ॥ ४८ ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भ्रूणहर्षणं मां-  
सात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ ४९ ॥ कौत्सं जैत्वाप्ये इत्येतद्वासिष्ठं चै प्र-  
तीत्यृचम् ॥ मांहित्रं शुद्धवन्त्यश्च सुरापोऽपि विशुद्धयति ॥ २५० ॥

टीका—व्याहृतियों तथा प्रणव करि युक्त और सावित्रीशिर करि युक्त पूरक  
कुंभक रेचक आदिकी विधिसे प्रतिदिन किये हुए सोलह प्राणायाम एक महीने-  
में भ्रूणहृत्यारेकोभी पापराहित करदेते है ॥ ४९ ॥ कौत्सऋषि करि देखे हुए अ-  
पनःशोशुचदधं इस सूक्तको और वसिष्ठऋषिकरि देखे हुए प्रतिस्तोमेभिरुषंसं-  
वसिष्ठा इस ऋचाको और माहित्र कहिये महित्रीणामवोस्तु इस सूक्तको और शु-  
द्धवत्येतोन्विन्द्रस्तवाम इन तीनि ऋचाओंको एक महीनेभर प्रतिदिन सोलह वा-  
रभी जपिकै सुराका पीनेवालाभी शुद्ध होताहै ॥ २५० ॥

सकृज्जैत्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ॥ अपहृत्य सुवर्णं तु क्षं

णाद्भवंति निर्मलः ॥ ५१ ॥ हविष्पांतीयमभ्यस्य नतमंहइतीति  
च ॥ जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुंच्यते गुरुतर्लपगः ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णको चुराकै अस्यवामीयंअस्यवामस्यपालितस्य इस सूक्तको एक महीने प्रतिदिन एकवारभी जपिकै और शिवसंकल्प यज्जाग्रतोदूर इसको जो वाजसनेयकमें पढाहै जपिकै सुवर्णको चुरायकै शीघ्रही पापरहित होताहै ॥ ५१ ॥ हविष्पांतिमञ्जरंस्वाविदि इन उन्नीस ऋचाओंको और नतमंहोनदुरितं इन आठको अथवा हविष्पंत इसको और मेमनःशिशवसंकल्पमस्तु इस सूक्तको और सहस्रशीर्षापुरुष इस षोडशं ऋचा सूक्तको एकमहीने प्रतिदिन सोलहवारके अभ्याससे जपिकै गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला उस पापसे छूटि जाताहै ॥ ५२ ॥

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ॥ अवेत्यृचं जपेदब्दं  
यत्किञ्चेदमितीति वा ॥ ५३ ॥ प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचात्रं वि  
गहितम् ॥ जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवह्यंहात् ॥ ५४ ॥

टीका—स्थूलपाप जे महापातकहैं उनके और सूक्ष्म जे उपपातकहैं तिसके दूरि करनेकी इच्छा करता हुआ अवतेहेळोवरुणनमोभिः इस ऋचाको और यत्किञ्चेदं वरुणदेव्येजने इस ऋचाको और इतिवा इतिमेमनः इस सूक्तको एकवर्ष प्रतिदिन जपे ५३ स्वरूपसे महापातकिके धून आदिके कारण नही लेनेयोग्य प्रतिग्रहको लेकरि और स्वभाव काल तथा प्रतिग्रहके संसर्गसे दुष्ट अन्नको खायकै तरत्समंदीधावाति इनचारि ऋचाओंको तीनिदिन जपिकै मनुष्य उस पापसे पवित्र होताहै ॥ ५४ ॥

सोमारौद्रं तु बह्वेनां मांसमभ्यस्य शुद्धयति ॥ सर्वन्त्यामां चरन्त्यां  
नमर्यंभणामि ति च तृचम् ॥ ५५ ॥ अंब्दार्थमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सं  
तकं जपेत् ॥ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सुं मांसमांसीत भैक्षभुक् ॥ ५६ ॥

टीका—सोमारुद्राधारयेथामसूर्ये इन चारि ऋचाओंको और अर्यमणंदरुणामि-  
त्रं च इन तीनि ऋचाओंका नदीमें स्नान करि एक महीने ग्रत्येकका अभ्यास क-  
रिकै बहुतपापवाला शुद्ध होताहै ॥ ५५ ॥ एनस्वीकाहिये पाप करनेवाला मनुष्य  
सब पापोंमें इन्द्रमित्रंवरुणमग्निभूतये इन सातऋचाओंका छः महीने जप करै और  
अप्रशस्तं सूत्रपुरीष आदिका त्याग जलमें करिकै एक महीनेभरभिक्षाका भोजन  
करनेवाला होय ॥ ५६ ॥

मन्त्रैः शार्कलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ॥ सुगुर्वप्यर्हन्त्येनो<sup>१३</sup>  
जिह्वा वा नर्म इत्यृचम् ॥५७॥ महापातकसंयुक्तोऽनुर्गच्छेद्द्रोः स  
माहितः ॥ अभ्यस्याब्दं पावमानीभिक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥५८॥

टीका—देवकृतस्य इत्यादि शाकल होममंत्रोंसे एकवर्ष घीका होम करिकै न-  
मइन्द्रश्च इस ऋचाका एक वर्ष जप करिकै महापातकसे उत्पन्नभी पापको द्वि-  
जाति नाश करताहै ॥५७॥ ब्रह्महत्या आदि महा पातकोंसे युक्त पाई हुई भिक्षासे  
आहार करता हुआ एक वर्ष जितेंद्रिय हो गौओंका अनुगमन करता हुआ पा-  
वमानी ऋचाओंका प्रतिदिन जप करता हुआ उस पापसे शुद्ध होताहै ॥ ५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैः  
पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥५९॥ त्र्यहं तू पर्वसे युक्तस्त्रिरहोऽभ्युपय  
न्नयः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिजपित्वाऽर्धमर्षणम् ॥ २६० ॥

टीका—तीनि पराकों कइ शुद्ध मंत्रब्राह्मणरूप वेदकी संहिताका वनमें तीनिवार  
अभ्यास करि प्रयत्न कहिये बाहरी भीतरी शौच करि युक्त सब महापात-  
कोंसे छूटि जाताहै ॥५९॥ तीनि रात्रि उपवास करता हुआ जितेंद्रिय प्रतिदिन  
प्रातःकाल मध्यान्ह और सायंकाल स्नान कर्ता हुआ तीनिवार स्नानके समय-  
हीमें जलमें गोता लगाकै ऋतंचसत्यंच इस सूक्तसे अघमर्षण तीनि आवृत्तिसे  
जपिकै सब पापोंसे छूटि जाताहै ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधैः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनम् । तथाऽर्धमर्ष सूक्तं सर्वपा  
पापनोदनम् ॥ ६१ ॥ हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्त  
तः ॥ ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नै नः प्राप्नोति किञ्चन ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे अश्वमेधयज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है और सब पापोंके क्षयका का-  
रणहै तैसेही अघमर्षण सूक्तभी सब पापोंके क्षयका कारणहै ॥ ६१ ॥ भू आदि  
तीनो लोकोंकोभी मरिक्के और महापातकी आदिकोंकाभी अन्न खाता हुआ  
ऋग्वेदको धारण किये हुए विप्र आदि किंचितभी पापको नही प्राप्त होताहै ऋ-  
ग्वेदका धारण तौ रहस्य प्रायश्चित्तके लिये कहाहै तिससे रहस्य पापके करनेपर  
मंत्रब्राह्मणरूप ऋक्संहिताका अभ्यास करै ॥ ६२ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ॥ सार्धां वर्षे सरहस्या

नां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६३ ॥ यथा महोद्दं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विन  
इयति ॥ तथा दुश्चरितं सर्वे वेदे त्रिवृत्ति मज्जति ॥ ६४ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप ऋग्वेदकी संहिताका केवल मंत्रात्मिकाहीका नहीं  
अथवा यजुर्वेदकी मंत्रब्राह्मणरूप संहिताका अथवा सामवेदकी मंत्रब्राह्मण, उप-  
निषदरूप संहिताका तीनिवार अभ्यास करिके सबपापोंसे छूटि जाताहै ॥ ६३  
ऋक आदि रूपसे जो तीनिवार लौटै उसको त्रिवृत् कहते हैं ॥ जैसे बड़े कुंड-  
में प्राप्त होके महीका-डेल विसर जाताहै तैसे सब पाप त्रिवृत्वेदमें नाशको  
प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥

ऋचो यजूषि चान्यानि सामानि विविधानि च ॥ एष ज्ञेयस्त्रिवृद्धे दो  
यो वेदे न संवेदवित् ॥ ६५ ॥ आद्यं यत्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मि  
न्प्रतिष्ठिता ॥ स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्धे दोयस्तं वेदं संवेदवित् ॥ ६६ ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः ११

टीका—त्रिवृत्तर्पणको कहते हैं ॥ ऋग्वेदके मंत्र और यजुके मंत्र और बृहद्र-  
थंतर आदि नाना प्रकारके साम और परस्पर तीनोंके पृथक् पृथक् मंत्र ब्राह्म-  
ण यह त्रिवृद्धेद जानना चाहिये जो इसको जानताहै वह वेदका वेत्ता होताहै ॥  
॥ ६५ ॥ सब वेदोंका आद्य कहिये प्राथमिक और सब वेदोंका सार अकार  
उकार मकार रूपसे तीनि अक्षरका जो ब्रह्म है उसमें तीनों वेद स्थितहैं सो दूस्-  
रा त्रिवृद्धेद प्रणवनाम गुह्य वेदके मंत्रोंमें श्रेष्ठ होनेसे छुपाने योग्यहै परमार्थका  
कहनेवालाहै ॥ इससे और परमार्थक होनेसे धारण तथा जपसे मोक्षका कारण  
है जो उसको स्वरूपसे जानताहै वह वेदका जाननेवालाहै ॥ ६६ ॥

इति श्रीमत्पाण्डितपरमसुखतनयपाण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां-  
कुङ्कुमभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविकृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः १२

चातुर्वर्ण्यस्य कूर्त्तस्त्रोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ ॥ कर्मणां फलनिवृ  
त्तिं शंसं नस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥ स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मा  
नवो भृगुः ॥ अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥ २ ॥

टीका—हे पापरहित, ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंका और अन्तरप्रभवोंका यह

धर्म तुमने कहा अब कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी प्राप्तिको और परां कहिये जन्मान्तरमें हुई परमार्थरूपको हमसे कहौ, महर्षियोंने यह भृगुसे कहा ॥ १ ॥ वह धर्मप्रधान मनुका पुत्र भृगु इस सबकर्म संबंधके फलके निश्चयको सुनिये यह उन महर्षियोंसे बोला ॥ २ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवं कर्मजां गतयो नृणामुत्तमा  
धर्ममध्यमाः ॥ ३ ॥ तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ॥  
दशलक्षणयुक्तस्य मनोविद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

टीका—मन वाणी देह जिसका कारण ऐसां सुखदुःखरूप फलका देनेवाला विहित निषिद्धरूप कर्म और उसीसे उत्पन्न मनुष्य तिर्यक् आदिके भावसे उत्कृष्ट मध्यम, और अधमकी अपेक्षा मनुष्योंकी गति अर्थात् जन्मान्तरोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३ ॥ उस देहीके कर्मकी उत्कृष्ट मध्यम अधमतासे, तीनि प्रकारके मन वाणी तथा कायके आश्रित और आगे कहे हुए दश लक्षणोंकरि युक्त कर्मका मनही प्रवर्तक जानना चाहिये मन करि संकल्प किया हुआ कहा जाता है और किया जाताहै सोई तैत्तिरीय उपनिषदमें कहाहै जैसे तस्मात् यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचावदतितत्कर्मणा करोति इति । अर्थ तस्से पुरुष जिसको मनसे जानताहै उसको वाणीसे कहताहै और कर्मसे करताहै ॥ ४ ॥

षट्द्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥ वितर्थाभिनिवेशश्च त्रि-  
विधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ॥  
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

टीका—उन दशलक्षणोंके कर्म दिखानेको कहते हैं ॥ कैसे कि पराये धनको अन्यायसे ले लों इस भांति सोचना और मनसे ब्रह्मवध आदिकी निषिद्ध इच्छा और परलोक नहीं है देहही आत्माहै इस भांति तीनि प्रकारका अशुभ फल मानस कर्म ये तीनों और विपरीत बुद्धि तीनि प्रकारका शुभफल मानस कर्म है ॥ ५ ॥ अप्रियका कहना झूठ बोलना पीठि पीछे पराये दूषणोंका कहना और सत्यभी राजा देश और पुरवासियोंकी वार्ता आदिका विना प्रयोजन वर्णन करना इस भांति चारि प्रकारका अशुभ फल वाचिक कर्म होताहै इस्से विपरीत प्रिय सत्य और परगुणोंका कहना और श्रुति पुराण आदिमें राजा आदिकोंके चरित्रका कहना शुभफल है ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च शारी



१००० त्रिविधं स्मृतम् ॥७॥ मानसं मनसैर्वायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥  
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कारिकम् ॥ ८ ॥

टीका—अन्यायकारिके पराये द्रव्यका, हरणकरना, वेदादिक शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसाका करना, और पराये स्त्रीके साथ संभोग करना, इन तीन प्रकारका अशुभफल देनेवाला शारीरकर्म होता है और इनसे विपरीत अर्थात् न्यायसे द्रव्यका संग्रहकरना वेदादिकशास्त्रोंसे यज्ञादिकोंमें विहित पशुओंकी हिंसा करना, और अपने स्त्रीके साथ ऋतुकालमें संभोग करना ए तीन प्रकारका शुभफल देनेवाला शारीर कर्म होता है ॥ ७ ॥

मन करिके जो सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किये उसका फल सुखदुःखरूप इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें मनसेही यह भोगता है ऐसे वाणी करि किया हुआ शुभ अशुभ वाणीके द्वारा मधुर, गद्गद, बोलने आदिसे और शरीर संबंधी शुभ अशुभ शरीरके द्वारा स्रक् चंदन आदि प्रियाके उपभोगसे व्याधित आदि होनेसे भोगताहै तिस्से यत्न करिके शारीर मानस; और वाचिक धर्मरहित, और धर्मजनक कर्मोंको छोड़े तथा करै ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्यातिः स्थावरतां नरैः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां  
मानसैरन्त्यजांतिताम् ॥ ९ ॥ वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्ड  
स्तथैव च ॥ यैस्स्यै ते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डी १० ॥ ति सं उच्यते ॥ १० ॥

टीका—यद्यपि पापिष्ठोंके शारीर, वाचिक, और मानसिकही तीन पाप होते हैं तिसपरुभी वह जो बहुधा अधर्मही करै धर्म थोडा करै तौ बाहुल्यके अभिप्रायसे यह व्याख्यान कियाहै जैसे अधिकतासे शरीरके कर्मोंसे उत्पन्न पापों करि युक्त मनुष्य स्थावरत्वको प्राप्त होताहै और बाहुल्यसे वाणी करि किये हुए ओसे पक्षीभाव और मृगभावको अथवा बाहुल्यसे मनकरि किये हुए ओसे चांडालआदिके भावको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ वाणीका दंड, मनका दंड, तैसेही कायदंड ये तीनो दंड जिसकी बुद्धिमें स्थितहै वह त्रिदंडी, कहा जाताहै और तीन दंडोंके धारणमात्रसे त्रिदंडी नहीं होताहै ॥ १० ॥ :

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवैः ॥ कांसक्रोधौ तु संयम्य तं  
तः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥ योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं  
प्रचक्षते ॥ यः करोति सं कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

टीका—इस निषिद्ध वाणी आदिकोंकां सब भूतोंकी गोचरतासे दमन करि कै और इन्हीके दमनके लिये काम तथा क्रोधको रोकिकै तिसपीछे मनुष्य मोक्षप्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥११॥ कौन सिद्धिको प्राप्त होताहै सो कहत हैं ॥ जो इस लोक सिद्धशरीरनाम आत्माका कर्ममें प्रवृत्त करानेवालाहै उसको पंडित क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जो यह व्यापारोंको करताहै वह शरीरनामहै ब्रह्म पृथिवी आदि भूतोंसे बननेके कारण पंडितों करि, भूतात्मा कह जातहै ॥१२॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यःसहजः सर्वदेहिनाम् ॥ येन वेदयते सर्वं  
सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥ तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव  
च ॥ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥

टीका—शरीर तथा क्षेत्रज्ञसे भिन्न शरीरके भीतर आत्मा नाम होनेसे आत्मा जीवनामसे क्षेत्रज्ञोंको सहज आत्मानामकी प्राप्ति है क्योंकि उनसे दुर्बलका विनियोगहै अहंकार और इंद्रियोंके रूपसे परिणामको प्राप्त कारणभूत जिस जीवात्माकरि क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्ममें सुख और दुःखकी अनुभव करताहै ॥ १३ ॥ वे देहो महत् और क्षेत्रज्ञ पृथिवी आदि पांच भूतोंसे मिले हुए आंगे जो कहा जायगा और सब लोकमें तथा वेद स्मृति और पुराण आदिमें प्रसिद्ध होनेसे जो तंशब्दसे निर्देश किया गया, और उत्कृष्ट अपकृष्टजीवोंमें स्थित ऐसे परमात्माको आश्रय लेकर दोनो स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥

असंख्यां मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ॥ उच्चावचानि भूतानि  
संततं चेष्टयन्ति याः ॥१५॥ पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृति  
नां नृणाम् ॥ शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

टीका—इस परमात्माके शरीरसे असंख्यहै मूर्तियां जिनकी ऐसे जो क्षेत्रज्ञ शब्दसे पीछे कही हुई लिंगशरीरमें स्थित और वेदांतके कहे हुए प्रकारसे आगिकीचिनगारियोंके समान जे मूर्तियां निकली वे देहरूपसे परिणामको प्राप्त उत्कृष्ट अपकृष्ट जीवोंको सदा कर्मोंमें प्रेरणा करती हैं ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पांचही भूतोंके भागोंसे दुष्कृत करनेवाले मनुष्योंको पीडाका अनुभव करानेवाले जरायुज आदि देहोंसे भिन्न दुःख सहनेवाला शरीर परलोकमें उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥

तेनानुभूय तां यामीः शरीरेणेहं ध्यातनाः ॥ तांस्त्वेवं भूतमात्रांसु प्र  
लीयन्ते विभांगिशः ॥१७॥ सोऽनुभूयासुखोदकार्कान्दोषां निषयसंग

जान् ॥ व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तां वै वोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

टीका—उस निकले हुए शरीरसे पापी जीव उभै यमकी की हुई यातनाओंको भोगिके स्थूल-शरीरके नाश होनेपर उन्ही आरंभ करनेवाले भूतोंके भागीमें जो जिसका भागहै वह उसमें इस क्रमसे लीन होजाताहै अर्थात् उन भूतोंके संयोगी होकर स्थित रहता है ॥ १७ ॥ वह शरीरी भूत सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें स्थित ही निषिद्ध शब्दस्पर्शरूपरसगंधनाम विषयोंके भोगसे उत्पन्न यमलोकके दुख आदिके भोगिके तिसपीछे अनंतर भोगसे नाश हुएहैं पाप जिसके ऐसा हो उन्ही बड़े पराक्रमी दोनो महत् और परमात्माका आश्रय लेताहै ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यन्तस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥ याभ्यां प्राप्नोति सं  
पुंक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥ १९ ॥ यद्यच्चरति धर्मं स प्रायशोऽ  
धर्ममल्पशः ॥ तै रेव चावृतौ भूतैः स्वर्गे सुखमुपांश्रुते ॥ २० ॥

टीका—वे दोनो महत् और परमात्मा आलस्य रहित हो उस जीवके धर्मको और भोगनेसे वाकी रहे पापका साथ विचार करते है जिन धर्म अधर्मों करि युक्त जीव परलोक और इसलोकमें सुख तथा दुःखको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ वह जीव जो मनुष्यकी दशामें अधिकतासे धर्मको करताहै और थोडा अधर्म तब स्थूल शरीरके रूपसे परिणामको प्राप्त उन्ही पृथिवी आदि भूतों करि युक्त-स्वर्गके सुखको भोगताहै ॥ २० ॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ॥ तै भूतैः स परित्यक्तो  
यामी प्राप्नोति यातनाः ॥ २१ ॥ यामीस्तां यातनाः प्राप्य स जीवो  
वीतकल्मषः ॥ तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥

टीका—जो वह जीव मनुष्यकी दशामें अधिकतासे पाप करताहै और पुण्य थोडा तब मनुष्यके देहरूपसे परिणामको प्राप्त उन्ही भूतोंकरि त्याग किया हुआ मरिक्के पीछे पाचोंही मात्राओंसे उक्तीति करि यातना भोगनेके योग्य हुआहै कठिन देह जिसका ऐसाहो यमकी पीडाओंको भोगताहै ॥ २१ ॥ वह जीव यमकी उन यातनाओंको उस कठिन देहसे भोगिके उसके भोगसे पापरहित हो उन जरायुज आदि शरीरोंके आरंभकरनेवाले पृथिवी आदि भूतोंके भागीमें अधिष्ठितहो मनुष्य आदिके शरीरको ग्रहण करताहै ॥ २२ ॥

एतां दृष्ट्वास्य जीवस्य गन्त्रीः स्वेनैव चेतसा ॥ धर्मतोऽधर्मतश्चैव धं

मे दध्यात्सदा मनः ॥२३॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैवं त्रीन्विद्यादात्मनो  
गुणान् ॥ यैर्व्याप्येमान् स्थितो भावान्महान्तसर्वानशेषतः ॥२४॥

टीका—धर्म अधर्म है कारण जिनका ऐसी इस देहकी स्वर्ग नरक आदिके भोगनेके उचित प्रिय अप्रिय देहकी प्राप्तिओंको अंतःकरणमें जानिके धर्ममें मनको सदा लगावै ॥ २३ ॥ जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे सत्व रज तम आदि तीनि गुणोंको आत्माके उपकारक होनेसे आत्मा जो महत्है, उसके गुणोंको जानै जिन करिके व्याप्त महान् इन स्थावर जंगमरूप सब पदार्थोंमें व्याप्त होके स्थितहै ॥ २४ ॥

यो यदैषां गुणो देहे सार्कल्येनातिरिच्यते ॥ स तदा तद्गुणप्रायं तं  
क्ररोति शरीरिणम् ॥२५॥ सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषो रजः  
स्मृतम् ॥ एतद्गुणान्मिदतेषां सर्वभूतान्श्रितं वपुः ॥ २६॥

टीका—यद्यपि यह सब त्रिगुणमयहै तिसपरभी जिस देहमें इन गुणोंमेंसे जो गुण सकलरूपसे अधिक होताहै तब उस गुणके बहुतहै लक्षण जो जिसमें ऐसे उस देहकी करताहै ॥ २५ ॥ अब सत्व आदिकोंके लक्षण कहते हैं ॥ यथार्थका जो अवभास ज्ञानहै वह सत्वका लक्षणहै इस्से विपरीत जो अज्ञानहै वह तमका लक्षणहै विषयोंका अभिलाषरूप जो मनका कार्य है वह रजोगुणका लक्षणहै और सत्व रज तमका स्वरूप तौ प्रीति अप्रीति और विषादरूपहै सोई पदते हैं जैसे प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशवृत्तिनियमार्थाः अन्योन्याभिभवजननमिथुनवृत्तयश्चगुणाः ॥ इति ॥ अर्थ ॥ प्रीति अप्रीति और विषादरूप तथा प्रकाश वृत्तिका नियमहै अर्थ जिनका और आपसमें अभिभवका करना और मैथुन वृत्तिगुणहै इति ॥ यह तौ इनका स्वरूप आगेके तीनि श्लोकोंसे कहेंगे इन सत्व आदि गुणोंका यह सब ज्ञान आदि सब प्राणियोंमें व्याप्त लक्षणहै ॥ २६ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ॥ प्रशान्तमिदं शुद्धं  
भं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥२७॥ यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमा  
त्मनः ॥ तद्गुणोऽप्रतिषं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥२८॥

टीका—उस आत्मामें जो कुछ संवेदन प्रीतियुक्त लक्षित होय क्लेशनामको न होय शांत तथा शुद्धरूप होय उसको सत्व जानिये ॥ २७ ॥ जो तौ दुःख करि युक्त और आत्माकी प्रीतिका नही उत्पन्न करनेवाला और सदा विषयोंमें

शरीरियोंकी इच्छाके उत्पन्न करनेवाले उसके दुर्निवार होनेसे सतोगुणके प्र-  
तिपक्षको रज जानो ॥ २८ ॥

यत्तु स्यान्बोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं  
तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणानां यः फलो  
द्वयः ॥ अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

टीका—जो सत् असत्के विचारसे शून्य और नही प्रकट है विषयोंके आ-  
कारका स्वभाव जिसमें और नही तर्क करने योग्यहै स्वरूप जिसका और अंतः-  
करण वही करणोंसे जो नही जावनेयोग्य उसकोतम जानिये इन गुणोंके स्वरूप-  
का कहना इसलियेहै कि मनुष्यको सत्त्ववृत्तिमें स्थित होनेको यत्न करना चा-  
हिये ॥ २९ ॥ इन सत्व आदि तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम अधमरूप जो फलका  
उत्पन्न करनेवालाहै उसको विशेष करिके कहोंगा ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ता च  
सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥ आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्यपरि-  
ग्रहः ॥ विषयोपसेवा चोर्जसं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

टीका—वेदमें अभ्यास और प्राजापत्य आदिका करना और शास्त्रके अर्थ-  
का ज्ञान और मिट्टी जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना और दान आ-  
दि धर्मोंका करना और आत्माके ध्यानमें तत्पर होना ये सत्त्वनाम गुणके कार्य  
हैं ॥ ३१ ॥ फलके लिये कर्मोंका करना और थोड़ेभी अर्थमें व्याकुल होना और  
निषिद्ध कर्मोंका करना और सदा शब्द आदि विषयोंका भोगना यह रजनाम  
गुणका कार्य है ॥ ३२ ॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ॥ याचिष्णुता  
प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणानां  
त्रिषु तिष्ठताम् ॥ ईदं सामांसिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

टीका—अधिक अधिक धनकी इच्छा, अधिक सोना, कातरपन, क्रूरता, और  
नास्तिक्य कहिये परलोकके न होनेकी बुद्धि, और आचारका लोप, और या-  
चनका स्वभाव होना, और प्रमाद कहिये संभव होनेपरभी धर्म आदिकोंमें मनका  
न लगाना, ये तामसनाम गुणके लक्षणहै ॥ ३३ ॥ इन सत्व आदि तीनोंही गु-

पोंका भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनोकालोंमें विद्यमानोंका यह आगे जो कहां जायगा वह संक्षेपके क्रमसे लक्षण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वैश्च करिष्यैश्चैवं लज्जति ॥ तंज्ञेयं विदुषासं  
वैनामसं गुणलक्षणम् ॥३५॥ येनास्मिन्कर्मणां लोके ख्यातिमि-  
च्छति पुष्कलाम् ॥ न च शोचत्यसंपत्तौ तद्रिज्ञेयं तु राजसम् ३६

टीका—जिस कर्मको करिके करता हुआ और आगे करनेकी इच्छा करता हुआ लज्जित होय तौ वह सब तमका कार्य होनेसे तमहै नाम जिसका ऐसे गुणका लक्षण शास्त्रके जाननेवालेकी जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ इस लोकमें बड़ी ख्यातिको प्राप्त होंइ इस लियेही जो जिस कर्मको करताहै परलोकके लिये नहीं और उस कर्मके फलके न होनेपर दुखी होताहै वह रजका कार्य होनेसे रजो-गुणका लक्षण जानिये ॥ ३६ ॥

यत्संवेणेच्छति ज्ञातुं यत्र लज्जति चाचरन् ॥ येन तुष्यति चात्मा  
स्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥३७॥ तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्व-  
र्थ उच्यते ॥ सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठचर्मेषां यथोत्तरम् ॥३८॥

टीका—जो कर्म सब प्रकारसे वेदके अर्थकी जाननेकी इच्छा करताहै और जिस कर्मको करता हुआ तीनों कालमें भी लज्जित नहीं होताहै और जिस जिस कर्मसे इसके आत्माको संतोष होय वह सत्त्वनाम गुणका लक्षण जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ कामकी प्रधानता होना यह तमका लक्षण है और धनमें निष्ठ होना रजका लक्षणहै धर्मकी प्रधानता होना यह सत्त्वगुणका लक्षणहै इन काम आदिकोमें आगे आगे वालीकी श्रेष्ठताहै कामसे अर्थ श्रेष्ठहै क्योंकि कामका अर्थ मूलहै और उन दोनोसे धर्म श्रेष्ठहै क्योंकि इन दोनोका वही मूलहै ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ॥ तान्सर्मासेन वक्ष्यामि स-  
र्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥३९॥ देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च  
राजसाः ॥ तिर्यक्तवं तामसा नित्यमित्येषां त्रिविधां गतिः ४० ॥

टीका—इन सत्त्व आदि गुणोंमेंसे जिसके गुणसे जीव जिन गतियोंको प्राप्त होताहै इस जगत्की उन सब गतियोंको संक्षेपसे क्रम करि कहौंगा ॥ ३९ ॥ जे सतोगुणकी वृत्तिमें स्थितहै वे देवत्वको प्राप्त होते हैं और जे तौ रजोवृत्तिमें स्थि-

तहैं वे मनुष्यत्वको और जें तमोवृत्तिमें स्थितहैं वे तिर्यक् योनिंको प्राप्त होते हैं यह तीनिप्रकारकी जन्मकी प्राप्ति है ॥ ४० ॥

त्रिविधात्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ॥ अधमा मध्यमा  
 र्थ्या च कर्मविद्यां विशेषतः ॥ ४१ ॥ स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्वभाः  
 सर्पाः सर्कच्छपाः ॥ पशवश्च मृगाश्चैवं जघन्या तामसी गतिः ४२

टीका—सत्व आदि तीनि गुणहैं कारण जिसके ऐसी तीनि प्रकारकी जन्मातरोंकी प्राप्ति कही वह देशकाल आदिके भेदसे और संसारके कारण भूत कर्मोंके भेदसे और ज्ञानके भेदसे अधम मध्यम उत्तम इन भेदोंसे तीनिप्रकारकी जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥ स्थावर वृक्ष आदि कृमि सूक्ष्म प्राणी उनसे कुछ मोटे कीट तथा मछली, साँप, कछुआ, और मृगों तक यह सब तमोगुणहैं कारण जिसका ऐसी जघन्य कहिये अधम गति है ॥ ४२ ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः । सिंहा व्याघ्रां वरा-  
 हाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ४३ ॥ चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषा-  
 श्चैवं दाम्भिकाः । रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूतमा गतिः ॥ ४४ ॥

टीका—हथी, घोडा, शूद्र और गर्हित, म्लेच्छ, सिंह, बाघ, सुअर, यह तमोगुणहैं कारण जिसका ऐसी यह मध्यम गति है ॥ ४३ ॥ चारण, नट, आदि और सुवर्णपक्षी और कपटसे धर्म करनेवाले पुरुष और राक्षस तथा पिशाच यह तामसी गतियोंमें उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

झल्ला मल्ला नैटाश्चैवं पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः । दूतपानप्रसक्ताश्च जघ-  
 न्या राजसी गतिः ॥ ४५ ॥ राजानः क्षत्रियाश्चैवं राज्ञश्चैवं पुरो-  
 हिताः । वांदयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥

टीका—जात्य क्षत्रियसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न दशम अध्यायमें कहे हुए झल्ल मल्ल उनमें लाठी धारण करनेवाले ( छडीवरदार ) और मल्ल बाँहोंसे युद्ध करनेवाले, और रंगभूमिमें उतरनेवाले नट, और शस्त्रोंसे जीविका करनेवाले और जुवामें तथा मद्यके पीनेमें लगे हुए पुरुष यह अधम राजसीगति जाननी चाहिये ॥ ४५ ॥ राजा कहिये अभिषेक किये हुए देशके स्वामी, जैसेही क्षत्रिय, और राजाके पुरोहित, और जिनको शास्त्रार्थ तथा कलह प्यारा है, यह राजसी गति मध्यम जानिये ॥ ४६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचरार्थं ये । तथैवाप्सरसः सर्वा  
राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४७ ॥ तापसा यतयो विप्रा ये च वैमा-  
निका गणाः । नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सांत्विकी गतिः ॥ ४८ ॥

टीका—गंधर्व, गुह्यक, यक्ष, देवता, और उनके अनुचर विद्याधर आदि और  
अप्सरा, सब ये राजसीमें उत्तम गति हैं ॥ ४७ ॥ वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मण,  
और जे विमानमें चलनेवाले अप्सराओंसे भिन्न, पुष्पक आदि विमानमें चलने-  
वाले, और नक्षत्र, तथा दैत्य, यह सत्व निमित्त अधम गति जाननी चाहिये ४८

यज्वान ऋषयो देवा वेदेषु ज्योतीषि वत्सराः ॥ पितरश्चैव सांघ्या  
श्च द्वितीया सांत्विकी गतिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महान्  
व्यक्तमेव च ॥ उत्तमां सांत्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञ करनेवाले तथा ऋषि और देवता, और वेदके अभिमानी, देव-  
ता, और ध्रुव आदि ज्योति कहिये तारागण, और वत्सर कहिये इतिहासमें दे-  
खे हुए विग्रहवाले, और पितर कहिये सोमपा आदि, और देवयोनि विशेष  
साध्य, यह सत्वनिमित्त मध्यम गति जानिये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा कहिये चतुर्मुख,  
और विश्वसृज कहिये मरीचि आदि, और देह धारण क्रिये हुए धर्म और म-  
हान् तथा अव्यक्त सांख्यमें प्रसिद्ध दो तत्व उनके अधिष्ठाता, दोनों देवता, इस  
चतुर्मुखआदिरूप सृष्टिको सांत्विक निमित्त उत्कृष्ट गति पंडित कहते हैं ॥ ५० ॥

एष सर्वः संमुद्दिष्ट स्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ॥ त्रिविधस्त्रिविधः कृ  
त्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥ इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेव  
नेन च ॥ पापासंयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥

टीका—यह मन, वाणी, और कायरूप, तीनि साधनोंके भेदसे तीनि प्रकारके  
कर्म सत्त्व रज तमके भेदसे फिरितीनि प्रकारका फिरि प्रथम मध्यम उत्तमके भेदसे  
तीनि प्रकारका सब प्राणियोंमें स्थित गति विशेष संपूर्णतासे कहा और सार्वभौ-  
तिक इस कहनेसे नही कहीहुई भी गतियां देखनी चाहिये और उक्त गतियां तौ  
दिखानेके लिये हैं ॥ ५१ ॥ इन्द्रियोंके विषयोंमें लगनेसे और निषिद्ध आचर-  
णसे और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके न करनेसे मूढ मनुष्योंमें नीच कुत्सित गति-  
योंको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥



यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ॥ क्रमं शो यीति लो<sup>१२</sup>  
केऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥ बहुन्वैर्षगणान्घोरात्ररक्री  
न्प्राप्य तत्क्षयात् ॥ संसारां प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ५४

टीका—यह जीव जिस जिस किये हुए पाप कर्मसे इस लोकमें जिस जिस जन्म-  
को प्राप्त होता है उस सबके क्रमसे सुनिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकों-  
के करनेवाले बहुतसे वर्षोंके समूहोंके भयंकर नरकोंमें प्राप्त हो उनके भोगके  
पूरे होनेपर पापके शेषसे आगे कहे हुए जन्म विशेषोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणां भोजविमृगपक्षिणाम् ॥ चण्डालपुष्कसानां च  
ब्रह्मर्हा यो निमृच्छति ॥ ५५ ॥ कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पं  
क्षिणाम् ॥ हिंसाणां चैव संत्वाणां सुरांपो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ ५६ ॥

टीका—कुत्ता, सुअर, गधा, ऊँट गौ, बकरा, मेढा, मृग, पक्षी, चांडाल,  
और जो निषादसे शूद्रमें उत्पन्न व पुष्कस इनकी योनिमें ब्रह्महत्यारा जन्म लेता-  
ता है यहां शेष पार्थकी गुरुता और लघुताकी अपेक्षासे क्रमसे सब योनियोंकी  
प्राप्ति जाननी चाहिये ऐसैही आगेभी जानिये ॥ ५५ ॥ कृमि, कीट, पतंग, और  
विष्टा खानेवाले पक्षी, और हिंसा करनेवाले व्याध आदि इनकी जातिमें सुरा  
प्रीनेवाला ब्राह्मण उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ॥ हिंसाणां च पिशा  
चानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥ तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां  
दंष्ट्रिणामपि ॥ क्रूरकर्मकृतां चैव शैलशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

टीका—मकड़ी, साँफ, गिरगट, और जलमें विचरनेवाले पक्षी, और हिंसा  
करनेवाले पिशाच आदि, इनकी योनिमें सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण हजारों-  
वार प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ दूब, तृणोंकी, औ गुल्मोंकी, और गुडूची आदि ल-  
ताओंकी, और कच्चा मांस खानेवाले गीध आदिकी, और सिंह आदि दंष्ट्रियों-  
की, और क्रूरकर्म करनेवाले वधशील व्याध आदिकोंकी जातिमें, सौवार गुरु-  
की स्त्रीमें गमन करनेवाला प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

हिंसा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ॥ परंस्परादिनः स्ते  
नाः प्रेतात्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५९ ॥ संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च

योषितम् ॥ अपंहृत्य च विप्रस्वम् भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

टीका—जे प्रणियोंके वध करनेवाले हैं वे कञ्चे मांसके खानेवाले विलाव आदिकी योनिमें उत्पन्न होतेहैं और जे अभक्ष्यभक्षीहैं वे कृमि होते हैं और जे महापाताकियोंसे भिन्न चोरहैं वे आपसमें मांस खानेवाले होते हैं और जे चांडाल आदिकी स्त्रीमें गमन करनेवाले हैं वे प्रेत नाम प्राणीविशेष होतेहैं ॥५९॥ जितने कालमें पतितके संयोगसे पतित होताहै उतने कालतक ब्रह्मघाती आदि चारिके साथ संसर्गको करिके और औरोंकी स्त्रीमें गमन करिके और ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न अन्यवस्तुको चुराकै एकएक पाप करनेसे ब्रह्मराक्षस प्राणीविशेष होताहै ६०

मणिमुक्ताप्रवलानि हृत्वालोभेन मानवः ॥ विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥ धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्त्र्यं हंसो जलं पृथ्वः ॥ मधु दंशः पयः कांको रंसं श्वानकुलो घृतम् ॥ ६२ ॥

टीका—माणिक्यं आदि मणियोंको, मोती मूगोंको, और नाना प्रकारके वैदूर्य हारि आदि रत्नोंको, अपनेके भ्रमविना लोभसे चुराकै सुवर्णकारकी योनिमें उत्पन्न होताहै कोईतौ हेमकार पक्षीको कहतेहैं ॥ ६१ ॥ धान्यको चुरायकै मूसा होताहै और कांसको चुरायकै हंस होताहै और जलको चुरायकै पुवनाम पक्षी होताहै और शहत चुरायकै डांस और दूध चुरायकै कौआ और विशेष करि कहे हुए गुड नोन आदिसे भिन्न ईस आदिके मूको चुरायकै कुत्ता होताहै और घी चुरायके न्योला होताहै ॥ ६२ ॥

मांसं गृध्रो वर्षां मद्दुस्तैलं तैलपकः खगः ॥ चीरिवाकस्तुं लृवणं बलाका शकुनिं दधि ॥ ६३ ॥ क्रोशेयं तित्तिरिहृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दूर्दुरः ॥ कांपासतान्तवं क्रौञ्चो गोर्धां गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

टीका—मांस चुरायकै गीधं होताहै और बसा ( चरवी ) को चुरायकै महुनाम जलचर पक्षी होताहै और तेल चुरायकै तैलपायिकनाम पक्षी और नोन चुरायकै चीरिवाक नाम ऊंचे स्वरवाला कीट और दही चुरायकै बलाकानाम पक्षी होताहै ॥ ६३ ॥ रेशमी वस्त्र चुरायकै तीतरनाम पक्षी होताहै और क्षौमसे बने हुए वस्त्रको चुरायकै मेढक और कपासके बने हुए वस्त्रको चुरायकै कौचनाम प्राणी और गौको चुरायकै गोह और गुडको चुरायकै वाग्गुदनाम पक्षी होताहै ॥ ६४ ॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ॥ श्वाविकृत्तान्नं वि

विधमकृतात्रं तु शल्यकः ॥६५॥ वैको भवति हृत्वाग्निं गृहकंपरी  
हुपस्करम् ॥ रक्तानि हृत्वा बासांसि जायते जीवजीवकः ॥६६॥

टीका—कस्तूरी आदि सुगंध द्रव्योंको चुरायकै छन्दरि होताहै वधुआदि पत्र शाकोको चुरायकै मोर और लड्डू सक्तू आदि नाना प्रकारके सिद्ध अन्न चुरायकै श्वाविधनाम प्राणी और विनाकिये हुए अन्न धान जव आदि चुरायकै शल्यकनाम होताहै ॥ ६५ ॥ अग्निको चुरायकै बकनाम पक्षी होताहै और घरके उपयोगी सूप मूसल आदि चुरायकै भीति आदि मिट्टीका घर बनानेवाला परो करि युक्त कीट अर्थात् कुह्नरकीडा होताहै कसुंभ आदिते रंगे वस्त्रोंको चुरायकै चक्रोरनाम पक्षीहोताहै ॥ ६६ ॥

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽथं फलमूलं तु मंकटः ॥ स्त्रीमृशः स्तोकेको  
वारि यथाभ्युग्रः पशूनर्जः ॥६७॥ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बला  
न्नरः ॥ अवश्यं याति तिर्यक्तं जग्वा चैवाहुंतं हविः ॥ ६८ ॥

टीका—मृग अथवा हाथीको चुरायकै भेडियानाम हिंसक पशु होताहै और घोडा चुरायकै व्याघ्र होताहै और फल मूल चुरायकै बंदर होताहै और स्त्रीको चुरायकै रीछ होताहै और पीनेके लिये जल चुरायकै चातकनाम पक्षी होताहै और शकट आदि यानोंको चुरायकै ऊंट होताहै और कहे हुए पशुओंसे अन्य पशुओंको चुरायकै बकरा होताहै ॥ ६७ ॥ यत्किंचित् असारंभी पराई वस्तुको इच्छासे चुरायकै और विना होमे हुए पुरोडास आदिको स्वायकै मनुष्य निश्चय तिर्यक् योनियें प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाभ्युः ॥ एतेषामेवं जन्तूनां  
भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥ स्वभ्यः स्वभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्यु  
ता वर्णा ह्यनौपदि ॥ पापान्संमृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ७०

टीका—स्त्रियांभी इसी प्रकारसे इच्छा करिके पराई वस्तुको चुरायकै पापको प्राप्त होतीहैं और उस पापसे कहे हुए जीवोंकी स्त्री होतीहैं ॥ ६९ ॥ इस भांति निषिद्ध काम करनेके फलोंको कहिके अब कहे हुंके न करनेके फलका परिपाक कहते हैं ब्राह्मण आदि चारोवर्ण आपत्तिके विना पंचकर्मोंके त्याग करनेसे आगे कही हुई कुत्सित योनियोंको प्राप्त हो तिस पीछे दूसरे जन्ममें शत्रुके दास भावको प्राप्त होतेहैं ॥ ७० ॥

वान्ताश्युर्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वैकाच्युतः ॥ अंभेध्याकुण  
पाशीं च क्षत्रियः कटपूतनः ॥७१॥ मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो  
भवति पूर्यभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वैकाच्युतः ७२

टीका—अपने कर्मसे भ्रष्ट और वातका खानेवाला ब्राह्मण, ज्वालामुख, मा-  
म एक भांतिका प्रेत होताहै और अपने कर्मसे नष्ट क्षत्रिय विद्याखानेवाला,  
कटपूतन, नाम एक भांतिका प्रेत होताहै ॥ ७१ ॥ अपने कर्मसे भ्रष्ट वैश्य; मै-  
त्राक्ष ज्योतिक, नाम पीवका खानेवाला प्रेत दूसरे जन्ममें होताहै और अपने  
कर्मसे भ्रष्ट शूद्र चैलाशक, नाम प्रेत होताहै ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयांस्विषयात्मकाः ॥ तथा तथा कुशलता  
तेषां तेषूपजायते ॥७३॥ तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबु  
द्धयः ॥ संप्रामुर्वन्ति दुःखानि तामुतास्विहं योनिषु ॥ ७४ ॥

टीका—विषयोंमें लोभी जैसे जैसे शब्द आदि विषयोंको सदा सेवन करतेहैं  
तैसे तैसे उनकी विषयोंमें प्रवीणता होतीहै ॥७३॥ वे अल्पबुद्धिवाले उन निषिद्ध  
विषयोंके उपभोगके अभ्याससे उन उन निंदिततर और निंदिततम तिर्यक् आ-  
दि योनियोंमें दुःखको भोगते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोत्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् ॥ असिपत्रबनादीनि व  
न्धनच्छेदनानि च ॥७५॥ विविधांश्चैवं संपीडाः काकोर्लूकैश्च भ  
क्षणम् ॥ करम्भवालुकातार्पाङ्कुम्भीर्पाकांश्च दारुणांन् ॥७६॥

टीका—तामिस्र आदि चौथे अध्यायमें कहे हुए घोर नरकमें दुःखके अनु-  
भवको प्राप्त होतेहैं तैसेही असिपत्रवन आदि बंधन च्छेदनरूप नरकोंको प्राप्त होते  
है ॥७५॥ नाना प्रकारकी पीडाओंको और कौआ उलूक आदिसे खाया जाना  
और तप्त वालुका आदि तथा कुम्भीपाक आदि दारुण नरकोंमें प्राप्त होतेहै ॥७६॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायोसु नित्यंशः ॥ शीततपाभिघातां  
श्च विविधानि भयानि च ॥७७॥ असंकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दा  
रुणम् ॥ बन्धनानि च कष्टानि प्रप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

टीका—जिनमें दुःख बहुतहै ऐसी तिर्यक् आदि योनियोंमें उत्पन्न होना उन  
शीत घाम आदिकी पीडा आदिसे नाना प्रकारके दुःखों और भयोंको प्राप्त हो-

ते हैं ॥ ७७ ॥ वारंवार गर्भस्थानोंमें बसनेको और योनि यंत्र आदिकोंसे दुःख देनेवाली उत्पत्तिको और संकल आदिसे बंधनेकी भीडको प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

बन्धुप्रियविद्योगांश्च सर्वासं चैवं दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नाशं च  
मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥ ७९ ॥ जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चो  
पपीडनम् ॥ क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेवं च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

टीका—बांधवों और मित्रोंसे विर्यागोंको और दुष्टोंके साथ एक स्थानमें रहनेको और धन जोढनेके श्रमफो और धनके नाशको और कष्टसे मित्रके अर्जनको और शत्रुके प्रकट होनेको प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी वृद्ध अवस्थाको और रोमोंसे तथा भूख प्यास आदिसे पीडित होनेको और नाना प्रकारके क्लेशोंको और जो रुकित नहीं सकती ऐसी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥

यादृशेन ह्यभावेन यद्यत्कर्म निषेवते ॥ तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलं  
लभुर्पांशुते ॥ ८१ ॥ एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वै फलोदयः ॥ नै  
श्रेयसकरं कर्म विप्रस्ये दं निबोधत ॥ ८२ ॥

टीका—जिस प्रकारके सात्विक राजस अथवा तामस चित्तसे स्नान दान योग आदि जिस कर्मको करताहै वैसेही सत्वअधिक रजअधिक अथवा तम-  
अधिक शरीरसे उस उस स्नान आदिके फलको भोगताहै ॥ ८१ ॥ यह तुमसे विहित और प्रतिषिद्ध कर्मोंके फलके उदयको संपूर्ण कहा अब ब्राह्मणके कल्याणके लिये तथा मोक्षके लिये हितकारी कर्मोंको करना जो आगे कहा जायगा उसको सुनिये ॥ ८२ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ अहिंसां गुरुसेवां च  
निःश्रेयसकरं परम् ॥ ८३ ॥ सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणां  
म् ॥ किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

टीका—उपनिषद् आदि वेदका ग्रंथसे और अर्थसे आवृत्ति करना और कृ-  
च्छ्र आदि तप और ब्रह्मविषयक ज्ञान और इन्द्रियोंका बंध करना और नहीं कही हुई हिंसाका न करना और गुरुकी सेवा ये उत्कृष्ट मोक्षके साधन हैं ॥ ८३ ॥ इन सब वेदाभ्यास आदिक शुभकर्मोंमें कुछ कर्म अतिशय करिके मो-  
क्षका साधन होय यह वितर्क होनेपर ऋषियोंकी जिज्ञासा विशेषसे आगेके श्लो-  
कसे निर्णय कहते हैं ॥ ८४ ॥

सर्वेषामपि च तेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ तद्ध्येयं सर्वविद्यानां  
प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥८५॥ षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य च  
हं च ॥ श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥८६॥

टीका—इन वेदाभ्यास आदि सर्वोपनिषद् करि कहा हुआ परमात्माका  
ज्ञान उत्कृष्ट कहा है जिसे सब विद्याओंका प्रधान है इसीमें हेतु कहते हैं कि जि-  
स्से उसके द्वारा मोक्ष मिलता है ॥ ८५ ॥ पहले कहे हुए इन वेदाभ्यास आदि छ-  
कर्मोंमें परमात्म ज्ञानरूप वैदिक कर्म इस लोक तथा परलोकमें अत्यंत कल्याण  
करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ अन्तर्भवन्ति क्रमंशस्तं  
स्मिस्तास्मिन्क्रियाविधौ ॥८७॥ सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसि  
कमेव च ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥८८॥

टीका—अब आत्मज्ञानका इस लोक तथा परलोकमें श्रेयका साधन होना  
स्पष्ट करते हैं ॥ परमात्माकी उपासनारूप वैदिक कर्मयोगमें ये सब पहले श्लो-  
कमें कहे हुए इस लोक तथा परलोकके श्रेय उस उस उपासना विधिमें क्रमसे  
संभवित होते हैं ॥८७॥ वैदिक कर्म यहां ज्योतिष्टोम आदि और प्रतीकोपासना  
आदि ग्रहण किये जाते हैं क्योंकि स्वर्ग आदिके सुखका देनेवाला संसारकी प्रवृ-  
त्तिका कारण है इसे वैदिक कर्मका प्रवृत्तनाम है नैःश्रेयस, मोक्षको कहते हैं  
उसके लिये जो कर्म है उसको नैःश्रेयसिक कहते हैं क्योंकि वह संसारकी निवृत्तिका  
कारण है इसे प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकारका वैदिक कर्म जानना चाहिये ॥८८॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु  
निवृत्तमुपदिश्यते ॥८९॥ प्रवृत्तं कर्म संसेव्यं देवानामेति साम्भ्यं ता  
म् ॥ निवृत्तं सेवमानस्तु भूर्तान्यत्येति पञ्च वै ॥ ९० ॥

टीका—इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इस लोकमें कामनाका साधन करनेवाला  
यज्ञ आदि और परस्वर्ग आदिका साधन ज्योतिष्टोम आदि जो कामनासे किया  
जाता है वह संसारकी प्रवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्त कहा जाता है और दृष्ट अदृष्ट  
फलकी कामना रहित ब्रह्मज्ञानके अभ्यासपूर्वक किया जाता है वह संसारकी निवृ-  
त्तिका कारण होनेसे निवृत्त कहा जाता है ॥८९॥ प्रवृत्त कर्मके अभ्याससे देवता-  
ओंके समान गतिस्वको अर्थात् उसके फलको कर्मसे प्राप्त होता है यह तौ प्रदर्श-  
नके लिये है अन्यफलके देनेवाले कर्मके प्रवृत्त होनेसे दूसरा फलभी प्राप्त होता

है और निरुक्त कर्मके अभ्याससे शरीरके आरंभ करनेवाले मंचभूतोंको अतिक्रमण करजाताहै अर्थात् मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ १९०॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि ॥ समं पर्युत्रात्मयाजी  
स्वाराज्यमधिगच्छति ॥१९१॥ यथोक्तान्यैपिकर्माणि परिहाय द्वि  
जोत्तमः ॥ आत्मज्ञाने श्मे च स्याद्विदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ १९२ ॥

टीका—स्थावरजंगमरूप सब जीवोंमें मैही आत्मारूप सही और परमात्माके परिणामसे सिद्ध सब जीव मुझपरमात्मामेंही सामान्यतासे यह जानता हुआ आत्माका यजन करनेवाला ब्रह्ममें अर्पण करनेके न्यायसे ज्योतिष्टोमादिकोंको करता हुआ स्वजो ब्रह्महै तिससे प्रकाशित होताहै स्वराद् ब्रह्मको कहते हैं तिसके भावको स्वाराज्य अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्षको प्राप्त होताहै ८१ वेद करि प्रेरणा किये गयेभी अग्निहोत्र आदि कर्मोंको त्याग करिके ब्रह्मके ध्यानमें इंद्रियोंसे उद्भव प्रणव और उपनिषद आदि वेदके अभ्यासमें ब्राह्मण यत्न करे ८२

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ प्राप्येतत्कृतकृत्यो  
हि द्विजो भवति नान्यथा ॥१९३॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः स  
नातनम् ॥ अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥१९४॥

टीका—यह आत्मज्ञान और वेदका अभ्यास आदि द्विजातिके जन्मकी सफलताका करनेवालाहै जिस्से द्विजाति इसको प्राप्त होके कृतार्थ होताहै और भांति नहीं ॥ ८३ ॥ अब वेदहीसे ब्रह्म जाननेयोग्यहै यह दिखानेके लिये वेदकी प्रशंसा कहते हैं ॥ पितृ देवता और मनुष्योंका हव्यकव्यके दानोंमें वेदही चक्षुके समान अग्निनाशी चक्षुहै और वेदशास्त्र करनेको अशक्यहै इस्से वेदकी अपौरुषेयता कही गई और अप्रमेय कहिये मीमांसा तथा न्यायशास्त्रके विना इसका प्रमेय नहीं जाना जासकताहै यह व्यवस्थाहै तिससे मीमांसा करिके और व्याकरण आदि अंगोंसे कर्म तथा ब्रह्मरूप वेदके अर्थको जानै यह कहा गया ॥१९४॥

यां वेदब्रह्माः स्मृतयो यांश्च कार्ष्ण कृदृष्टयः ॥ सर्वास्तां निष्फलाः  
प्रत्यं तमोनिष्ठां हि तां स्मृताः १९५ उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतो  
ऽन्यानि कान्निचित् ॥ तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च

टीका—जो स्मृतियां वेदसे बाह्यहैं अर्थात् वेद नहीं हैं जैसे चैत्यकी बंदना करनेसे स्वर्ग मिलताहै इत्यादि दृष्टार्थ वाक्यहैं और जो देवताओंका अपूर्व निराकरणरूप असत्तर्कमूलहैं और जो वेदविरुद्ध चार्वाकोंके शास्त्रहैं वे सब परलो-

कर्मनिष्फलहै. वे सब मनु आदिकों करि नरकरूप फलके देनेवाले कहे गये हैं २५  
इमीको स्पष्ट करते हैं ॥ इन्द्र वेदसे अन्य जिनका मूलहै ऐसे जे कोई शास्त्रहै  
वे पौषिये कहिये पुरुषोंके बनाये हुए होनेसे उत्पन्न होते हैं और शीघ्रही नष्ट  
होजाते हैं वे आधुनिक होनेसे निष्फल और असत्यरूपहैं और स्मृति आदिकों  
का त्रै वेदमूल होनेसे प्रामाण्यहै ॥ १६ ॥

चातुर्वर्ष्यं त्रयो लोकांश्चैवारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं  
च सर्वं वेदात्प्रसिद्धानि ॥ १७ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गंधश्च  
पञ्चमः ॥ वेदादे वै प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ १८ ॥

टीका—ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् इत्यादि वेदहीसे चारोंवर्ण सिद्ध होतेहैं त्रि-  
सेही स्वर्ग आदि तीनो लोकमी वेदहीसे प्रसिद्धहैं ऐसे ब्रह्मचर्य्य आदि चारो  
आश्रमभी वेदमूलक होनेहीसे प्रसिद्धहैं बहुत कहनेसे क्याहैं जो कुछ भूत वर्तमान  
और भविष्यहै बहु सब अग्नौप्रास्ताहुतिः सम्यक् इत्यादि न्यायसे वेदहीसे प्र-  
सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥ जो इस लोकमें और परलोकमें शब्द आदि विषय उप-  
योगी होते है वे प्रसूतिगुण सत्व रज तमोरूप वेदहीसे प्रसिद्ध होतेहैं ॥ १८ ॥

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्मादेतत्परं मन्ये यं  
जन्तोरस्य साधनम् ॥ १९ ॥ सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव  
च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रं विद्वति ॥ २० ॥

टीका—वेदशास्त्र नित्य सब भूतोंको धारण करताहै सोई कहतेहैं कि हविअग्निमें  
होमी जातीहै उसको अग्नि सूर्यके लिये पहुंचातीहै उसको सूर्य किरणोंसे बरस-  
ते हैं विस्से अन्न होता है अथेहभूतानामुत्पत्तिस्थितिश्चेतिहविर्जीयते यह ब्राह्मणमें  
लिखाहै अर्थ इस पीछे यहां भूतोंकी उत्पत्ति और स्थिति हवि होतीहै इति ॥ त्रिस्से  
वेदशास्त्र इस जंतुके वैदिक कर्ममें अधिकारी पुरुषके मूळ पुरुषार्थको साधन जान-  
ते है १९ सेनाका पति होना राजदंडका करना और सब भूमिका स्वामी होना यह  
सब जिसका प्रयोजन कहचुके हैं वेदरूप शास्त्रके जाननेवालेही योग्यहै ॥ २० ॥

यथा जातबलो बन्दिर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ॥ तथा दहति वेदज्ञः  
कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे वस  
न् ॥ इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाम् कल्पते ॥ २ ॥

टीका—जैसे बन्दी हुई अग्नि गीलेभी वृक्षोंको जलादेतीहै ऐसेही अंधसे तथा  
अर्थसे वेदका जाननेवाला निषेध किये हुए कर्मोंके करनेसे उत्पन्न पापोंका आ-



प नाश करताहै ऐसे तौ वेदके बल स्वर्ग अपवर्ग आदिहीका हेतु नहीं है कि अहितकानाश करनेवालाभीहै १ जिसे जो कर्म और ऋद्धात्मक वेदको और उसमें अर्थको तत्त्वसे ज्ञानताहै वह नित्यनैमित्तिक कर्मों करि अनुगृहीत ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मचार आदिके आश्रममें स्थित इसी लोकमें रहता हुआ ब्रह्मत्वके लिये समर्थ होताहै ।

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठां ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः॥ धारिभ्यो ज्ञानि  
नः श्रेष्ठां ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ३ तपो विद्यां च विप्रस्य निःश्रेय  
संकरं परम्॥ तपसां किल्बिषं हन्ति विद्यांऽमृतमश्नुते ॥ ४ ॥

टीका—जे थोडा पढे है वे अज्ञहैं उनसे संपूर्ण वेदके पढनेवाले श्रेष्ठहैं उनसे पढे हुए ग्रंथके धारणमें समर्थ श्रेष्ठहैं और धारण करनेवालोंसे पढे हुए ग्रंथके अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठहैं और उनसे करनेवाले श्रेष्ठहैं ॥ ३ ॥ तपः कदिये आश्रमव लिये विहित कर्म औ विद्या कहिये आत्मज्ञान ये दोनी ब्राह्मणको पर कहिये उ त्कृष्ट निःश्रेष्ठसकर अर्थात् मोक्षका साधनहैं उनमेंसे तपसे पापको नाश करता है और ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधांगमम्॥ त्रयं सुविदितं कार्यं  
धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥५॥ आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधि  
ना ॥ यस्तैर्केर्णानुसंधत्ते स धर्मं देदं ने तैः ॥ ६ ॥

टीका—धर्मके तत्त्वको जानना चाहता पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमान और स्मृ-  
ति आदि नाना प्रकारके वेदमूलक शास्त्र धर्मका मूल जाननेके लिये सुविदित  
कहिये भलीभांतिसे ज्ञान करना चाहिये येही तीनो प्रमाण मनुको अभिमतहैं  
उपमान और अर्थापत्ति आदिकोंका अनुमानमें अंतर्भावहै ॥ ५ ॥ ऋषियों करि  
सेवित होनेसे आर्ष जो वेदहै तिसको और धर्मके उपदेशको और धर्ममूलक स्मृ-  
ति आदिको जो धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसे मीमांसा आदि न्यायसे जो विचार  
करताहै वह धर्मको जानताहै और मीमांसाका न जाननेवाला नहीं जानताहै ॥६॥

नैःश्रेयसं मिदं कर्म यथोदितमशेषतः॥ मानवस्यास्य शास्त्रस्य र  
हस्यसुपदिश्यते ॥ ७ ॥ अनाम्रातेषु धर्मेषु कैथं स्यादिति चेद्  
वैर्त्तार्यं शिष्टां ब्राह्मिणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशुद्धितः ॥ ८ ॥

टीका—यह कल्याणका साधन कर्म संपूर्णतासे यथावत् कहा इसके उपरांत  
इस मानव शास्त्रके छाननेयोग्य इस वक्ष्यमाण रहस्यको सुनिये ॥७॥ इस शास्त्र-  
का सब धर्मोंके न कहनेकी शंका करिके इस सामान्य उक्तिसे समग्र धर्मका  
उपदेश करना सूचित करते हैं ॥ सामान्य विधिसे प्राप्त और विशेष करि नहीं

कहे गये धर्ममें कैसे करना चाहिये यह जो संदेह होय तो जिस धर्मको जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे शिष्टब्राह्मण कहें वह वहां निश्चित धर्म होय ॥८॥

धर्मेणाधिगता येस्तु वेदः सपरिवृंहणः ॥ ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥९॥ दशावरा वा परिषद्ध्यं धर्मं परिकल्पयेत् ॥ त्र्यवरा वाऽपि वृत्तस्था न्तं धर्मं न विचारयेत् ॥१०॥

टीका—ब्रह्मचर्य आदि कहे हुए धर्मसे जिन्होंने अंग मीमांसा धर्मशास्त्र, और पुराण, आदि करि उपबृंहित वेद पढाहू वे ब्राह्मण श्रुतिके प्रत्यक्ष करनेमें कारण है और जे श्रुतिको पढिके उसके अर्थका उपदेश करतहू वे शिष्ट जानने चाहिये ॥९॥ जो बहुतसे इकठे न होंय तौ कमसे कम दश अथवा कमसे कम तीनि जिनके लक्षण आगे कहे जायगे ऐसे जिसमें सदाचार होंय वह परिषत् कहिये सभा जिस धर्मका निश्चय करै अर्थात् धर्मत्वसे स्वीकार करै उसमें विवाद न करै ॥१०॥

त्रैविद्या हेतुकस्तर्का निरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्र्यंश्वंश्रमिणः पूर्वं परिषत्स्यो दशावरा ॥११॥ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ॥ त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ १२ ॥

टीका—तीनोवेदोंकी तीनि शाखाओंका पढनेवाला, और श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध नहीं ऐसे न्यायशास्त्रके जाननेवाले और मीमांसात्मक तर्कोंके जाननेवाले और निरुक्तके ज्ञाता, और मानव आदि धर्मशास्त्रोंके वेत्ता, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, तथा वानप्रस्थ, यह कमसे कम दशकी सभा होय ॥ ११ ॥ ऋक् यजु और सामवेदकी शाखाओंके पढनेवाले और उनके अर्थके जाननेवाले तीनि ब्राह्मण जिसमें होय वह धर्म संदेह दूर करनेके लिये त्र्यवरापरिषत् जाननी चाहिये ॥१२॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्विज्ञोत्तमः ॥ सर्वज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानांमुदि तोऽयुतैः ॥१३॥ अत्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपनिषिनाम् ॥ सहस्रंशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १४ ॥

टीका—एकभी वेदके अर्थ और धर्मका जाननेवाला जिस धर्मकानिश्चय करै वह प्रकृत धर्म जानना चाहिये और वेदके न जाननेवालोंके दशसहस्रोंसेभी युक्त परिषत् नहीं होती है यह वेदवित् शब्द वेदका अर्थ और धर्मज्ञको कहताहै यह तौ उपलक्षणहै स्मृति पुराण मीमांसा तथा न्यायशास्त्रका ज्ञाताभी गुरुपरंपरासे उपदेशका वेत्ताभी जानना चाहिये तथा केवलशास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः ॥ युक्तिहीनविचारेतु धर्महानिः प्रजायत इति ॥ अर्थ ॥ केवल शास्त्रका आश्रय लेक-

र निर्णय न करना चाहिये युक्तिसे हीन विचारमें तौ धर्मकी हानि होती है इति॥  
तिसे बहुतसी स्मृतियोंका जाननेवालाभी जो भलीभांतिसे प्रयश्चित्त आदि धर्मको जानता होय तौ उस एक करिकैभी कहा हुआ धर्म उत्कृष्टधर्म जानना चाहिये  
इसीसे यमने कहा है जैसे॥ एको द्वौ वा त्रयो वापि यद्भूयुर्धर्मपाठकाः॥ सधर्म इति विज्ञेयो  
नेतरेषां सहस्रशः । इति ॥ अर्थ ॥ एक दो अथवा तीन धर्मपाठक जो कहें वह धर्म  
जाना चाहिये औरोंके हजारों नहीं १३ सावित्री आदि ब्रह्मवारीके व्रतों करि रहितों  
और मंत्रवेदाध्ययन रहितोंके तथा ब्राह्मण जातिमात्रके धारण करनेवाले हजारोंके  
मिलनेका परिषद्भाव नहीं होती है धर्मके निर्णयका अभाव होनेसे ॥ १४ ॥

यं वर्द्धन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदुः ॥ तत्पापं शर्तथा भूत्वा  
तद्वक्तृननुगच्छति ॥ १५ ॥ एतद्बोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परं  
म् ॥ अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

टीका—इमोगुणहै बहुत जिनमें ऐसे मूर्ख धर्मका प्रमाण और वेदका अर्थ न  
जाननेवाले होते हैं इसीसे प्रश्न विषयधर्मके न जाननेवाले जिस-प्रायश्चित्त आदि  
धर्मका उपदेश करते हैं उसका पाप सौगुना होकरि बहुतसे कहनेवालोंमें जाता-  
है ॥ १५ ॥ यह कल्याणका साधन उत्कृष्ट धर्म आदि सब तुमसे कहा इसको  
करता हुआ ब्राह्मण आदि स्वर्ग अपवर्गरूप परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकांनां हितं काम्यया ॥ धर्मस्य परमं गुह्यं  
ममेदं सर्वमुक्तं धान् ॥ १७ ॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्स चासच्च सर्वं  
हितः ॥ सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्ना धर्मं कुरुते मनः ॥ १८ ॥

टीका—वह भगवान् ऐश्वर्य आदि करि युक्त देवमनुने नहीं सुननेकी इच्छा  
वाले शिष्योंसे छुपानेयोग्य यह सब धर्मका परमार्थ लोकके हितकी इच्छासे मेरे  
लिये कहा भृगु महर्षियोंसे कहते हैं ॥ १७ ॥ ऐसे उपसंहार करिकै महर्षियोंके  
हितके लिये कहे हुएभी आत्माके ज्ञानको प्रकृष्ट मोक्षका उपकारक होनेसे जु-  
दा करिकै कहते हैं॥ सद्भाव और असद्भाव इस सब ब्रह्मको जानता हुआ अपनेमें  
अप्रस्थित ब्रह्मके स्वरूपको तद्रूप एकाग्र मनहो ध्यानके प्रकर्षमें साक्षात् करै जिसे  
सबको आत्मत्वसे देखता हुआ रागद्वेषके न होनेसे अधर्ममें मनको नहीं करता है १८

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥

आत्मा हि जनयत्येषां कर्म योगं शरीरिणाम् ॥ १९ ॥

टीका—इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इंद्र आदि सब देवता परमात्माही हैं परमां  
के सर्वात्मा होनेसे सब जगत् आत्माहीमें अवस्थित हैं क्योंकि परमात्माका परि-

णामहै जिस्से परमात्माही इन क्षेत्रज्ञ आदिकोंके कर्मसंबंधको उत्पन्न करताहै १९॥

खं सनिं वेशवेऽस्येषु चैष्टनरूपर्शनेऽनिलम् ॥ पक्तिदृष्टयोः परं ते  
र्जः स्नेहेऽपो गां च मूर्त्तिषु ॥१२०॥ मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते  
विष्णुं बले हरम् ॥ वाच्यं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥२१॥

टीका—वक्ष्यमाण ब्रह्मके ध्यानविशेषका उपयोगी होनेके कारण देहमें स्थित  
त आकाश आदिकोंमें बाहरी आकाश आदिकोंका लय कहते हैं ॥ बाहरी आ-  
काशको पेट आदिमें स्थित देहके आकाशमें लीन करे अर्थात् एकतासे धारण  
करे तैसेही चेष्टा और स्पर्श कारणभूत वायुमें बाहरी वायुको और उदरके तथा  
नेत्रोंके तेजमें बाहरी अग्नि तथा सूर्यके उत्कृष्ट तेजको और देहके जलमें बाहरी  
जलको और शरीरसंबंधी पृथिवीके भागोंमें बाहरी पृथिवीको और मनमें चन्द्र-  
मनको और कानमें दिशाओंको और पाद इंद्रियमें विष्णुको और बलमें हरको  
और वाक् इंद्रियमें अग्निको और पायुइंद्रियमें मित्रको और उपस्थ इंद्रियमें प्रजा-  
पतिको लीन कहिये एकतासे भावना करे ऐसेही आत्मामें स्थित भूतादिकोंमें ब्रा-  
हरी भूतादिकोंको लीन करि अर्थात् एकतासे भावना करि जो यह अग्नि आदि  
कोंका दैहिक आदि नियमहै और जो कर्मोंका प्रतिनियत फलहै उस सबको  
आत्माके आधीन करे ॥ १२० ॥ २१ ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥

रुक्माभं स्वप्रधीगम्यं विद्यात्तं उरुषं परम् ॥२२॥

टीका—ब्रह्माको आदिले स्तंब पर्यंत सब चेतन अचेतन अर्थात् जडचैतन्य  
जातिका प्रशासिता कहिये नियंता और अणोरणीयांसं अर्थात् छोटेसेभी बहुत  
छोटाहै सोई श्रुति कहतीहै जैसे ॥ बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च ॥ भागो-  
जीवितिविज्ञेयः सचानत्यायकल्पते इति ॥ अर्थः ॥ बालकी नोकका जो सौमा  
भागहै उसके सौभाग कल्पना करनेसे जो भाग होय वह जीव जानवा चाहिये  
वही अनंत होजाताहै इति और रुक्माभं यद्यपि शब्दरहित स्पर्शरहित अविना-  
शा इन विशेषणोंसे उपनिषदने परमात्माके रूपका निषेध कियाहै तिसपरभी उ-  
पासना विशेषमें शुद्ध सुवर्णके समान कांतिहै इसीसे यूपोन्नरादित्येहिरण्मयः  
अर्थात् जो यह सूर्यके भीतर सुवर्णमयहै इत्यादि छांदोग्य उपनिषदमें लिखाहै  
और स्वप्रधीगम्यं यह दृष्टान्तहै स्वप्नकी बुद्धिके समान ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्यहै  
जैसे स्वप्नकी बुद्धि चक्षु आदि बाहिर इंद्रियोंके उपराममें मबमात्रसे उत्पन्न होताहै  
ऐसे आत्मबुद्धिभी ज्ञानिये इसीसे व्यासने कहाहै जैसे ॥ नैवासौचक्षुषाग्राह्यौ नच-  
शिष्टैरपीन्द्रियैः ॥ मनसांतुप्रसन्नेन गृह्यते सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ अर्थ ॥ यह नेत्रोंसे

ग्रहण करनेयोग्य नहीं है और शेष इंद्रियों करिकेभी नहीं ग्रहण किया जाताहै  
सूक्ष्म दृष्टिवाले मनुष्यों करि प्रसन्न मनसे ग्रहण किया जाताहै ॥ इस प्रकारके  
परमात्माका चित्रवन करै ॥ २२ ॥

एतन्मेके वर्दन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इन्द्रमेके परं प्रौणमपं  
रे ब्रह्मं शीश्वतम् ॥ २३ ॥ एषं सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्ति  
भिः ॥ जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ २४ ॥

टीका—कोई याज्ञिक इस परमात्माकी अग्निभांसे उपासना करतेहैं और फिर  
मनुमन्य प्रजापतिके रूपसे उपासना करतेहैं और कोई फिर ऐश्वर्यके योग आदि-  
से इंद्ररूपसे उपासना करतेहैं अपर फिर प्राणभाषसे उपासना करतेहैं अपर फिर  
अपगत प्रपंचात्मक सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी उपासना करतेहैं मूर्ति और अ-  
मूर्तिमान स्वरूप ब्रह्ममें श्रुतिप्रसिद्ध सबही उपासना होती हैं ॥ २३ ॥ यह आत्मा  
सब प्राणियोंको शरीरके आरंभ करनेवाले पृथिवी आदि पांच महाभूतोंसे ग्रहण  
करिके पूर्वजन्मके अर्जित कर्मोंकी अपेक्षासे उत्पत्ति स्थिति विनाशोंसे रथ आ-  
दिके चक्रके समान वारंवार फिरनेसे मोक्षतक संसारी करताहै ॥ २४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ स सर्वसमतामेत्य  
ब्रह्माभ्येति प्रं पदम् ॥ २५ ॥ इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठं  
द्विजः ॥ भवत्वाचारवात्रित्यं यथेष्टं प्रामुयाद्गतिम् ॥ २६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

टीका—अब मोक्षके कारण भावसे कहे हुए सब धर्मोंकी श्रेष्ठतासे सर्वत्र परमात्माके  
दर्शनकी अनुष्ठेयतासे उपसंहार करतेहैं ॥ इस भांति सब जीवोंमें आत्माको इत्यादिक-  
हे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंमें स्थित आत्माको आत्माकरि देखताहै वह ब्रह्मके सा-  
क्षात्कारसे परश्रेष्ठस्थान जो ब्रह्महै तिसको प्राप्त होताहै उसमें अत्यंत लीन होजाताहै  
अर्थात् मुक्त होजाताहै २५ इति शब्द समाप्तिके लियेहै यह स्मृतिशास्त्र भृगुने प्रकर्ष-  
करि कहा द्विजाति इसको पढता हुआ विहितके करने और निषेध किये हुएके त्या-  
गनेरूप आत्मारवान् होताहै जैसे चाही हुई स्वर्ग अपवर्गरूप गतिको प्राप्त होय २६

इति श्रीमत्पण्डितवर्यश्रीपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवोदि-

कृतार्थकुल्लूकभद्राऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ द्वादशोऽध्यायस्समाप्तः

॥ १२ ॥ तर्काऽन्वयनिशाकराङ्गणितिवर्षशुभेवैक्रममाथेमास्यसितेदले

संहतिथौनीतासमाप्तिमया ॥ श्रीमन्मानवधर्मशास्त्रविवृतिनौषांगिरा

स्वच्छयाश्रीमत्केशवशर्मणाऽगर्गलपुरेश्रीभानुजाभूषिते ॥ ११ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

श्रीकृष्णदत्तात्मज गंगाविष्णु खेमराज, श्रीविकटेश्वर प्रेस मुंबई.

